सविनय निवेदन

इस पुस्तक में सत्य सनातन धर्म के पूर्ण स्वरूप का चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। मैं अपने इस उद्देश्य में कहा तक सफल हो पाई हूँ यह मैं नहीं जानती। इसका निर्णय विद्वद् वर्ग कर सकते हैं, जिनसे मेरी प्रार्थना है कि इसका अवलोकन करने की कृपा करें और जो भी त्रुटियां या कमी दिखाई दे, उसे बता कर उसमें सुधार करने का भी अवसर प्रदान करें।

मैंने जो कुछ लिखा है और अपने जो विचार पुस्तक में प्रदर्शित किए हैं, ये मात्र केवल अन्तःकरण की प्रेरणा का परिणाम है। सत्य वैदिक सनातन धर्म के सामूहिक पतन का दृश्य दिखाई दिया, जिससे हृदय में एक कसक उठी, वेदना हुई और तड़फन मची। अन्तःकरण ने कहा—मूर्खा! तू क्या कर सकता है। बड़े बड़े महारथी जिस संग्राम में पराजित होते जा रहे हों वहां तुम सरीखी अदनी, अल्प बुद्धि अज्ञाना अबला की क्या बिसात है? तू तो चुपचाप अपने घर में बैठी भगवान का भजन कर! इसी में कल्याण है। अतः मन मार कर रह गई।

पुनः हृदय में उबाला आया, शूल सा चुभा। सहारा पाने के लिए हिंदू समाज की ओर देखा तो वहां सभी अपने अपने रंग में रंगे मदमस्त दिखाई दिए। प्रत्येक का अपना अलग दृष्टि-कोण है, अलग संगठन है सबके अलग-अलग मार्ग हैं, कोई

किसी की सुनना नहीं चाहता। सभी अपने आप को सही और अन्य को गलत सिद्ध करने में लगे हुए हैं। न केवल हिंदू बल्कि अन्य मतावलम्बी—सिख, जैन, पारसी, ईसाई, मुसलमान यहा तक कि कांग्रेसी, साम्यवादी, समाज वादी, मुस्लिम लीगी, हिंदू-महा सभाई, जन संघी इत्यादि, ने भी तो केवल अपने विचारों को सही और अन्य को गलत माना हुआ है। सभी अपनी अपनी भावना के अनुसार देश का, धर्म का और विश्व का कल्याण चाहते हैं। उन्हें गलत बताने का मुझे क्या अधिकार है? जब कि मेरा भी यही हाल है। मेरा एक दृष्टि कोण है, जिसे मैं सही समझ बैठी हू फिर मेरी कोई क्यों सुने? जब कि मैं किसी की नहीं सुन रही हू। यह सब सोच विचार कर पुन मन मसोस कर रह गई।

इसी बीच श्री १०८ स्वामी श्री नृसिंहगिरि जी महाराज महा मडलेश्वर का धर्मोपदेश (जिसका साराश पुस्तक के प्रथम पृष्ठों पर प्रकाशित है) सुनने का अवसर मिला जिससे शाश्वत धर्म की अज्ञानता, शंका तथा भ्रम का निवारण होकर अनिश्चित स्थिति का अन्त हुआ और नवीन प्रेरणा जागृत हुई।

पन हृदय में टीस हुई, तूफान सा उठा अन्त करण में एक ध्वनि गु जारित हुई —"पंगली" तू अपनी ओर देख! तू भी तो अपने आप को सनातन धर्म का एक अग माने बैठी है। जिस धर्म की छाया म तू रही बसी और पली है उसके प्रति तेरा भी तो कुछ कत्तव्य है। तेरा भी तो कुछ उत्तरदायित्व है! यदि तेरे हृदय में वेदना है और सच्ची लगन है, तो देख! तू क्या कर सकती है, जितना कर सकती है उतना कर के दिखा! यदि रत्ती भर कर सकती है तो उतना ही सही। कुछ करना अवश्य चाहिए। तेरे अन्त करण में जो सनातन धर्म के स्वरूप का चित्र अकित हुआ है उसे प्रकट कर। तू अपने कर्त्तव्य का पालन कर। परिणाम की

चिंता त्याग दे। अत. मैंने टूटे फूटे-अटपटे शब्दों मे सनातन धर्म के स्वरूप का चित्रण कर अपने कर्तव्य के पालन की चेष्टा मात्र की है। अपने उत्तरदायित्व के निभाने का प्रयत्न किया है। मैं अपने इस प्रयत्न में सफल रही हूँ या असफल हुई हू यह सब मैं कुछ नहीं जानती।

इसे कोई पढता है या नहीं और उसका कुछ परिणाम निकलता है या नहीं—यह सब सोच विचार करने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं। यह तो उस सर्व शक्तिमान के आधीन है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिसने मुझ सरीखी अनाडी अबला के अन्त करण मे विराजमान होकर नित्य नई प्रेरणा प्रदान कर यह सब लिखवाया है वही अन्तर्यामी यदि चाहेगा तो औरों को भी प्रेरित कर इसे कुछ न कुछ सफलता प्रदान अवश्य करेगा।

मैंने यह स्पष्ट कर दिया कि इस पुस्तक मे जो कुछ लिखा है और अपने जो भाव प्रदर्शित किए हैं, वह सब केवल अन्त-करण की प्रेरणा का परिणाम है। अनेक स्थान पर आलोचना के रूप में हिंदू, मुसलमान, ईसाई तथा जिन व्यक्ति विशेष की ओर सकेत किया गया है, अथवा इस पुस्तक में जिनके नाम आये हैं, वे यह न समझें कि मेरा उनके प्रति कोई द्वेष भाव है, अथवा कोई दुर्भावना है। मुझे तो जो कुछ सत्य प्रतीत हुआ वह साफ साफ लिख दिया है।

पाठकगण यह भी न समझें कि मेरा या श्री स्त्री समाज का किसी सस्था या दल विशेष मे कोई गठबन्धन है। श्री स्त्री समाज एक पूर्ण स्वतन्त्र सस्था है। उसके अपने नियम और उद्देश्य है। आज तक उसका किसी भी सस्था या सगठन से कोई सम्पर्क नहीं हुआ है, और न ऐसा करने का अभी कोई विचार है।

मुझसे यह भी कहा जारहा है कि तुम यह पुस्तक व्यर्थ में छपना रही हो। कौन तुम्हारी रचना पढने बैठेगा ? तुम्हारे ये सब लम्बे दास्तान कौन सुनेगा, इतना समय किसके पास है, तुम्हारी पुस्तकें रद्दी की टोकरी में डाल दी जायेंगी, इनकी पुडियायें बंधेंगी। इत्यादि

उनका यह कथन ठीक भी हो सकता है। आज मनोरंजन की प्रधानता में और कुटिलता के युग में सत्य और धर्म सम्बन्धी (मन तथा इन्द्रिय निग्रह की) बातों की ओर ध्यान देने का किसी के पास समय नहीं है। न हो! मुझे इसकी कोई चिंता नहीं। मैंने अपनी भावना व्यक्त की है, आगे कुछ भी हो।

मैं यह समझती हूँ कि इस पुस्तक को पढ़ कर हमारे आत्मीय जन रुष्ट होंगे, सामाजिक जन व्यग कसेंगे, फबतिया छोड़ेंगे गन्दी कीचड़ भी उछालेंगे। प्रगतिशील शासक वर्ग तथा अग्रणी महिलायें, पिछडी, प्रतिगामी, प्रतिक्रिया वादी, दकियानूसी महिलाओं की प्रगति में बाधक और न जाने क्या क्या नाम धरेंगी, किंतु मुझे इन सबका कोई सकोच नहीं। मैंने तो कुछ टूटे-फूटे शब्द लिख कर अपना कर्तव्य मात्र पालन किया है।

पिछले हजारों वर्ष से विधर्मियों की मार खाते-खाते क्षत् विक्षत, आहत और पीडित सनातन धर्म के मुख पर आज कालिख पोत दी गई है। उसके हथकडी बेडी डाल कर एक अपराधी अभियुक्त की भाति कैदियों के कटघरे में खडा कर दिया गया है। उसे कलुषित और कलकित सिद्ध करने के लिये आज उसी के तथा कथित अनुयायी ढिंढोरा पीट रहे हैं। विदेशी विधर्मियों के षड्यन्त्र का शिकार बने, उन्हीं के बहकावे में आकर सनातन धर्म के बाल बच्चे आज सत्य वैदिक सनातन धर्म को सूली पर चढाने जा रहे हैं।

इस पुस्तक का मूलोद्देश्य सनातन धर्म का सही परिचय देना है। उसके मुख पर पोती हुई कालिख पोंछ कर यह दिखाना है कि सनातन धर्म के स्वरूप का रंग न केवल गोरा है, बल्कि उज्ज्वल, चमकदार और देदीप्य मान है। यही नहीं वह सूर्य के समान प्रकाशवान भी है और विश्व को आलोकित रखने वाला उसमें तेज भी है।

आज जो भूले भाई! सनातन-धर्म के अनुयायी भ्रम में पड़ कर सत्य वैदिक सनातन धर्म को सूली पर टागने लगे हैं, उनसे लड़ने-झगड़ने की तो मुझमें सामर्थ्य है नहीं। अपनी अभिलाषा तो केवल इतनी है कि अन्तिम घड़ी में उसके मुख पर पुती कालिख पोछने की चेष्टा की जाय। जिससे सत्य-वैदिक-सनातन धर्म का विलय कलंकित अवस्था में तो न हो पाये। जनता उसके उज्ज्वल मुख को (चित्र रूप में ही सही) देख अवश्य ले। कहते हैं—ईश्वर की लम्बी बाह है। कदाचित उसकी अस्थियों की क्षार में पुनः प्राण प्रतिष्ठा कर सनातन धर्म की पुनः ज्योति जगादे जा सके यही कामना है।

पुस्तक प्रकाशित करने का उद्देश्य भी यही है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

पुस्तक - परिचय

इस पुस्तक का उद्देश्य सत्य वैदिक सनातन धर्म के शुद्ध स्वरूप को समझना और समझाना है एवं सनातन धर्म की सामाजिक व्यवस्था तथा छोटी-छोटी जातियों के महत्व की ओर ध्यान देना है, जिस का जन समूह के आचरण पर भारी प्रभाव पड़ता था।

इसमें प्रथम श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य निरंजन पीठाधीश्वर श्री १०८ स्वामी श्री नृसिंह गिरि जी महाराज महामण्डलेश्वर के अमृत-मय उपदेशों में से २५ उपदेशों का सारांश है, जोकि उन्होंने सन् १९४९ में ४८, दरियागंज में दिया था।

अब तक श्री स्त्री समाज देहली और सहारनपुर में भी दो-दो करके छः प्रश्न प्रस्तुत किये गये, जो कि इस प्रकार हैं—

१—मनुष्य जीवन में धर्म पालन आवश्यक क्यों माना गया है ?

२—धर्म क्या है ?

३—सुख क्या है ?

४—सुखी कौन है ?

५—क्या स्त्री पुरुष समान हैं (सहारनपुर में इसे प्रस्तुत नहीं किया गया। बल्कि यहां का प्रथम प्रश्न था—"मनुष्य और जानवरों में क्या भेद है ?"

६—शान्ति का साधन और अशान्ति का कारण क्या है ?

प्रस्तुत निबन्धों में इन सभी प्रश्नों के उत्तर के रूप में विषय की गहराई पर प्रकाश डाला गया है।

मनुष्य और इतर प्राणियों में क्या भेद है, मनुष्य जीवन में धर्म पालन आवश्यक क्यों माना गया है ? यहां मनुष्य और जानवरों का भेद तथा धर्म पालन का महत्व-प्रदर्शित किया गया है।

सामान्य धर्म—सामान्य धर्म की व्यापकता, उसके दस और तीस लक्षण 'यम' नियम के आंकड़े (जो कि कल्याण आदि ग्रंथों से संग्रह किये गये हैं) इस में दिये गये हैं।

विशेष धर्म

विशेष-धर्म के अन्तर्गत-वर्ण-धर्म, आश्रम, धर्म, राज्य-धर्म, १६ संस्कार (जिसमें यज्ञोपवीत की विशद व्याख्या कर आद्योपान्त रूप से समझाया गया है)। कर्म और उपासना की एकसूत्रता, ब्रह्म सूत्र का अर्थ, अर्थ और भोग को धर्म युक्त रखने के साधन, यज्ञोपवीत के नियम पालन का आचरण से सम्बन्ध, धर्म की पवित्रता, नियमित जीवन का आचरण पर क्या और कैसे प्रभाव पड़ता है (था) इसकी विशद व्याख्या की गई है। वर्तमान काल के धार्मिक-पतन, नैतिक पतन तथा चरित्रहीनता के कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र तथा राज्य धर्म को अलग-अलग करके समझाया गया है और देश की दासता के यथार्थ कारणों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है।

नारी धर्म

नारी धर्म क्या है ? स्त्री क्या है और पुरुष क्या है, स्त्री

चार प्रकार की होती हैं उनमें स्वाभाविक गुण क्या है ? और दोष क्या है, वह किस प्रकार दोषों को दबाकर अपने स्वाभाविक सद् गुणों मे प्रवृत हो सकती है। सुसन्तति सृजन परनारी धर्म का प्रभाव तथा बालकों पर गर्भजनित संस्कारों का महत्व आदि विषय पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त नारी स्वातन्त्र के दुष्परिणाम, अमेरिका आदि देशों की स्थिति का चित्रण किया गया है। भारतीय नारी धर्म परतथा वैदिक धर्म पर विदेशी *विद्वानों के विचार भी प्रदर्शित किये गये हैं। महद् कुटम्ब प्रणाली* पर भी प्रकाश डाला गया है।

अछूत

अछूत सम्बन्धी निबन्ध में बताया गया है कि अछूत कौन है। जिसके कर्म अपवित्र है, वही अछूत है। अछूतों का उत्पत्ति का उद्गम स्थान क्या है ? किन अपवित्र कर्मों के कारण इन्हें अपवित्र माना गया है। इसकी पुष्टि के लिये श्री रामचन्द्र शुक्ल रचित हिन्दी साहित्य के इतिहास मे से कुछ आकडे प्रस्तुत किये गये हैं। उनकी वृत्ति, सवर्णों से सम्बन्ध इत्यादि अनेक बातें इसमें दी गई हैं।

प्रश्न—३-४—सुख क्या है और सुखी कौन है ?—इसका केवल साराश दिया गया है।

प्रश्न—५—क्या स्त्री पुरुष समान हैं ?—इस प्रश्न का खुलासा उत्तर नारी-धर्म मे आजाने के कारण यहा साराश में समझाया गया है।

प्रश्न—६—शान्ति का साधन और अशान्ति का कारण क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर मे प्रथम अशान्ति के कारणों को प्रदर्शित किया गया है, फिर धर्म के संस्थापक महर्षियोंने अनेकता में एकता द्वारा जो समाधान किया था उसपर प्रकाश डाला

गया है।

इन प्रश्नों के उत्तर के अतिरिक्त तप, दान और यज्ञ, भगवान् के ५ स्वरूप—मूर्ति और मन्दिर का महत्वपूर्ण उद्देश्य भगवान के साकार स्वरूप, रामावतार व कृष्णावतार धारण करने का मूलोद्देश्य क्या था ? रामलीला और कृष्णलीला साकार स्वरूप और भक्ति, जगद् गुरु भारत कैसे बना, गोरक्षा का महत्व इन सब को प्राचीन और नवीन दृष्टि कोण से तत्व से समझाने की चेष्टा की गई है। इसके अतिरिक्त शिक्षा प्रणाली कैसी हो यह बताया गया है। अन्त में चेतावनी भी दी गई है।

लेखिका—इन्द्राणी पाठक
मन्त्राणी, श्री स्त्री समाज
सहारनपुर

विषय - सूची

परमपूज्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री मत्परमहंस
परिव्राजकाचार्य निरंजन पीठाधीश्वर
श्री १०८ श्री स्वामी नृसिंहगिरी जी महाराज महामंडलेश्वर

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

परम पूज्य श्रोत्रिय ब्रह्म-निष्ठ श्रीमत्परम हंस परिव्राजकाचार्य निरञ्जन पीठाधीश्वर श्री १०८ श्री स्वामीनृसिंह गिरी जी महाराज "महामण्डलेश्वर" जी का यह धर्मोपदेश जिसे उन्होंने विशेष- धर्म का उपदेश देते समय दिया था—

※ धर्मोपदेश ※

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में सातवें अध्याय के अट्ठाइसवें श्लोक में भक्त अर्जुन से कहा है—

येषां त्वंत गतं पापं, जनानां पुण्य कर्मणाम् ।
ते द्वंद्व मोह निर्मुक्ता, भजन्त मां दृढ़ व्रता ॥

अर्थात जिन पुण्यात्माओं के पाप का अंत हो गया है; वे द्वन्द्वों के मोह से छूटकर दृढ़ व्रत होकर मेरी भक्ति करते हैं।

भक्ति सफल होने के लिये पाप का नाश होना आवश्यक है। धर्म का अनुष्ठान करने से ही पाप नष्ट होते हैं। यह धर्म क्या है? धर्म दो प्रकार का है सामान्य धर्म और विशेष धर्म। विशेष धर्म भी दो प्रकार का है—नारी धर्म और पुरुष धर्म। पुरुष धर्म के भी दो भेद हैं—वर्ण धर्म और आश्रम धर्म। वर्ण धर्म के अनुसार धर्मानुष्ठान करने से ही मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है। जो जिस वर्ण का है उसको उसी वर्ण-धर्म का पालन करना चाहिए। हिन्दू जाति की बुनियाद वर्ण-धर्म पर आश्रित है। इस बुनियाद को

मजबूत बनाये रखना हमारा कर्तव्य है। महाभारत के अश्वमेध पर्व में युधिष्ठिर ने भगवान कृष्ण से पूछा—"चारों वर्णों की गति कैसे होती है ?"

भगवान ने उत्तर दिया कि चारों वर्ण अपने-अपने शास्त्रोक्त वर्ण धर्म का पालन करके ही उत्तम जाति को प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण ब्रह्मलोक और क्षत्रिय वैश्य और शूद्र स्वर्गादिक लोक को प्राप्त करके फिर शूद्र वैश्य वर्ण में और वैश्य क्षत्रिय वर्ण में और क्षत्रिय ब्राह्मण वर्ण मे जन्म लेते हैं।

भगवान को धर्म प्यारा है। जो धर्म में अनुरक्त है, वे ही धर्म पालन की शक्ति तथा भगवान को अनुभव करते हैं, भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—

> नाहं प्रकाश. सर्वस्य योग माया समावृत. ।
> मूढोऽय नाभिजानाति लोको मा भज भव्ययम् ॥

अर्थात्—मैं अपनी योग माया से आच्छादित रहने से सबके लिये प्रगट नहीं हू। मूर्ख लोग नहीं जानते कि मैं अज और अव्यय हूँ।

परमात्मा अपनी योग माया से आच्छादित है। योग माया क्या है ? योग कहते हैं सम्बन्ध को। सासारिक वस्तुओं के प्रति हमारे हृदय में ममत्व की—'ममेदम' की—अर्थात् 'यह मेरा है' की जो आसक्ति पूर्ण भावना काम कर रही है, वही योग माया है। इसी माया मे लोग फसे हुए हैं। ससार में आसक्ति और धर्माचरण का अभाव होने से परमात्मा का अनुभव नहीं हो पाता।

आज ईश्वर और धर्म के विरुद्ध बहुत कुछ कहा जा रहा है। कलियुग तर्क प्रधान है और तर्क भी ऐसे जिनका कोई अत नहीं है। हमारे आत्मज्ञ ऋषियों ने और शास्त्रकारों ने यद्यपि

ईश्वर तथा धर्म की महिमा को युक्ति पूर्वक समझाया है, तथापि तर्क का कोई अंत न होने से उन्होंने तर्क को आखिर अप्रतिष्ठित माना है। बात भी ठीक है। जो बातें अचिन्तनीय हैं वे केवल तर्क से समझी या समझाई नहीं जा सकती। नास्तिक कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। जैन और बौद्ध भी नहीं मानते। हमारे शास्त्र ईश्वर को मानते हैं। नास्तिकों की अपेक्षा आस्तिकों का अनुभव बलवान है—क्यों ?

जिसने जिस वस्तु को देखा ही नहीं, वह यदि कहता है कि वह वस्तु है ही नहीं, तो तर्क के आधार पर भी उसका कथन ग्राह्य नहीं माना जा सकता। यदि कोई अन्धा जो सूर्य को देख नहीं पाता कहे कि सूर्य नहीं है, अंधे का कथन उसके अज्ञान का परिचायक समझा जायेगा। इसी प्रकार नास्तिकों के कथन का कोई मूल्य नहीं है। नास्तिक कहेगा वस्तु हो तो दीखनी चाहिए। बात ठीक है। परन्तु यह भी सत्य है कि वस्तु तो हो, पर देखने का साधन न हो तो वह दिखाई नहीं देती जैसे कि अंधे के उदाहरण में बताया गया है। मैले दर्पण में मुख नहीं दिखाई देता।

नास्तिक कहते हैं कि ईश्वर तथा धर्म को मानने से कोई लाभ नहीं है और इनके न मानने से कोई हानि भी नहीं है। परन्तु ईश्वर तथा धर्म को मानने से जो लाभ है और न मानने से जो हानि है वह प्रगट है। ईश्वर का मानने वाला पाप से दूर रहता है। वह सबको आत्मोपम्य दृष्टि से देखता है। उलटे इसके नास्तिक पारलौकिक भय न होने से पाप करता है, अन्याय तथा अत्याचार करता है। मकान को देख कर हम यह विश्वास करते हैं कि इसका बनाने वाला—यद्यपि हमने उसको कभी नहीं देखा—कोई न कोई अवश्य है। विशाल ब्रह्माण्ड विचित्र रचना पच

महाभूतो का नियमित व्यापार देख कर मानना पड़ता है कि इसका कोई रचयिता तथा नियामक है, वह परमेश्वर है। प्रकृति जड़ है। उसमें यह सामर्थ्य नहीं है कि वह नियमों से नियमित सृष्टि की रचना करे।

सृष्टि सृष्टा को छिपाए है परन्तु सृष्टा प्रच्छन्न रूप से सृष्टि में विद्यमान है। सृष्टा की अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो, निष्काम भावना से धर्मानुष्ठात करने से अर्थात अपने-अपने वर्ण-धर्म का पालन करने से परमात्मा की प्राप्ति होती है। धर्म पालन से ही संसार के दुःखों की निवृत्ति और अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती है। गीता में भगवान कृष्ण ने स्वधर्म अर्थात् वर्ण धर्म पालन पर जोर दिया है। अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहता था। भगवान ने उसे क्षत्रिय धर्म का उपदेश दिया और उससे युद्ध कराया। भगवान को धर्म प्रिय है।

जो धर्म में अनुरक्त हैं उनके लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं हैं। धर्माचरण आनन्द दायक है और अधर्माचरण दुःख दायक। हम धर्म के मार्ग पर चलें।

श्री १०८ स्वामी श्री नृसिंह गिरी जी महाराज "महामण्डलेश्वर" का मनोहर—

धर्मोपदेश (२)

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में सातवें अध्याय के अठ्ठारहवें श्लोक में भक्त अर्जुन से कहा—

> येषां त्वंत गतं पापं जनानां पुण्य कर्मणाम्।
> ते द्वंद मोह निर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़व्रताः॥

अर्थात्—जिन पुण्यात्माओं के पाप का अंत हो गया है, वे द्वन्द्वों के मोह से छूट कर दृढ़व्रत होकर मेरी भक्ति करते हैं।

जिनके पाप का अन्त हो गया है उनका ही ईश्वर में स्वाभाविक प्रेम हो सकता है। धर्म का पालन करने में पाप का अंत होकर प्रभु से प्रेम हो जाता है। धर्म परमात्मा की ओर ले जाता है और अधर्म पाप की ओर ले जाता है। कर्म दो प्रकार के हैं—सत्कर्म और असत्कर्म। परमात्मा-सत्य है और संसार असत्य। परमात्मा से सम्बन्धित जो कर्म हैं, उनको ही सत्कर्म कहा जाता है। संसार से सम्बन्धित अर्थात् सारे सांसारिक कर्म असत् हैं। असत् कर्म से जीव ८४ लाख योनियों में भटकता रहता है। सत्-कर्म से कर्म बन्धन से मुक्त होकर आत्मा परमात्मा को प्राप्त हो जाती है। एक ओर ८४ लाख योनियाँ हैं और दूसरी ओर परमात्मा इन दोनों के बीच में मानव है। इससे हम मनुष्य जन्म के महत्व को समझ सकते हैं। ८४ लाख योनियों के जन्म मरण के चक्र से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। जो इस उद्देश्य को प्राप्त करेगा उसी का जीवन सफल माना जायगा।

परमात्मा से सम्बन्धित कर्म को सत कर्म कहा जाता है। अब देखना यह है कि किस कर्म का परमात्मा से सम्बन्ध होता है। निष्काम कर्म का ही परमात्मा से सम्बन्ध होता है। आसक्ति रहित होकर और फलाशा छोड़कर ईश्वरार्पण भाव से जो कर्म किया जाता है, उसी को निष्काम कर्म कहते हैं। सकाम कर्म तो जन्म मरण के चक्र से घुमाने वाला है। ईश्वर के नाम की माला फेरी और ईश्वर से सांसारिक सुख की मांग की तो यह ईश्वर से सौदा करना है, उससे प्रेम करना नहीं। जो सेवक स्वामी की मर्जी में ही प्रसन्न रहता है। स्वामी की प्रसन्नता से उस सेवक को भी

अधिक प्राप्ति होती है। परमात्मा में और उसके नियमों में जिसको पूर्ण विश्वास है, वही निष्काम कर्म कर सकता है।

भगवान कृष्ण ने गीता म कहा है—

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्म फल हेतुर्भू मतिसंगो ऽस्त्व कर्मणि॥

अर्थात्—कर्म करने मात्र का तेरा अधिकार है। कर्म का फल (मिलता या न मिलता) तेरे अधिकार मे नहीं। इसलिये मेरे कर्म का अमुक फल मिले यह हेतु (मन में) रख कर काम करने वाला न हो और कर्म न करने का भी आग्रह न कर।' सकाम कर्म से अशुद्ध मन और अशुद्ध बनता है। निष्काम कर्म से मन शुद्ध हो जाता है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है–

कायेन मनसा बुद्धया कैवलैरिद्रि यै रपि।
योगिन कर्म कुर्वन्ति सग त्यक्त्वाऽमा शुद्ध ये॥

अर्थात्—योगी आसक्ति छोड़ कर केवल शरीर से मन से बुद्धि और इन्द्रियों से भी आत्म शुद्धि के लिये कर्म किया करते हैं।

निष्काम कर्म से मन शुद्ध होता है। अशुद्ध मन से शुद्ध परमात्मा का मेल नहीं हो सकता। गीता में कहा है—

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता।

अर्थात्—"क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है, अत ये (साम्य बुद्धि वाले) पुरुष ब्रह्म मे स्थित होते हैं।"

निष्काम बुद्धि से वर्णाश्रम धर्म का पालन करने से चित्त शुद्ध होता है। आश्रम चार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यास। बीज की भी चार अवस्थायें हैं। बीज को जमीन में बो देने से अकुर निकलता है, फिर पत्ते निकलते हैं, यह पत्रावस्था है। अत म उसमें फूल आता है, यह पुष्पावस्था है। अन्त

में उसमें फल आता है, यह फलावस्था है। बीज फल तक पहुँचे तभी उसको सफल कहा जा सकता है। उसी प्रकार जीवन सफल करने के लिये चार आश्रमों की आवश्यकता है। पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम। इसमें गुरुकुल में नियम पूर्वक रहकर विद्याध्ययन करना होता है। विद्याध्ययन के बाद पचीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम। फिर पचीस वर्ष तक वानप्रस्थाश्रम। इसमें धर्म पत्नी को साथ लेकर या किसी को सौंप कर जंगल में तपस्या करनी पड़ती है। इसके पश्चात् आमरण सन्यासाश्रम। सन्यास में केवल ब्रह्म चिन्तन होता है। इससे ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से मुक्ति होती है।

जीवन के दो मार्ग हैं-प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग। निवृत्ति से ही मोक्ष मिलता है। आश्रम-धर्म का उद्देश्य प्रवृत्ति मार्ग से क्रमशः निवृत्ति मार्ग की ओर जाना है। प्रवृत्ति स्वाभाविक है, परन्तु निवृत्ति कष्ट साध्य है। जल नीचे की ओर बहता है। जीव की गति भी नीचे की ओर है। जल को ऊपर की ओर ले जाना हो तो पुरुषार्थ की आवश्यकता है। प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर जाने के लिये महान् पुरुषार्थ की आवश्यकता है। वेद में कहा है कि परमात्मा की प्राप्ति कर्म से सन्तान से या धन से नहीं हो सकती। केवल त्याग से अर्थात् निवृत्ति से ही परमात्मा की अमृतत्व की प्राप्ति होगी। धर्माचरण करते हुये मन को धीरे-धीरे शांत करने का अर्थात् धीरे-धीरे निवृत्ति की ओर ले जाने का अभ्यास करना चाहिये। गीता में कहा है—

> शनैः शनैरुपरमेद् बुद्धया धृति गृहीतया।
> आत्म संस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्॥

अर्थात्—धैर्य युक्त बुद्धि से धीरे-धीरे शांत होता जावे और मन को आत्मा में स्थिर करके कोई भी विचार मन में न आने दे।"

संसार असत् है यह बात जब तक चित में पूर्णतया बैठ नहीं जाती तब तक निवृत्ति मार्ग पर चलने की इच्छा नहीं होती, हमे यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि—

अरब खरब लौं द्रव्य है, उदय अस्त लों राज ।
बिना भक्ति भगवान की सभी नर्क का साज ॥

एक दिन मरना है और सब कुछ छोड़ कर चले जाना है, यह बताने के लिये किसी ज्ञानी की आवश्यकता नहीं है सब जानते हैं। परन्तु जानते हुये भी लोग इस बात को नहीं जानते हैं। एक घर में रात में चोर घुस आया। पत्नी ने पति से कहा—चोर आया है।' पति ने कहा 'हां मैं देख रहा हूँ।' पत्नि ने कहा 'देखो वह सन्दूक खोल रहा है।' पति ने कहा 'मैं देख रहा हूं।' पत्नि ने कहा—'वह पैसा निकाल रहा है।' पति ने कहा—'मैं देख रहा हूं।' पत्नि ने कहा—'चोर पैसा लेकर जा रहा है।' पति ने कहा—'मैं देख रहा हूं।' और सचमुच ही चोर पैसा लेकर चला गया और पति महाराज देखते ही रह गये। ऐसे देखने से क्या लाभ ? हमारा भी यही हाल है। देखते हुये भी हम नहीं देखते और जानते हुये भी नहीं जानते। वास्तव में मनुष्य जन्म अमूल्य है। इसकी हमें कद्र करनी चाहिये, जीवन को उन्नत बनाना चाहिये। भगवान ने गीता में कहा है—

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्ध किल्बिषः ।
अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

अर्थात्—"प्रयत्न पूर्वक उद्योग करते-करते पापों से शुद्ध होता हुआ योगी अनेक जन्मों के अन्तर सिद्ध पाकर अन्त में उत्तम गति को पा लेता है।"

धर्मोपदेश (३)

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में सातवें अध्याय के अट्ठाइसवें श्लोक में भक्त अर्जुन से कहा है—

येषां त्वतं गतं पापं जनानां पुण्य कर्मणां,
ते द्वंद मोह निर्मुक्ता भजते मां दृढ़ व्रता ।

अर्थात् जिन पुण्यात्माओं के पाप का अन्त हो गया है वे द्वंद्वों के मोह से छुट कर दृढ़ व्रत होकर मेरी भक्ति करते है।

भक्ति का साधन धर्मानुष्ठान है। धर्मानुष्ठान से मन शुद्ध होता है और ईश्वर से प्रेम हो जाता है। आश्रम-धर्म का उद्देश्य प्रवृत्ति से क्रमशः निवृत्ति की ओर जाने की शक्ति प्राप्त करना है। प्रथम पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम है। ब्रह्मचर्य जीवन की बुनियाद है। बुनियाद मजबूत हो तो जीवन शक्ति-सम्पन्न बन जाता है। आज पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता से ब्रह्मचर्याश्रम की बड़ी दयनीय अवस्था हो गई है। धर्म-कर्म का नाश हो गया है। इससे जीवन में नाना प्रकार के दुःखों की वृद्धि हुई है। मनुष्य का मन स्वभावतः विषय भोग चाहता है। मनुष्य की प्रवृत्ति विषय की ओर है। वह पुरुषार्थ से अर्थात् महान् प्रयत्न से ही ईश्वर तथा धर्म की ओर हो सकती। है ब्रह्मचर्याश्रम और ग्रहस्थाश्रम का शास्त्रोक्त नियम पूर्वक पालन करने से वान-प्रस्थाश्रम में निवृत्ति की शिक्षा और सन्यासाश्रम में निवृत्ति का, अनुष्ठान होता है। परन्तु ब्रह्मचर्याश्रम में ही कोई सन्यासाश्रम में प्रवेश करना चाहे तो वह कर सकता है। बशर्ते कि निवृत्ति मार्ग पर चलने की उसमें योग्यता हो। वेद में कहा है—

यद् हरेव विरजेत्, तद् हरेव प्रव्रजेत्। अर्थात् "जिस दिन वैराग्य पैदा हो जाय, उसी दिन सन्यासाश्रम में प्रवेश करे।"

ब्रह्मचर्य में मन से, बुद्धि से और शरीर से मैथुन का त्याग करना होता है। मैथुन के आठ प्रकार हैं—

दर्शन, केलि, कीर्तन, स्मरण, गुह्यभाषण, संकल्प, व्यवसाय और क्रिया निवृत्ति । आज दशा बड़ी दयनीय है । सह-शिक्षा से युवक युवतियों के लिये एकत्रित होकर बैठने-बोलने का अवसर प्राप्त होता है। अश्लील चित्र पट युवक युवतियोंमें जहर फैला रहे हैं। जमाना ही बदल गया है। मनुमहाराज ने माता पुत्र और भाई-बहिन को भी एकान्त में रहना हानिकारक बताया है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी स्त्री के सम्पर्क में आकर भ्रष्ट हुये हैं। फिर आज के स्त्री पुरुषों का कहना ही क्या है ? आज लोग भोग परायण बने हुए हैं, माता पिता भी अपनी सन्तान का कोई ख्याल नहीं रखते।

ब्रह्मचय के तीन अर्थ होते हैं। ब्रह्मचर्य में दो शब्द हैं। ब्रह्म और चर्य। ब्रह्म के तीन अर्थ होते हैं—वीर्य, वेद और ईश्वर इस प्रकार ब्रह्मचर्य के तीन अर्थ होते हैं—वीर्य रक्षा, वेदाध्ययन और ईश्वर चिन्तन। इन तीनों अर्थों की दृष्टि से ब्रह्मचर्याश्रम में जीवन बिताना पड़ता है। संयम, अध्ययन और चिन्तन– यही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्य नाश मृत्यु है। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मनुष्य गौरव को प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य से शरीर निरोग रहता है और विचार उच्च बनते हैं। वीर्य नाश से जीवन नष्ट होता है। धर्म ग्रंथों में ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा गाई है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा—

यदक्षरं वेद विदो वदन्ति, विशन्ति यद्यो वीतरागाः।
तते यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तते वदं संग्रहेण प्रवक्ष्म ॥

-अर्थात् वेद के जानने वाले जिसे अक्षर कहते हैं, वीतराग हो यति जिनमें प्रवेश करते हैं, और जिसकी इच्छा करके ब्रह्मचर्य

व्रत का आचरण करते हैं, वह पद तुझे संक्षेप में बतलाता हूं।''

ब्रह्मचर्य से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक उन्नति होती है। छान्दोग्य उपनिषद् में इन्द्र और विरोचन की कथा है। इन्द्र और विरोचन आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने उनको पहले १०१ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के लिये कहा। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य की अनिवार्य आवश्यकता है। मन, प्राण और वीर्य का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है। मन, प्राण और वीर्य इन तीनों में से किसी एक को जो वशमें कर लेता है उसके वशमें तीनों हो जाते हैं। योग शास्त्र में कहा है—ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः- ब्रह्मचर्य से वीर्य लाभ होता है। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से हनुमान जी समुद्र लांघ गये और भीष्मपितामह ने इच्छानुसार मृत्यु की शक्ति प्राप्त की थी। ब्रह्मचर्य से मनुष्य में दैवी चमत्कार की शक्ति प्राप्त होती है।

शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्

शरीर से ही धर्म साधन होता है। रोगी शरीर से कुछ नहीं हो सकता। शरीर में वीर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य आज जो अन्न खायेगा उससे एक महीने के बाद शरीर में वीर्य पैदा होता है। आयुर्वेद में लिखा है कि खाया अन्न पाकस्थली में पहुँचता है। वहां अन्न से रस बनता है और मैला बाहर निकल आता है। इससे क्रमशः रक्त मांस मेद अस्थि मज्जा और वीर्य उत्पन्न होता है। ४० रक्त बिन्दु के बराबर एक वीर्य बिन्दु होता है इससे हम वीर्य के मूल्य को समझ सकते हैं। कोई माली अपने बगीचे के गुलाब के फूलों से यत्न पूर्वक इत्र निकाले और इस इत्र को गन्दी नाली में बहा दे तो आप निश्चय उस माली को महा मूर्ख ही समझेंगे। परन्तु जरा सोचिये वीर्य नाश करने वाले

मनुष्य उस माली से कम मूर्ख नहीं हैं। वीर्य नाश से आयु, तेज, बल, प्रज्ञा, यश और पुण्य नष्ट होते हैं, और ब्रह्मचर्य से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

वीर्य रक्षा वेदाध्ययन और ईश्वर चिन्तन ये तीन ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य हैं। ब्रह्मचारी का एक और कर्त्तव्य होता है—आचार्योपासना अर्थात् गुरु की आज्ञा का पालन करना और उनकी सेवा करना। गुरु सेवा से विद्या फलवती होती है, महाभारत के आदि पर्व में आयोधम्य ऋषि और उनके शिष्यों की कथा है। आयोधम्य ने अपने शिष्य आरुणि से कहा—"बेटा अपने खेत में जल दे आओ।" आरुणि ने खेत में जाकर देखा कि पानी खेत में नहीं आ रहा था क्योंकि नीची जगह से पानी दूसरी तरफ़ जा रहा था। आरुणि ने वहां मिट्टी डाल कर पानी रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु पानी के वेग से मिट्टी बह जाती, अन्त में पानी को रोकने के लिये आरुणि स्वयं उस स्थान पर लेट गया और पानी को रोक दिया, जिससे खेत में पानी जाने लगा। जब रात हो जाने पर भी आरुणि नहीं लौटा तो आचार्य आयोधम्य अपने अन्य शिष्यों के साथ उसे ढूंढने के लिये खेत में गये। आयोधम्य ने पुकारा –"आरुणि"। आरुणि लेटे हुये ही बोला-गुरुजी, मैं यहां लेटकर आपकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। आयोधम्य ने वहां जाकर देखा तो चकित रह गये और उनका चित्त आरुणि की सेवा से गदगद हो गया। उन्होंने आरुणि को प्रेम से उठा कर वेद शास्त्रों का ज्ञाता हो जाने का आशीर्वाद दिया। उस दिन से आरुणि का नाम उद्दालक हो गया।

दूसरी कथा आयोधम्य के दूसरे शिष्य उपमन्यु की है। वह गुरु की आज्ञा से जंगल में गायें चराता था। आयोधम्य ने उसे भिक्षा मांग कर खाने और गौओं का दूध पीने से मना कर

दिया। आखिर उपमन्यू आक के पत्ते खाकर पेट भरने लगा। इससे वह अन्धा हो गया और कुएँ में गिर पड़ा। आयोधम्य के कथनानुसार अश्विनी कुमार की प्रार्थना करने से उपमन्यू को नेत्र प्राप्त हुये। आयोधम्य के आशीर्वाद से उपमन्यू वेद शास्त्र के महान ज्ञाता हो गये।

धर्मोपदेश (४)

धर्म के दो प्रकार हैं, सामान्य धर्म और विशेष धर्म। वर्णाश्रम-धर्म, विशेष धर्म के अन्तर्गत है। आज की कथा में गृहस्थ-धर्म की विवेचना की जायगी।

ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवृत्ति-धर्म की शिक्षा और गृहस्थाश्रम में उसका अनुष्ठान होता है। परन्तु इस प्रवृति धर्म में भी निवृति-धर्म के बीज प्रच्छन्नरूप में विद्यमान हैं। आश्रम-धर्म का उद्देश्य-प्रवृत्ति की ओर से मनुष्य को क्रमशः निवृत्ति की ओर ले जाना है। स्वकर्म में लगा हुआ अपनी पत्नी में ही सन्तुष्ट रहने वाला जितेन्द्रिय और अतिथि सत्कार करने वाला गृहस्थी का घर में ही कल्याण होता है। अहिंसा, सत्य वचन, सब पर दया, शम और दान—इनका पालन गृहस्थ-धर्म के लिये आवश्यक है। ब्रह्मचर्याश्रम के समावर्तन स्नान के पश्चात् विधि पूर्वक अपने वर्ण की लड़की से विवाह करे। गृह का अर्थ घर नहीं प्रत्युत स्त्री है। स्त्री से जिसका शास्त्रोक्त विधि पूर्वक सम्बन्ध स्थापित होता है, वही गृहस्थ है।

विवाह संस्कार केवल भोग के लिये नहीं, उसके तीन उद्देश्य हैं—(१) स्वेच्छा प्रवृत्ति का निरोध (२) प्रजातन्तु की रक्षा अर्थात् सन्तानोत्पादन, और भगवत्प्रेम का अभ्यास। गृहस्थ धर्म में स्वेच्छा प्रवृत्ति का निरोध होता है। पशु प्रकृति के आधीन

होते हैं। परन्तु मनुष्य प्रकृति का उलंघन कर जाता है। स्वभावतः स्त्री-पुरुष एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं और एक दूसरे को चाहते हैं। इस आकर्षण तथा चाहना को मर्यादित तथा नियमित करने के लिये गृहस्थाश्रम है। पति को पत्नि में और पत्नि को पति में अन्य प्रवृत्ति का निरोध करके सन्तुष्ट रहना चाहिये। शेष तीन आश्रमों की अपेक्षा गृहस्थाश्रम यद्यपि भोग प्रधान है, परन्तु यह भूल न जाना चाहिये कि वह भोग संयमित तथा नियमित है। पर-पुरुष और पर स्त्री की ओर वासनात्मक दृष्टि से देखने का निरोध तथा निषेध गृहस्थ-धर्म में है। इसीलिए कहा है कि गृहस्थाश्रम का उद्देश्य स्वेच्छा-प्रवृत्ति का निरोध है।

गृहस्थाश्रम का दूसरा उद्देश्य प्रजा तन्तु की रक्षा अर्थात् सन्तानोत्पादन करना है, सन्तान होने से मनुष्य पितृ-ऋण से मुक्त होता है। वेद में कहा है—प्रजातन्तु का विच्छेद (लापरवाही) न कर। आज बड़ा अनर्थ हो रहा है। युवक युवतियों में विवाह न करने का फैशन सा बन गया है। इसमें भ्रष्टाचार और व्यभिचार की वृद्धि हो रही है। आजन्म ब्रह्मचारी बना रहना जनसाधारण के लिये असम्भव है। पुरुष यज्ञो पवीत संस्कार से शुद्ध होता है। अर्थात् द्विजत्व को प्राप्त होता है। परन्तु स्त्री की शुद्धि विवाह संस्कार से होती है।

धर्मशास्त्र कहते हैं कि ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण इन तीनों से मुक्त होकर फिर निवृत्ति मार्ग अपनाना चाहिये। वेदाध्ययन से ऋषि ऋण चुकता है। यज्ञ-यात्र करने से देव ऋण चुकता है और सन्तानोत्पादन करने से पितृ-ऋण चुकता है।

गृहस्थाश्रम का तीसरा उद्देश्य भगवत प्रेम का अभ्यास करना है। जीव-भाव परतन्त्र है और ईश्वर भाव स्वतन्त्र। जीव भाव का मूल स्वार्थ है और ईश्वर भाव का मूल

परमार्थता है। जिसमें स्वार्थ जितना ही कम और परमार्थ जितना ही अधिक होता है वह उतना ही अधिक भगवत्कार्य होता है। ब्रह्मचारी तो केवल अपनी ही देख भाल करता है। अर्थात् स्वार्थ में ही लगा रहता है। गृहस्थ मनुष्य पत्नी से प्रेम करता है और उसके लिये त्याग भी करता ही है। फिर वह सन्तान के पालन पोषण का बोझ भी अपने सिर पर उठाता है। वह सारे परिवार से प्रेम करता है और उसके सुख दुःख में वह भागीदार होता है। फिर क्रमशः समाज और देश से भी प्रेम करता है और उनके लिये त्याग करता है। आज हमारे कुछ नेता समाज और देश के लिये कष्ट-मय तथा त्याग-मय जीवन बिता रहे हैं और इस प्रकार प्राण मात्र में प्रेम भाव होकर "वसुधैव कुटुम्बकम" की भावना उत्पन्न होती है और मनुष्य में ईश्वर भाव की वृद्धि होती है। पति-पत्नी का परस्पर प्रेम भगवद्प्रेम की शिक्षा है। पति-पत्नी के प्रेम में ईश्वरीय प्रेम के बीज विद्यमान होते हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि पति-पत्नी गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए मानव जीवन के उद्देश्य को अर्थात् भगवद्प्राप्ति को सदा अपने सम्मुख रक्खें। आज हिन्दू-कोड बिल सामने आया है। इससे धर्म व्यवस्था बिगड़ जायगी और स्त्री-पुरुषों में व्यभिचार फैलेगा।

विवाह के आठ प्रकार हैं—ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजा पत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच। ब्राह्म विवाह में वस्त्र आभूषण के साथ अपने वर्ण के योग्य-युवक को कन्या दान किया जाता है। दैव विवाह में यज्ञ कराने वाले ऋत्विग को कन्या दान किया जाता है। पहले राजा लोग ऋषियों को कन्यादान करते थे। क्षत्रिय ब्राह्मण को कन्या दान करता था। इसको अनुलोम विवाह कहते हैं। परन्तु प्रतिलोम विवाह का अर्थात् उच्च वर्ण की लड़की का नीच वर्ण के पुरुष से

विवाह कराने का शास्त्र-कारों ने निषेध किया है। आर्ष विवाह में यज्ञ कराने के लिये कन्या दान किया जाता है। प्राजापात्य विवाह में ग्रहस्थ-धर्म के पालन के लिये कन्या दान किया जाता है। इसमें कन्या का पिता वर-वधु को ग्रहस्थ-धर्म के पालन का उपदेश देता है। आसुर विवाह में माता-पिता को धन देकर कन्या ली जाती है, अर्थात् माता-पिता कन्या विक्रय करते हैं। कन्या को बेचना शास्त्र-कारों ने गोवध के तुल्य पाप माना है। गान्धर्व विवाह में वर कन्या में प्रेम के कारण विवाह-पूर्व शरीर सम्बन्ध स्थापित होता है। यह विवाह काम मूलक होता है, धर्म मूलक नहीं। राक्षस विवाह में कन्या को बल-पूर्वक हरण करके विवाह किया जाता है। पैशाच विवाह में नशीली चीजें खिला पिला कर लड़की को बेहोश करके उससे विवाह किया जाता है। विवाह के पहले चार प्रकार उत्तम हैं क्योंकि उनसे अनिंद्य सन्तान उत्पन्न होती है। विवाह के शेष चार प्रकार अधर्म मूलक होने से अधर्म हैं। इनसे निंद्य संन्तान पैदा होती है।

पति-पत्नी का परस्पर प्रेम ग्रहस्थ-धर्म की बुनियाद है। पत्नी पती की आज्ञा का पालन करे और उसकी सेवा करे, परन्तु साथ ही पति-पत्नी का सम्मान करे और उसकी सलाह की कद्र करे। पत्नी नौकरानी नहीं प्रत्युक्त अर्द्धांगिनी है। तथा सह धर्म-चारिणी है।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।'

जहां स्त्रियों का सम्मान होता है वहां देवता निवास करते हैं। पुरुष चाहता है कि वह चाहे जैसा चले, परन्तु स्त्री बिल्कुल ठीक चले, परन्तु पुरुष को यह भूलना न चाहिये कि पुरुष के सदाचार या दुराचार का स्त्री पर अच्छा या बुरा असर पड़ता है। स्त्री पर अनुचित दबाव ठीक नहीं। स्त्री

की मानने योग्य सलाह को अवश्य मानना चाहिये। नीति की दृष्टि में 'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यं' अर्थात् छोटा बालक भी कोई अच्छी बात कहे तो माननी चाहिये।

विवाह का उद्देश्य शास्त्रानुकूल सन्तानोत्पादन करना है। ऋतु-काल में संभोग हो, आगे-पीछे नहीं। ऋतुकाल से १६ रात्रियां संभोग के लिये निहित हैं। पहली चार रात्रियां संभोग वर्जित हैं। एकादशी और त्रयोदशी को भी सभोग वर्जित है। अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति आदि आठ रात्रियां भी वर्जित हैं। केवल दो रात्रियां संभोग के लिये निहित हैं। केवल दो दिन भोग करने वाला गृहस्थ ब्रह्मचारी माना जाता है। दिन में भोग करने वाले प्राणों का नाश करते हैं। संध्या, स्नान होम देव-पूजन, बलि वैश्व देव, अतिथि सत्कार इनका पालन गृहस्थाश्रम के लिये आवश्यक है।

धर्मोपदेश (५)

पुण्यकर्म भक्ति का साधन है। स्वधर्मानुष्ठान से ही पुण्य कर्म होते हैं इसलिये स्वधर्मानुष्ठान करना मनुष्य के लिये आवश्यक है। जीवन में मृत्यु के बीज हैं। जीवन के साथ ही मृत्यु उत्पन्न होती है, इसलिये "युवैव धर्म-शील स्यात्। अनित्यं खलु जीवितम्।" युवावस्था से ही धर्माचरण करना चाहिये। जीवन अनित्य है। कोई नहीं जानता कि आज किस की मृत्यु होगी।

गृहस्थाश्रम सफल होने के लिये परिवार में पारस्परिक प्रेम की आवश्यकता है। जब तक परिवार के सभी व्यक्ति अपने-अपने धर्म का पालन नहीं करेंगे, तब तक परिवार में प्रेम की सृष्टि नहीं होती। सच्चरित्र हों सधन हों। अपनी स्त्री में ही सन्तुष्ट

हो, पुत्र बुद्धिमान हो, स्त्री मधुर भाषिणी हो, आज्ञाकारी सेवक हो, अथिति सत्कार होता हो, शिव पूजन होता हो, मिष्ठान बनता हो और सत्संग भी होता हो तो ग्रहस्थाश्रम सचमुच धन्य है।

भारत का प्रभाव धर्म से है। भारत जैसा धर्म-प्राण देश संसार में दूसरा नहीं। धर्म की दृष्टि से भारत सबका गुरु है। भारत के इस तन्त्रा विशेषता की हम सबको रक्षा करनी चाहिये। यदि हम स्वधर्मानुष्ठान करते रहे तो भारत आगे भी जगद गुरू बना रहेगा।

स्त्री जन्म की सार्थकता माता बनने में है। धर्म ग्रन्थों में माता की बड़ी महिमा गाई गई है। उपनिषद् में कहा है—"मातृ देवो भव-।" "पितृ देवो भव।" माता का स्थान पिता से ऊंचा है, क्योंकि सन्तान का पालन पोषण कर उनमें धर्म प्रेम जागृत करने का कार्य तथा उत्तर दायित्व माता का होता है। सन्तान की प्रथम धर्म शिक्षिका माता होती है। माता अपनी संतान को चाहे जैसा बना सकती है। बच्चों को धाय का दूध नहीं पिलाना चाहिये। माता के दूध में संस्कार के बीज होते हैं।

"शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि।
संसार माया परिवर्जितोऽसि॥"

अर्थात्—तू शुद्ध है तू बुद्ध है और संसार की माया से रहित है—इस प्रकार लोरी गा-गाकर मदालसा ने अपने मासूम पुत्रों को विरक्त सन्यासी बना दिया। माता को संतान की भलाई का ध्यान रखना चाहिये। बालक ध्रुव की माता ने उसे कहा था- "बेटा, यदि तुम राज्य चाहते हो, तो परम पिता परमात्मा की शरण लो।" माता के उपदेश से ही ध्रुव महान भक्त होगया।

जब लक्ष्मण जी भगवान श्री रामचन्द्र जी के साथ जंगलों में जाने के लिये माता की आज्ञा प्राप्त करने सुमित्रा के

पास पहुचे तो सुमित्रा ने कहा—"बेटा आज से राम तुम्हारे पिता हैं और सीता माता है। जगल ही अयोध्या है। उनकी सेवा का ध्यान रखना, सुख से जाओ।" मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण जी मूर्छित हो गये। हनुमान जी लक्ष्मण जी को बचाने के लिये संजीवनी बूटी का पहाड उठाकर ला रहे थे। भरत ने उनको शत्रुपक्ष का कोई समझकर तीर का निशाना बनाया। हनुमान जी नें भरत को लक्ष्मण की खतरनाक अवस्था की कहानी सुनाई। भरत ने सुमित्रा से कहा—"माता, लक्ष्मण जी चल बसे, उनको गोद में लेकर राम रुदन कर रहे हैं। सुमित्रा ने कहा—"मेरा पुत्र धन्य है। और उसको जन्म देने वाली में भी धन्यवाद की पात्र हू। मेरा पुत्र स्वामी का कार्य करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ। मुझे केवल इस बात का दु ख है कि ऐसे सकट काल में राम के पास लक्ष्मण जैसा भाई नहीं रहा।" माता धर्मात्मा हो, तभी वह अपनी सन्तान को धर्म शिक्षा देकर धर्मात्मा बना सकती है।

पिता को चाहिये कि वह अपनी सन्तान को सुशिक्षा दे, और उनके आचरण के प्रति सतर्क तथा सचेत रहे। पाच वर्ष तक बच्चों से प्यार करना चाहिए। छठे वर्ष से दसवें वर्ष तक बालक को सन्मार्ग पर लाने के लिये यदि ताडना की आवश्यकता हो तो ताडना भी करनी चाहिये। कई माता-पिता अपने अनुचित प्यार से बालकों को बिगाड देते हैं। माता-पित अपनी लडकियों को लडकों के साथ पढाते हैं। इसका परिणाम अच्छा नहीं होता। जब माता-पिता सन्तान के प्रति उनका जो उत्तरदायित्व है उसको ठीक निभाते नहीं तो वह पाप के भागी होते हैं।

मातृ शिक्षा और गुरु शिक्षा से मनुष्य धर्मात्मा होता है. आज गुरु-शिक्षा का अभाव हो गया है। स्कूल, कालेज के विद्यार्थी अध्यापकों को अपना नौकर समझते हैं। अध्यापक भी

पाठ्य क्रम पढ़ा देने के सिवा विद्यार्थियों के प्रति अपना और कोई उत्तरदायित्व नहीं समझते। गुरु को चाहिये कि शिष्यों को नैतिक अर्थात् धार्मिक शिक्षा भी दे। पहले आचार्य शिष्यों को उपदेश देते थे—'सत्यंवद्, धर्मचर' अर्थात् सत्य बोलो और धर्म के अनुसार चलो,' आज स्कूल कालिजों में धार्मिक शिक्षा नहीं के बराबर है। इसके फल स्वरूप अधार्मिक विचारों का बोल-बाला हो रहा है।

पुत्र को माता-पिता का सम्मान करना चाहिये और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। श्रद्धा, आज्ञा पालन, चरण वन्दना और सेवा—यह पुत्र का माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य है। वेद में कहा है पुत्र पिता के अनुव्रत करे।

चार पदारथ करतल ताके।
प्रिय पितु-मात प्राण सम जाके॥

जो पुत्र अभिवादन शील है, प्रेम और श्रद्धा पूर्वक माता-पिता को प्रणाम करता है, और स्वधर्मानुष्ठान करता है, उसको आयु, कीर्ति, यश और बल में वृद्धि होती है। गुरु का निरादर करने से और उससे वाद-विवाद करने से मनुष्य मरने के बाद ब्रह्म राक्षस होता है। नचिकेता पिता की आज्ञा से यमराज के पास चला गया। माता की आज्ञा से राजा गोपीचन्द राज्य छोड़ कर योगी हो गये। भीष्मपितामह ने पिता की प्रसन्नता के लिये आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने [illegible] महान प्रतिज्ञा को पूर्णतया निभाया।

आज माता-पिता का [illegible] एक छोटे गांव का लड़का स्टेशन [illegible] बाप [illegible] मिलने आया। बाप

मास्टर ने अपने पिता को एक कोने में बैठने के लिए कहा और पूर्ववत काम करता रहा। फिर स्टेशन मास्टर के एक मित्र उनसे मिलने आए। मित्र ने मास्टर से पूछा—"कोने में बैठा हुआ मनुष्य कौन है?" मास्टर ने कहा हमारे गांव का है! मित्र ने पूछा—"गांव में कहां रहता है और क्या करता है? मास्टर ने कहा "हमारे घर का नौकर है।" पुत्र की बेवफाई देख कर पिता क्रोधित हो मित्र से बोला—"अर्जी मैं इसकी मां का खसम हूँ।" आज ऐसी बातें हो रही हैं।

परिवार में भाई-भाई का भी आपस में प्रेम होना चाहिए। लक्ष्मण ने कहा था—"मेघनाथ की शक्ति से मुझे जरा सी वेदना हुई। मेरे कारण से राम को जो वेदना हुई, वैसी मुझे नहीं हुई। कौरव पाण्डवों के युद्ध से भारत गारत होगया।

देवर भोजाई का सम्बन्ध माता पुत्र जैसा होना चाहिये। छोटे भाई की स्त्री को पुत्री के समान समझना चाहिये। सुग्रीव ने सीता के जेवर राम को दिखाये। राम ने लक्ष्मण से पूछा—"क्या यह जेवर सीता जी के हैं?" लक्ष्मण ने कहा—"कुण्डल और कंकण को तो मैं नहीं जानता। परन्तु पांव के नूपुरों को मैं पहचानता हूँ क्योंकि प्रतिदिन मैं उनकी चरण वन्दना करता था।

सास बहू का सम्बन्ध भी प्रेममय होना चाहिये। थोड़ी अन-बन होते ही बहू अपने पति को अलग होजाने की सलाह देती है। जब माता-पिता को सेवा की जरूरत होती है, तभी पुत्र उनसे अलग हो जाते हैं। यह ठीक नहीं।

धर्मोपदेश ६

धर्म के दो प्रकार हैं—सामान्य धर्म और विशेष धर्म।

विशेष धर्म के दो भेद हैं—पुरुष धर्म और नारी धर्म। गृहस्थाश्रम में पुरुष धर्म और नारी धर्म का समुचित समन्वय होता है। गृह का अर्थ घर नहीं प्रत्युत स्त्री है। जब किसी पुरुष का शास्त्रोक्त विधि के अनुसार किसी स्त्री से सम्बन्ध स्थापित होता है तभी वह गृहस्थ कहलाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि पति-पत्नी का प्रेम ही गृहस्थाश्रम की बुनियाद है। यह दाम्पत्य प्रेम की बुनियाद जितनी सुदृढ़ होगी उतना ही गृहस्थाश्रम सफल होगा। पुरुष-धर्म और नारी-धर्म की सफलता पर ही गृहस्थाश्रम की सफलता निर्भर है। पति पत्नी के प्रेम में ही ईश्वर प्रेम के बीज विद्यमान होते हैं। इसलिये पति-पत्नी दोनों अपने अपने धर्म का पालन करें, तो गृहस्थाश्रम मे भी ईश्वर भक्ति की साधना हो सकती है। पति-पत्नी का प्रेम ईश्वरीय प्रेम की शिक्षा होती है बशर्ते कि वह धर्मानुकूल हो। पति पत्नी का प्रेम काम मूलक तो होता ही है परन्तु वह काम धर्म मूलक होना चाहिये। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता मे स्पष्टतया कहा है कि धर्म के अविरुद्ध काम मैं हूँ। तात्पर्य यह है कि भोग भी मर्यादित तथा संयमित होने से ही लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति होगी।

पति पत्नी का प्रेम सुदृढ होने के लिये परस्पर विश्वास की आवश्यकता है। दोनों को यह विश्वास होना चाहिये कि दोनों एक दूसरे के प्रति सच्चे हैं और दोनों एक दूसरे के सुख-दुःख में भागी हैं। एक दूसरे के प्रति विश्वास तथा त्याग से प्रेम सुदृढ़ होता है।

पत्नी सलाह देने में मन्त्री के समान हो, कार्य करने में दासी की तरह हो। भोजन कराने मे माता की तरह हो, शयन में रंभा की तरह हो, धर्म के अनुकूल हो और सहन शीलता में

पृथ्वी के समान हो।

ऐसी पत्नी हो और पुरुष भी पति धर्म का पालन करने वाला हो, तो गृहस्थाश्रम में कल्याण होता है।

भारत में पति पत्नी का प्रेम पक्का होता है। ससार के और देशों में यह सम्बन्ध कच्चा होता है।

अमरिका में स्वामी रामतीर्थ घूमने बाहर निकले। उन्होंने देखा कि एक स्त्री अपने पति की कब्र पर पखे से हवा कर रही थी। कब्र की मिट्टी कुछ गीली थी। स्वामी रामतार्थ ने सोचा "कैसी पतिव्रता स्त्री है। पति मर गया परन्तु यह स्त्री उसकी कब्र को हवा कर रही है। कितना उच्च प्रेम है। धन्य है ऐसी पतिव्रता।" और स्वामी रामतीर्थ ने सती का सम्मान करने की भावना से प्रेरित होकर मन ही मन उस स्त्री को प्रणाम किया। स्वामी जी ने पास जाकर उस स्त्री से पूछा— "देवी तुम पति की कब्र पर पखे से हवा क्यों कर रही हो?" उस स्त्री ने स्वामी जी से कहा महाराज, मेरे पति ने मरते समय कहा था कि तुम दूसरी शादी तो अवश्य ही करोगी, परन्तु मेरी प्रार्थना है कि जब तक मेरी कब्र की गीली मिट्टी सूख न जाय तब तक दूसरी शादी न करना। मैं चाहती हूँ कि पति की अन्तिम इच्छा पूरी करू । इसीलिये मैं पखे से हवा करके कब्र की गीली मिट्टी सुखा रही हूँ ताकि मैं शीघ्र ही दूसरी शादी कर सकूँ।" स्वामी रामतीर्थ उस स्त्री का कथन सुनकर अवाक रह गये।

और देशों में पति-पत्नी का सम्बन्ध एक सामाजिक इकरार माना जाता है और उसको चाहे जब तोड़ा भी जा सकता है। यूरोप अमेरिका में तलाक देने वालों की सख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। भारत में पति-पत्नी का सम्बन्ध

धर्म मूलक तथा अटूट माना जाता है। और देशों में पति-पत्नी का सम्बन्ध काम मूलक माना जाता है परन्तु भारत में वह सम्बन्ध धर्म मूलक माना गया है। और इसीलिये उस सम्बन्ध को अटूट माना जाता है। कहीं पर हवन करके देवताओं का आवाहन करके, अग्नि देवता को साक्षी रख कर और पंचों के समक्ष जो पुरुष और स्त्री में पति-पत्नी का सम्बन्ध शास्त्रोक्त विधि पूर्वक स्थापित किया जाता है, वह चाहे जब नहीं तोड़ा जा सकता। आज हिन्दु-कोड बिल बनाया जा रहा है कि पति-पत्नी को विशिष्ट अवस्थाओं में पति पत्नी दोनों को तलाक देने का अधिकार प्राप्त हो। भारतीय परम्परा तथा संस्कृति पर यह एक कठोर आघात है। इससे गृहस्थाश्रम की पवित्रता नष्ट हो जायगी और भ्रष्टाचार फैलेगा। स्त्री पुरुष दोनों में भ्रमर वृत्ति पैदा हो जायगी। धर्म व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। अन्तर्जातीय विवाह से सन्तान में शुद्रत्व आता है। सगोत्र विवाह धर्म के विरुद्ध है।

स्त्री चूड़ियां पहनती हैं। आज चूड़ी की जगह घड़ी ले रही है। चूड़ी तो धर्म पालन की स्मारक है। चूड़ी धक्के से टूट सकती है। इसलिये उसकी रक्षा का स्त्री को ध्यान रखना पड़ता है। उसी तरह स्त्री भी असावधानी से अपने धर्म से पतित हो सकती है। भाव यह है कि स्त्री चूड़ी की तरह धर्म रक्षा का भी ध्यान रक्खे। वह धर्म पालन में सतर्क और सचेत रहे। वधु के दरवाजे पर बंधे हुए सात चिड़ियों वाले तोरन को बीच में तोड़ कर भीतर प्रवेश करता है। इससे क्या भाव है? काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मद, मोह, मत्सर इनमें सब विकारों के इस जाल को तोड़ने के लिये अहंकार पर घातक प्रहार करके वर वधू के घर में प्रवेश करता है। इससे यह बात स्पष्ट हो

जाती है कि हमारी विवाह संस्था के मूल में विकारों का दमन करके धार्मिक उन्नति करने का भाव विद्यमान है। इसीलिये हम पति-पत्नी के सम्बन्ध को केवल सामाजिक इकरार नहीं मानते प्रत्युत अटूट धार्मिक सम्बन्ध मानते हैं। वह सम्बन्ध केवल इस लोक में ही नहीं, परलोक में भी होता है।

प्रथम वधू वर के दाहिनी ओर बैठती है और कहती है "पतिदेव तीर्थ, व्रत, यज्ञ और एकान्त मेरे साथ करना चाहिये।" यह कह कर वह वर के बांईं ओर बैठती है। वर कहता है— "मेरे चित्त के अनुसार चलना, मेरी आज्ञा का पालन करना और पतिव्रत धर्म में तत्पर रहना। पति पत्नी दोनों अपने धर्म में तत्पर रहें तो प्रसन्नता का वातावरण पैदा होता है। पति-पत्नी की प्रसन्नता में ईश्वर की प्रसन्नता है।

भगवान श्री रामचन्द्र जी वनवास में जाने से पहले सीता से मिले और बोले—"देवी मुझे दण्डकारण्य का राज्य मिला है। पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये जा रहा हूँ।" सीता ने कहा—"आप मुझ पतिव्रता को कैसे त्यागना चाहते हैं? जहां चन्द्रमा वहीं चांदनी और जहां राम वहीं सीता होगी।" अयोध्या से थोड़ी दूर निकल कर सीता ने राम से पूछा—"और कितनी दूर चलना होगा।" सीता का यह प्रश्न सुनकर राम की आंखों में आंसू भर आये।

रावण ने अशोक वाटिका में सीता जी से कहा—"सीता एक बार मेरी ओर देखो।" सीता ने कहा—"जुगनू के प्रकाश से कमलिनी नहीं खिलती।" सीता ने त्रिजटा से कहा—"कीड़ा भौंरे का चिंतन करते करते भौंरा ही बन जाता है। यदि राम का चिंतन करते करते मैं स्वयं ही राम बन जाऊंगी, तो हमारा दाम्पत्य सुख नष्ट हो जायगा।" त्रिजटा ने कहा—

"तुम चिन्ता न करो। यदि तुम राम का चिंतन करते-करते राम बन जाओगी तो राम भी सीता का चिंतन करते-करते सीता बन जायेंगे और इस प्रकार तुम्हारा दाम्पत्य सुख ज्यों का त्यों बना रहेगा।" रावण ने कुम्भकर्ण से पूछा—"मुझे कोई उपाय बताओ। सीता मेरे बस मे नहीं होती।" कुम्भकर्ण ने कहा—"राम रूप धारण करके उसके सामने जाओ।" रावण ने कहा—"राम रूप धारण करता हूँ तो मेरी भावना ही बदल जाती है। मेरे हृदय में पवित्र विचार पैदा होते हैं।"

धर्मोपदेश ७

धर्म का सम्बन्ध मानव शरीर से होता है। धर्म का साधन मानव शरीर से ही हो सकता है और प्राणियों के शरीर में धर्म नहीं होता, क्योंकि उन शरीरों से धर्म का साधन नहीं हो सकता। धर्म ही मानव जीवन की विशेषता है। यदि धर्म न हो तो मनुष्य जीवन और पशु जीवन मे कोई अन्तर नहीं।

मनुष्य सुख चाहता है। वह चाहता है कि उसका जीवन सुखमय हो। सुख धर्म से प्राप्त होता है और दुःख अधर्म से। एक ही शरीर से धर्म होता है और अधर्म भी। एक ही वस्तु सुखदायक तथा दुःखदायक होती है। बबूल का कांटा पांव मे गड़ जाय तो वह दुःखदायक है। परन्तु जब बबूल के दूसरे कांटे से पांव मे गड़ा हुआ कांटा निकाला जाता है तो वह सुखदायक प्रमाणित होता है। इसी प्रकार मनुष्य शुभ कर्म से अशुभ कर्म का त्याग कर सुखी होता है। शुभ कर्म धर्मानुष्ठान करने से ही होते हैं। इसीलिये जो सुख चाहता है उसे स्वधर्म का पालन करना ही चाहिये।

तूंबा जल पर तैरता है, परन्तु पत्थर डूब जाता है। ईश्वर का पहिया आप तैरता है और दूसरों को भी तैराता है। ससार भी समुद्र के समान है इसको भवसागर कहा गया है, भव सागर मे ईश्वर से मिलाने वाले धर्म का सहारा लेने वाले तैर जाते हैं और जो लोग धर्म का निरादर करके अधर्माचरण करते हैं, वे डूब जाते हैं।

धर्म सब पदार्थों का देने वाला है। लोक परलोक के सभी लोग धर्म से प्राप्त होते हैं। मोक्ष भी धर्म से ही प्राप्त होता है।

जैसे वेदों में गायत्री सार रूप है, वैसे ही महाभारत श्री भारत सावित्री सार रूप हैं। महाभारत के एक लाख श्लोक हैं, परन्तु उनमें चार श्लोक महत्वपूर्ण तथा सार रूप हैं। एक लाख श्लोकों का पाठ करने का सौभाग्य सभी को प्राप्त नहीं हो सकता, परन्तु श्री भारत सावित्री के चार श्लोकों का पारायण करने से सारे महाभारत के पाठ करने का पुण्य मिलता है। अब उन चार श्लोकों की क्रमशः व्याख्या तथा विवेचना की जायगी।

मातृ पितृ सहस्राणि पुत्र दार शतानि च।
संसारेष्वनु भूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे ॥१॥

अर्थात्—माता पिता हजारों हो चुके हैं। स्त्री पुरुष सैकड़ों बन चुके हैं। ये सब बनते रहे हैं और आगे भी बनते रहेंगे।

प्रत्येक जन्म में माता पिता और स्त्री पुत्र मिलते रहे हैं जैसे पहले जन्मों के साथी थे वे अब नहीं रहे हैं, वैसे ही इस जन्म के साथी भी नहीं रहेंगे और आगे दूसरे जन्मों में जो

मिलेंगे, वे भी नहीं रहेंगे। वास्तव में कोई अपना नहीं। इसलिए सम्बन्धियों में—माता, पिता, पुत्र, पुत्री, पति, भाई, बहन कोई भी हो—ममत्वपूर्ण आसक्ति रखना गलत है और व्यर्थ है। ममत्वपूर्ण आसक्ति ही दुःख की जड़ है। इस आसक्ति से ही हमारा जीवन दुःखमय बना हुआ है। जो आज है और कल नहीं। उनसे ममत्वपूर्ण संग करने से दुःख ही पल्ले पड़ता है। साथ ही छोड़कर जाने वाले नश्वर सम्बन्धियों के प्रति हमारे हृदय में जो प्रेम है। उस प्रेम का कांटा यदि सदा रहने वाले अविनाशी परमात्मा की ओर बदल दिया जाय, तो सचमुच ही मनुष्य का कल्याण होगा। संसार में आसक्ति रखना दुःखदायक है, परन्तु परमात्मा में आसक्त हो जाना सुखदायक है।

> हर्षस्थान सहस्राणि भयस्थान शतानिच।
> दिवसे दिवसे मूढयाविशन्ति न पण्डितम् ॥२॥

अर्थात्—हजारों बार हर्ष और सैकड़ों बार दुःख होता है। परन्तु ये हर्ष शोक प्रतिदिन मूर्ख के पास आते हैं, पण्डित अर्थात् ज्ञानी को हर्ष शोक नहीं होता। सुख और दुःख कर्मानुसार प्राप्त होते हैं। प्रारब्ध कर्म को भोगने से ही नाश होता है इस लिए चित्त स्थिर रखकर सुख दुःख का भोग करना चाहिए। सुख दुःख भी स्थाई नहीं होते। वे आने जाने वाले होते हैं। सुख में सुखी और दुःख में दुःखी बनने से मनुष्य सुख दुःख के हाथ का खिलौना बना हुआ है और इसीलिये कभी वह हंसता है और कभी रोता है। मनुष्य का यह हंसना रोना-उसकी पराधीनता का परिचायक है। विचार से स्वाधीन बनकर मनुष्य सुख दुःख के ऊपर उठ सकता है। 'विचारान्मोक्षो भवति।' अर्थात् विचार से ही मनुष्य दुःख-मुक्त हो सकता है। ईश्वर पर तथा उसके नियमों पर मनुष्य का दृढ़ विश्वास हो तो वह अपने

कर्तव्य का पालन कर निश्चिन्त बन जाता है। वह जानता है कि कर्म करना मेरे अधिकार मे है परन्तु फल ईश्वराधीन है जो बात अपने बस मे नहीं, उसकी चिन्ता करना मूर्खता का द्योतक है। रोने पीटने से दुःख का नाश नहीं होता फिर रोना पीटना क्यों ? भगवान कृष्ण ने गीता मे कहा है—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुख दुःख दा ।
आगमापायिनो ऽनित्या स्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

हे कौन्तेय, शीतोष्ण या सुख दुःख के देने वाले मात्रा-स्पर्श अर्थात् बाह्य सृष्टि के पदार्थों से इन्द्रियों के जो सयोग हैं, उनकी उत्पत्ति होती है और नाश होता है। वे अनित्य अर्थात् विनाशवान् हैं। हे भारत उनको तू सहन कर।" दिन रात की तरह सुख दुःख का चक्र फिरता रहता है। सुख दुःख मनुष्य के वस मे नहीं है, परन्तु हर्ष शोक मनुष्य के बस मे है। सुख दुःख में समान रहने का अभ्यास करने से ही मनुष्य दुःख को जीत सकता है और मुक्ति के योग बन सकता है।

ऊर्ध्व बाहुर्विरौम्येष नच कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च नकिमधर्मं न सेव्यते॥

अर्थात् मैं ऊपर हाथ उठाकर बडे जोर से चिल्ला कर कहता हूँ, परन्तु मेरा कोई नहीं सुनता। धर्म से ही अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। धर्म का सेवन क्यों नहीं करते ? चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। सबसे पहले धर्म है। धर्म से शेष तीनों की प्राप्ति होती है।

नजातु कामान्न भयान्न लोभात् धर्मं त्यजेत् जीवितस्यापि हेतो ।
नित्यो धर्म सुख दुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्ये ॥

अर्थात् काम से भय से लोभ से धर्म का त्याग नहीं करना चाहिये। प्राण भले ही चले जायें, परन्तु प्राण रक्षा के लिये भी

धर्म नहीं छोड़ना चाहिये। धर्म नित्य है, सुख दुःख अनित्य, जीव नित्य है, इसका हेतु अनित्य है। मनुष्य सुख के लिये धर्म का त्याग करता है। परन्तु यह बड़ा मंहगा सौदा होता है, धर्म से ही सुख प्राप्त होता है। अधर्म से जो अनित्य सुख की प्राप्ति करता है, वह पाप का निर्माण करता है और आगे चल कर उसको यह पाप भुगतना पड़ेगा। धर्म नित्य है। मरने के बाद धर्माधर्म ही साथ जाते हैं। परलोक का ध्यान रख कर ही इस लोक में जीवन बिताना चाहिये। धर्म से श्रेष्ठ और कोई वस्तु नहीं।

श्री भारत सावित्री के उपर्युक्त चार श्लोक महाभारत में सार रूप हैं। महा भारत में कहा—

इमां भारत सावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
स भारत फलं प्राप्य परं ब्रह्माधि गच्छति॥

अर्थात्—प्रातः काल उठ कर इस भारत सावित्री का जो मनुष्य पाठ करेगा, उसको सम्पूर्ण महाभारत का पाठ करने का पुण्य मिलेगा और वह ब्रह्म को प्राप्त होगा। इसलिये भारत सावित्री का पाठ करना चाहिये।

पहले कहा गया है कि मानव शरीर से ही धर्म साधन होता है। मनुष्य-जन्म का अर्थ है—धर्म साधन करने का अवसर प्राप्त होना। धर्म की साधना युवावस्था से ही करनी चाहिये। बुढ़ापे में शरीर भार रूप हो जाता है। धर्मानुष्ठान से ही हम दुःख मुक्त होंगे।

धर्मोपदेश (८)

भगवत्प्रेम का साधन स्वधर्मानुष्ठान है। स्वधर्मानुष्ठान से चित्त शुद्ध होता है और शुद्ध चित्त से ही परमेश्वर की भक्ति हो सकती है। भक्ति के लिये अपने-अपने वर्ण तथा आश्रम के

कर्तव्यों का पालन करना आवश्यक होता है। आज गृहस्थाश्रम में धर्म-कर्म का लोप हो रहा है। पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता के कारण धर्म के प्रति लोगों की आस्था उठती जा रही है। स्कूल और कालेजों में जो शिक्षा दी जाती है, उसमे धर्म का नाम भी नहीं होता। इसलिये नाना प्रकार के दु खों का निर्माण हो रहा है। जिस प्रकार शिल्प कला की सहायता से कलाकार उत्तमोत्तम वस्तुओं का निर्माण करता है, उसी प्रकार वैदिक प्रक्रिया से उत्तम मनुष्य तथा उत्तम विभूति वाला धर्मात्मा मनुष्य का निर्माण किया जा सकता है। जैसे सोलह कला से युक्त चन्द्रमा पूर्ण माना जाता है, वैसे ही सोलह सस्कारों से युक्त मनुष्य पूर्ण होता है। अर्थात् वह मनुष्य जीव-भाव को छोड कर ईश्वर भाव को प्राप्त होता है। शास्त्रोक्त विधि पूर्वक सोलह सस्कार करने से ब्राह्मण्य की प्राप्ति होती है। सोलह सस्कार सम्पन्न पुरुष ब्रह्म प्राप्ति के योग होता है।

चित्रकार अपने चित्र में समुचित रूप मे सारे रग भरता है, तभी वह चित्र शोभायमान होता है। उसी प्रकार सोलह सस्कारों से मनुष्य का जीवन मानवोचित गुणों से शोभायमान बन जाता है।

सस्कार के तीन फल होते हैं—दोष मार्जन, अति शमाधान और हीनाग पूर्ति। मलीन वस्तु को शुद्ध करने के लिये तीन क्रियाओं की आवश्यकता होती हैं। उदाहरणार्थ लोहा लीजिये। जब लोहा खान से निकाला जाता है, तो उसमें मिट्टी पत्थर मिला हुआ होता है। लोहे की कोई वस्तु बनाने से पहले यह आवश्यक है कि उसमें से मिट्टी पत्थर की मिलावट को दूर किया जाय। इसी को दोषमार्जन कहते हैं। फिर लोहे को अग्नि से तपा कर उससे तलवार आदि अनेक चीजें बनाई

हैं। इसीको अतिशमाधान कहते हैं। फिर तलवार में शोभा के लिये किसी अन्य धातु की मूठ आदि लगाना ही नांग पूति कहलाता है। कपास से बिनौले अलग कर उसको साफ बनाना दोषमार्जन है। कपास से कपड़ा बनाना अतिशमाधान है और कपड़ा सींकर उसमें बटन आदि लगाना हीनांग पूर्ति कहलाता है।

जब मनुष्य का जन्म होता है, उसमे अनेक दोष होते हैं, क्योंकि उसकी उत्पत्ति ही मल मूत्र के स्थान से होती है। मनुष्य को शुद्ध बनाने के लिये हमारे शास्त्रकारों ने गर्भाधान से ही संस्कारों का सिलसिला शुरू कर दिया है। गर्भाधान, पुंसवन, समिन्तो नयनं आदि संस्कार गर्भ-शुद्ध तथा गर्भ रक्षा के लिये किये जाते हैं। यज्ञोपवीत आदि संस्कार अतिशमाधान करने के लिये किये जाते हैं। विवाह आदि संस्कार हीनांग पूर्ति के लिये किये जाते हैं। स्त्री पुरुष दोनों अपने में पूर्ण नहीं हैं। विवाह करने से ही वह पूर्ण बनते हैं।

संस्कार का अधिकार किसको है? यह अधिकार केवल द्विजाति को प्राप्त है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, द्विज हैं। जिनका दोबार जन्म होता है, वे द्विज कहलाते हैं। पहला जन्म गर्भ से और दूसरा संस्कार से, द्विजाति के संस्कार वैदिक मन्त्रों से होते हैं। शूद्रों के संस्कार वैदिक मंत्रों के बिना ही होते हैं। शूद्रों का यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता। किसी ने ४० और किसी ने २५ संस्कार माने हैं, परन्तु व्यासस्मृति में सोलह संस्कार माने हैं और वे सर्व-मान्य हैं।

जीवन के दो मार्ग हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति। सोलह संस्कारों में आठ संस्कार प्रवृत्ति से सम्बन्धित हैं और आठ संस्कार निवृत्ति से सम्बन्धित हैं। निवृत्ति से अर्थात् त्याग से ही परमेश्वर की प्राप्ति होती है।

प्रथम संस्कार गर्भाधान है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—

धर्मविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥

अर्थात्—धर्म के विरुद्ध न जाने वाला काम मैं हूँ। पति-पत्नि केवल सन्तानोत्पादन के लिये जो सम्भोग करते हैं, वह धर्मानुकूल होता है। सात्विक देव भाव से भावित होकर पति-पत्नि सम्भोग करें। इससे धर्मात्मा सन्तान उत्पन्न होती है। सम्भोग के समय माता पिता के मस्तिष्क तथा हृदय मे जो विचार तथा भाव होंगे, वे विचार तथा भाव सन्तान मे भी आते हैं। *धर्मात्मा की सन्तान धर्मात्मा होगी,* कामुक की सन्तान कामुक होगी, इसलिए पति देव भाव से भावित होकर अपने को प्रजापति का अंश समझे और पत्नि अपने को वसुमति का अंश समझे। इससे योग्य सन्तान पैदा होती है।

गर्भाधान से छठे महीने में पुंसवन संस्कार और आठवें महीने में सीमंतोनयन संस्कार गर्भ-रक्षा के लिए किया जाता है। जन्म के बाद नाल छेदन से पहले 'जातकर्म' संस्कार किया जाता है। इसमे दान-पुण्य किया जाता है। और सुवर्ण शलाका से जीभ पर वेद मन्त्र लिखा जाता है। दसवें दिन नाम करण संस्कार होता है। बच्चों का नाम रक्खा जाता है। जन्म से पाचवें या छठे महीने मे 'अन्नप्राशन' संस्कार होता है। इसमे हवन आदि किया जाता है। तीसरे वर्ष मे चूड़ा कर्म संस्कार होता है। इसमे हवन आदि करके केश मुण्डन किया जाता है और चोटी रक्खी जाती है। चोटी क्यों? वत्स्यायन सूत्र मे बताया है कि द्विजाति मनुष्य यज्ञोपवीत वाला और बद्ध शिखा वाला हो। इसके बिना द्विजाति के कर्म निष्फल होते हैं।

वेद में कहा है कि दीर्घ आयु, बल और तेज के लिये शिखा अवश्य रखनी चाहिये। शरीर में १०७ मर्मस्थान हैं। अत्यन्त मर्मस्थान ३७ हैं और वे सब कण्ठस्थान से ऊपर हैं। सबसे अधिक मर्मस्थान ब्रह्मरन्ध्र है, जिस पर शिखा होती है। आयुर्वेद में कहा है कि शीतोष्ण का प्रभाव ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा शरीर के रक्त पर पड़ता है, इसलिये शितोष्ण के प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिये चोटी की आवश्यकता है। शरीर की सारी नाड़ियां ब्रह्मरन्ध्र में गुंथ जाती हैं। योगी ब्रह्मरन्ध्र से प्राणोत्क्रमण कर ब्रह्म को प्राप्त होता है। शिखा रखने में यह भी भाव है कि मनुष्य को सदा यह ध्यान बना रहे कि प्राण ब्रह्मरन्ध्र से ही निकले, पिता के अग्नि संस्कार के समय पुत्र कपाल किया करता है। उस समय कहता है पिताजी आप ब्रह्मचारी रहते तो ब्रह्मरन्ध्र से प्राणोत्क्रमण कर ब्रह्म को प्राप्त होते, परन्तु आप अधोरेता हुए, आपने ब्रह्माण्ड को छोड़न वाले वीर्य से मुझे जन्म दिया। अब मैं ब्रह्मरन्ध्र का मार्ग खोल देता हूँ।" जीव शरीर का राजा है। राजा को सम्मान पूर्वक बाहर आने का मार्ग ब्रह्मरन्ध्र है। इस लिये चोटी इस राजा का सम्मान दर्शक झण्डा है। शिखा काटने से शक्ति नष्ट होती है। हरिवंश पुराण में कहा है—वशिष्ट के शिष्य एक राजा ने दूसरे राजा को मार दिया। मरे हुए राजा के पुत्र ने मारने वाले राजा पर पिता का बदला लेने के लिये चढ़ाई कर दी। वह राजा प्राण बचाने के लिये वशिष्ट की शरण में गया। वशिष्ट ने उसको प्राण रक्षा का आश्वासन दिया। उधर वह राजपुत्र भी वशिष्ट का शिष्य था। उसने कहा कि मैंने पिता के हत्यारे को मारने की प्रतिज्ञा की है। वशिष्ट ने कहा कि मैंने इस राजा को प्राण रक्षा का वचन दिया है, मेरा वचन और तुम्हारी प्रतिज्ञा दोनों की रक्षा होनी चाहिये। इसलिये इस राजा की शिखा काटलो, इससे यह मरे के समान

हो जायगा। जब जयद्रथ द्रौपदी को ले भागा तो भीम ने उसको पकड़ कर मारना चाहा, धर्मराज ने कहा कि जयद्रथ की दाढ़ी मूछ और चोटी काटलो यह सजा मारने के समान ही है। जवानी में केश जल्दी बढ़ते हैं। बालों को बार-बार काटने से काम प्रेरणा अधिक होती है। हंस और परम हंस सन्यासी सिर मुंडाते हैं, क्योंकि वे सदा ब्रह्म चिन्तन में लगे रहते हैं, इसलिये सिर मुड़ाने से उनमें काम प्रेरणा उत्पन्न नहीं हो सकती। गौ के खुर के बराबर शिखा अवश्य रक्खें। योग शास्त्र में कहा है—"ब्रह्मरन्ध्र के नीचे सहस्रदल कमल परमात्मा का स्थान है। सिर के पिछले भाग में काम का केन्द्र है। परमात्मा में चित्त लगाने से शिखा के मार्ग से ओज भीतर आता है। इससे मनुष्य निर्भय होता है। जिस प्रकार रेडियो व्यापक शब्द का आकर्षक है, उसी प्रकार शिखा व्यापक परमात्मा का आकर्षक है पहले क्षौर कर्म के लिये तिथियाँ नियत थीं। इससे दिन के अभिमानी देवता—शक्ति प्रदान करते थे। सन्ध्या के समय गायत्री मन्त्र से शिखा बांधने का विधान है, चोटी हिन्दुत्व की निशानी है।

धर्मोपदेश (६)

गृहस्थ धर्म में स्वधर्मानुष्ठान करने से लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति होती है। सन्ध्या करने के समय गायत्री मन्त्र से चोटी में गांठ देने का विधान है। चोटी में गांठ लगाने से दो लाभ हैं। गांठ से वीर्य का ऊपर गमन होता है, दूसरे वीर्य रक्षा में सहायता मिलती है। गांठ से मन की चंचलता रुकती है। गायत्री मन्त्र से चोटी बांधने का मतलब मन को स्थिर करना है। बिखरे हुये बालों को बांधने में यह भाव है कि बिखरा हुआ मन एकाग्र हो। यज्ञोपवीत संस्कार तीन वर्णों का होता

है। वेद की आज्ञा है कि ब्राह्मण बालक का आठवें वर्ष में, क्षत्रिय बालक का ग्यारवें वर्ष मे और वैश्य बालक का बारह से पन्द्रहवें वर्ष में उपनयन संस्कार होना चाहिये। वेद की आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है।

चार अंगुलियों के पोरों पर ६६ बार लपेटने से एक यज्ञोपवीत होता है। चारों वेदों मे एक लाख श्लोक हैं। एक लाख श्लोकों में ८० हजार मन्त्र कर्म से १६ हजार मन्त्र उपासना से और ४ हजार मन्त्र ज्ञान से सम्बन्धित हैं। कर्म और उपासना के मन्त्र ९६ हजार हैं। यज्ञोपवीत धारण करने वाला प्रण करता है कि मैं कर्म और उपासना का अनुष्ठान करने वाला बनूंगा। इसीलिये ६६ लपेटे देकर यज्ञोपवीत बनाया जाता है। यज्ञोपवीत के बिना वेद मन्त्रों का उच्चारण नहीं करना चाहिये। वेद में चार हजार मन्त्र ज्ञान के हैं। मन की शुद्धि के लिये कर्म और उपासना का अनुष्ठान करना चाहिये। तालाब का पानी मैला हो या हिलता हो तो उसमे देखने वाले को अपना मुंह दिखाई नहीं देगा। मन निर्मल और स्थिर होने से ही परमात्मा का ध्यान होता है। इससे वैराग्य पैदा होता है। वेद में कहा है—

यद् हरेव विरजेत् तद हरेव प्रवजेत्।

अर्थात्—जिस दिन वैराग्य पैदा हो जाय उसी दिन संन्यासाश्रम में प्रवेश करे।

सन्यास के बाद वेदान्त के श्रवण मनन से ज्ञान होता है। सन्यास में शिखा और सूत्र का त्याग किया जाता है। वेद के ज्ञान से सम्बन्धित चार हजार मन्त्रों का अधिकारी सन्यासी होता है।

यज्ञोपवीत में तीन वेदों को ऋग्वेद, यजुर्वेद और शाम वेद को जानने के लिये, ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ ऋण

की निवृत्ति के लिये, और तीन पुरुषार्थ धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के लिये, तीन तीन धागे नौ-नौ होते हैं। गांठ को ब्रह्म फांस कहते हैं। एक गांठ के बाद धागे मे जिसके जितने प्रवर हों उतनी गांठें दी जाती हैं, दो धागों मे एक गांठ आत्मा और परमात्मा की एकता का बोध कराने के लिये होती हैं।

मलमूत्र के समय यज्ञोपवीत दाहिने कान पर लपेटते हैं, यह इसलिये कि अशुद्ध स्थान के स्पर्श से यज्ञोपवीत अशुद्ध न हो जाय। आज कल धर्म कर्म होता नहीं, इसलिये लोग जनेऊ नहीं पहनते। इससे पारलौकिक उन्नति न होगी। बौद्धों के समय भगवान शंकराचार्य ने शिखा सूत्र की रक्षा की।

यज्ञोपवीत धारण करने के बाद सन्ध्या-वन्दन और गायत्री जप अवश्य करना चाहिये। परलोक में जाना है, तो पारलौकिक उन्नति को सामने रख कर ही जीवन बिताना चाहिये। सन्ध्या करने से दीर्घ आयु प्राप्त होती है। दीर्घ सन्ध्या करने से दीर्घ आयु होती है। यह प्राणायाम से होता है। आयु का सम्बन्ध दिनों से नहीं प्रत्युत सांसों से है।

मनुष्य दिन रात में २१६०० सांस लेता है। मनुष्य सौ वर्ष की आयु में ७७७६००००० सांस लेता है। सांस की गति को घटाने से आयु बढ़ती है। स्वस्थ मनुष्य की सांस मुख से बाहर १२ अंगुल आती है। भोजन के समय १८ अंगुल जाती है। भोजन भर पेट कभी नहीं करना चाहिये। पेट के दो भागों में अन्न, एक भाग में जल और एक भाग खाली रहना चाहिये।

गाने-रोने में सांस की गति २० अंगुल, चलते समय २४ अंगुल और निद्रा में ३० अंगुल होती है। दौड़ते और व्यायाम करते समय सांस की गति ४८ अंगुल होती है और मैथुन काल में ६५ अंगुल होती है। जिस कार्य में सांस की गति अधिक होती है उससे बचना चाहिये। इसी लिये भगवान कृष्ण ने कहा है—

युक्ताहारविहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसू ।
युक्त स्वप्ना वबोधस्य, योगो भवति दुःख हा ॥

अर्थात्—जिसका आहार-विहार नियमित है, कार्यों का आचरण नपा तुला है, और सोना जागना परिमित है, उसको (यह) दु.ख विनाशक योग सिद्ध होता है।

सन्ध्या में मार्जनादि किया में प्राणायाम आवश्यक होता है। प्रत्येक सन्ध्या में तीन प्राणायाम गायत्री से करने चाहियें। तीन बार मन्त्र कहने से एक प्राणायाम होता है। प्राणायाम में पूरक, कुम्भक और रेचक ये तीन अवस्थायें होती हैं। नासिका से सांस खींचना पूरक, सांस बन्द करना कुम्भक और सांस छोड़ना रेचक कहलाता है। प्रत्येक अवस्था में तीन बार मन्त्र कहना चाहिये। एक प्राणायाम मे एक मिनट लगता है। एक मिनट में मनुष्य के १६ सांस खर्च होते हैं। परन्तु एक मिनट के प्राणायाम में एक ही सांस खर्च होता है और इस प्रकार १५ सांस की बचत होती है। इससे आयु की वृद्धि होती है।

साम वेद में संसार को गायत्री स्वरूप माना गया है। गायत्री उपासना से प्रातःकाल की सन्ध्या मे ब्राह्मी, मध्याह्न काल की सन्ध्या में वैष्णवी और सायंकाल की सन्ध्या में रौद्री और इनके फल स्वरूप तीनों देवताओं की शक्ति का विकास होता है। गायत्री में तीन पद हैं। तीनों देवताओं के समन्वय स्वरूप ॐ से गायत्री का प्रारम्भ करना चाहिये। तीन व्याहृति, तीन देवी का ध्यान और आगे तीन पद में भगवान का ध्यान है। भर्गः का तेज का ध्यान करते हैं कि वह इसे अच्छे कार्य में लगाये।

गायत्री वेद माता है। इससे बढ़ कर पवित्र कुछ नहीं है। त्रिकाल सन्ध्या करनी चाहिये। गीता में "गायत्री छन्द सामहम"

कहकर गायत्री की महिमा गाई गई है। महाभारत के आदि पर्व में कथा है—जरत्कारू ऋषि आमरण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहते थे। सर्पों की माता ने सर्पों को शाप दिया कि वे जन्मेजय के यज्ञ में जल कर भस्म हो जायें। सर्पों की रक्षा के लिये वासुकी ने तपस्या की। ब्रह्मा ने उससे कहा—जरत्कारू ऋषि का लड़का जन्मेजय का यज्ञ बन्द कर देगा। इस प्रकार सर्पों की रक्षा होगी।" ऋषि जरत्कारू ने एक गढ़े में खस के तिनके के सहारे पितरों को उल्टे लटके हुए देखा। एक चूहा उस तिनके को काट रहा था, जरत्कारू ने पितरों से पूछा—आप कौन हैं? मैं अपनी तपस्या देता हूँ, जिससे आप स्वर्ग चले जायें।" पितरों ने कहा—"तप से हम बच नहीं सकते। वंश परम्परा से हमारा उद्धार होगा। हमारे वंश में एक बूढ़ा जरत्कारू नामक ब्रह्मचारी ऋषि है। वह विवाह करे तो हमारा उद्धार हो सकता है। आखिर ऋषि जरत्कारू ने पितरों के उद्धार के लिये, कोई लड़की मिले तो विवाह करने का निश्चय किया। वासुकी ने अपनी कन्या से—उसका नाम भी जरत्कारू ही था—जरत्कारू का विवाह हो गया। एक समय जरत्कारू ऋषि-अपनी पत्नी की गोद में सोये हुये थे। सूर्यास्त का समय हो रहा था। जरत्कारू त्रिकाल सन्ध्या नियम पूर्वक करते थे। सूर्य को अर्घ देने के लिये सूर्यास्त से पहिले ही सन्ध्या करते थे। पति के धर्म पालन में त्रुटि न हो इस विचार से पत्नि ने ऋषि को जगाया। ऋषि क्रोधित होकर पत्नि से बोले—"तुमने मुझे जगा कर मेरा अपमान किया। सूर्य में यह शक्ति नहीं है कि मेरी सन्ध्या के बिना ही वह अस्त हो जाय। मेरा अर्घ लिये बिना सूर्य कभी अस्त न होता।" और जरत्कारू पत्नी को छोड़ कर चले गये। पत्नि गर्भवती थी। इसके आस्तिक नामक ऋषि पैदा हुये।

राजा परीक्षित को प्यास लगी, तो शृंगी ऋषि से पानी

मांगा। ऋषि ध्यान में मग्न थे, न हिले न डुले। परीक्षित ने मरा हुआ सांप ऋषि के गले में डाल दिया और चला आया। ऋषि-पुत्र शृंगी ने शाप दिया कि जिसने मेरे पिता का अपमान किया वह सातवें दिन तक्षक के काटने से मर जावेगा। गायत्री मन्त्र की साधना करने वाले ब्राह्मण ने धन के लिये परीक्षित को बचाना चाहा। उसकी तक्षक से भेंट हुई। ब्राह्मण ने कहा कि मैं परीक्षित को बचाऊंगा। तक्षक ने एक वृक्ष को डंक मार कर जला दिया। ब्राह्मण ने गायत्री मन्त्र के प्रभाव से वृक्ष को फिर हरा भरा कर दिया। तक्षक ने ब्राह्मण को धन देकर लौटा दिया और परीक्षित के प्राण ले लिये, इससे परीक्षित का पुत्र जन्मेजय सांपों पर क्रोधित हो यज्ञ में उन्हें जलाने लगा। आस्तिक ऋषि ने जन्मेजय का यज्ञ बन्द कर दिया और सांपों की रक्षा की। आस्तिक नाम लेने से सांप के उपद्रव से रक्षा होती है।

धर्मोपदेश (१०)

सोलह संस्कार से शुद्ध हुये मनुष्य का जीवन धार्मिक होता है। उपनयन संस्कार के सम्बन्ध में कहा जा चुका है। ६ वां ब्रह्मव्रत संस्कार होता है। गुरु गृह में विद्याध्ययन के लिये रहने वाला ब्रह्मचारी ब्रह्म व्रत संस्कार से परमेश्वर के मार्ग में आगे बढ़ने का प्रण करता है। दसवें वेद-व्रत संस्कार से ब्रह्मचारी पूर्व दिशा की ओर मुंह करके नियम पूर्वक वेदाध्ययन करने का निश्चय करता है। विद्याध्ययन की समाप्ति के पश्चात् ग्यारहवां समावर्तन संस्कार होता है। इसमें ब्रह्मचारी समावर्तन स्नान करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये गुरु-गृह से अपने घर आता है। घर आने से पहले ब्रह्मचारी गुरु को यथा-शक्ति दक्षिणा देता है। गुरु को दक्षिणा देने से विद्या फलवती

होती है। वेद में कहा है कि आचार्य को प्रिय धन देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। यदि धन नहीं है तो गुरु के सामने एक दातवन रख कर ही नम्रता पूर्वक प्रणाम करे। दक्षिणा देने से पूर्व गुरु के घर में ब्रह्मचारी को गुरु की सेवा करते रहना चाहिये। महाभारत के आदि पर्व में आयोधन्य के शिष्यों की कथायें हैं। उनके तीन शिष्य थे—आरुणी, उपमन्यु और वेद। आरुणी और उपमन्यु की कथायें पहले सुनाई जा चुकी हैं। तीसरे शिष्य वेद ने विद्याध्ययन की समाप्ति के पश्चात् आयोधन्य से कहा—"मैं आपकी क्या सेवा करूं?" आयोधन्य ने कहा—"तुम अपने घर न जाओ और हमारे घर में हमारी सेवा करते रहो।" वेद गुरु की सेवा करता रहा। गुरु प्रसन्न हुए और उन्होंने वेद की सर्वज्ञता तथा कल्याण का आशीर्वाद दिया। फिर वेद ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। वेद के भी तीन शिष्य थे। परन्तु वेद किसी शिष्य से सेवा नहीं कराते थे। अपने उतंक नामक शिष्य को घर रखकर वेद राजा जन्मेजय का यज्ञ कराने के लिये चले गये।

गुरु पत्नी ने उतंक के सेवा भाव की बड़ी प्रशंसा की। वेद ने उतंक को घर जाने की आज्ञा दी। उतंक ने कहा—"मैं आपकी क्या सेवा करूं?" वेद ने कहा—"कुछ नहीं।" उतंक के आग्रह करने पर वेद ने कहा—"मेरी पत्नी से पूछो।" उतंक ने गुरु पत्नी से पूछा। गुरु पत्नी ने कहा—"एक पौष्य नामक राजा है। उसकी रानी के कान में कुण्डल हैं। वह कुण्डल ला दो।" उतंक गुरु-पत्नी की इच्छा पूर्ण करने के लिये राजा पौष्य से मिलने के लिये चल पड़ा। मार्ग में उतंक ने लघुशंका की। पौष्य के पास पहुँच गया। राजा पौष्य ने उतंक का सत्कार किया और पूछा—"कहिये आगमन कैसे हुआ?" उतंक ने कहा—"मुझे आपकी रानी के कुण्डल चाहियें। राजा ने कहा—"कुण्डल देने

का अधिकार मुझे नहीं। वह रानी का धन है। वही दे सकती हैं। आप उनसे मिलिये।"

उतंक महल के भीतर गया, परन्तु रानी सामने होते हुये भी उतंक को दिखाई नहीं दी। उतंक ने राजा से कहा—"रानी दिखाई नहीं देती।" राजा ने कहा—"रानी परम पतिव्रता है। आप में कोई न कोई अशुद्धता होने से ही रानी दिखाई नहीं दी।" उतंक को स्मरण हो आया कि इसने मार्ग में लघुशंका की थी, परन्तु जल से हाथ मुंह धोकर आचमन नहीं किया था। वह फिर शुद्ध होकर रानी से मिला और कुण्डल की मांग की। रानी ने कहा—"किसको चाहिये ?" उतंक ने कहा—"गुरु पत्नी को।" रानी ने कहा—"मैं कुण्डल तो देती हूँ, परन्तु कुण्डल पर तक्षक की नजर है। इसलिये कुण्डल सावधानता पूर्वक ले जाइये।" और रानी ने कुण्डल दे दिये। गुरु गृह की ओर जाते हुये उतंक ने एक ऊंचे स्थान पर कुण्डल रख कर लघुशंका की।

इधर तक्षक को पता चला और वह कुण्डल ले भागा। उतंक ने देखा तो कुण्डल नहीं थे। उतंक ने सर्वोत्तम-भावना की अर्थात् "सब ब्रह्म है" की भावना की। उससे इन्द्र उतंक के सामने उपस्थित हुआ और बोला—"क्या बात है ?" उतंक ने सारी कहानी कह सुनाई और कहा—"कुण्डल तक्षक ले गया है, मुझे पाताल में पहुँचाओ।" इन्द्र ने वज्र से पृथ्वी में छेद कर दिया, पाताल जाने का मार्ग खुला कर दिया और घोड़ा भी दिया। उतंक पाताल में पहुँचा, पर नाग लोक के चारों तरफ विष की ज्वाला थी। उतंक ने फिर सर्वोत्तम भावना की। इससे नाग व्याकुल होकर मरणासन्न हुए। नागों की जीवन रक्षा के लिये तक्षक ने उतंक को कुण्डल दे दिया। उतंक ने गुरु-पत्नि को कुण्डल

दिये। वह बड़ी प्रसन्न हुई। यथा शक्ति गुरु सेवा करनी चाहिये।

बारहवां विवाह संस्कार है। विवाह के तीन उद्देश्य हैं— प्रजातन्तु की रक्षा, स्वेच्छा प्रवृत्ति का निरोध और भगवत् प्रेम की शिक्षा, इसकी विवेचना पहले की जा चुकी है। तेरहवां संस्कार "अग्न्याधान है। विवाह के समय वेदी बनवाकर हवन किया जाता है। वधु के साथ उस अग्नि को भी घर में लाकर उसकी स्थापना करनी पड़ती है। वह अग्नि सदा विद्यमान रहती है और उसी से नित्य हवन होता है। मरने पर उसी अग्नि से दाह संस्कार होता है। आज कल इस धर्म-कर्म का लोप होता जा रहा है। हमारी सरकार को चाहिये कि वह धर्म की रक्षा करे।

चौदहवां संस्कार दीक्षा है, नित्य तथा नैमित्तिक कर्मानुष्ठान, भाव शुद्धि पूर्वक विषय सेवन, अग्नि की परिचर्या – यह प्रवृत्ति मार्ग का धर्मानुष्ठान करने से मनुष्य में भगवत्प्रेम उत्पन्न होता है। भगवत्प्रेम में वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्य से निवृत्ति की इच्छा पैदा होती है। इससे मनुष्य कल्याण के साधनों की खोज करता है। योग्य गुरु अधिकारानुसार दीक्षा देता है। गुरु से कल्याण का मार्ग पूछना चाहिये। शास्त्र कहते हैं कि बिना गुरु के साधन करने से निष्फल होता है। दो प्रकार के गुरु होते हैं—शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु। सन्तान को सन्मार्ग पर चलाने वाले माता-पिता और व्यवसाय की शिक्षा देने वाले शिक्षा गुरु हैं। कीट से लेकर सभी शिक्षा गुरु बन सकते हैं। स्वामी दत्तात्रेय के २४ गुरु थे, पर वे सब शिक्षा गुरु थे। दत्तात्रेय ने चील को गुरु क्यों माना ?

एक चील पैरों में मांस का टुकड़ा लेकर उड़ रही थी। मांस के लालच से कई चीलें उसका पीछा करने लगी। आखिर परेशान होकर चील ने मांस का टुकड़ा नीचे

छोड़ दिया और आराम की सांस ली। दत्तात्रेय ने चील से यह शिक्षा ग्रहण की कि परिग्रह से चिन्ता होती है और अपरिग्रह से मनुष्य निश्चिन्त हो जाता है। सब कुछ त्याग देने से ही शान्ति मिलेगी। दत्तात्रेय ने एक कन्या को गुरु क्यों माना? कन्या घर में अकेली थी। माता-पिता बाहर गये थे, घर में मेहमान आये। मेहमान के लिये कन्या धान कूटने लगी। कूटते समय उसके हाथ की चूड़ियां खन-खन आवाज करने लगी। कन्या ने सोचा कि चूड़ियों की आवाज से मेहमान समझेंगे कि घर में चावल भी नहीं हैं, जो यह धान कूट रही है, इसलिये उस हाथ में केवल दो चूड़ियां रहने दी, परन्तु दो चूड़ियों से भी आवाज होने लगी। इसलिये कन्या ने एक चूड़ी निकाल कर केवल एक चूड़ी रहने दी तब आवाज बन्द हो गई। दत्तात्रेय ने कन्या से यह शिक्षा ग्रहण की कि दो मिलकर रहने से भी बखेड़ा होता है। अकेला रहने से कोई बखेड़ा नहीं होता। दत्तात्रेय ने सर्प को गुरु क्यों माना? सर्प चूहे के बिल में घुस गया। दत्तात्रेय ने इससे यह शिक्षा ग्रहण की कि अपना स्थान न बनाना चाहिये। बने बनाये स्थान में ही विरक्त को रहना चाहिये। इस प्रकार उन्होंने २४ गुरु किये।

आत्मज्ञान का मार्ग बताने वाला ही सद्गुरु होता है। वेद में कहा है—आचार्यवान पुरुषोवेद। गुरु करने वाला ही जानता है अर्थात् ज्ञान को प्राप्त करता है। गीता में कृष्ण ने कहा है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परि प्रश्नेन सेवया।
उपदेशान्ति ते ज्ञानं ज्ञानि नस्तत्व दर्शिनः॥

अर्थात्—ध्यान में रखं कि प्रणाम करने से, प्रश्न पूछने से और सेवा से तत्ववेत्ता ज्ञानी पुरुष तुझे उस ज्ञान का उपदेश

करेंगे। अज्ञानान्धकार को हटा कर ज्ञान का प्रकाश करने वाला गुरु होता है। गुरु ब्रह्मनिष्ठ तथा श्रोत्रिय होना चाहिये। गुरु चरणों की पूजा करके चरणोदक लेना चाहिये। गुरु में परमेश्वर बुद्धि होने से वह पूजनीय होता है। कहा जाता है कि स्त्री का गुरु पति होता है। पति श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ हो तो पत्नी का गुरु बन सकता है, अन्यथा नहीं। पत्नि के लिये पति अन्धा बहरा, रोगी कैसा भी हो—पतित्वेन पूजनीय होता है, गुरुत्वेन नहीं। पत्नि को आत्मोन्नति का अधिकार है, इसलिये वह गुरु कर सकती है। पत्नि भी पति का गुरु हो सकती है। चुडाला ने पति को उपदेश दिया था।

चारों वर्णों का गुरु ब्राह्मण है और ब्राह्मणों का गुरु सन्यासी है। स्त्री सन्यासी को गुरु बना सकती है।

पन्द्रहवा सस्कार महाव्रत है। इससे वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश किया जाता है। सोलहवा सस्कार सन्यास है। इसमें वेदान्त के श्रवण मनन से ज्ञान होता है और ज्ञान से मुक्ति होती है।

धर्मोपदेश (११)

पुण्यकर्म ईश्वर भक्ति का साधन है और पुण्य कर्म स्व-धर्मानुष्ठान से होते हैं। स्वधर्मानुष्ठान से लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति होती है। साम वेद में धर्म के तीन अग बताये गये हैं—यज्ञ-दान और तप। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने भी अर्जुन से कहा है—

यज्ञ, दान तप कर्मन त्याज्यं कार्यं मेव तत्।
यज्ञो दान तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

अर्थात्—यज्ञ, दान और तप इनका त्याग न करना चाहिये यज्ञ, दान और तप बुद्धिमानों के लिये पवित्र अर्थात् चित्त शुद्धि-कारक है।

शुद्ध चित्त से ही ईश्वर भक्ति हो सकती है। इसलिए चित्त शुद्धि के लिए यज्ञ दान और तप करना आवश्यक है। यज्ञ के तीन भेद हैं। कर्म यज्ञ, उपासना यज्ञ और ज्ञान यज्ञ। कर्म यज्ञ के ६ प्रकार हैं। प्रथम नित्य कर्म है। स्नान, संध्या आदि नित्य कर्म के अन्तर्गत हैं। दूसरा नैमितिक कर्म है। किसी निमित से जो पुण्य कर्म किया जाता है, उसको नैमितिक कर्म कहा जाता है। पाप का प्रायश्चित, एकादशी श्राद्ध आदि नैमितिक कर्म के अन्तर्गत है।

श्राद्ध के सम्बन्ध में कई शंका कुशंकाएं उपस्थित की जाती हैं। इसलिये आज उसकी विवेचना की जाएगी। श्राद्ध के दो फल हैं। श्राद्ध विधि पूर्वक ईश्वरार्पण बुद्धि से करने से चित्त की शुद्धि होती है और पितरों की तृप्ति होती है। जो गृहस्थ न्याय पूर्वक धन कमाता है, तत्वज्ञान का प्रेमी है, अतिथि अभ्यागतो का सत्कार करता है और सत्यवादी है, वह मुक्ति के योग्य होता है। गृहस्थाश्रम सबका आश्रय है। महाभारत में भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा है—देवता, पितर, अतिथि अभ्यागत, सेवक, घर के चूहा, बिल्ली ये सब गृहस्थाश्रम के सहारे रहते हैं। इसलिए गृहस्थ को इनका भरण-पोषण करना चाहिए। जिस घर में ब्राह्मणों के पैर धोने से कीचड़ नहीं हुआ, वेद शास्त्र की ध्वनि नहीं होती, यज्ञ हवन नहीं होता, पितरों के लिये श्राद्ध तर्पण नहीं होता, वह घर श्मशान के समान है। मनुष्य पर तीन ऋण होते हैं—देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण। देव ऋण यज्ञ हवन से चुकता है। ऋषि-ऋण वेद शास्त्र गीता आदि ग्रन्थों का अध्ययन तथा पाठ करने से चुकता है। पितृ ऋण सन्तानोत्पादन करने से, माता पिता की सेवा करने से और पितरेश्वरों की तृप्ति के लिये श्राद्ध तर्पण, पिण्ड दान करने से चुकता है। कृतज्ञता पुण्य है और कृतघ्नता पाप है। जिन पितरेश्वरों की कृपा से

मनुष्य संसार में आया, उसको उनका सम्मान करना चाहिये। कृतघ्नता एक ऐसा पाप है कि जिसका कोई प्रायश्चित नहीं। गौहत्या के महान् पाप का प्रायश्चित है। गंगा में स्नान करके ब्राह्मण को सोने की गऊ दान करने से गौ हत्या के पाप का प्रायश्चित हो जाता है। परन्तु शंकर ने पारवती से कहा है—नास्तिक, कृतघ्न, धर्म की उपेक्षा करने वाला, विश्वासघाती, इनके पापों का कोई प्रायश्चित् नहीं है। अनादि काल से वेद में श्राद्ध का निरूपण किया है। बालमीकि रामायण राम से दस हजार वर्ष पहले ही लिखी गयी थी। रामायण में यह उल्लेख है कि भरत ने दशरथ का श्राद्ध किया था। द्वापर में पाण्डु का तर्पण किया, गया, गीता में अर्जुन ने कहा है—

पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रिया।

अर्थात्—पिण्ड दान और तर्पणादि क्रियाओं के लुप्त हो जाने से उनके पितरों का भी पतन होता है। विधिपूर्वक पिण्ड-दान, तर्पण, हवन, ब्राह्मण-भोजन करने से पितरेश्वर तृप्त होते हैं। पितरों का श्राद्ध न करने से कृतघ्नता के कारण मनुष्य महान् अपराधी होता है।

मृत्यु से बारहवें दिन सपिण्ड श्राद्ध होता है, तब तक मृतक की प्रेत संज्ञा होती है प्रेतों को तथा पितरेश्वरों को जो भोजन श्रद्धा से दिया जाता है, उसको श्राद्ध कहते हैं जो मनुष्य श्रद्धा से विधि-पूर्वक देता है, वह पितरेश्वरों के लिये अक्षय होता है। मनुस्मृति में कहा है—श्राद्ध करने वाले को पितरेश्वर राज्य, आयु, धन, विद्या और आरोग्य प्रदान करते हैं। गीता में भगवान ने कहा है—

परस्पर भाव यन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।

अर्थात्—"परस्पर एक दूसरे को सन्तुष्ट करते हुए दोनों परम श्रेय अर्थात् कल्याण प्राप्त करलो।"

अन्य धर्म भी श्राद्ध को किसी न किसी रूप में मानते हैं। इसाई मुर्दे को दफ़नाते हैं। कब्र पर पत्थर रख कर स्तम्भ खड़ा करते हैं। उस पर क्रास का निशाना लगाते हैं और दूध रखते हैं। मुसलमान कब्र पर कपड़ा ओढ़ाते हैं, फूल बमाशे चढ़ाते हैं और दीप भी जलाते है। अकाली सिख मृतक के निमित्त गुरु ग्रंथ साहब का पाठ रखते हैं और कड़ा प्रसाद वितरण करते हैं। बौद्ध भी मानते हैं पिण्डोपनिषद् में देवताओं और ऋषियों ने ब्रह्मा से पूछा—पिण्ड दान कैसे मिलता है? ब्रह्मा ने कहा—मृतक किसी न किसी योनि में होता है श्राद्ध करने वाला अग्नि से जातवेद से प्रार्थना करता है—"हे अग्नि देव गाड़े हुए और जलाये हुये सब पितरेश्वरों को तुम जानते हो। कृपया उनको यहां लाओ।" यजुर्वेद में पितरेश्वरों को देवयान मार्ग से आकर उपस्थित होने की प्रार्थना की गयी है। गरुड़ पुराण में लिखा है कि अमावस्या का दिन पितरेश्वरों के लिये होता है। उस दिन वे अपने वंशज के दरवाजे पर आकर खड़े हो जाते हैं और सायंकाल तक श्राद्ध तर्पण से तृप्त होने की आशा में खड़े रहते हैं। यदि वंशज ने उनकी तृप्ति के लिये कुछ किया, तो प्रसन्न चित्त से आशीर्वाद देकर और यदि कुछ न किया तो शाप देकर चले जाते हैं। देव कर्म दिन के बारह बजने के पहले मनुष्य कर्म बारह बजे और पितृ कर्म बारह बजे के पश्चात् होता है। श्राद्ध में भोजन करने वाले ब्राह्मण द्विजोतम, अक्रोधी, प्रसन्नचित्त, नित्य कर्म करने वाले और सन्तोषी होने चाहियें। सम्बन्धियों में से दौहित्र, बहनोई और भानजे को भी श्राद्ध में भोजन कराना चाहिये। पद्म पुराण में कथा है—राम ने वनवास में दशरथ का श्राद्ध कर्म किया। ब्राह्मण भोजन कर रहे थे। सीता ने श्री रामचन्द्र से कहा "मैंने तुम्हारे पिता को ब्राह्मणों के शरीर में देखा।" श्रद्धा से ही श्राद्ध होता है। पितृ-ऋण से उऋण होने के लिये श्राद्ध करना ही

चाहिये। इसमें पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता का भाव है। गृहस्थ का यह कर्तव्य है कि वह अपने पितरेश्वरों को श्राद्ध तर्पण से तृप्त करे। यह कर्म न करने से गृहस्थ महान् अपराधी बन जाता है।

ब्राह्मण भोजन क्यों? यह शंका की जाती है कि ब्राह्मण का पेट क्या लैटर बाक्स है, जो उसके खाने से पितरेश्वरों को मिल जाता है। कैसे मिलेगा? एक के कर्म का फल दूसरे को कैसे मिलेगा? हां, ऐसी शंकाएं आज की जाती हैं। पितरों के निमित्त ब्राह्मणों को भोजन कराते समय श्रद्धा पूर्वक संकल्प किया जाता है, उस श्रद्धा युक्त संकल्प शक्ति द्वारा ब्राह्मण भोजन से पितरेश्वर तृप्त होते हैं। जिस प्रकार यहां सरकारी प्रबन्ध से किया हुआ मनिआर्डर दूसरे स्थान पर निश्चित मनुष्य को मिलता है, उसी प्रकार महान शासक परमात्मा के सृष्टि चक्र के नियमानुसार संकल्प शक्ति से ब्राह्मण भोजन से पितरेश्वरों को पुष्टि मिलती है और वे तृप्त होते हैं। यह प्रश्न किया जायेगा कि मनिआर्डर जिसको किया जाता है, उसको मिल जाने पर करने वाले को रसीद मिलती है जिससे वह समझ जाता है कि ठीक मनुष्य को पैसे मिल गये, परन्तु श्राद्ध के सम्बन्ध में क्या प्रमाण है कि वह पितरों को तृप्त करता है। उत्तर केवल यह है कि वेद शास्त्र ही हमारी रसीद हैं और प्रमाण हैं। धर्म के सम्बन्ध में वेद वचन ही प्रमाण हैं। गर्भवती माता भोजन करती है, परन्तु उसमें गर्भ स्थित बालक को भी पुष्टि मिलती है।

काशी में सेठ मोहन लाल रहते थे। उन्होंने पाठशाला स्थापित की और ३० विद्यार्थियों का सब तरह से पढ़ने का प्रबन्ध कर दिया। पाठशाला के प्रबन्ध के लिये उन्होंने ट्रस्ट बनाया। फिर उनकी मृत्यु हुई। ट्रस्टी पाठशाला चला रहे हैं पर पुण्य तो सेठ मोहनलाल को ही प्राप्त होगा। वेद

शास्त्र में श्रद्धा होनी चाहिये। श्रद्धा से ज्ञान होता है और ज्ञान से मुक्ति होती है।

धर्मोपदेश (१२)

धर्म के तीन अंग हैं—यज्ञ दान और तप। यज्ञ भी तीन प्रकार के हैं—कर्म-यज्ञ, उपासना यज्ञ और ज्ञान-यज्ञ। कर्म यज्ञ के ६ प्रकार हैं। नित्य कर्म तथा नैमितिक कर्म-यज्ञ की विवेचना की जा चुकी है। तीसरा काम्य-कर्म है। धन, पुत्र आदि की कामना से जो शास्त्रानुसार कर्म किया जाता है उसे काम्य-कर्म कहते हैं। इसमें दान-यज्ञ आदि पुण्य-कर्म किये जाते हैं। चौथा आध्यात्मिक कर्म है। परोपकार की भावना से प्रेरित होकर जो कर्म किये जाते हैं, वे आध्यात्मिक कर्म के अन्तर्गत हैं। समाज सेवा, देश सेवा आदि कर्म आध्यात्मिक होते हैं। वास्तु कर्म आदि आधिदैविक कर्म कहलाते हैं। ब्राह्मण-भोजन अथिति सत्कार आदि कर्म आधिभौतिक कर्म माने जाते हैं।

गृहस्थाश्रम में पंच महायज्ञ करना बताया गया है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

यज्ञ शिष्ठाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्म कारणात्॥

अर्थात्—"यज्ञ करके शेष बचे हुए भाग को ग्रहण करने वाले सज्जन सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। परन्तु (यज्ञ न करके केवल) अपने ही लिये जो (अन्न) पकाते हैं वे पापी लोग पाप भक्षण करते हैं और फिर यह कहा है—

यज्ञ शिष्टा मृत भुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्य यज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसतम्॥

अर्थात्—जो लोग अमृत का (अर्थात् यज्ञ से बचे हुए का) उपभोग करने वाले हैं वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। यज्ञ न करने वाले को जब इस लोक में ही सफलता नहीं मिलती, तब फिर हे अर्जुन! उसे परलोक कहां से मिलेगा?

गृहस्थाश्रम में पंच महा यज्ञ के दो फल हैं—पाप का विनाश और मुक्ति की योग्यता। घर में ओखल, चक्की, चूल्हा, जल रखने का स्थान और झाड़ू-बुहारी इनमें हिंसा होती ही रहती है। हिंसा के पाप की निवृति के लिये पंच यज्ञ को करना नितान्त आवश्यक है। पंच महा यज्ञ है—देव यज्ञ, ऋषि यज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत-यज्ञ और अतिथि यज्ञ। देवताओं के निमित्त हवन करना देव-यज्ञ है। ऋषियों ने शास्त्र लिखकर मानव जाति को ज्ञान प्रदान किया है। इसलिये वेदाध्ययन वेद-पाठ, गीता-पाठ या और धर्म ग्रन्थ का नियम पूर्वक अध्ययन करना ऋषि यज्ञ है। पितरेश्वरों के लिये तर्पण पितृ-यज्ञ है। प्रति दिन गौ को ग्रास देना भूत यज्ञ है। अथिति, अभ्यागत, साधु, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी आदि को सम्मान पूर्वक भोजन कराना अतिथि यज्ञ है। पंच महा यज्ञ से पाप नष्ट होते हैं और इनसे विश्व कल्याण भी होता है। मनुस्मृति में कहा है—अग्नि मे दी हुई आहुति सूर्य को मिलती है। सूर्य से वर्षा होती है। वर्षा से अन्न होता है और 'अन्नाम्द्वन्ति भूतानि' अन्न से ही जीव पैदा होते हैं। आजकल इस धर्म कर्म का लोप सा हुआ जा रहा है, धर्म हानि से दुःख बढ़ते जा रहे हैं, पंच महायज्ञ से लेकर ब्रह्मा तक सभी तृप्त होते हैं। वैद्य तथा डाक्टरों पर विश्वास करने से ही उनकी-दवा रोगी को लाभ पहुँचा सकती है। हम भव रोग के रोगी हैं ऋषि मुनि हमारे डाक्टर हैं। उन पर विश्वास करने से और विधिपूर्वक उनकी औषधि का सेवन करने से ही हम रोग से मुक्त हो सकते हैं।

ब्रह्मचारी, सन्यासी, महात्मा, ब्राह्मण अतिथि कहाते हैं। महाभारत में भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा है—जो पहले भोजन न करके अतिथि को अन्न देता है, वह तत्ववेत्ता के लोक को प्राप्त होता है। धर्म शास्त्र में लिखा है—अतिथि के लिये आसन बिछाओ, उनका विधिपूर्वक सत्कार करो और यथा शक्ति भोजन खिलाओ। जिसके घर में अतिथि सेवा होती है, शंकर की पूजा होती है, मिष्ठान बनता है और सत्संग होता है, वह गृहस्थ धन्य है। दक्षिणा वाले पात्रों से अतिथि सेवा श्रेष्ठ है। अतिथि से पहले भोजन करने से पाप होता है और इस पाप का प्रायश्चित चान्द्रायण व्रत करने से होता है। सन्यासी को "ॐ नमो नारायणा" इस अष्टाक्षरी मंत्र का उच्चारण करके नमस्कार करना चाहिये, सन्यास धारण करते समय गंगा में खड़े होकर मन्त्रोच्चारण करने से 'नरो नारायणो भवेत्' सन्यासी नर में नारायण हो जाता है। नमस्कार करने वाले को सन्यासी "नारायण" कह कर आशीर्वाद देता है। सन्यासी कहता है—त्वमपि नारायणः अर्थात् तुम भी नारायण हो। मेरी और तुम्हारी आत्मा एक है। यह अद्वैत ज्ञान है। नारायण में चार अक्षर हैं और इनके चार अर्थों में चार आशीर्वाद हैं। नाकाधिप इन्द्र के समान राज्य मिले। रामवत् पालयेत्—अर्थात् राम की तरह प्रजा का पालन करे। यक्षाधिप कुबेर के समान धन मिले और ण कार मोक्ष देने वाला है। अतिथि नारायण का स्वरूप है। ब्रह्मनिष्ठ को दिया हुआ भोजन समेरू के समान और जल समुद्र के समान बन जाता है।

धर्मोपदेश (१३)

दान के तीन प्रकार हैं—अभय दान, विद्या दान और अर्थदान। शरणागत की रक्षा करना अभयदान है। जिसके पास

जो विद्या या कला है, वह दूसरों को सिखाना विद्या दान है। धनादि पदार्थों का दान करना अर्थ दान है। जिस मनुष्य में विद्या, तप, दानशील, गुण, धर्म—इनमें से कुछ भी नहीं, वह पशु के समान है। मानव शरीर में धर्म ही विशेष है। यदि मनुष्य में धर्म भावना नहीं, तो उसका जीवन पशु के समान ही समझना चाहिये। मनुष्य की आय और व्यय प्रारब्ध कर्मानुसार निश्चित होती है। यदि हम धर्म कार्यों म पैसा खर्च नहीं करते, तो वह भोग-विलास में खर्च होगा। सिनेमा आदि में जो पैसा खर्च होता है, उससे मन चचल होकर भोग-विलास की इच्छा बलवती होती है। इससे जीवन का विनाश होता है। दान देने से वह आगे जमा होता है। एक हाथ से देने वाले को परमात्मा चार हाथों से देता है। धन की तीन गतियां हैं—दान, भोग और नाश। कई लोग न तो दान करते हैं और न ही स्वय उपभोग करते हैं, ऐसे कजूस का धन तिजोरी में ही पड़ा रहता है और वह परलोक खाली हाथ जाता है। विदेश म जाते हैं तो हम खर्च का प्रबन्ध करते हैं। यहां हम जो दान धर्म करते हैं वही परलोक में हमारे साथ जाता है। दे गया सो पा गया। यहां जो भोग मिल रहा है, वह प्रारब्ध से मिल रहा है। धन पुरुषार्थ से नहीं मिलता है, भाग्य से मिलता है। पूर्व जन्म में जिन्होंने दान पुण्य किया है, वही इस समय धनी बने हैं। दान से धन मिलता है। धन से पुण्य करता है। पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग जाता है। स्वर्ग का भोग समाप्त होने पर फिर यहां धनी होता है। जो दान नहीं करता वह दरिद्री होता है। दरिद्रता से वह पाप करता है। पाप से नरक म जाता है और फिर यहां दरिद्री होता है। दान से धन घटता नहीं। तुलसीदास जी ने कहा है —

> तुलसी पक्षिन के पिये, घटे न सागर नीर।
> धर्म करे धन ना घटे, जो सहाय रघुवीर॥

भगवान ने द्रोपदी का चीर क्यों बढ़ाया ? दुर्वासा नदी में स्नान कर रहे थे। जल के बहाव से लंगोटी बह गई। द्रोपदी ऊपर की ओर स्नान कर रही थी। दुर्वासा नग्न होने के कारण जल में ही बहुत देर तक खड़े रहे। द्रोपदी ने दासी को यह पूछने के लिये भेजा कि वह इतनी देर तक जल में क्यों खड़े हैं ? दुर्वासा ने दासी को सही बात बतादी। द्रोपदी ने अपनी साडी का एक हाथ टुकड़ा फाड़ कर जल में डाल दिया। वह कपड़ा बहता हुआ दुर्वासा को मिला। दुर्वासा ने उस टुकड़े की लंगोटी पहनी और बाहर निकल आये। सूर्य को अर्घ देते हुए दुर्वासा ने कहा—भगवन्, द्रोपदी ने आज मेरी लाज रखली, वैसी ही द्रोपदी की भी लज्जा की रक्षा करना, इसी से द्रोपदी भरी सभा में नग्न न हो पाई।

गौ का दूध दुहने से बढ़ता है। बगीचे के फूल तोड़ने से फिर निकल आते हैं। विद्या देने से बढ़ती है। कुए का जल निकालने से साफ रहता है और बढ़ता है। इसी प्रकार दान से धन बढता है। हरिश्चन्द्र, दधीची, कर्ण आदि महात्मा दान की महिमा को जानते थे। जिनका धन दान के लिये, विद्या सत्कर्म के लिये, निन्ता परमात्मा के लिए और वचन परोपकार के लिए होते हैं वे धन्य हैं। दान देना धन को ईश्वरीय बैंक में जमा करना है। यहां का सरकारी बैंक फेल हो सकता है, पर ईश्वरीय बैंक कभी फेल नहीं होता। धर्म में विश्वास की आवश्यकता है। जिसको जो कुछ देना हो वह उसके घर जाकर देना उत्तम दान है। अपने घर में बुला कर दान देना मध्यम श्रेणी का दान है। संकोच और दुःख से जो दान दिया जाता है, वह निकृष्ट दान है। और जो दान—चार अपमान जनक बातें सुना कर दिया जाता है, वह निकृष्ट दान है। गीता में दान के तीन भेद किये गये हैं।

दातव्यमिति यद्दानं दीयते नुप कारिखे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्विकं स्मृतम् ॥

अर्थात्—वह दान सात्विक कहलाता है कि जो कर्त्तव्य बुद्धि से किया जाता है, जो याग्य स्थल, काल और पात्र का विचार करके किया जाता है, एव जो अपने ऊपर प्रत्युपकार न करने वाले को दिया जाता है।

यत, प्रत्युपकारार्थं फल मुदिदश्य वा पुन ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दान राजस स्मृतम् ॥

अर्थात्—परन्तु उपकार के बदले में अथवा किसी फल की आशा रख बडी कठिनाई से जो दान दिया जाता है, वह राजस है।

अदेश काले तद्दानम पात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञात ततम समुदाहृतम् ॥

अर्थात्—अयोग्य स्थान में अयोग्य काल में अपात्र मनुष्य को बिना सत्कार के अवहेलना पूवक जो दान दिया जाता है वह तामस दान कहलाता है।

जहा धन का सदुपयोग हो, वहीं दान देना चाहिये, पात्रापात्र का विचार अवश्य करना चाहिये। गौ को घास दो, परन्तु वह तुम्हें दूध देती है। साप को दूध पिलाओ परन्तु वह तुम्हें जहर देगा। न्याय पूर्वक कमाई में से सत्पात्र को किया हुआ थोडा सा दान भी महान् फल दाता होता है। स्वधर्म समझ कर प्रसन्नता पूर्वक दान देते रहने से त्याग करने की योग्यता प्राप्त होती रहती है। वेद में कहा है कि त्याग से ही मुक्ति होती है।

धर्मोपदेश (१४)

धर्म के तीन अंग हैं—यज्ञ, दान और तप। यज्ञ और दान के सम्बन्ध में कहा जा चुका है। आज तप के सम्बन्ध में विचार प्रगट किए जायेंगे। तप भी तीन प्रकार का है—कायिक, वाचिक और मानसिक। गीता के सत्रहवें अध्याय में तीन प्रकार के तप की विवेचना की गई है। भगवान श्री कृष्ण ने कहा है—

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजन शौच मार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसाच शरीरं तप उच्चते ॥

अर्थात्—देवता, ब्राह्मण, गुरु और विद्वानों की पूजा, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा को शारीरिक अर्थात् काचिक तप कहते हैं। देव, द्विज और गुरु की पूजा के सम्बन्ध में कहा जा चुका है। प्राज्ञ अर्थात विद्वान किसी भी जाति का हो, सम्मान के योग्य होता है। महाभारत में धर्म व्याध की कथा है। यह निकृष्ट जाति का था, परन्तु धर्मात्मा विचारक होने से माननीय था। सात्विक तथा शुद्ध भोजन से मन पवित्र होता है। उच्चार, विचार तथा आचार की एक रूपता को सरलता कहते हैं। मन में, वचन में और आचरण मे यह टेढ़ापन अर्थात कुटिलता है। ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे कहा जा चुका है ऋतु काल से चार रात्रिया सम्भोग के लिये वर्जित हैं। एकादशी और त्रयोदशी को भी वर्जित है। अमावस्या, पूर्णिमा संक्रांत आदि आठ रात्रिया भी वर्जित हैं। ऋतु काल में १६ रात्रियों मे से केवल दो रात्रियां सम्भोग के लिये निहित हैं जो पति पत्नी केवल दो रात्रियों में ही सम्भोग करते हैं, उनको शास्त्र में ब्रह्मचारी ही माना गया है। ब्रह्मचर्य से—धर्मानुष्ठान में उत्साह बढ़ता है।

व्रत उपवास भी कायिक तप के अन्तर्गत हैं। वाचिक तप के सम्बन्ध में गीता में कहा है—

अनुद्वेगकर वाक्य सत्य प्रियहित च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसन चैव वाङ्मय तप उच्यते ॥

अर्थात्—मन को उद्वेग न करने वाले सत्य प्रिय और हितकारक सम्भाषण को तथा स्वाध्याय को वाचिक तप कहते हैं। मधुर तथा प्रिय बोलने से सभी सन्तुष्ट होते हैं। प्रिय वचन न कहने में दरिद्रता नादानी है। कटु वचन से ही लडाई झगडे होते हैं। दुर्योधन सभा देखने गया। सभा में स्थल के स्थान पर जल और जल के स्थान में स्थल दिखाई देता था। दुर्योधन जल को स्थल समझ कर जल में गिर पड़ा। द्रौपदी ने दुर्योधन की ओर देखकर कहा—"अन्धे के अन्धे होते हैं।" यह बात दुर्योधन को—जो अधे धृतराष्ट्र का पुत्र था—बुरी तरह लगी। इसी से महाभारत का युद्ध हुआ। शस्त्र का घाव भर जाता है, वाणी का घाव नहीं भरता। दाँतों ने जीभ से कहा—'रस के सार को जानने वाली तू मीठा क्यों नहीं बोलती? तेरे कटु बोलने से कोई हमें ही मुंह से गिरा देगा। स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। वेद तथा गीता आदि का अध्ययन तथा पाठ नियम पूर्वक करना चाहिये।

मानसिक तप के सम्बन्ध में गीता में कहा है—

मन प्रसाद सौम्यत्व मौन मात्मविनिग्रह ।
भाव सशुद्धि रित्येतत्तपो मान समुच्यते ॥

अर्थात्—मन को प्रसन्न रखना, सौम्यता, मौन अर्थात् मुनियों के समान वृत्ति रखना, मनोनिग्रह और शुद्ध भावना इनको मानसिक तप कहते हैं। मन की निर्मलता से मन प्रसन्न होता है। मन को संसार के विषयों से हटा कर भगवान में लगाने

से निर्मल होता है। अपकार कर्ता तथा उपकार कर्ता दोनों से पक्षपात रहित होना सौम्यता है। मनुष्य सम्मान से खुश होता है और अपमान से दुःखी होता है। अपमान करने वाले पर वह क्रोध करता है, किसी ने कहा है—अपमान करने वाले पर तू क्रोध करता है। परन्तु तू क्रोध के ऊपर क्रोध क्यों नहीं करता? क्रोध तो धर्म अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों का नाश करने वाला होता है। सगुन परमेश्वर का अनुसधान और निर्गुण का चिन्तन, मौन कहलाता है। मननशीलत्वं मौनम्। चिंतन तथा मनन को मौन कहते हैं। यह मौन ईश्वर परायण से होता है। मन का विषयों से निरोध करना आत्मविनिग्रह है। आत्म विनिग्रह से ईश्वर में एकाग्र चित हो सकता है। इसमें सबका अधिकार है, सब कर सकते हैं। मन बंदर की तरह चंचल है। एक क्षण मात्र के लिये मन भगवान में लग जाय, तो उससे महान पुण्य होता है। जो क्षण मात्र भी ईश्वर में मन लगाता है, उसको सब तीर्थों के स्नान करने का, सारी पृथ्वी का दान करने का, सारे यज्ञों को करने का पुण्य मिलता है। वह तीनों लोक में पूज्य है।

संसार में तो मन को घुमाने का अभ्यास होता है। ईश्वर में मन लगाने का अभ्यास करते रहने से धीरे-धीरे मन ईश्वरानुरागी बनता जाता है। भाव शुद्धि का अर्थ अन्तःकरण की शुद्धि है। राग और द्वेष की निवृति से अन्त करण की शुद्धि होती है। जब तक मन मलिन है, भगवत्साक्षात्कार नहीं हो सकता। मन को शुद्ध बनाना चाहिये। मनुष्य जान बूझ कर मन को मलिन करता रहता है। दूकानदार जान बूझ कर वस्तुओं के मूल्य, माप और तोल में स्वार्थ के लिये गड़बड़ करता है। बेईमानी करने से पैसा अधिक नहीं मिलता। पैसा तो भाग्य के अनुसार मिलता है। कोई अपने बिस्तरे में सांप को नहीं रहने देता। काम, क्रोध, लोभ ये विकार सांपों से भी बढ़ कर खतर-

नाक है। सांप के काटने से एक जन्म का विनाश होता है, परन्तु विकारों से भरा हुआ मनुष्य चौरासी लाख योनियों में जन्म मरण के चक्कर काटता रहता है। कायिक वाचिक तथा मानसिक तप के भी सत्व रज और तम—इन गुणानुसार तीन-तीन भेद होते हैं।

गीता में कहा है—

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते॥

अर्थात् इन तीनों प्रकार के (कायिक, वाचिक तथा मानसिक) तपों को यदि मनुष्य फल की आकांक्षा न रखकर उत्तम श्रद्धा से तथा योग युक्त बुद्धि से करे, तो वे सात्विक कहलाते हैं। कोई भी पुण्य कर्म निष्काम भाव बुद्धि से करना चाहिये।

सत्कार मान पूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्॥

अर्थात्—जो तप (अपने) सत्कार मान या पूजा के लिये अथवा पाखण्ड से किया जाता है, चंचल और अस्थिर तप राजस कहा जाता है। कालनेमि हनुमान को ठगने के लिये नकली तपस्वी बन गया था।

मूढ़ग्राहेणात्मनो यत्पीड़या क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥

अर्थात्—मूढ़ आग्रह से स्वयं कष्ट उठा कर अथवा (जारण मारण आदि कर्मों के द्वारा) दूसरों को सताने के हेतु से किया हुआ तप तामस कहलाता है। तामस तप से नरक की प्राप्ति होती है। तप सकाम भाव से नहीं प्रत्युत निष्काम भाव से अर्थात् ईश्वरार्पण बुद्धि से करना चाहिये। तप में कामना केवल भगवत्साक्षात्कार की होनी चाहिये।

राजा विक्रम बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने राजा बनते ही पुराने कर्मचारियों को हटाकर नगर के बत्तीस नवीन मनुष्यों को शासन व्यवस्था सौंपी इससे बूढ़ा मन्त्री नाराज हुआ। एक दिन मन्त्री को नदी में बह कर आता हुआ एक सुन्दर पुष्प मिला। मन्त्री ने पुष्प विक्रम को दिया। विक्रम ने कहा—"इस पुष्प के वृक्ष का पता लगाओ।" मन्त्री नौका में बैठकर नदी में बहाव के उल्टी दिशा की ओर चलता चला गया, उसको एक पहाड़ मिला जिससे पानी नीचे गिरता था। मन्त्री पहाड़ के ऊपर चढ़ गया। वहां उसने एक मन्दिर, एक झरना, एक वट वृक्ष और उसके नीचे शरीर के बत्तीस ढांचे पड़े हुये देखे। पुष्प वाले वृक्ष के नीचे एक मनुष्य शरीर का ढांचा पड़ा हुआ था। मन्त्री ने लौट कर विक्रम को सारी बातें सुनाईं। विक्रम ने कहा—"पुष्प वाले वृक्ष के नीचे का शरीर मेरा है और वट वृक्ष के नीचे के बत्तीस साथियों को मैंने राज काज सौंपा है। विक्रम का राजस तप था। तप से भोग और मोक्ष दोनों मिलते हैं।

धर्मोपदेश (१५)

धर्म के दो प्रकार हैं—सामान्य धर्म और विशेष-धर्म। विशेष धर्म के भी दो प्रकार हैं—पुरुष धर्म और नारी धर्म। आज नारी धर्म के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रगट करेंगे। मीमांसा शास्त्र में कहा है—स्त्री तप प्रधान होती है और पुरुष यज्ञ प्रधान है। पतिव्रता धर्म का पालन करना नारी का तप तथा धर्म है। नारी की तीन अवस्थाएं होती हैं—कन्या, गृहिणी और विधवा। कन्या अवस्था में नारी को पतिव्रत-धर्म का उपदेश दिया जाता है। गृहिणी अवस्था में नारी पतिव्रता धर्म का पालन करती है और विधवा अवस्था में नारी पतिव्रता

धर्म का उद्यापन करती है, कन्या भी पुत्र की तरह पालनीय तथा शिक्षणीय होती है। पहले यह विचारणीय है कि कौनसी शिक्षा कन्या के अनुकूल है। जैसा बीज बोया जावेगा, वैसा ही फल मिलेगा। आज कल कन्याओं को नौकरी करने की शिक्षा दी जा रही है और कन्याएं विवाह भी नहीं करतीं। यह ठीक नहीं। पुरुष और प्रकृति से संसार बना हुआ है। पुरुष में पुरुषत्व के बीज होते हैं और स्त्री में स्त्रीत्व के। पुरुष शिक्षा तथा स्त्री शिक्षा में मौलिक अन्तर विद्यमान है। पुरुष शिक्षा से पुरुष भाव पूर्ण होना चाहिये और स्त्री शिक्षा से स्त्री भाव पूर्ण होना चाहिये। एक को दूसरे की शिक्षा अधर्म स्वरूप है। जिस प्रकार बर्फ गरम नहीं हो सकती, उसी प्रकार स्त्री पुरुष नहीं बन सकती। पुरुषत्व की प्राप्ति का प्रयत्न करते हुए स्त्री अपने स्त्रीत्व को खो देगी। मनु धर्म-शास्त्र में कहा है—न स्त्री स्वातंत्र्य महति। स्त्री स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है। स्वतन्त्रता से वह विषयों के वशीभूत हो जाती है, इसलिये वह सदा रक्षणीय होती है। कन्या अवस्था में पिता स्त्री की रक्षा करता है। युवावस्था में पति उसकी रक्षा करता है और वृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करता है। पुरुष के अधीन रहना स्त्री का धर्म है। पुरुष को स्त्री के वश में नहीं होना चाहिये उसको स्त्री लंपट कहेंगे। यह अधर्म है। आज स्त्री-स्वातन्त्र्य की आवाज उठ रही है। समानाधिकार का दावा किया जा रहा है। स्त्रियों में पुरुष के बराबर होने का अभिमान पैदा हो रहा है। स्त्री स्वातन्त्र्य की आवाज विदेशों की आवाज है। यह भोग प्रधान देशों की आवाज है। उन लोगों का धर्म और परलोक की ओर ध्यान नहीं है। भारत धर्म प्रधान देश है। यहां धर्म शिक्षा दी जाती है। भारत सब देशों का धर्म गुरु रह चुका है। यह ईश्वरीय अवतारों का देश है। गीता में कहा है—

यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्तते काम कारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

अर्थात्—"जो शास्त्र विधि छोड़ कर मनमानी करने लगता है, उसे न सिद्धि मिलती है, न सुख मिलता है और न उत्तम गति ही मिलती है।"

पाश्चात्य शिक्षा से हिन्दुओं मे विदेशों का अनुकरण करने का भाव पैदा हो गया है। वेद मे लिखा है माया ब्रह्म के आधीन है, परन्तु ब्रह्म माया के आधीन नहीं है। चित्र में आपने देखा होगा कि लक्ष्मी विष्णु के चरण दबा रही है। यह स्त्रीत्व का भाव है। माया स्वतन्त्र नहीं है स्त्री भी स्वतन्त्र नही है। स्त्री माया है, परमेश्वर आधीन माया ही कुछ कर सकती है, स्त्री भी पुरुषाधीन होकर ही धर्माचरण कर सकती है। विवाह के समय पति को कन्यादान किया जाता है, वह पुरुष की चीज है। पराधीन रहना स्त्री का परम धर्म है, स्त्री पतिव्रता धर्म का पालन कर पतिलोक को प्राप्त होती है। गृहकार्य की शिक्षा स्त्री के लिये आवश्यक है। स्त्री धर्म ग्रंथ तथा दार्शनिक ग्रंथों का अध्ययन भी कर सकती है। गार्गी आदि विदुषी स्त्रियां हो चुकी हैं। परन्तु स्त्री को आदर्श माता बनना चाहिये। विवाह के बाद स्त्री को स्कूल, कालेज में पढ़ने के लिये नहीं जाना चाहिए। स्त्री के लिये केवल विवाह वैदिक संस्कार है। गुरु सेवा की जगह पति सेवा और अग्निपरिचर्या की जगह गृह-कार्य करना चाहिये। स्त्री विवाह से ही शुद्ध होती है। ब्रह्मवादिनी स्त्री पहले जन्म में पुरुष होती है, परन्तु किसी पाप से वह स्त्री बनती है। संस्कार से ऐसा होता है। जड़ भरत जैसे त्यागी मृग-चिन्तन से मृग बन गये।

स्त्रियां चार प्रकार की होती है ब्रह्मनिष्ठा प्रभुभक्ता,

गृहकार्य सक्ता और पतिव्रता । ब्रह्मनिष्ठा ब्रह्म में लीन होती है, प्रभुभक्ता भगवान मे लय होती है, गृहकार्य सक्ता उत्तम लोक को प्राप्त होती है । पाचवा जन लोक पति लोक कहलाता है । पति से पहले देहान्त हो जाय तो भी वह पतिलोक को जाती है, पति परायणता तादात्म्य से पत्नी का मन पतिमय हो जाता है । इससे उसको पुरुष शरीर मिलेगा । गोपिया जब कृष्ण भाव का प्राप्त हुई तो अपने ही को कृष्ण समझने लगी थीं। स्त्री-पुरुष मे अवयव भेद तथा व्यवहार भेद है । दोनों समान हो नहीं सकते । भगवान कृष्ण ने भागवत में गोपियों को परम धर्म पति-सेवा ही बताया है । आज की लडकी विवाह होते ही पति का माता पिता से अलग करती हैं और दोनों एक दूसरे का हाथ पकड सिनेमा देखने जाते हैं । रामायण मे चार प्रकार की पतिव्रता का वर्णन है—

एकहि धर्म एक व्रत नेमा । काय वचन मन पति पद प्रेमा ॥
जग पतिव्रता चार विधि अहहीं । वेद पुराण सत सब कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मनमाही । सपनहु आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम पर पति देखहिं कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धर्म विचारि समुझि कुल रहहीं । सो निकृष्ट तिय स्रुति अस कहई ॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पति वचक पर पति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ॥

सावित्री सत्यवान की कथा आप जानते हैं । सावित्री ने यमराज से कहा—"हे यमराज, पति के बिना मैं सुख की कामना नहीं करती, पति के बिना मैं जीना भी नहीं चाहती ।"

नारद ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों को बताया कि अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया परम पतिव्रता है, तीनों देव नग्न होकर यति के रूप में अनुसूया से भिक्षा मागने गये । पतिव्रता धर्म

और अतिथि सेवा के धर्म-संकट में पड़ कर अनुसूया ने पतिव्रता धर्म की रक्षा के लिये ईश्वर से प्रार्थना की और भिक्षा देने के लिये नग्न देवों के सामने उपस्थित हुई। पतिव्रता धर्म के प्रभाव से तीनोंदेव छोटे बालक बन गये। अनुसूया ने उनको उठा कर खिलाया पिलाया। नारद ने लक्ष्मी, सावित्री और पार्वती को यह घटना सुनाई। तीनों ने आकर अनुसूया से पति वापस देने के लिये प्रार्थना की। अनुसूया ने कहा ये तीनों देव मेरे उदर से पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे। अनुसूया के दत्तात्रय, दुर्वासा, सोम ये तीन पुत्र पैदा हुए। वे क्रमशः विष्णु, शिव और ब्रह्मा के अंशावतार थे।

एक पतिव्रता के घर में पड़ौसिन चली गयी, पतिव्रता ऊखल में मूसल से कुछ कूट रही थी। पति के जल मांगते ही पतिव्रता ने मूसल ऊपर ही छोड़ कर पति को पानी दिया। मूसल निराधार ऊपर लटका रहा, पड़ौसिन ने पूछा" मूसल निराधार कैसे रहा? पतिव्रता ने कहा—'पतिव्रताधर्म के प्रभाव से'। पड़ौसिन ने भी पतिव्रता बनने का निश्चय किया। दूसरे दिन सवेरे ही उसने पति की सेवा करनी प्रारम्भ की और पति से कहा कि "दोपहर को मैं मूसल से कुछ कूटूंगी, उस समय तुम मुझसे पानी माँगना। वह मूसल से कूटने बैठी तो पति सो गया। उसने कंकड़ मार कर उसको जगाना चाहा, पर वह न जाग सका। आखिर उसने एक पाव का बट्टा पति के सिर पर दे मारा। पति का सिर फट गया, परन्तु पत्नी के कथनानुसार पानी मांगा। स्त्री ने मूसल ऊपर छोड़ दिया, परन्तु वह उसी के सिर में जोर से लगा और जमीन पर आ गिरा।

धर्मोपदेश १६

जिस प्रकार स्त्री के लिये पतिव्रता धर्म का पालन करना आवश्यक होता है उसी प्रकार पुरुष के लिये भी एक पत्नी व्रत का पालन करना आवश्यक है। पुरुष को पत्नी से प्रेममय व्यवहार करना चाहिये और पत्नी की सलाह की कद्र करनी चाहिये। पति-पत्नी दोनों मे एक दूसरे के प्रति प्रेम तथा आदर भाव होने से घर मे शान्ति विराजती है। जिस प्रकार भक्त भगवान के चरणों में सब कुछ अर्पण कर देता है, उसी प्रकार पत्नी को पति के चरणों में सब कुछ अर्पण कर देना चाहिये। गृहस्थाश्रम में सबको अपने-अपने धर्म का पालन करना चाहिये। आज विधवा के धर्म पर विचार प्रकट करेंगे।

विधवा अवस्था सन्यास के समान होती है। विवाह से स्त्री का पति के सूक्ष्म शरीर, कारण-शरीर, स्थूल शरीर तथा आत्मा से सम्बन्ध स्थापित होता है। पति की मृत्यु के बाद विधवा का मृत पति के सूक्ष्म शरीर तथा आत्मा से सम्बन्ध बना रहता है। विधवा को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये। आज की अवस्था बड़ी भयंकर है। धर्म की बातों को भुलाया जा रहा है और जीवन में भोग प्रधान बातों को महत्व दिया जा रहा है। भोग का सुख क्षणिक होता है, परन्तु धर्माचरण से प्राप्त सुख स्थाई होता है। विधवा अपने धर्म का पालन करे तो वह पुत्र न होने पर भी स्वर्ग जाती है। विधवा के लिये दो मार्ग हैं सती हो जाना या ब्रह्मचर्य का पालन करना। मनु धर्मशास्त्र में कहा है—"पतिव्रता पति के विदेश जाने पर शृंगार न करे और अल्पाहार करके शुद्ध जीवन बिताये। पति के मरने पर पत्नी अग्नि में प्रवेश करे या केश वपन करवा कर व्रतादि से

मन को शुद्ध बना ब्रह्मचर्य का पालन करे। स्त्री सब अवस्थाओं में रक्षणीय है। व्यास स्मृति में कहा गया है—कुलीन स्त्री के लिये दरवाजे में बैठना, खिड़की से देखना, झूठ बोलना और दूसरे से हँसी मजाक करना दूषण है। विधवा के लिये भी ये बातें दूषण हैं। धर्म पालन में सावधान रहने से विधवा का परलोक सुधरता है, आज विधवा के पुनर्विवाह की बातें की जा रही हैं। विधवा का अर्थ पति से रहित अर्थात् संसार में जिसका कोई पति नहीं है, वह स्त्री है। संसार में जिसके लिये कोई पति नहीं है, उसका विवाह कैसे हो सकता है? शब्दों का ज्ञान न होने से ही लोग विधवा-विवाह शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। जो कि अर्थ की दृष्टि से बिलकुल गलत है। लोग पूछते हैं शूद्रों में पुनर्विवाह क्यों? उसको विवाह नहीं प्रत्युत नाता कहते हैं। शूद्रों के लिये नाता करने की आज्ञा है, द्विजाति के लिये नहीं। विवाह तमाशा नहीं है। भारत में पति-पत्नी का सम्बन्ध कच्चा नहीं माना जाता। और देशों में तो धर्म भावना शिथिल होने से पति-पत्नी का सम्बन्ध कच्चा माना जाता है. परन्तु धर्म-प्राण भारत में वह सम्बन्ध पक्का होता है। हाथ मिलाने और गले में माला डालने से विवाह नहीं होता, कन्या का पिता वर को कन्यादान करता है, इसलिये स्त्री पर पति का अधिकार होता है। वह पति की चीज हो जाती है। दान में मिली गौ पर ब्राह्मण का अधिकार हो जाता है। पिता की सम्पति का बटवारा एक ही बार होता है। धर्म-ग्रन्थों में विधवा विवाह निषेध है। ब्राह्मण, दैव आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच—इन आठ प्रकार के विवाहों में विधवा विवाह नहीं है। मनुस्मृति के नौवें अध्याय में कहा है—द्विजाति में विधवा विवाह का दूसरे पुरुष से नियोग करना योग्य नहीं है। पति के मरने पर दूसरे पुरुष से विधवा का सम्बन्ध स्थापित होने से सनातन-धर्म नष्ट होता है। वेदों में

पुनर्विवाह का समर्थन नहीं है। विवाह-विधि में विधवा विवाह नहीं है। विधवा की सन्तान वर्णशंकर होती है। गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन ने कहा—

संकरो नरकायैव कुलघ्नाना कुलस्य च ।
पतन्ति पितरोह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रिया ॥

अर्थात्—वर्ण संकर होने से वह कुल घातक को और कुल को निश्चय ही नरक में ले जाता है, एवं पिण्डदान और तर्पणादि क्रियाओं के लुप्त हो जाने से उनके पितर भी पतन पाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि वेदों में पुनर्विवाह है। होता तो मनुमहाराज वेद विरुद्ध वचन क्यों लिखते ? वे लोग पुनर्विवाह के समर्थन में ऋग्वेद के मन्त्र का अन्तिम अंश (पतिमेकादशम-कृधि उपस्थित कर उसका अर्थ करते हैं—"ग्यारह पति करे।" यह अर्थ का अनर्थ है। पूर्ण मन्त्र का अर्थ न कर उसके अंश का मनमाना अर्थ करके लोगों को बहकाया जा रहा है। वह मन्त्र यह है—इमॉ त्वमीन्द्र मीढ्वः सुपुत्रॉ सुभगॉ कृणु। दशास्यां पुत्रा ना धेहि पतिमेकादशं कृधि।

अर्थात्—कन्या का पिता इन्द्र से प्रार्थना करता है—"हे इन्द्र, मेरी कन्या को पुत्रवती तथा सौभाग्यवती करना, इस मन्त्र में दस पुत्र मिला कर पति को ग्यारहवां माना गया है।

विधवा के सुधारने का उपाय करना चाहिये। घरवाले विधवा को दुर्भागिनी समझ कर तंग करते हैं। यह बुरी बात है। इससे विधवा के मन में विक्षेप पैदा होता है। भोगों के त्याग से मुक्ति होती है, भोगों से राग करने से नहीं। विष्णु पुराण में कहा है—"संसार में विषयोपभोग का सुख और स्वर्ग का सुख—इनसे भोग के त्याग में अर्थात् निवृत्ति में अधिक सुख है। विधवा दुर्भागिनी नहीं है। वासना के क्षय से आनन्द होता

है। विधवा निवृत्ति के आनन्द का अनुभव करती है, पहले जिस कन्या का वागदान हो जाता था; वह भी पति के मरने पर दूसरा विवाह नहीं करती थी।

एक राज कन्या की एक राजकुमार से सगाई हो गई, राजकुमार मर गया, तो राजकुमारी ने दूसरे से सगाई करने से इन्कार कर दिया और विधवा धर्म का पालन किया। मीरा ने पति का त्याग किया था। भीष्म ने काशीराज की तीन कन्याओं का—अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का हरण किया था। काशीराज ने घोषित किया था कि स्वयंवर में जो सबको परास्त कर कन्याओं को ले जायगा उसी से उनका विवाह होगा। भीष्म ने विचित्र वीर्य के लिये कन्याओं का हरण किया था, अम्बा ने भीष्म से कहा—"मेरा संकल्प सालव राजा से विवाह करने का था।" भीष्म ने कहा—"जिससे विवाह करने का तुमने सकल्प किया, वही तुम्हारा पति है, उसके पास चली जाओ।" अम्बा शाल्व राजा के पास गई और बोली—"भीष्म ने मेरा हरण किया था। मैंने उनको आप से विवाह करने का सकल्प बताया। उन्होंने मुझे छोड़ दिया। आप मुझे स्वीकार करें।" शाल्व ने कहा मैं क्षत्राय हूँ दूसरे की हरण की हुई स्त्री को मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। तुम्हें पर पुरुष का स्पर्श हो गया है। अब मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकता।" अम्बा ने कहा—"मैं निर्दोष हूँ।" शाल्व ने कहा—"मैं तुम्हें नहीं रक्खूंगा। तुम चली जाओ।" अम्बा भीष्म के पास लौट आई। भीष्म ने कहा—"संकल्प के अनुसार तुम्हें शाल्व से ही विवाह करना चाहिये।" इस प्रकार अम्बा न इधर की रही न उधर की। आज तो पराई स्त्री से हस्तान्दोलन करना फैशन सा हो गया है। पतिव्रता धर्म से ही स्त्री का कल्याण होता है। घर वालों

को विधवा की सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिये। विधवा का सम्मान करना चाहिये, क्योंकि वह सन्यासी की तरह माननीय होती है। घर के बाल बच्चों का बोझ विधवा पर डाल देना चाहिये। विधवा के सामने भोग विलास का चर्चा न करे और साँसारिक सम्बन्ध भी सावधानी से करे। घर में सादगी का वातावरण हो। विधवा सात्विक अल्पाहार करे और श्वेत वस्त्र धारण करे। नाटक सिनेमा विधवा को नहीं देखना चाहिये। किसी से उठना बैठना न करे। विधवा को तीर्थ यात्रा करानी चाहिये। बाल-विवाह और वृद्ध विवाह बन्द होना चाहिये। विधवा व्रतादि करे, शास्त्र चर्चा करे, सत्संग करे और पति के निराकार स्वरूप का चिन्तन करे, ऐसी विधवा देवी का स्वरूप है। प्रत्येक को अपने धर्म में स्थित होना चाहिये।

धर्मोपदेश १७

आश्रम चार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। प्रत्येक आश्रम की अवधि क्रमशः पचीस वर्ष तक है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध में कहा जा चुका है। आज वानप्रस्थ और सन्यास के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये जायेंगे। वानप्रस्थ का अर्थ वन में निवास है।

ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति के पश्चात् पचीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम के धर्म का नियमपूर्वक पालन कर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये। वानप्रस्थाश्रम निवृति का प्रारम्भ है। ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम प्रवृति प्रधान है और वानप्रस्थाश्रम और सन्यास निवृति-प्रधान। वानप्रस्थाश्रम में निवृति के पूर्णतया योग्य बनने का अभ्यास किया जाता है। वानप्रस्थी पत्नी को साथ लेकर वन में जाय या पत्नी को घर छोड़ कर अकेला

ही चला जाय। वह वन मे कंद-मूल फल से निर्वाह करे या भिक्षा मांग कर खाये। वह वन में स्नान संध्या करे, पंच महा यज्ञ करे, अनासक्ति का अभ्यास करे, तीर्थों के पास रहे। शास्त्र-चिन्तन करे, योग साधना करे। वैराग्य की साधना करे और इस प्रकार ईश्वर की आराधना करे। वानप्रस्थाश्रम में शरीर छूट जाय, वह सूर्य द्वार से अर्थात् उत्तरायण मार्ग से ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। जहां अमृत पुरुष निवास करते हैं। वानप्रस्थाश्रम के धर्मों का विधिवत पालन करने से मनुष्य सन्यास के योग्य होता है। पचहत्तर वर्ष तक ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ के धर्मानुसार जीवन विता कर मनुष्य को आयु के भाग मे सर्व संग परित्याग कर सन्यास धारण करना चाहिये। यह क्रम सन्यास है। सन्यास का साधन वैराग्य है। इसलिये यदि पूर्व जन्म के पुण्य कर्मों से पहिले ही वैराग्य पैदा हो जाय, तो जिस समय वैराग्य पैदा हो उसी समय सन्यास धारण करे। क्योंकि वैराग्यवान मनुष्य को भोग अच्छे नहीं लगते। वेद मे कहा है :—

यद् हरेव विरजेत् तद् हरेव प्रवजेत्।

अर्थात्—जिस दिन वैराग्य पैदा हो जाय, उसी दिन सन्यास धारण करे।

अब प्रश्न यह है कि सन्यास का अधिकार किसको है? सन्यास धारण करने का अधिकार ब्राह्मण को है। ब्राह्मण के लिये चार आश्रम, क्षत्रिय के लिये तीन आश्रम, वैश्य के लिये दो आश्रम और शूद्र के लिये एक गृहस्थाश्रम है। ब्रह्मचर्याश्रम का अधिकार शूद्र को नहीं है। शास्त्रों में यह मत भी पाया जाता है कि द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय

और वैश्य तीनों को सन्यास धारण करने का अधिकार है। जिन्हें उपनयन संस्कार का अधिकार प्राप्त है, उन्हें सन्यास धारण करने का अधिकार भी है। ध्यान रहे क्षत्रिय और वैश्य यद्यपि सन्यास धारण कर सकते हैं, तथापि वे आचार्य पद ग्रहण नहीं कर सकते। आचार्यपद का अधिकार केवल ब्राह्मण को प्राप्त है।

यह कहा जा चुका है कि सन्यास वैराग्य पूर्वक धारण किया जाता है। वैराग्य के दो प्रकार हैं—मन्द वैराग्य और तीव्र वैराग्य। मन्द वैराग्य को स्मशान वैराग्य कहते हैं। कोई दुःख जनक घटना देख-सुन कर जो क्षणिक वैराग्य पैदा होता है, उसके आधार पर सन्यास धारण नहीं किया जा सकता। सन्यास के लिये तीव्र वैराग्य की आवश्यकता अनिवार्य होती है। सन्यासी भिक्षा वृत्ति से निर्वाह करे, अपमान सहन करे, दूसरे का अपमान न करे, किसी से शत्रुता न करे, अल्पाहार करे, निवृति परायण हो, रागद्वेष रहित हो, वेदान्त का श्रवण-मनन करे और अनासक्त होकर ईश्वर चिन्तन करे। मरणोन्मुख अवस्था में अर्थात् मरते समय भी सन्यास धारण किया जा सकता है। उस अवस्था में किसी सन्यासी से प्रैष मत्र सुन लेना चाहिये। कोई सन्यासी न हो तो चार ब्राह्मणों से उस मत्र के चार पद सुन लेने चाहियें। पूरे मत्र के उच्चारण करने का अधिकार सन्यासी को होता है, ब्राह्मण को नहीं। मरते समय के सन्यास से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। सन्यास के कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस आदि कई प्रकार हैं। जो गाव के बाहर कुटी बनाकर रहता है, वह कुटीचक कहलाता है। जो सन्यासी तीर्थ भ्रमण करता रहता है, वह बहूदक कहलाता है। प्रणव जप करने वाले हंस कहलाते हैं। गृहस्थाश्रम में ही ज्ञान हो जाय और फिर सन्यास धारण करे, तो वह विद्वत् सन्यास कहलाता

है। सन्यास धारण करने पर ज्ञान प्राप्त हो जाय तो सन्यासी के १०१ पीढियों का उद्धार हो जाता है। उसके दर्शन पवित्र होते हैं। जिस पुरुष का चित्त परमात्मा में लीन होता है, उससे उसका कुल पवित्र होता है, माता कृतार्थ होती है और पृथ्वी भी पवित्र होती है। ज्ञान निष्ठ सन्यासी शरीर छूटने पर ब्रह्म में लीन हो जाता है। अर्थात् वह जन्म मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। गीता मे भगवान कृष्ण ने कहा है :—

यद् गत्वा न निवर्तन्ते दद्धाम परम मम।

अर्थात्—जहा जाकर फिर लौटना नहीं पड़ता, (ऐसा) वह मेरा परम स्थान है।

ज्ञानी सन्यासी के बर्ताव के सम्बन्ध में भी कहना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रारब्ध कर्म के सम्बन्ध में कहा गया है—'भोगादेव क्षयः।' अर्थात् प्रारब्ध कर्म का भोगने से ही नाश होता है। ज्ञानी सन्यासी को भी प्रारब्ध कर्म भुगतना पड़ता है। प्रारब्ध के दो भेद हैं—प्रवृति प्रारब्ध और निवृति प्रारब्ध, श्रवण, मनन, निधि ध्यासन से चौथी भूमि वाले से प्रवृति प्रारब्ध कर्म करायेगा। निवृत्ति प्रारब्ध वाला तो जंगल मे चला जायगा। प्रवृति प्रारब्ध वाला सन्यासी धर्म प्रचार का कार्य करता है। गीता में कहा है —

न बुद्धि भेद जनयेद ज्ञाना, कर्म सगिनाम्।
जोषयेत्सर्व कर्माणि विद्वान्युक्त समाचरन्॥

अर्थात्—कर्म में आसक्त अज्ञानियों की बुद्धि में ज्ञानी पुरुष भेद भाव उत्पन्न न करे स्वयं योग युक्त होकर सभी काम करे, और लोगों से खुशी से करावे। चौथी भूमि वाला सन्यासी आचार्य कोटि का होता है। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को उपदेश दिया था। पांचवीं भूमि वाले को कोई कार्य नहीं होता।

गीता में कहा है—तस्य कार्यं न विद्यते। अर्थात् उसके लिये कुछ भी कार्य शेष नहीं रह जाता। दुर्वासा राजा कुन्ती भोज के यहां चार महीने रहे। कुन्ती सेवा करती रही। दुर्वासा ने कुन्ती को मन्त्र भी दिया था। तात्पर्य यह कि चौथी भूमि वाले आचार्य कोटि सन्यासी धर्मोपदेश देने के लिये एक स्थान पर चाहे जितने दिन रह सकते हैं और गुरु मन्त्र का दान कर गुरु भी बन सकते हैं एक स्थान पर एक रात्रि रहने से धर्म प्रचार ठीक तरह से नहीं किया जा सकता। स्कंद पुराण में सब का गुरु सन्यासी माना गया है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यासी, अतीवर्णी ये सब योग्य हों तो गुरु बन सकते हैं। स्त्री का गुरु पति होता है, परन्तु पति ब्रह्मनिष्ठ तथा श्रोत्रिय हो, तो गुरु बन सकता है, अन्यथा नहीं। स्त्री सन्यासी को या अन्य किसी योग्य व्यक्ति को गुरु बना सकती है। शबरी ने मातंग को गुरु धारण किया था। नारद ने कई स्त्रियों को उपदेश दिया था। स्कंद पुराण की गुरु गीता में शंकर ने पारबती से कहा है—भव सागर से पार होने के लिये गुरु चरण ही नौका रूप है। गुरु चरण में सब तीर्थ निवास करते हैं। गुरु की पूजा अर्चना कर चरणोदक लेना चाहिये। गुरु में परमेश्वर बुद्धि होनी चाहिए। गुरु सब प्रकार से पूजनीय होते हैं। शहरों में अधर्म बढ़ रहा है, इसलिये आचार कोटि के सन्यासी का शहरों में धर्म प्रचार करना कर्तव्य है।

धर्मोपदेश २३ तक का सारांश

1 परमात्मा के चार स्वरूप हैं। माया रहित परमात्मा द्वितीय स्वरूप है। सूक्ष्म प्रपंच का अभिमानी हिरण्य गर्भ या सूत्रात्मा तृतीय स्वरूप है और स्थूल प्रपंच का अभिमानी विराट या वैश्वानर चतुर्थ स्वरूप है। विराट से पंच देवों के

साकार रूप उत्पन्न हुए—विष्णु, शिव, देवी, सूर्य और गणेश। एक परमात्मा के यह पांच साकार स्वरूप हैं। भगवान शंकर साक्षात् परब्रह्म हैं। माण्डूक्योपनिषद् में कहा है—भूत, भविष्य तथा वर्तमान कालिक सब वस्तुयें ओंकार हैं। जो त्रिकालिक वस्तु नहीं है, वह भी ओंकार है। परमात्मा माया से बहुरूपा बन जाता है। वह माया रहित भी है और माया सहित भी है। उसमें सब हैं और सब में वह है। शंकर और विष्णु जीवों को बन्धन से छुड़ाने का कार्य करते हैं। दोनों समान हैं, परन्तु शंकर में एक विशेषता है। शंकर शीघ्र प्रसन्न होते हैं, इसीलिये उनको आशुतोष कहा जाता है। आशुतोष का अर्थ शीघ्र प्रसन्न होने वाला है। यजुर्वेद अथर्ववेद और दस पुराणों में शंकर की महिमा गाई गई है। शंकर कल्याणकारी आत्म ज्ञान का उपदेश देते हैं। विष्णु भोग प्रदाता हैं और शंकर मोक्ष दाता हैं।

सनकादि ऋषि जंगल में आत्म ज्ञान के लिये शंकर की आराधना कर रहे थे। पाणिनी भी व्याकरण-ज्ञान के लिये उनके पास ही ध्यान-मग्न हो गये। भगवान शंकर डमरू लेकर दोनों के मध्य नृत्य करने लगे। शंकर नटराज-राज हैं। गायन में भी अद्वितीय हैं। शंकर ने नृत्य करते हुए १४ बार डमरू का शब्द किया। उन शब्दों से सनकादि को ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हुआ और पाणिनी को व्याकरण के चौदह सूत्र प्राप्त हुए। इन्हीं चौदह सूत्रों से पाणिनी ने अष्टाध्यायी नामक महान व्याकरण-ग्रंथ की रचना की। शंकर में दया की पराकाष्ठा है। केवल जल धारा और बिल्व-पत्र प्रसन्न होते हैं। विष्णु की पूजा कष्ट-साध्य है। देव और दानवों ने मिल कर समुद्र मंथन किया। उससे हलाहल निकला। उससे सब त्रस्त हुए। प्राण रक्षा के लिये सभी

ने शंकर की प्रार्थना की। शंकर ने पार्वती से कहा—"प्राण रक्षा चाहने वालों को निर्भय करना मेरा कर्तव्य है। दीनों का परिपालन करना समर्थ का कार्य है। मैं जाता हूँ।" और शंकर ने हलाहल पी लिया। पार्वती ने अनुमोदन किया। यह कार्य ईश्वर के सिवा और कोई नहीं कर सकता।

शिवरात्रि शिव पूजा का विशेष दिन है। चतुर्दशी के दिन शिवरात्रि होती है। इसको काल रात्रि भी कहते हैं। १४ लोक प्रलय होने से शंकर में लीन होते हैं। जिसमें जगत सोता है वह शिव है। यह दिन ब्रह्म सुख का देने वाला है, इसलिये इसको शिवरात्रि कहते हैं। शिवरात्रि-व्रत पाप नाश करने वाला होता है। रात को चारों प्रहर में शिव पूजा करने का विधान है। यह इसलिये कि जीवों की चार खानि हैं—पिण्डज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज, चार खानि और चौरासी लाख योनि में जीव भटकता रहता है। इससे मुक्त होने का उपाय भगवद्भक्ति है। शंकर परमात्मा का ही साकार स्वरूप है, बंधन से छुड़ाकर मोक्ष का दान देने वाले हैं। पंच देवों की पूजा में शिव पूजा का महत्त्व अधिक है। शंकर नहीं चाहते कि कोई उनके लिये अधिक कष्ट उठाये। वह आशुतोष है। श्रद्धापूर्वक शंकर का भजन-पूजन करना हमारा कर्तव्य है।

धर्मोपदेश २४

परमात्मा के चार स्वरूप का वर्णन किया जा चुका है। चतुर्थ स्वरूप विराट से पंच देवों के साकार स्वरूप उत्पन्न होते हैं—विष्णु, सूर्य, देवी, गणेश और शिव। कल की कथा में वेद प्रमाण से बताया गया था कि शिव साक्षात् परब्रह्म हैं। आज की कथा में भी शिव स्वरूप की विवेचना की जायगी। शिव के

स्वरूप में दो भाव हैं—रुद्र भाव और शिव भाव। इन दो भावों को भली भांति समझ लेना चाहिये। रुद्र रूप संहार कर्ता है और शिव रूप मोक्ष दाता है। इन दोनों कार्यों के सूचक लक्षण शिव स्वरूप में विद्यमान हैं। योग शास्त्र में महेश का नित्य ध्यान करने का आदेश दिया गया है। कहा है—जिनके शरीर की चांदी के पहाड़ की भांति कांति है, मस्तक में चन्द्रमा है, रत्न की तरह उज्ज्वल रंग है, चार हाथों में परशु, मृग, वरमुद्रा और अभय मुद्रा धारण किये हुये हैं, प्रसन्न वदन हैं, पद्मासन लगाये हैं। देव जिनकी स्तुति करते हैं व्याघ्रचर्म जिनका वस्त्र है, सम्पूर्ण भय को जो हरने वाले हैं जिनके पंचमुख और त्रिनेत्र हैं, उन साक्षात पारब्रह्म शिव का ध्यान करना चाहिये।

रंगों का आधार सफेद रंग है। सारे रंग श्वेत पर चढ़ते हैं। श्वेत वर्ण से शिव रंगों के आधार की तरह जगत् के आधार हैं। प्रकृति के पांच तत्व ही—पृथ्वी, आग, तेज, वायु, आकाश—पाँच मुख्य से सूचित होते हैं। प्रसन्न वदन से पंच तत्वों से संसार के विकास की ओर संकेत है। पंच महाभूतों में आदि तत्व आकाश, अन्तिम तत्व पृथ्वी और सूर्य—ये तीन नेत्र हैं। मस्तक में चन्द्रमा का अर्थ परमात्मा चन्द्रवत प्रकाशक हैं। बर्फ में निवास, मस्तक में चन्द्रमा और सिर पर गंगा—तीनों का शीत स्पर्श है। इससे यह भाव लक्षित होता है कि शिव आधि भौतिक, आधि दैविक और अध्यात्मिक तापों को हरने वाले हैं। त्रिशूल से सूचित होता है कि प्रकृति के सत्व गुण, रजो गुण और तमो गुण—ये तीनों गुण शिव के आधीन हैं। शिव चार हाथों से चार पदार्थों के देने वाले हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष परशु से अर्थ देते हैं, मृग से काम देते हैं, वरमुद्रा से धर्म और अभय मुद्रा से मोक्ष देते है, इस प्रकार शिव स्वरूप साक्षात् परब्रह्म का साकार स्वरूप है।

शंकर के ध्यान द्वारा ईश्वर भाव बताया है। एक प्रलय का भाव और दूसरा मोक्ष का भाव। प्रलय का भाव रुद्र रूप है, और मोक्ष का भाव शिव रूप है। प्राकृतिक प्रलय में प्रकृति विद्यमान रहती है। आत्यन्तिक प्रलय में प्रकृति लय होकर मोक्ष मिलता है। त्रिशूल प्रलय का सूचक है। सर्प भी नाश का सूचक है। शिवजी शरीर पर भस्म लेपन करते हैं—क्यों? महा प्रलय के बाद भस्म ही तो शेष रहती है। शिव-श्मशान वासी हैं—क्यों? महा प्रलय में सब कुछ नष्ट करके श्मशान बना देते हैं, तब उस श्मशान में अकेले शंकर ही विद्यमान रहते हैं। रुद्र भाव में शंकर मुण्ड माल भी धारण करते हैं। मुण्ड माल भी नाश की सूचक है। रुद्र भाव प्रलयंकारी है और शिव भाव कल्याणकारी। अब मोक्ष दाता शिव में इन चिन्हों का अर्थ समझना चाहिये। शिव मुक्ति प्रदाता महाकाल हैं। माया का भी नाश करने वाले होने से शिव महा काल स्वरूप हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीनों प्रकार के दुखों से पीड़ित व्यक्ति को मुक्त करने का सूचक त्रिशूल है। शिव भुजंग भूषण हैं सर्प अपनी काटने की प्रकृति को छोड़ कर शिव के गले में पड़ा है। मोक्ष दशा में सर्प की प्रकृति की तरह प्रकृति अलग हो जाती है। कुबेर भण्डारी होते हुये भी शिव श्मशान वासी हैं। मोक्ष का अधिकारी विरक्त ही हो सकता है। त्याग वैराग का सूचक है शंकर को विरक्ति ही प्रिय है। वेद में कहा है संतान से, कर्म से, धन से मोक्ष नहीं मिलता, त्याग से ही मिलता है। व्याघ्राम्बर रुद्र भाव से नाश का सूचक है, परन्तु शिव भाव में दिगम्बर अवस्था का द्योतक है। परमात्मा में अज्ञान का आवरण नहीं। परमात्मा का स्वरूप निरावरण है। तीसरा नेत्र—ज्ञान नेत्र ललाट में स्थित है। ज्ञान कूटस्थ चैतन्य में होता है, वह कूटस्थ चैतन्य का सूचक है।

शंकर ने कामदेव को नष्ट किया। ज्ञान से कामना शान्त होती है। काम की तीन दशा होती हैं—संस्कार दशा, चिन्त्यमान दशा और भुज्यमान दशा। संस्कार-दशा में संकल्प विकल्प नहीं होते और स्थूल क्रिया भी नहीं होती। चिन्त्यमान दशा में विषय चिन्तन होता है अर्थात् संकल्प-विकल्प होते हैं। भुज्यमान दशा में स्थूल क्रिया होती है। तीनों अवस्था में काम से ज्ञान ढका रहता है। गीता में कहा है—

> धूमेनाव्रियते वन्हिर्यथादर्शो मलेन च ।
> यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा ते नेदं मावृतम् ॥

अर्थात्—जिस प्रकार धुएं से अग्नि, मल से दर्पण और झिल्ली से गर्भ ढका रहता है, उसी प्रकार उस काम के द्वारा यह (ज्ञान) ढका हुआ है।

> आवृतं ज्ञान मेतेन ज्ञानिनो नित्य वैरिणा ।
> काम रूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणान लेन च ॥

अर्थात्—हे अर्जुन- ज्ञानियों का यह काम रूपी नित्य वैरी कभी भी तृप्त न होने वाला अग्नि ही है, इससे ज्ञान ढका हुआ है।

कामना से ज्ञान आवृत होता है। कामना की निवृति से ज्ञान प्रकाशित होता है। ध्यान से चिन्त्यमान और भुज्यमान् कामना की निवृति होती है। संस्कार दशा का नाश तो ज्ञान से ही होता है। गीता में कहा है—

> विष्या विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
> रस वर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

अर्थात्—निराहारी पुरुष के विषय छूट जावे, तो भी (उनका) रस अर्थात् चाह नहीं छूटती। परन्तु परब्रह्म का

अनुभव होने पर चाह भी छूट जाती है। अर्थात् विषय और उनकी चाह दोनों छूट जाते हैं।

सूक्ष्म इच्छा का अन्त ज्ञान से होता है। कामनाओं के नाश के लिये ज्ञान नेत्र है। यजुर्वेद में माया से तीन रंग माने गये हैं—श्वेत, लोहित और कृष्ण। सत्व गुण का श्वेत, रजोगुण का लोहित अर्थात् लाल और तमोगुण का कृष्ण अर्थात् काला वर्ण होता है। तमोगुण से महा प्रलय होती है। शंकर तमोगुण के अधिष्ठाता हैं। *फिर शिव का श्वेत वर्ण क्यों? ब्रह्मा जीव* कोटि में हैं, वह बाहर भीतर लाल रंग वाले हैं। विष्णु सत्व गुण के अधिष्ठाता हैं उनका श्वेत वर्ण होना चाहिये था, परन्तु वह श्याम वर्ण के हैं। *शिव और विष्णु का उनके गुणानुसार* विपरीत वर्ण है। शिव और विष्णु फल दाता हैं। उनके विपरीत वर्ण उनकी एकता के सूचक हैं। रंग की अदल बदल दोनों में अभेद भाव दिखाने के लिये हैं। *शिव और विष्णु दोनों एक* हैं। शिव का हृदय विष्णु है और विष्णु का हृदय शिव है। शिव कैलाश वासी क्यों? शिव पृथ्वी तत्व के अधिष्ठाता हैं। पृथ्वी तत्व का विकास हिमालय से हुआ है, इसलिये हिमालय पर स्थित कैलाश पर उन्होंने निवास किया। कैलाश वासियों में बैर नहीं है। शिव का वाहन बैल, गणेश का चूहा, कार्तिक का मयूर और पारवती का सिंह—सब बैर-विरोध के बिना हिल-मिल कर रहते हैं। शिव में राग द्वेष नहीं है। निर्विकार हैं। शिव का वाहन बैल क्यों? सत्व गुण का पूर्ण विकास गौ में तमोगुण का सिंह में और रजोगुण का बन्दर में होता है। गौ योनि से दूसरे जन्म में मनुष्य बनेगा तो सत्वगुणी होगा। सिंह से मनुष्य बनेगा तो तमोगुणी होगा और बन्दर से मनुष्य बनेगा तो रजोगुणी होगा। सत्वगुण में धर्म का विकास होता है। बैल से शिव यह भाव सूचित करते हैं कि धर्म ही मेरी स्थिति है और

धर्म से ही मेरी प्राप्ति होती है। शिव स्वरूप का यह शास्त्रीय वर्णन भली भांति समझ कर उनका ध्यान करना चाहिये। उनके ध्यान से मन शान्त होगा। मन शान्त होने से ज्ञान होता है। और ज्ञान से मुक्ति होती है। शिव ज्ञान दाता और मोक्ष दाता हैं।

धर्मोपदेश २५

यह बताया जा चुका है कि विष्णु, शिव, गणेश, देवी और सूर्य—ये पांचों देवता परमात्मा के साकार स्वरूप हैं। परमात्मा ने कहा है—गणेश मेरी बुद्धि है, सूर्य चक्षु है, शिव आत्मा है, और प्रकृति मेरी शक्ति है। जो मुझे भेद-बुद्धि से भजते हैं, वे मुझे अंगहीन करते हैं। पांचों देवता एक ही परमात्मा के विभिन्न रूप हैं। गणेश जल के अधिष्ठाता हैं। गणेश का स्वरूप छोटा कद, स्थूल शरीर, लम्बोदर सुन्दर, गण्डस्थल में से मद निकल रहा है, भ्रमर मद पीकर गुंजार कर रहे हैं। दन्ताघात से विदारित अरि के खून का मस्तक में सेन्दूर लगा है और पारवती के पुत्र हैं। सुबुद्धि की पुष्टता से ही उनका शरीर स्थूल है पशुओं में हाथी सब से अधिक बुद्धिमान है, इसलिये गणेश गजवदन हैं। एक दांत का मतलब है कि कुबुद्धि तो अनेक ओर ले जाती है, परन्तु सुबुद्धि एक परमात्मा की ओर ही ले जाती है। लम्बोदर सुबुद्धि की गम्भीरता का द्योतक है गण्डस्थल स्त्रवित मद पीकर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं—इसका तात्पर्य यह है कि सुबुद्धि से मथित अमृत पीकर मुमुक्षु तृप्त होते हैं। दन्ताघात से विदारित अरि के खून का भाव यह है कि सुबुद्धि का अद्वैत भाव अमोघ शस्त्र है। उससे शत्रुओं का अर्थात् विघ्न-बाधाओं का नाश होता है

अरि के खून के सेन्दूर की शोभा का यह तात्पर्य है कि राजसी और तामसी गुणों के नाश से सत्वगुण की शोभा बढ़ती है। शैल सुता पारवती के पुत्र से यह भाव है कि गणेश आद्या प्रकृति से सात्विक भावापन्न हैं। सुबुद्धि से सब कार्य सिद्ध होते हैं। इसलिये गणेश विघ्न हर्ता तथा कार्य सिद्धि के देवता हैं। गणेश का वाहन चूहा क्यों? जैसे चूहा मूल्यवान आवश्यक वस्तुओं को न समझ कर उनको काट कुतर कर नष्ट कर देता है, वैसे ही मनुष्य का कुतर्क भी शास्त्रीय वचनों का खण्डन करता है। सुबुद्धि के प्रभाव से कुतर्क दब जाता है। कुतर्क पर सुबुद्धि सवार होती है। गणेश साक्षात् परब्रह्म हैं।

गणेश पारवती के चरणों के कीचड़ से उत्पन्न हुये हैं। पारवती ने चरण के कीचड़ से एक सुन्दर मूर्ति बनाई। पारवती ने मन में संकल्प किया कि ऐसा लड़का हो जाय तो अच्छी बात है। इस संकल्प से बस मूर्ति में जान आगई। गणेश बन गये। पारवती ने गणेश को दरवाजे पर बिठा कर कहा—"मैं अन्दर स्नान करने जाती हूं। किसी को भी अन्दर न आने देना।" गणेश पहरा देने लगे। संयोग से शिवजी आ गये और भीतर जाने लगे। गणेश ने शिव को रोका। शिव ने कहा—"तुम कौन हो? और मुझे क्यों रोक रहे हो?" गणेश ने कहा—"माता के आदेश का पालन कर रहा हूं।" शिव ने कहा—"तुम्हारी माता कौन है?" गणेश ने उत्तर दिया—"पारवती"। शिव ने कहा—"तो मैं जाऊंगा।" गणेश—"नहीं" मेरे जीते जी आप अन्दर नहीं जा सकते। और पिता-पुत्र में युद्ध प्रारम्भ हुआ। गणेश ने शिव के सब गणों को परास्त कर दिया। शिव ने त्रिशूल से गणेश का सिर काट दिया वह सिर चन्द्रमा में चला गया। पारवती ने क्रोधित होकर शिव से कहा—"मेरे पुत्र को जिला दो।" शिव ने अपने गण से

प्रिय है। सूर्य को नियमित रूप में नमस्कार करने से आँखों की ज्योति बढ़ती है। सूर्य किरणों में स्थित सात रंग सूर्य रथ के सात अश्व स्वरूप हैं। हाथ में कमल मुक्ति का प्रकाशक है। सूर्य की उपासना ज्योति स्वरूप की उपासना है। हिरण्य गर्भ की उपासना है। इससे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

विष्णु आकाश तत्व के अधिष्ठाता हैं। विष्णु का स्वरूप करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान्, चार हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये हुए एक ओर लक्ष्मी और दूसरी ओर पृथ्वी, अंगद हार, कुण्डल, कौस्तुभमणि माला और वत्स-चिन्ह धारण किये हुये, पीताम्बरधारी ऐसे विष्णु भगवान हैं। विष्णु सत्वगुण के अधिष्ठाता हैं। सत्वगुण का सम्बन्ध चैतन्य से है। चेतन प्रकाशमान होता ही है इसलिये विष्णु के शरीर में कोटि सूर्य की कान्ति है। भूषणों से अलंकृत होने से यह भाव है कि सारे जगत् का पालन करने वाले को वस्त्राभूषण की आवश्यकता होती है। विष्णु का वाहन गरुड़ है। विष्णु का सम्बन्ध आकाश तत्व से है और गरुड़ आकाश में गमन करने वाला है। विष्णु क्षीर सागर में अनन्त नाग पर शयन करते हैं—इससे यह भाव लक्षित होता है कि जीवों के अनन्त संस्कार रूपी नाग के भीतर विष्णु सत्ता रूप से विराजमान हैं। लक्ष्मी विष्णु के चरण दबा रही है—इससे यह सूचित होता है कि माया परमात्मा के आधीन है। परमात्मा माया के आधीन नहीं है। विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्मा उत्पन्न होने से यह सूचित होता है कि परमात्मा के संकल्प से पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश यह पाच तत्व रूपी कमल उत्पन्न होता है। कौस्तुभ मणि माला का भाव गीता के सातवें अध्याय के सातवें श्लोकानुसार है—

कहा --"तुम पूर्व दिशा की ओर जाओ और पहले जो भी मिले उसका सिर काट कर ले आओ।" गण को सर्व प्रथम हाथी ही मिला। हाथी का सिर काट कर गण ले आया। उस सिर को गणेश के धड पर रखा गया और गणेश जीवित हो गये। पार्वती ने चन्द्रमा को शाप दिया—"भाद्रपद चतुर्थी को जो कोई भी तेरा दर्शन करेगा उसको कलक लगेगा।" चतुर्थी का व्रत गणेश जी का है। स्त्रिया चन्द्रमा में स्थित गणेश को अर्घ देकर व्रत खोलती हैं। गणेश विघ्न विनाशक होने से सबसे पहले पूजनीय हैं।

देवी दुर्गा अग्नि की अधिष्ठात्री देवी है। देवी का स्वरूप सिंह पर सवार, मस्तक में चन्द्रमा, मरकत मणि की तरह हरा रंग, हाथों मे शख, चक्र, गदा आदि आयुध, पावों मे नूपुर और कानों मे कुण्डल। देवी के सिंहारूढ होने का भाव यह है कि सिंह महिष को मारता है। सत्वगुण वाली देवी रजोगुणी सिंह के द्वारा तमोगुणी महिषासुर को मारती है। हरा रंग शक्ति को बढाने वाला है। चारों हाथों से भक्तों को विद्या, धन, बुद्धि और बल प्रदान करती है, भूषणों से अलंकृत होने से यह भाव है कि भक्तों को ओज प्रदान करती है।

सूर्य वायु तत्व के अधिष्ठाता हैं। सूर्य का स्वरूप—सिर पर प्रकाश मान रत्न, केश सुवर्ण की तरह चमकीले, हाथों में कान्तिमान् कमल, स्वर्ण शरीर, सारे विश्व को अवकाश देने वाले और आकाश मे भ्रमण करने वाले सब को आनन्द दायक शिव और विष्णु को प्रसन्न करने वाले और विश्व के चक्षु—ऐसे सूर्य भगवान हैं।

सूर्य परमात्मा की परम ज्योति का स्थूल स्वरूप है। प्रात.काल सूर्य-दर्शन ईश्वर दर्शन के समान है। सूर्य नमस्कार

प्रिय है। सूर्य को नियमित रूप में नमस्कार करने से आखों की ज्योति बढ़ती है। सूर्य किरणों में स्थित सात रंग सूर्य रथ के सात अश्व स्वरूप हैं। हाथ में कमल मुक्ति का प्रकाशक है। सूर्य की उपासना ज्योति स्वरूप की उपासना है। हिरण्य गर्भ की उपासना है। इससे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

विष्णु आकाश तत्व के अधिष्ठाता हैं। विष्णु का स्वरूप करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान्, चार हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये हुए, एक ओर लक्ष्मी और दूसरी ओर पृथ्वी, अंगद हार, कुण्डल, कौस्तुभमणि माला और वत्स-चिन्ह धारण किये हुये, पीताम्बरधारी ऐसे विष्णु भगवान हैं। विष्णु सत्वगुण के अधिष्ठाता हैं। सत्वगुण का सम्बन्ध चैतन्य से है। चेतन प्रकाशमान होता ही है इसलिये विष्णु के शरीर में कोटि सूर्य की कान्ति है। भूषणों से अलंकृत होने से यह भाव है कि सारे जगत् का पालन करने वाले को वस्त्राभूषण की आवश्यकता होती है। विष्णु का वाहन गरुड़ है। विष्णु का सम्बन्ध आकाश तत्व से है और गरुड़ आकाश में गमन करने वाला है। विष्णु क्षीर सागर में अनन्त नाग पर शयन करते हैं—इससे यह भाव लक्षित होता है कि जीवों के अनन्त संस्कार रूपी नाग के भीतर विष्णु सत्ता रूप से विराजमान हैं। लक्ष्मी विष्णु के चरण दबा रही है—इससे यह सूचित होता है कि माया परमात्मा के आधीन है। परमात्मा माया के आधीन नहीं है। विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्मा उत्पन्न होने से यह सूचित होता है कि परमात्मा के संकल्प से पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश यह पांच तत्व रूपी कमल उत्पन्न होता है। कौस्तुभ मणि माला का भाव गीता के सातवें अध्याय के सातवें श्लोकानुसार है—

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणि गणा इव ॥

अर्थात्—हे अर्जुन, मुझसे परे और कुछ नहीं है। धागे में पिरोये हुये मणियों के समान यह सारा जगत् मुझ में गुंथा हुआ है।

इसमें ब्रह्म के साथ कूटस्थ चैतन्य का अभेद भाव अर्थात् आत्मा और परमात्मा में अभेद भाव बताया है। चार भुजाओं से विष्णु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पदार्थ देते हैं। ब्रह्मा जीव कोटि में है, वैदिक धर्मानुष्ठान करने वाला भी ब्रह्मा बन सक्ता है। ब्रह्मा रजोगुण के अधिष्ठाता हैं, इसलिये उनका रजोगुण का लाल वर्ण है, उनके चार मुख अन्तःकरण चातुष्टय अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के सूचक हैं। ब्रह्मा का वाहन हंस है। हंस हंस-क्षीर न्याय से ज्ञान का प्रतीक है। रजोगुण की क्रिया ज्ञान की सहायता से होती है। ब्रह्मा ज्ञान से सृष्टि रचना करते हैं। ब्रह्मा फल दाता नहीं हैं, इसलिये उनकी पूजा सर्वत्र नहीं होती।

जो परमात्मा चिद् भाव से विष्णु, सद्भाव से शिव, तेजे, सूर्य और शक्ति भाव से देवी होकर जगत् का कल्याण करता है उसको नमस्कार है।

धर्मोपदेश २६

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में सातवें अध्याय के अट्ठाइसवें श्लोक में कहा है—

येषां त्वंतगतंपापं जनानां पुण्य कर्मणाम् ।
ते द्वन्द मोह निर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़व्रता ॥

अर्थात्— जिन पुण्यात्माओं के पाप का अन्त हो गया है, वे द्वन्दों के मोह से छूट कर दृढ़व्रत होकर मेरी भक्ति करते हैं।

यह बताया जा चुका है कि इस श्लोक के चौथे पाद में 'माम्' शब्द से भगवान श्री कृष्ण परमात्मा के समाय, निर्माय, हिरण्यगर्भ और विराट् इन चार स्वरूपों और विराट से उत्पन्न पंचदेव विष्णु, शिव, गणेश, देवी और सूर्य-परमात्मा के इन पांच साकार स्वरूपों की ओर निर्देश कर रहे हैं। अब समझना यह है कि माम् शब्द से भगवान् श्री कृष्ण स्वयं अपनी ओर भी निर्देश कर रहे हैं। भगवान श्री कृष्ण ईश्वर के अवतार हैं। संसार के दूसरे मजहब अवतार वाद को नहीं मानते, परन्तु सनातन धर्म अवतार वाद को मानता है। अवतार वाद सनातनधर्म की विशेषता है। यद्यपि परमात्मा एक ही है और वह निर्गुण तथा निराकार है, तथापि विशिष्ट कारणों से परमात्मा अनेक सगुण तथा साकार रूपों में प्रकट होता है। अर्थात् अवतार धारण करता है। आज की कथा में अवतार वाद की विवेचना की जायगी। गोस्वामी जी ने रामायण में कहा है—

> यन्माया वश वर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवा सुराः ।
> यत्सत्वाद् मृषैव भाति सकलं रज्जौ यथा हेर्भ्रम ॥
> यत्पाद प्लव मेकमेव हि भवाम्भोदे स्ति तीर्षावताम् ।
> वन्देऽहं तमशेष कारण परं रामाख्य मीशं हरिम् ॥

अर्थात्—सर्व जगत जिसकी माया के आधीन है, जिसकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भांति असत् भी सत् प्रतीत हो रहा है, भवसागर से तरने वाले मुमुक्षुओं के लिये जिनके चरण कमल नौका रूप हैं, जो सर्व जगत का आदि कारण हैं,

उन भगवान श्री रामचन्द्र जी को मैं नमस्कार करता हूँ। निर्गुण तथा निराकार परमात्मा ही राम कृष्ण आदि रूपों में सगुण तथा साकार होते हैं। रामायण में कहा है—

जब जब होई धर्म की हानि। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

जीवों का उद्धार करने के लिये निराकार परमात्मा साकार रूप धारण करता है साकार रूप में भगवान की लीला होती है। इस लीला के दर्शन-श्रवण मनन से जीवों का उद्धार होता है। यह शका उपस्थित की जाती है कि परमात्मा तो सदा निराकार रहता है, तो फिर साकार कैसे हो सकता है? ईश्वर सदा निराकार ही रहेगा तो उससे हमारा हित नहीं हो सकता और वह सर्व शक्तिमान भी प्रमाणित नहीं होगा। परमात्मा में अवतार धारण करने की शक्ति न हो तो उसको सर्व शक्तिमान कैसे कहा जा सकता है? संसार के सभी मजहब जीव को निराकार मानते हैं। जब निराकार जीव साकार बन सकता है, तब निराकार परमात्मा साकार क्यों नहीं बन सकता? आकाश और अग्नि भी निराकार है परन्तु लकड़ी में अग्नि साकार रूप से प्रकट होती है। साकार अग्नि ही हमारे लिये उपकारक होती है। उससे हम रसोई बनाते हैं और अन्य कार्य करते हैं। निराकार रूप से अग्नि हमारे लिये उपकारक नहीं होती। परमात्मा भी साकार रूप से उपकारक होता है, निराकार अवस्था में नहीं, वशिष्ट ने राम से कहा—गौ के शरीर में मक्खन होता है, परन्तु उससे गौ के शरीर की पुष्टि नहीं होती। गौ से दूध निकाल कर और उससे मक्खन बना कर गौ को दिया जाय तो उससे पुष्टि होती है।

ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। हमारे शरीर में भी परमात्मा

है, परन्तु उसका ध्यान तथा उपासना न करें, तो वह हितकर नहीं होता। ध्यान और उपासना साकार की होती है।

यह शंका की जाती है कि परमात्मा अजन्मा है, अजन्मा जन्म कैसे ले सकता है? यजुर्वेद में कहा है—परमात्मा अपनी माया से गर्भ के अन्दर आते हैं। अजन्मा होते हुये भी वह जन्म लेते हैं। गीता में कहा है—

न जायते म्रियते वा कदा चिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्य माने शरीरे॥

अर्थात्—यह आत्मा न तो कभी जन्मता है और न मरता ही है, ऐसा भी नहीं है कि यह एक बार होकर फिर होने का नहीं। यह अजन्मा नित्य शाश्वत और पुरातन है, एवं शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता।

जब अजन्मा आत्मा जन्म लेता है, तो फिर अजन्मा परमात्मा क्यों नहीं जन्म ले सकता? फिर यह शंका की जाती है कि जीवात्मा तो कर्म-भुगतने के लिये जन्म लेता है, परमात्मा के कर्म नहीं हैं। जीवात्मा कर्माधीन होकर जन्म लेता है और परमात्मा दयाधीन होकर जन्म लेता है। जेलखाने में कैदी सजा भुगतने के लिये जाते हैं और रहते हैं। जेल का निरीक्षण करने के लिये राजा भी शासक की हैसियत से जेल में जाता है और किसी की सजा घटाता है और किसी कैदी की कोई उचित मांग पूरी करता है। जैसे राजा जेल में जाता है, वैसे परमात्मा दया भाव से संसार में साकार होकर आता है। माया में फंसे हुये जीवों का उद्धार करने के लिये परमात्मा दया भाव से अवतार धारण करते हैं।

एक शंका और। परमात्मा के अवतार धारण करने की आवश्यकता क्या? परमात्मा की बनाई हुई सभी बातों की

आवश्यकता को समझ जाने पर ही यह शंका हो सकती है। चार पढ़े-लिखे आदमी परमात्मा की गलतियां निकालने चले। कीकड़ में कांटे यह पहली गलती निकाली। फिर तरबूज के खेत में गये। नाजुक बेल में तरबूजे जैसा बड़ा फल यह दूसरी गलती निकाली। फिर चारों बड़ के वृक्ष के नीचे बैठ गये। बड़ जैसे बड़े वृक्ष में छोटे फल यह तीसरी गलती निकाली। उनके ख्याल से तरबूजे जैसा बड़ा फल बड़ जैसे बड़े वृक्ष में लगाना चाहिये था। गलतियां निकालने वाला बड़ के नीचे लेट गया। उसके नाक पर बड़ का फल गिर पड़ा तब उसको ख्याल आया कि तरबूजा गिरता तो खेल खतम हो जाता। अवतार धारण करने की आवश्यकता क्या—यह वास्तव में समझ के बाहर का प्रश्न है। सर्प क्यों बनाया? चेहरे पर दाढ़ी मूछ क्यों? ऐसे प्रश्नों के उत्तर जीवों को नहीं मिल सकते। सरल रीति से समझना चाहते हैं तो गीता में कहा है—

> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
> धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

अर्थात्—साधुओं की रक्षा के निमित्त, दुष्टों का नाश करने के लिये और धर्म की संस्थाना के लिये मैं युग-युग में अवतार धारण करता हूँ।

फिर यह प्रश्न होता है कि रक्षा और नाश तो परमात्मा संकल्प मात्र से कर सकते हैं, स्वयं आने की आवश्यकता क्या? अकबर ने बीरबल से पूछा—तुम्हारा ईश्वर संसार में क्यों आता है? बीरबल ने कहा—"फिर कभी इसका उत्तर दूंगा" बीरबल ने शाहजादे का एक मोम का पुतला बनाया। जब अकबर नौका में सैर करने के लिये बैठा तो बीरबल भी पुतले को लेकर नौका पर चढ़ गया और बोला—"शाहजादा सो गया

है, सैर करना चाहता था, इसलिये ले आया।" नौका जब मझधार में आई तो बीरबल ने पुतले को नदी में गिरा दिया। अकबर शहज़ादे को बचाने के लिये नदी मे कूद पड़ा—पुतला हाथ आया। बीरबल ने कहा—"ऐसे ही परमात्मा भक्तों की रक्षा के लिये संसार मे कूद पड़ता है।"

धर्मोपदेश २७ का सारांश

वेद में कहा है—परमात्मा एक ही है, जिसके वश में सम्पूर्ण जगत् है। वह सब भूतों मे स्थित है और बुद्धि का प्रकाशक है। धीर और ज्ञानी जब उसका साक्षात्कार करते हैं, तो सुख को प्राप्त होते हैं। वेद में यह भी कहा है-एक ही परमात्मा सब भूतों के अन्दर स्थित है। चन्द्रमा की तरह एक ही परमात्मा बहुत प्रकार से होता है। वह निराकार से साकार होता है। कुछ लोग अवतार का अर्थ—अवतरति इति अवतारः—अर्थात् जो उतरता है उसको अवतार कहते हैं, पर यह अर्थ गलत है। वृक्ष से बन्दर नीचे उतरता है, तो क्या बन्दर को अवतार कहेंगे? अवतार का सही अर्थ—'अवतरन्ति जना येन—अर्थात्—जिससे जन भवसागर से पार हो जाते हैं, उसको अवतार कहते हैं।

अवतार चार प्रकार के होते हैं—आवेश, प्रवेश, आविर्भाव और स्फूर्ति। आग पर बरतन में पानी रखने से पानी खौलने लगता है। पानी में अग्नि का आवेश होता है। इसी प्रकार परमात्मा का किसी शरीर मे आवेश होता जाता है। इसको आवेश अवतार कहते हैं। परशुराम आवेश अवतार के उदाहरण स्वरूप हैं। सहस्रार्जुन ने परशुराम के पिता जमदग्नि को मार दिया, इसलिये परशुराम ने सहस्रार्जुन को मार कर

इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश किया। इस कार्य के पश्चात आवेश समाप्त हो गया और परशुराम परशराम रह गये। प्रवेशावतार—अग्नि में लोहा रखने से अग्नि लोहे मे प्रवेश करती है और लोहा अग्नि जैसा ही बन जाता है। दुर्योधन की सभा में दु शासन द्रौपदी के चीर उतारने लगा। उस समय द्रौपदी ने लज्जा की रक्षा करने के लिये भगवान कृष्ण को पुकारा। द्रौपदी के चीर में भगवान का प्रवेश हुआ और द्रौपदी की लज्जा की रक्षा हुई। यह परमात्मा का प्रवेशावतार था। आविर्भावावतार—अरणियों को एक दूसरे पर रगडने से अग्नि प्रकट होता है। दियासलाई घिसने से भी अग्नि प्रकट होती है। लोहा और पत्थर के संघर्ष से भी अग्नि का आविर्भाव होता है। इसी प्रकार दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा के संघर्ष से परमात्मा का आविर्भावावतार होता है। त्रेता युग मे आसुरी सम्पदा वाले रावण और राक्षसों ने दैवी सम्पदा वाले ऋषि मुनियों को सताना प्रारम्भ किया। आसुरी सम्पदा और दैवी सम्पदा के संघर्ष से परमात्मा का राम के रूप मे आविर्भावावतार हुआ, जिन्होंने रावण और राक्षसों का संहार कर धर्म का राज्य स्थापित किया। स्फूर्ति अवतार—दो विरुद्ध दिशाओं की ओर बहने वाली वायु से बादल टकराते है और उनकी रगड से बिजली की स्फूर्ति होती है बिजली चमकती है। उसी प्रकार भक्त भावना और अभक्त भावना के संघर्ष मे भक्त भावना की रक्षा के लिये परमात्मा का स्फूर्ति अवतार होता है। परमात्मा का नृसिंह अवतार स्फूर्ति अवतार था।

धर्मोपदेश २८ का सारांश

जगत के उत्पादक, पालक और संहारक एक परमात्मा

ही हैं। वही परमात्मा दयावश सगुन तथा साकार रूप में अवतार धारण करते हैं। जल और उसकी तरंगों में कोई भेद नहीं होता। अवतारों की लीलाओं का गुण गान और उनके श्रवण मनन से मनुष्य भवसागर से पार हो जाते हैं, इसीलिये उनको अवतार कहा जाता है। परमात्मा व्यापक होने से सर्वत्र विद्यमान है। उसका कहीं भी अभाव नहीं है। इससे यह बात माननी पड़ती है कि परमात्मा का कहीं आना जाना नहीं हो सकता, परन्तु परमात्मा का अवतार होना असम्भव नहीं है। सर्व व्यापक होने से परमात्मा की शक्ति भी सर्वत्र होती है। इसीलिये परमात्मा का शरीर विशेष में प्रकट होना स्वाभाविक है। परमात्मा की शक्ति का विकास जड़-चेतन सृष्टि में हुआ है। अग्नि में जो जलाने की शक्ति है, वह परमात्मा की है। इस प्रकार पंच महाभूतों की विशिष्ट शक्तियां परमात्मा की हैं। सारी शक्तियों का विकास परमात्मा से ही होता है। वह अन्वय तथा व्यापक है। परमात्मा की शक्ति का विकास सब में है। उसी शक्ति का शरीर-विशेष से सम्बन्ध होता है। परमात्मा की सम्पूर्ण शक्ति का विकास जिस शरीर में होता है, उसको सोलह कला सम्पूर्ण अवतार कहते हैं।

जीव दो प्रकार के कर्म करता है—पुण्य और पाप। पुण्य कर्म से जीव में परमात्मा की कला शक्ति का विकास होता है। ईश्वरीय शक्ति के विकास को कला कहते हैं। सृष्टि दो प्रकार की है—जड़ और चेतन। वृक्षादि चेतन हैं। वृक्षों में परमात्मा की एक कला होती है। वृक्षों में केवल अन्नमयकोष होता है। इससे वृक्षों में घटने-बढ़ने की क्रिया होती है और वह नजर आती है। अट्ठारह लाख प्रकृति की वनस्पति हैं। वृक्षादि पुण्य से उत्तम शरीर में आते हैं, तो स्वेदज बनते हैं। पसीने से उत्पन्न होने वाले जीवों को स्वेदज कहते हैं; जूं,

मच्छर, खटमल आदि स्वेदज जीव हैं। स्वेदज जीवों में परमात्मा की दो कलाएं होती हैं। अर्थात् उनमें दो कोष होते हैं—अन्नमय कोष और प्राणमय कोष। इससे ये जीव जहां घटते-बढ़ते हैं वहां चलते-फिरते भी हैं। वृक्षादि चल फिर नहीं सकते। स्वेदज जीव पुण्य कर्म से अण्डज जीव बनते हैं अर्थात् अण्डों से उत्पन्न पक्षी होते हैं। पक्षियों के शरीर मे परमात्मा की तीन कलायें होती हैं, अर्थात् पक्षियों के शरीर अन्नमय कोष, प्राणमय कोष और मनोमय कोष ये तीन कोष होते हैं। पक्षी घटते-बढ़ते हैं, चलते फिरते हैं और उनमें मनोमय कोष के कारण जातीय प्रेम भी होता है। अण्डज जीव पुण्य कर्म से जरायुज अर्थात् गौ, भैंस, कुत्ता, शेर आदि पशु बनते हैं। पशुओं मे परमात्मा की चार कलायें होती हैं, पशुओं मे चार कोष होते हैं—अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष। विज्ञानमय कोष से पशुओं में बुद्धिमत्ता पाई जाती है। कुत्ते की स्वामी भक्ति को सब जानते हैं। हाथी भी बुद्धिमान प्राणी होता है। पशुयोनि से पुण्य कर्म के द्वारा मानव शरीर प्राप्त होता है। मनुष्य में परमात्मा की पांच कलायें होती हैं, अर्थात् मनुष्य मे पंच कोष होते हैं—अन्नमय कोष प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष मनुष्य की तरह और जीवों में आनन्द का विकास नहीं होता पांच कला तक साधारण मनुष्य होता है। अधिक पुण्य से विशेष व्यक्ति बनता है। गीता में कहा है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥

अर्थात्—जो जो विभूति युक्त, अर्थात् ऐश्वर्य युक्त, कान्ति युक्त और शक्ति युक्त वस्तु है, उस उसको तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुई जान।

६ कलाओं से युक्त पुरुष ईश्वर की विभूति होते हैं— आचार्य, राजा और लोकमान्य नेता ईश्वर की विभूति हैं, अधिक पुण्य से सात कला वाले ऋषि-मुनि होते हैं। आठ कला वाले देवता कोटि में मनु प्रजापति आदि होते हैं। एक कला से आठवीं कला तक जीव कोटि मानी जाती है। आठवीं कला से सोलहवीं कला तक परमात्मा के अवतार होते हैं। परशुराम नौ कला वाले अंशावतार थे। राम और कृष्ण ईश्वर के पूर्ण अवतार थे उनमें सोलह कलाओं का विकास था। व्यापक होने से ईश्वर की शक्ति भी व्यापक है। सूर्य का प्रकाश सर्वत्र है, पर उसकी उपलब्धि कम ज्यादा होती है। दीहीर की अपेक्षा निर्मल होने से प्रकाश अधिक होता है। जल से अधिक निर्मल होने से दर्पण में सूर्य—प्रकाश अधिक दिखाई देता है। आतिशी शीशे मे तो सूर्य की प्रकाश करने की और जलाने की भी शक्ति होती है। ईश्वर की व्यापक शक्ति का क्रमश विकास होता है विभूति वाले अशावतार और सोलह कला सम्पूर्ण अवतार—ये क्रमश एक दूसरे से अधिक हैं।

मीमासा शास्त्र में शास्त्रीय प्रमाण से पाँच प्रकार के अवतार माने गये हैं पूर्णावतार, अंशावतार, विशेषावतार, अविशेषावतार और नित्यावतार, राम और कृष्ण पूर्णावतार थे। राम में पहले बारह कलाएँ थीं, परशुराम की चार कलाओं का समावेश हो जाने से राम सोलह कला सम्पूर्ण हो गये। नृसिंह अंशावतार थे। गुरु आचार्य आदि ज्ञानियों में ज्ञान के प्रकाश को अविशेषावतार कहते हैं परमात्मा सब में व्यापक है। जो मनुष्य पुण्य कर्म से प्रेम करता है और दुष्कर्म से घृणा करता है, ऐसे पुण्यात्मा के हृदय में नित्यावतार होता है। अपने में नित्यावतार उपलब्ध करना मनुष्य के आधीन है।

धर्मोपदेश २६

भगवान कहते हैं—जिनका अन्त करण शुद्ध है, वे आत्म रूप से मेरा अनुसन्धान करते हैं और दूसरे माया विशिष्ट सर्व शक्तिमान तथा सर्व व्यापक परमात्मा का ध्यान करते हैं। माया विशिष्ट अर्थात् विष्णु, शिव आदि का ध्यान करते हैं। लीलावतार भी माया सहित होता है। निर्गुण तथा निराकार माया रहित परमात्मा के अनुसधान तथा परमात्मा के साकार रूपों की उपासना के लिये मन की शुद्धता की अनिवार्य आवश्यकता होती है। परमात्मा विभिन्न रूपों में साकार होते हैं अर्थात् अवतार धारण करते हैं। और अनेक लीलायें करते हैं। परमात्मा का सदा स्मरण करने से मनुष्य जन्म मरण से छूट जाता है और परमात्मा को भूल जाने से मनुष्य में भव बन्धन की प्रवृत्ति होती है। परमात्मा को भूल जाने का फल भव-बन्धन है और परमात्मा का स्मरण करने का फल भव-बन्धन से मुक्ति है। भागवत में शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं—भगवान अपनी लीला से अवतार धारण करते हैं। स्त्री का वेप धारण करने वाला पुरुप अभिनेता जिस प्रकार अपने पुरुप स्वरूप को नहीं भूलता, उसी प्रकार विभिन्न रूपों में अवतार धारण करने वाले परमात्मा अपने परम स्वरूप को नहीं भूलते। जीव जिस जिस योनि मे जन्मता है, उसी स्वरूप को अपना मानता है और आत्मा स्वरूप को भूल जाता है। परमात्मा विभिन्न रूपों मे अवतार धारण करते हैं गीता में भगवान ने कहा है—

> अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूताना मीश्वरोऽपि सन् ।
> प्रकृतिं स्वमधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥

अर्थात्—मैं अविनाशी स्वरूप अजन्मा होने पर भी तथा सब भूत प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को अधीन करके योगमाया से प्रकट होता हू।

ध्यान रहे, परमात्मा मायाधीन होकर नहीं, बल्कि माया को अपने आधीन करके अवतार धारण करते हैं। और गीता में यह भी कहा है—

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
> अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥

अर्थात्—हे अर्जुन, जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् अवतार धारण करता हू।

भागवत में, परमात्मा के २४ अवतारों का वर्णन है। उसमें दस अवतार मुख्य हैं। पुराण वेदानुसार हैं। वेदार्थ की ही पुराणोंमें स्थूल रूप से विस्तृत व्याख्या है। वेदानुसार होने से पुराण भी प्रमाण-स्वरूप हैं।

हिरण्याक्ष पृथ्वी को पाताल में ले गया था और वाराह अवतार ने हिरण्याक्ष को मार कर पृथ्वी को छुडाया यह वर्णन वेद में है। शका होती है कि पृथ्वी को पाताल में कैसे ले गया? बात यह है कि हिरण्याक्ष पृथ्वी के अभिमानी देवता को ले गया। वराह अवतार उसको मार कर पृथ्वी के देवता को वापस लाये थे। नृसिंह अवतार भी वेद प्रमाणित हैं। ऋग्वेद में कहा है—नृसिंह ने, जो पृथ्वीचारी और बड़ा भयकर है, हिरण्य कश्यप को मारा। प्रह्लाद से हिरण्य कश्यपु ने पूछा—'तेरा ईश्वर कहा है?' प्रह्लाद ने कहा 'सर्वत्र है' हिरण्य कश्यपु ने पूछा तो इस खम्भे में क्यों नहीं दिखाई देता। प्रह्लाद ने कहा 'मैं देख रहा हूँ' यदि उस समय परमात्मा निराकार ही बना रहता, तो

प्रह्लाद झूठा प्रमाणित होता। प्रह्लाद के वचन को सत्य प्रमाणित करने के लिये ही नृसिंह अवतार हुआ। परशुराम का अवतार भी वेद प्रमाणित है। सामवेद में कहा है—'भृगुवंश मे उत्पन्न होने वाले राम ने अर्थात् परशुराम ने अत्याचारी और ब्राह्मण द्वेषी क्षत्रियों का नाश किया, सहस्रार्जुन ने परशुराम के पिता जमदग्नि को मार दिया था। इसलिये परशुराम ने सहस्रार्जुन को मार कर इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश किया था। रामावतार भी वेद प्रमाणिक है। सामवेद में कहा है—श्रेष्ठ राम सीता के साथ बन में गये। जार रावण अपनी बहिन सीता को हरण करेगा। इसमें सीता को रावण की बहिन माना गया है—क्यों? रावण ने ऋषियों से कर लेना आरम्भ किया। ऋषियों ने क्रोधित होकर अपने खून से भरा हुआ घड़ा रावण को दिया। रावण उस घड़े को देख कर भयभीत हो गया और उसने उस घड़े को राजा जनक के राज्य में जमीन में दबा दिया। घड़े में मायी शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। राजा जनक ने यज्ञ के निमित्त जमीन में हल चलाया, तो घड़ा निकल आया, जनक ने देखा, तो घड़े में एक सुन्दर कन्या थी। यही सीता थी। रावण भी ऋषियों के खून से उत्पन्न हुआ था। कृष्णावतार भी वेद प्रमाणित है। सामवेद में कृष्णावतार का उल्लेख है। देवकी पुत्र कृष्ण के लिये अंगिरस कहते हैं—कि कृष्णावतार का फल पापी का नाश और धर्म का राज्य है। वामन अवतार भी वेद से प्रमाणित है वामन अवतार ने राजा बलि से तीन पग भूमि की मांग की। एक पद में पृथ्वी को व्याप्त किया, दूसरे पद में स्वर्गादिक लोक और तीसरा चरण खाली ही रहा। बलि ने कहा—'अब मेरा शरीर ही शेष है।' वामन ने बलि के शरीर पर पैर रख कर उसको पाताल में भेज दिया। बलि इन्द्र बन कर स्वर्ग से देवताओं को निकाल देना चाहता था। वामन ने कहा—तुम दैत्य शरीर से

इन्द्र नहीं बन सकते।' देवता और दानव मंदराचल को मथनी और वासुकी को रस्सी बना कर समुद्र मंथन करने लगे, तो मंदराचल नीचे ही नीचे धसने लगा। कूर्म अवतार ने मंदराचल को अपने पीठ पर लेकर नीचे जाने से रोक लिया।

वैवस्वत नदी में तर्पण कर रहे थे। अंजली में मछली आई। वैवस्वत मछली को पानी में छोड़ने लगे तो मछली ने कहा—'नदी में छोड़ेंगे तो बड़ी मछलियां मुझे खा जायेंगी।' वैवस्वत ने मछली को कमण्डल में रख लिया और समुद्र में छोड़ दिया। मत्स्या वतार ने हयग्रीव को जो वेदों को चुरा कर समुद्र में जा छिपा था, मार कर वेदों की रक्षा की।

बुद्ध भी परमात्मा के अवतार थे। वैदिक धर्म के नाम पर कर्म काण्डात्मक यज्ञों में पशुबलि और नर बलि का बोल-बाला हो गया था। बुद्ध ने हिंसा को हटाने के लिये अहिंसा का प्रचार किया। उनके नाम पर बौद्ध धर्म चला। यह शंका होती है कि बुद्ध जब ईश्वर के अवतार थे, तो उन्होंने वैदिक धर्म का प्रचार क्यों नहीं किया ? उस समय ईश्वर के नाम पर ही हिंसा बढ़ गई थी, इसलिये बुद्ध ने ईश्वर का भी निषेध किया। जहर प्राणघातक होता है, परन्तु दवा के साथ देने से जहर प्राण रक्षक बन जाता है। हिंसा की बाढ़ समाप्त हो जाने पर श्री शंकराचार्य ने बौद्ध मत का खण्डन कर फिर वैदिक धर्म का प्रचार किया।

कलकी अवतार होने में बहुत देर है। कलियुग की अवधि चार लाख बत्तीस हजार वर्ष की है चार लाख तो गिनती में नहीं हैं। रहे बत्तीस हजार इनमें लगभग पाँच हजार वर्ष बीत चुके हैं। कलकी अवतार कलियुग के अन्त में होगा। अभी तो थोड़ा-बहुत धर्म हो रहा है; स्त्रियों में सतीत्व की भावना है। पाकिस्तान

में हिन्दू स्त्रियां सतीत्व की रक्षा के लिए कुए में छलांगें लगा कर डूब गईं और कई आग में कूद कर जल मरी। जब पाप बढ़ जायगा, कल्की अवतार घोड़े पर सवार होकर और हाथ में तलवार लेकर दुष्टों का नाश करेंगे। फिर शीघ्र ही सतयुग प्रारम्भ होगा।

धर्मोपदेश ४६

परमात्मा अपनी दिव्य लीला शक्ति से अवतार धारण करते हैं। इसलिये अवतार को अपने मूल निराकार तथा निर्गुण स्वरूप का ज्ञान होता है। जीव मलीन माया से होता है, इस लिये वह कर्म बन्धन से आबद्ध होकर अपने स्वरूप को भूल जाता है। भगवान स्वयं ही जीव रूप बन कर बहुरूपा बन जाते हैं। मनुष्य और देवता सब में वही है। गीता में कहा है—

अहमात्मात्मा गुडाकेश सर्व भूताशयस्थितः ।
अहमा दिश्च मध्यं च भूताना मन्त एव च ॥

अर्थ—"हे अर्जुन! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सब का आत्मा हूँ। तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूं।"

परमात्मा शरीर को बना कर आप ही जीव रूप से उसमें प्रवेश कर नाना प्रकार से हो जाता है। परमात्मा अद्वय तथा आनन्द स्वरूप है। अद्वय तथा आनन्द स्वरूप भगवान ही कृष्ण हैं। साक्षात् परब्रह्म भगवान कृष्ण ने नाना प्रकार की लीलायें की हैं। कई लोग भगवान की उन पुण्य लीलाओं पर दोषारोपण करते हैं। उन दोषों की निवृत्ति के लिये ही हम कृष्ण लीला की विवेचना कर रहे हैं। रासलीला का रहस्य क्या? आज उसकी विवेचना की जायगी।

कृष्ण काले क्यों थे ? पर स्त्री के साथ रासलीला क्यों की ? गोपियों का भगवान से कैसा प्रेम था ? गोपिया कौन थीं ? इन प्रश्नों का उत्तर आज की कथा मे दिया जायगा।

भगवान कृष्ण सोलह कला सम्पूर्ण अवतार थे। वह साक्षात परब्रह्म तथा सर्व शक्तिमान थे। परमात्म शक्ति जड में जड रूप से तथा चेतन में चेतन रूप से होता है। वृक्षा में परमात्मा की एक कला होती है। स्वेदज जीवों मे दो कलायें होती हैं। पक्षियों मे तीन कलायें होती हैं। पशुओं में चार कलाएँ और मनुष्यों में पाँच कलाएँ होती हैं। पाँच कला तक साधारण मनुष्य होता है। छः कला वाले पुरुष ईश्वर की विभूति होते हैं। जैसे आचार्य, राजा और नेता। सात कला वाले ऋषि मुनि होते हैं। आठ कला वाले देवता कोटि मे मनु प्रजापति आदि बनते हैं। आठवीं कला से सालवीं कला तक परमात्मा के अवतार होते हैं। सोलह कला सम्पूर्ण अवतार में सम्पूर्ण शक्ति होती है पूर्णावतार का लक्षण क्या ? वेदों में परमात्म स्वरूप को सच्चिदानन्द स्वरूप माना गया है। सत्यानन्द ब्रह्म। सत् शक्ति, चित्-शक्ति और आनन्द शक्ति यह तीनों शक्तिया पूर्णावतार मे पूर्णतया होती हैं। वेद में ईश्वर प्राप्ति के तीन साधन माने गये हैं। कर्म उपासना और ज्ञान। सत् का कर्म से, चित्त का ज्ञान से और आनन्द का उपासना से सम्बन्ध होता है। कृष्ण चरित्र में कर्म (सत्) का पूर्ण आदर्श महाभारत के युद्ध मे दिखाई देता है। ज्ञान (चित्) का पूर्ण आदर्श गीता के ज्ञानोपदेश में विद्यमान है। और उपासना (आनन्द) शक्ति का पूर्ण विकास रास लीला में हुआ है। पूर्णावतार होने के नाते भगवान को रास लीला करनी पडी। कर्म का आदर्श महाभारत मे, ज्ञान का आदर्श गीता में और उपासना का आदर्श भागवत में पाया जाता है।

एक समय व्यास एकान्त में बैठे हुए थे। उनका चित्त खिन्न था। इतने में नारद आये। व्यास ने नारद से कहा—"मेरा चित्त उदास रहता है, चित्त में शान्ति नहीं है। मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि मेरा चित्त खिन्न क्यों रहता है?" नारद ने कहा—"आपने अब तक क्या किया?" व्यास बोले—"महाभारत लिखा, पुराण लिखे, और ब्रह्मसूत्र लिखे।" नारद ने कहा—"अब आप कोई भक्ति ग्रन्थ लिखें। भक्ति ग्रन्थ लिखने से आपके चित्त को शान्ति मिलेगी। व्यास ने भक्ति प्रधान भागवत ग्रन्थ लिखा। भागवत के दशम स्कंध में कृष्ण लीलाओं का वर्णन है। भागवत का आधा भाग दशम स्कन्ध है। रास लीला भगवान कृष्ण के पूर्णावतार की सूचक है रास लीला में आनन्दातिशय का प्राकट्य होता है। आधि भौतिक आधि दैविक और आध्यात्मिक शक्ति की पूर्णता से पूर्णावतार होता है, वह सर्वाङ्ग सुन्दर तथा मनोहर होता है। उसमें शारीरिक सौन्दर्य तथा शक्ति का विकास होता है। उसमें कोई न्यूनता नहीं होती। भगवान कृष्ण का सौन्दर्य अतुलनीय था, जिसको देख कर ज्ञानी मुनियों के मन भी मोहित हो जाते थे। भगवान कृष्ण में आधि दैविक शक्ति की प्रधानता थी। बचपन में पूतना को मारना और गोवर्धन पहाड को उठाना उनकी दैविक पूर्णता के परिचायक हैं। और भगवान में आध्यात्मिक पूर्णता भी थी। आध्यात्मिक पूर्णता से ही भगवान ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया है। जिस प्रकार रास लीला भगवान के पूर्णावतार की सूचक है, उसी प्रकार उनका काला रंग भी उनकी पूर्णता का परिचायक है। यदि वह काले न होते तो यह पूर्ण न होते।

निराकार परमात्मा का साकार [illegible] माया से हो[illegible] है। जैसे ठण्डी से बर्फ बन जाता है, [illegible] से सा[illegible] अवतार होता है। गीता में कहा है—

सम्भवाम्यात्ममायया—मैं अपनी माया से प्रकट होता हूँ। भागवत में सच्चिदानन्द की पूर्णता थी। केवल बाहर का श्याम वर्ण माया से देखा जाता था जीव के स्वरूप को माया ने आवृत कर लिया है। अवतार के स्वरूप को माया आवृत नहीं कर सकती। प्रकृति के सात रंग माया से होते हैं। सारे रंग सफेद पर चढ़ते हैं। प्रकृति के सब रंगों को प्रकट करने वाला सफेद रंग है, और प्रकृति के सब रंगों को छिपाने वाला काला रंग है। जिससे प्रकृति छिपी हुई है, दबी हुई है वह श्याम वर्ण है। माया का उनके स्वरूप पर कोई असर नहीं है। यह सूचित करने के लिये ही कृष्ण का काला रंग है। सब रंगों का विकास सफेद पर होता है। राधा का सफेद रंग था। योग चार प्रकार के हैं—लय योग, मन्त्र योग, हठ योग और ज्ञान योग। लय योग में कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है, तो पुरुष प्रकृति के प्रतीक स्वरूप एक बिन्दु के दर्शन होते हैं। वह बिन्दु अन्दर सफेद और बाहर काला होता है, वह प्रकृति पुरुष रूप माना गया है। बिन्दु के भीतर परमात्मा शक्ति और बाहर माया शक्ति होती है। लय योग के अनुसार भी भगवान का काला रंग उचित है। जहाँ पर श्यामता होती है। आकाश श्याम है, इसलिये वह अनन्त अपार तथा अथाह है, समुद्र श्याम होता है, वह भी अथाह होता है। श्याम वर्ण गम्भीरता का सूचक है।

गोपिकायें कौन थी ? वे साधारण स्त्रियां न थीं। भगवान राम की लीला को पूर्ण करने के लिये देवता वानर बने थे और लक्ष्मी सीता के रूप में प्रकट हुई थी। भगवान कृष्ण की लीला को पूर्ण करने के लिये श्रुतियां, ऋचायें, देव, देवांगनायें और ऋषि मुनि गोपिकायें बन गये थे, माया राधा के रूप में प्रकट हुई थीं। इसलिये राधेश्याम कहा जाता है, दशम स्कंध में जहां आकाश वाणी सुनाते हुये कहते हैं—"वासुदेव के घर

साक्षात् परब्रह्म प्रकट होंगे। उनके प्रेम के लिये देवताओं की स्त्रियां गोपिकाएँ बनेंगी। विष्णु की माया भगवती अपने अंश से राधा के रूप में प्रकट होगी।" भागवत में राधा का नाम नहीं है, उसका कारण फिर कभी बताया जायेगा। देवताओं की स्त्रियां, ऋषि मुनि और उनकी स्त्रियां, ऋचायें—ये गोपियां बनीं। भगवान राम को देख कर मुनि बोले—"हम आपका आलिंगन करना चाहते हैं।" राम बोले—"मेरा यह मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार है। युगान्तर में कृष्ण अवतार होगा। उसको आप आलिंगन कर सकेंगे।" वे मुनि गोपियां बने। पूर्णावतार के नाते भगवान कृष्ण ने सत् भाव से कर्म लीला, चित् भाव से ज्ञान लीला और आनन्द भाव से रास लीला की।

श्री स्त्री समाज, दिल्ली

॥ ॐ ॥

श्री गणेशाय नम

ी स्त्री समाज और उसके आदर्श

श्री स्त्री समाज देहली की स्थापना का मूलोद्देश्य सत्य ा प्रदर्शित करना है। भारतीय हिन्दू नारी धर्म, आदर्श, संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा करना और भारतीय नारी धर्म के विरोधी कानून आदि का विरोध कर वैदिक धर्म, आदर्श, संस्कृत और सभ्यता की रक्षा के लिये प्रयत्नशील रहना है, वरणाश्रम व्यवस्था तथा हिन्दू नारी धर्म का महत्व क्या है। इस बात को स्वयं तत्व से समझना और दूसरों को समझाना है।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये श्री स्त्री समाज अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार प्रयत्नशील रही है। अभी तक इस दिशा में जो पग आगे बढ़ाये गये हैं वह इस प्रकार हैं—

प्रत्येक मगलवार को २५ जवाहर नगर में साप्ताहिक सत्संग लगता है। जिसमे श्रीमती मानकौर मेहरा (सभानेत्री) स्वय रामायण का पाठ करती हैं। श्रीमती भागवती देवी (सूर) का ज्ञानोपदेश होता है। श्रीमती सावित्री देवी उपनिषद आदि ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद पढ कर सुना देती है। जिसकी श्रीमती भागवन्ती देवी (सूर) व्याख्या करती हैं। अनेक उपनिषद तथा योग वाशिष्ट के प्रथम खण्ड के उपदेश हो चुके। इस समय योग वाशिष्ट के दूसरे खण्ड की कथा चालू है।

अब तक तीन बार श्री १०८ स्वामी श्री नृसिंह गिरी जी महाराज महा मण्डलेश्वर के, तीन बार स्वामी श्री आत्मानन्द

के और तीन ही बार स्वामी श्री विशुद्धानन्द जी के उपदेश हो चुके हैं। एक बार श्रीमती मैत्रेयी देवी का उपदेश हुआ।

इसके अतिरिक्त जब-जब हिन्दू कोड-बिल संसद में प्रस्तुत होने को हुआ, तब-तब विराट सभा द्वारा प्रस्ताव पास कर उसका घोर विरोध प्रदर्शित किया गया। गो वध बन्दी प्रस्ताव पास किया गया। रेडियो तथा सिनेमा में अश्लील चित्र तथा ऐसे ही गीतों का विरोध किया गया। पास हुये प्रस्तावों की सूचना तार द्वारा राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, तथा सम्बन्धित मन्त्रियों को दी गयी तथा समाचार पत्रों में प्रकाशित करवा दी गयी।

बिहार के अकाल पीड़ितों के लिये १० मन ३१ सेर अनाज एकत्रित कर तत्कालीन खाद्य मन्त्री श्री क० मा० मुन्शी को उनकी कोठी पर पहुच कर भेंट किया गया।

प्रतिमास एक बार मासिक सभा और एक बार का० का० समिति की बैठक लगती रही। जिसमे तत्कालीन परिस्थिति तथा धार्मिक स्थिति पर विचार किया जाता है और धर्म के गूढ़ तत्व को समझने और समझाने की चेष्टा की जाती है। इसी उद्देश्य से 'श्री स्त्री समाज' के सन्मुख दो दो करके अब तक कुल ६ प्रश्न प्रस्तुत किये जा चुके हैं, जो इस प्रकार है—

६–प्रश्न

प्रश्न—प्रथम बार १–मनुष्य जीवन में धर्म पालन आवश्य क्यों माना गया है ? २–धर्म क्या है ?

दूसरी बार १–सुख क्या है ? २–सुखी कौन है ?

तीसरी बार १–क्या स्त्री पुरुष समान हैं ? २–शान्ति का साधन और अशान्ति का कारण क्या है ?

'श्री स्त्री समाज' की सदस्याओं ने तथा अन्य अनेक बहिनों ने इन प्रश्नों के उत्तर देने का उत्साह प्रदर्शित किया, किन्तु कोई प्रमाणिक सामग्री हाथ न लगी। इसलिये इस लेख में उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा की जायगी।

यद्यपि 'श्री स्त्री समाज' की स्थापना का मूल उद्देश्य सत्य के आधार पर भारतीय नारी धर्म के महत्व को समझना और उसमें प्रगति करना है, तथापि केवल नारी-धर्म का महत्व उस समय तक समझ में आना कठिन है, जब तक सत्य वैदिक सनातन धर्म के पूर्ण स्वरूप का चित्र सामने न हो। इसी लिये नारी-धर्म के स्थान पर उपर्युक्त प्रश्न प्रस्तुत करने की आवश्यकता पड़ी। इसमें आगे इन्हीं प्रश्नों का (उत्तर के रूप में) खुलासा करने की चेष्टा की जायगी।

प्रश्न १

प्रश्न १—मनुष्य जीवन में धर्म पालन आवश्यक क्यों माना गया है?

उत्तर—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं, अर्थ और काम (भोग्य और भोग) के वशीभूत प्राणी मात्र हैं। मनुष्य में तथा अन्य प्राणी मात्र में निम्नलिखित चार गुण समान माने गये हैं, धर्म ग्रन्थों में लिखा है—

आहार निद्रा भय मैथुनं च, समान्य में तत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

अर्थात्—भूख लगने पर चाहे जिस प्रकार और चाहे जहां से भोजन प्राप्त करना, थकने पर आराम करना, भय का कारण दीख पड़े तो उससे अपनी रक्षा करना और काम की तृप्ति के लिये स्त्री संग करना—ये चार बातें मनुष्यों में और पशुओं में

समान हैं। परन्तु मनुष्य में ईश्वर ने विवेक बुद्धि दी है, उसके द्वारा वह धर्माधर्म के विचार द्वारा विवेक करके सद् व्यवहार कर सकता है, परन्तु उसी बुद्धि का विपरीत उपयोग करके केवल भोग विलास की प्राप्ति में ही जीवन बिताने वाले मनुष्य पशु के समान हैं।

तात्पर्य यह कि आहार, निद्रा, भय और मैथुन—ये प्राकृतिक नियम हैं। प्रत्येक प्राणी मात्र मरण पर्यन्त इन्हीं विषयों में रत रहता है। मनुष्य की स्थिति भी अन्य प्राणियों के समान है। प्रकृति मनुष्य को भी उसी ओर आकर्षित करती है। जब तक मानव प्रकृति के अधीन है तब तक मनुष्य में और अन्य प्राणियों, पशु पक्षियों में केवल आकार भेद के अतिरिक्त कोई भेद नहीं माना जा सकता।

मनुष्य में धर्म की विशेषता है, धर्म के द्वारा मनुष्य प्रकृति का भी उल्लंघन कर जाता है। धर्माचरण के द्वारा मनुष्य पाशविक स्थिति से न केवल ऊंचा उठता है, बल्कि संसार के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नत—अवस्था को प्राप्त करता हुआ साधनाओं के बल पर मोक्ष मार्ग पर अग्रसर होता रहता है। श्री तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है—

साधन धाम मोक्ष का द्वारा, पाइन जे परलोक सुधारा।

मनुष्य योनि को मोक्ष का द्वार माना गया है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुये अन्त में प्राणी को मनुष्य-योनि मिलती है। यहां तक प्राणी प्रकृति के सहारे चलता है। प्रकृति जीव को क्रम वार एक के बाद दूसरी, तीसरी, चौथी योनियों में भ्रमण कराती हुई मनुष्य योनि तक ले आती है। यहां तक पहुँचने में जीवात्मा को स्वतः कोई पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता। मनुष्य योनि में लाकर वह आगे बढ़ने के लिये सहारा

देना छोड़ देती है। कारण कि तिरासी लाख निन्यानवें हजार नौ सौ निन्यानवें योनियां भोग योनियां हैं। केवल मनुष्य योनि कर्म योनि है। अभी तक जिस प्राणी के लिये केवल एक मार्ग— भोग मार्ग था। अब उसके आगे भोग और मोक्ष—दो मार्ग होते हैं। मानव अपना मार्ग चुनने में स्वतन्त्र होता है। वह भोग मार्ग में प्रवेश कर पुन चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर सकता है। अथवा मोक्ष मार्ग (धर्म के मार्ग) पर चल कर मुक्त हो आवागमन के चक्र से छुटकारा भी पा सकता है। परन्तु प्रकृति नहीं चाहती, कि प्राणी उसके फन्दे से निकल जाय। इसलिए वह प्राणी को अपने माया जाल (भ्रम जाल) में उलझाये रखना चाहती है अभी तक प्राणी—आहार, निद्रा, भय और मैथुन इन चारों के वशीभूत रहता आया है। मनुष्य योनि मे, प्रवेश करने के उपरान्त भी यही प्राकृतिक नियम (विकार) इसे अपने मे उलझाये रखना चाहते हैं। जब तक मनुष्य इन विकारों (प्राकृतिक नियमों) के वशी भूत रहता है। तब तक मनुष्य में और इन प्राणियों में कोई भेद नहीं रहता। इस स्थिति में मनुष्य किसी भी क्षेत्र मे अपना कोई विकास नहीं कर सकता। आज भी ऐसे टापू अथवा महाद्वीप सुनने में आते हैं। जहा जंगली मनुष्य पाये जाते हैं। जो आदि काल से अब तक उसी स्थिति में जंगली जानवरों के समान खूखार बने हुए हैं।

लौकिक और परलौकिक उन्नति—धर्म के द्वारा मनुष्य इन प्राकृतिक विकारों पर नियन्त्रण लगा कर इस पाशविक स्थिति से ऊपर उठ जाता है। वह आत्मिक, मानसिक, शारीरिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति कर न केवल पशु-वृत्ति से छुटकारा पाकर समस्त प्राणियों से ऊचा उठ जाता है बल्कि सत्कर्म और धर्म पर चल कर ऋषि, मुनि और देवता तक बन जाता है। नरपति, भूपति और स्वर्ग का स्वामी बनने में समर्थ होता है। साथ ही

पुरुषार्थ के द्वारा माया के सब बन्धनों को तोड़ कर जीवन मुक्त हो सकता है। निष्काम कर्म आदि धर्म के मार्गों पर चलता हुआ धीरे-धीरे चित्त शुद्ध होने पर निवृत्ति की ओर अग्रसर होता हुआ मुक्ति लाभ कर सकता है। इसलिए मनुष्य जीवन में धर्म पालन आवश्यक माना गया है।

लौकिक का कारण धर्म है (सांसारिक) उन्नति भी धर्म के बिना सम्भव नहीं। यथार्थ में धर्म ही लोक उन्नति का प्रधान साधन है। तप, दान, यज्ञ आदि शुभ कर्म द्वारा मनुष्य प्रथम लोक में यश, बल और तेज प्राप्त करता है, जिसके फल स्वरूप पर लोक (स्वर्ग आदि) तो स्वत. प्राप्त हो जाते हैं।

धर्म के जितने भी साधन हैं, सब लोकोन्नति का ही मार्ग प्रशस्त करते हैं राम राज्य को धर्म का राज्य माना गया है, जिसके लिये तुलसी कृत रामायण में लिखा है—दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। राम राज्य नहीं काहुहि व्यापा।

धर्म के द्वारा लोक में उन्नति अवस्था को प्राप्त होता हुआ भी मानव निष्काम भाव रहने से जीवन मुक्त हो सकता है। सकाम कर्म भी निष्फल नहीं जाता। सकाम कर्म भी मनुष्य को लोक में इच्छित फल और स्वर्ग सुख दोनों प्रदान करता है। बुद्धि का विकास—धर्म से मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है और चित् शुद्ध होता है। आज भांति-भांति के वैज्ञानिक चमत्कारों का कारण बुद्धि का विकास ही तो है, यद्यपि आज मनुष्य की बुद्धि अन्धकार में पड़ गई है, कर्म-अकर्म, उचित-अनुचित का ज्ञान धर्मयुक्त बुद्धि से ही होता है। धर्म से मनुष्य में नैतिकता आती है। मानव दूरदर्शी, विवेक शील और चरित्र-वान बनता है। धन, बल, आयु, यश और तेज बढ़ता है। मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति धर्म के

सहारे सम्भव है। समाज को व्यवस्थित रखने के लिये भी धर्म युक्त कर्म की आवश्यकता है। संसार के प्रत्येक क्षेत्र में मानव सभ्यता का विकास धर्म के सहारे सम्भव हुआ। जिस २ देश ने जब २ धर्म का सहारा लिया (उस धर्म का स्वरूप चाहे जो रहा हो) वह धीरे २ ऊंचा उठा और कुछ शताब्दियों में उन्नति की चरम सीमा को पहुँच गया, (आज योरोप तथा अमेरिका भी धर्म के सहारे ही इतने ऊंचे उठे हैं, रशिया भी (कानून के रूप में ही सही) धार्मिक नियमों से अभी विमुख नहीं हुआ) चोटी पर पहुंच कर काम क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, अहंकार आदि दुर्गुणों के आते ही जब धर्म का पल्ला छूट जाता है मानव अपनी बुद्धि और बल के घमण्ड में जब धार्मिक नियमों को तुच्छ समझकर ठुकराने लगता है, तभी से उसका पतन प्रारम्भ हो जाता है, और जिस वेग से वह ऊपर उठता है, उससे सौ गुने वेग से नीचे गिरता है। गिरने पर इतना नीचे चला जाता है कि फिर शताब्दियों क्या सहस्त्राब्दियों तक भी उठने की उसमें सामर्थ्य नहीं रहती, वह धूल में मिल जाता है। सभ्यता का कोई चिन्ह उसके पास शेष नहीं रह जाता। ये लोग कुछ पीढ़ियों बाद जंगली अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। मिश्र, रोम आदि देशों की प्राचीन सभ्यता (विद्या और कला में) किसी समय चरम सीमा को प्राप्त कर चुकी थी। मिश्र के विशाल गुम्बज (स्तूप या पिरामिड) इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, किन्तु आज उस सभ्यता का उनके पास कोई चिन्ह शेष नहीं है।

संसार में आदि काल से ही इस प्रकार के उतार चढ़ाव का चक्र चलता रहा है। भारत भी इसमें अछूता नहीं बचा, भारत भी उठता और गिरता रहा है। किन्तु यहां विशेषता यह रही है कि गिरने पर भी आज तक कभी भारत इतना नीचा नहीं हुआ जो धूल में मिला हो, गिरने पर भी भारत में पुनः

खड़े होने की सामर्थ रही है। यहां से प्रकाश पाकर ही सब देश उठते आये हैं। भारत जिस समय उठता है उस समय संसार की कोई शक्ति इसका सामना नहीं कर सकती।

परमामुखापेत्ती भारत

किन्तु दु ख का विषय है कि आज भारतीय परमुखापेक्षी बन गये हैं और भारत मे आज धर्म लुप्त प्राय होचुका है। जो कुछ प्रदर्शन दिखाई देता है वह बाहरी है। वह उस भट्टी के समान है जिसकी अग्नि बुझ चुकी है, केवल गरमी शेष है। जो शनैः २ कम होती जा रही है। यदि यही रफ्तार जारी रही तो वह दिन दूर नहीं जब भारतीय पदार्थ विद्या और कला की भांति आध्यात्मिक विद्या और तत्व ज्ञान (जो भारतीयों का जन्म-जात अधिकार है) के लिये भी पराया मुह ताकने को लाचार होंगे।

तात्पर्य यह है कि संसार में सुख, शांति, व्यवस्था और मानवता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये मानव जीवन मे धर्म पालन आवश्यक माना गया है।

धर्म और ईश्वर एक है। धर्म को न मानने वाला ईश्वर को नहीं मानता। पुनर्जन्म को नहीं मानता। कर्म-फल भोग को नहीं मानता, पाप पुण्य को नहीं मानता और स्वर्ग नरक को नहीं मानता। इसलिये पाप कर्म करने में उसे कोई संकोच नहीं होता। वह मनमानी करने के लिये अपने आपको स्वतन्त्र मानने लगता है। हत्या, बलात्कार, चोरी, डाकेजनी किसी भी प्रकार का दुराचार और अत्याचार करते समय उनके मन में कर्म फल भोग आदि का कोई खटका नहीं रह जाता। रहा कानून का भय, उससे बच निकलने के अनेक मार्ग हैं। धर्म रहित व्यक्ति के हृदय मे दया-मया का कोई स्थान सुरक्षित नहीं रह पाता। वह क्रूर कठोर-हृदय हो जाता है और अपने स्वार्थ के सन्मुख बुराई-भलाई की कोई चिन्ता नहीं करता।

ईश्वर और धर्म को मानने वाले में—श्रतः करण की शुद्धि, ज्ञान और योग में निष्ठा, दान दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग और शांतिः इत्यादि सद्गुणों का विकास होता है : और ईश्वर और धर्म को न मानने वाले में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्रोह, अहंकार, क्रूरता, कठोरता, हृदय हीनता हिंसा, असत्य इत्यादि दुर्गुणों का प्रादुर्भाव हुआ करता है। जो विनाश का कारण है। इसलिये मनुष्य-जीवन में धर्म पालन आवश्यक माना गया है।

ऊपर लिखे गये मेरे इन विचारों से कदाचित् आज अधिकांश मनुष्य सहमत न हों, और उनके मास्तिष्क में ऐसे चित्र उपस्थित हों, जहां धार्मिक क्रिया सम्पन्न करने वाले दुराचारी प्रतीत हों, तथा ईश्वर और धर्म से घृणा करने वाले देश के अनेक नेतागण, और अन्य अनेक साधारण व्यक्ति जिनमें साम्यवादी विचार वाले भी हैं, जिनमें सदाचारी होने में किसी को कोई संदेह न हो। धर्म नहीं! प्रदर्शन है

यह मैं ऊपर बता चुकी हूँ कि आज धर्म नहीं रहा, केवल प्रदर्शन शेष है। जो व्यक्ति धार्मिक होने का ढोंग रचकर दुष्कर्म करता है, और दुनियां को धोखे में रखने की चेष्टा करता है। वह न तो ईश्वर को मानता है, न उसका धर्म में विश्वास है, साथ ही नास्तिक विचारों वालों के श्रेष्ठ आचरण का कारण उनके पूर्व जन्म के पूर्वजों के गर्भ के और वचपन में पड़े हुये उनके अपने धार्मिक संस्कार हैं। उनकी श्रेष्ठ बुद्धि और विकसित मस्तिष्क हैं साथ ही बुराई भलाई को पहिचानने की उनमें शक्ति है। जिसके कारण बुराई को दुर्गुण समझकर उन्होंने बुरे कर्मों का त्याग किया और भलाई को सद्गुण समझ कर ग्रहण किया है। किन्तु शरीर नाशवान है। उनके यह सद्-विचार और सद्गुण उन्हीं तक सीमित रह सकते हैं। अपने

सद्गुणों को विरासत में अगली पीढी को प्रदान करने का उनके पास क्या साधन है ? जिधर आर्कषण मिले उधर वह जाने से उसे कौनसी शक्ति रोक सकती है ?

धर्म निर्पेक्ष शासन – आज भारत का शासन–विधान धर्म निरपेक्ष है। आज भारत का शासनतंत्र धर्म से बहुत दूर है। भारत की राजनीति धर्म रहित स्वीकार की गई है। अनादिकाल से चले आ रहे सत्य वैदिक सनातन धर्म को जड़ मूल से खोद कर बहा डालने की रचनात्मक क्रिया सम्पन्न की जारही है। फिर भी भारत के राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, तथा अन्य मंत्रीगण और शिक्षित तथा प्रगतिशील समुदाय के प्रत्येक प्रमुख व्यक्ति जहा भी जनता के बीच में उपस्थित होते हैं, वहीं आचरण सुधारने और नैतिक स्तर ऊचा उठाने का जनता को आदेश देते हैं। छात्रों के चरित्रवान बनने का उपदेश देकर आकाश 'कुसुम' तोडने वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। यदि उपदेशों को सुनकर ही आचरण में सुधार हो सकता तो महात्मा गाधी के महान् उपदेश क्या कम प्रभावशाली थे ? आज उनके अनुयायी कहाने वाले व्यक्ति ही उसका कितना पालन करते है ? हमारे कर्णधार और आदरणीय नेतागण स्वय अपने २ हृदय पर हाथ रखकर देखें कि वे कहा तक महात्मा गान्धी के आदेशों का पालन कर रहे हैं।

अस्तित्व हीन—आज हमें भविष्य को भुलाने और वर्तमान की ओर देखने का अर्थात वर्तमान को सुधारने का आदेश दिया जाता है। वह वर्तमान जिसके पास अपना कोई अस्तित्व ही नहीं। "हम भूत में रहते हैं और भविष्य की ओर आगे बढते हैं। वर्तमान में तो एक पल भी नहीं टिकते। हम रोटी खाते हैं, आने वाले समय की क्षुधा निवृत्ति के लिये, पानी पीते हैं, भविष्य में आने वाले पल के " " लिये। ६।

केवल वर्तमान के लिये, हम प्रति-पल, प्रति-क्षण और प्रत्येक घड़ी अपने भविष्य का निर्माण करने मे लगे रहते हैं।" हमारे मार्ग प्रदर्शक तथा कर्णधारों के ऐसे-ऐसे आदेश ही तो आज भ्रष्टाचार फैलाने में सहायक हो रहे हैं। आज चोर बाजार करने वाला अपने वर्तमान के भले की सोचता है। चोर, डाकू, लुटेरे, उठाई गीरे, गिरह-कट, तथा किसी भी प्रकार का अत्याचार करने वाले सब अपनी वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति करने की ओर ध्यान देते हैं। वे भविष्य में होने वाले सरकारी दण्ड की चिन्ता क्यों करें? स्वर्ग-नरक कर्मफल भोग आदि भविष्य की और पुरानी बातें हैं। केवल धर्म पर चलने वाला व्यक्ति ही भविष्य की ओर ध्यान देता है। जितने भी सत्कर्म हैं, सब भविष्य की आशा से किये जाते हैं। आज सरकार की सुधार सम्बन्धी अनगिनत योजनायें सब आने वाले समय (भविष्य) के लिये ही तो बनाई जारही हैं। न केवल वर्तमान के लिये।

स्मरण रहे संसार रूपी चित्र के सत्य और असत्य रूपी दो पहलू हैं। सत्य को पलटने से उसमें परिवर्तन करने से असत्य प्रकट होता है, और असत्य का परिमार्जन करने से सत्य सामने आता है। इसी प्रकार बुराई और भलाई है। बुराई का परिमार्जन करने से भलाई और भलाई को छोड़ने से बुराई आगे आती है।

विदेशियों की नकल—आज हम प्रत्येक बात में विदेशों की नकल करने में लगे हैं। आज पाश्चात्य देशों की नकल कर हम अपने धर्म, संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार खान-पान, रहन-सहन, वेष-भूषा, सबका परिमार्जन कर डालना चाहते हैं। आज भारत के गाँव में माँस-मच्छी अण्डा-मुर्गा खाने का प्रचार किया जारहा है जो कि मन्द-बुद्धि, अविवेक और

कुत्सित विचार उत्पन्न करने वाले हैं। पश्चिमी देश २००० वर्ष पूर्व जङ्गली और असभ्य थे। उस समय उनका न कोई धर्म था, न उनकी कोई सभ्यता थी, ईसाई धर्म के द्वारा उनकी सभ्यता का विकास हुआ, उन्होंने अपनी स्थिति में सुधार किया, जो भी विषमता तथा क्रूरता आदि का समावेश हुआ, कालान्तर में उसका भी परिमार्जन करते रहे। उनके अन्दर असत्य और जो भी बुराइयां थीं, उनमें उन्होंने सुधार किया। फलतः असत्य और बुराइयों का परिमार्जन करने से उनमें आंशिक सत्य और भलाइयां प्रगट हुईं। जिसके सहारे आज वे देश उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़े दिखाई दे रहे हैं। अंगरेजों के वैज्ञानिक चमत्कार से प्रभावित हो भारत में भी उनकी नकल कर सुधार की लहर उत्पन्न हुई, जबकि भारत आदिकाल से ही धर्मप्राण देश रहा है। त्रिकाल सत्य के आधार पर जिसकी सामाजिक तथा संस्कृति का ढांचा खड़ा किया गया है। वैदिक धर्म की प्रत्येक जाति विधि का आदिकाल से ही यह लक्ष्य रहा है—

> सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निराभयाः।
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु या कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।

जिसका अर्थ है— सब सुखी हों, सब निरोगी हों, सबका कल्यान हो, कोई दुख का भागी न हो।

सत्य का परिमार्जन—भारत ने अपने इसी लक्ष्य के सत्य साधनों में सुधार किया है। अर्थात सत्य का परिमार्जन किया है, अतः चित्र का असत्य रूपी पहलू आगे आगया है। स्मरण रहे हमारी सामाजिक व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी, और हमारा नैतिक स्तर इतना ऊंचा था कि आज की स्थिति को लाने में अर्थात सत्य का परिमार्जन करने में लग-भग सवा सौ वर्ष लग चुके।

क्योंकि पिछले सवा सौ वर्षों से भारत मे सुधार वादी आन्दोलन का क्रम चालू है। क्रमश: उसकी गति-विधि मे तेजी आती गई। आज इस आन्दोलन को चलाने मे प्रत्येक शिक्षित वर्ग और भारत सरकार की शक्ति लगाई जारही है। नैतिकता की पुकार फिर भी आशा की जाती है पवित्र आचरण की, उन्नतचरित्र की ओर जनता के नैतिक स्तर के उत्थान की। यदि गूलर मे फूल लगना सम्भव हो तो आज के समय मे जन साधारण का आचरणशन होना भी सम्भव हो सकता है, अन्यथा नही। आज कोई किसी पर विश्वास नही कर सकता कोई भी दुर्गुण ऐसे नही, जिससे हिन्दू समाज वंचित रहा हो।

बदला हुआ जमाना

आज हिन्दू समाज की स्थिति, बड़ी विचित्र है। आज शिक्षित कहलाने वाला वर्ग धर्म के नाम से बचना चाहता है। आज जिसके आगे धर्म की चर्चा चलाना चाहो वह प्रथम तो चौंकता है। फिर धर्म रहित राजनीति की बात बीच मे लाकर समय की असमर्थता प्रदर्शित करने लगता है। यदि अधिक कुछ कहना चाहो तो उत्तर मिलता है कि अब धर्म पालन का जमाना नही रहा। जमाना बदल गया, कोई कहता है—जमाना बहुत आगे बढ़ गया है इत्यादि।

सूर्योदय पूर्व में

परन्तु देखा यह जाता है कि सूर्य आज भी पूर्व से उदय होता है। जबकि बदले हुए जमाने के अनुसार उसे पश्चिम से उदय होना चाहिये, चन्द्रमा आज भी अर्धरूप मे उदित हो क्रमशः बढता हुआ पूर्णमासी को पूर्ण होता है। यह क्यों? बदले हुये और आगे बढ़े हुये जमाने के अनुसार अब तो उसे भी बदल कर पूर्ण ही निकलना चाहिये। घटना बढ़ना नहीं।

न करना। सामान्य धर्म के इन दस लक्षणों का मनुष्य मात्र को पालन करना चाहिये, ऐसी शास्त्रों की आज्ञा है। अब देखना यह है कि राजनीति इससे कहां तक बच सकती है और शासन-तन्त्र या न्याय विभाग इससे कहां तक अछूता बच पाया है। धैर्य-धारण करना धर्म का अंग है। और कहते हैं धर्म पालन का जमाना नहीं है, फिर भी बोर्ड तथा युनिवर्सिटी की परीक्षा के उपरान्त विद्यार्थी को महीनों न्यायालय में फरियादी को वरसों, प्रतियोगिता में प्रतियोगी को महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जबकि इनमें से प्रत्येक तत्काल परिणाम जानने को उत्सुक रहता है। वह इतना धैर्य क्यों धारण करे? क्यों न इस देरी के लिये उसे विद्रोह कर देना चाहिये। सहनशीलता भी धर्म का अंग है। आज भोजन वस्त्र के लिये बड़ी बड़ी योजना के सब्ज बाग दिखाकर कष्ट सहन करने के लिये कहा जाता है। सरकार के उचित-अनुचित कानून, अनुचित हठ और अनुचित करके भार को सहन करना पड़ता है (यह तो एक छोटा सा उदाहरण है) विरोध करने पर दण्ड का भागी बनना पड़ता है। यह क्यों? मन का मारना धर्म का अंग है। मन और जल की गति समान है, जो कि नीचे को जाती है। ऊंचा उठाने के लिये तो जल के समान ही मन पर भी रोक लगानी पड़ती है। अब क्योंकि धर्म पालन का जमाना नहीं है, और राजनीति का धर्म से सम्बन्ध नहीं है, इसलिये सबको मनमानी करने की स्वतन्त्रता मिल जानी चाहिये। किन्तु ऐसा होता नहीं। अपराध करने पर आज भी दण्ड का भागी बनना पड़ता है। यह क्यों? आज तो मनमानी करने वाले को उसके मन के अनुकूल पदार्थ का पुरस्कार मिलना चाहिये, क्योंकि जमाना बदल गया है।

धर्म कहता है किसी प्रकार की चोरी मत करो। यदि धर्म निरपेक्षता ही व्यवहार में लानी है तो चोर डाकू सबको बड़े-

दिन रात का औसत २४ घन्टे आज भी है

आदिकाल से भारत में दिन रात का औसत २४ घन्टे का रहा है। आज भी वही है। यह क्यों ? अब तो कम से कम २४ घन्टे का दिन और २४ घन्टे की रात होनी चाहिये। सर्दी, गर्मी और बरसात का औसत भी कम से कम एक-एक वर्ष का होना चाहिये, क्योंकि जमाना बदल गया है। इसी प्रकार पृथ्वी जल, तेज, वायु और आकाश को भी अपना-अपना त्याग कर देना चाहिये क्योंकि धर्म पालन का जमाना नहीं रहा, और राजनीति धर्म से अलग है।

सिर आज भी ऊंचा है

आदिकाल से सिर ऊंचा रहा है, और बिचारे पैर सारे शरीर का बोझा ढोते रहे हैं, आज बदले हुए जमाने में भी वही क्रम चालू है। यह क्यों ? अब तो सर के बल चलना चाहिये और पैरों को ऊंचा उठने का अवसर मिलना चाहिये, 'क्योंकि जमाना बहुत आगे बढ गया है।

कहा जाता है कि राजनीति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, अर्थात राज-नीति और धर्म अलग-अलग हैं। जबकि होता इसके सर्वथा विपरीत है। यदि राज-काज से धर्म का अंश निकाल दिया जाय वो अव्यवस्था फैल जाय और किसी भी सरकार का पल भर टिकना कठिन होजाय।

कानून के रूप में धर्म

धैर्य धारण करना, सहनशील होना, मन को मारना, चोरी न करना, बाहर भीतर से पवित्र रहना। इन्द्रियों का दमन करना, बुद्धिमान होना, विद्वान होना, सत्य भाषण करना, क्रोध

न करना। सामान्य धर्म के इन दस लक्षणों का मनुष्य मात्र को पालन करना चाहिये, ऐसी शास्त्रों की आज्ञा है। अब देखना यह है कि राजनीति इससे कहां तक बच सकती है और शासन-तन्त्र या न्याय विभाग इससे कहां तक अछूता बच पाया है। धैर्य-धारण करना धर्म का अंग है। और कहते हैं धर्म पालन का जमाना नहीं है, फिर भी बोर्ड तथा युनिवर्सिटी की परीक्षा के उपरान्त विद्यार्थी को महीनों न्यायालय में फरियादी को बरसों, प्रतियोगिता में प्रतियोगी को महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जबकि इनमें से प्रत्येक तत्काल परिणाम जानने को उत्सुक रहता है। वह इतना धैर्य क्यों धारण करे ? क्यों न इस देरी के लिये उसे विद्रोह कर देना चाहिये। सहनशीलता भी धर्म का अंग है। आज भोजन वस्त्र के लिये बड़ी बड़ी योजना के सब्ज बाग दिखाकर कष्ट सहन करने के लिये कहा जाता है। सरकार के उचित-अनुचित कानून, अनुचित हठ और अनुचित करके भार को सहन करना पड़ता है (यह तो एक छोटा सा उदाहरण है) विरोध करने पर दण्ड का भागी बनना पड़ता है। यह क्यों ? मन का मारना धर्म का अंग है। मन और जल की गति समान है, जो कि नीचे को जाती है। ऊंचा उठाने के लिये तो जल के समान ही मन पर भी रोक लगानी पड़ती है। अब क्योंकि धर्म पालन का जमाना नहीं है, और राजनीति का धर्म से सम्बन्ध नहीं है, इसलिये सबको मनमानी करने की स्वतन्त्रता मिल जानी चाहिये। किन्तु ऐसा होता नहीं। अपराध करने पर आज भी दण्ड का भागी बनना पड़ता है। यह क्यों ? आज तो मनमानी करने वाले को उसके मन के अनुकूल पदार्थ का पुरस्कार मिलना चाहिये, क्योंकि जमाना बदल गया है।

धर्म कहता है किसी प्रकार की चोरी मत करो। यदि धर्म निरपेक्षता ही व्यवहार में लानी है तो चोर डाकू सबको धड़े-

बड़े पद के पुरस्कार मिलने चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं होता। उन्हें चोरी करने और डाका डालने पर आज भी दण्ड दिया जाता है यह क्यों ? धर्म कहता है बाहर और भीतर से स्वच्छ और पवित्र रहना चाहिये। कहा जाता है कि धर्म पालन का जमाना नहीं है, फिर भी आज बच्चों को स्कूलों में स्वच्छता की शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक स्थान मे म्यूनिस्पल बोर्ड और म्युनिस्पैल्टी सफाई का जाल बिछाने में लगे हैं, यह क्यों ? आज तो सब पर अघोरी बनने का कानून लागू कर देना चाहिये।

धर्म की आज्ञा है कि दसों इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिये किन्तु आज जमाना बदल गया है, और राजनीति धर्म रहित है। अतः दसों इन्द्रियों और मन को स्वच्छंद छोड़ देना चाहिये। किन्तु होता यहां भी इसके विपरीत है। आज भी गाली देने पर, मार-पीट करने पर किसी स्त्री को छेड़ने पर चाहे जहां मल-मूत्र करने पर सजा मिलती है। यह क्यों ? धर्म कहता है बुद्धिमान और विद्वान बनो, किन्तु धर्म पालन का जमाना नहीं, अतः सब को निरक्षर रखकर मूर्खता का पाठ पढ़ाना चाहिये, और अविद्या का प्रचार होना चाहिए। किन्तु होता इसके विपरीत है। चारों ओर शिक्षा का प्रचार होरहा है। अनिवार्य शिक्षा लागू हो रही है। यह क्यों ?

सत्य भाषण करना भी धर्म का ही एक अंग है, और राजनीति धर्म रहित है जमाने को भी धर्म से वंचित मान लिया गया है। अतः झूठ बोलने वाले को सम्मान मिलना चाहिए। किन्तु आश्चर्य का विषय है कि झूठ बोलने वाले को आज भी सम्मान के स्थान पर दण्ड मिलता है।

धर्म का दूसरा अंग क्रोध न करना है और धर्म पालन का जमाना पीछे रह गया। अतः क्रोध करना भी उचित माना जा सकता है। क्रोधी मनुष्य की प्रत्येक गतिविधि को मान्यता मिलनी चाहिये। स्मरण रहे क्रोध में मनुष्य आपे में नहीं रहता। क्रोध में ही सारे दुष्कर्म हो सकते हैं। क्रोधी व्यक्ति मार-पीट कर गाली-गलौज तो करता ही है। लूट खसोट कर डालता है, आग लगा देता है, यहां तक कि दूसरों के प्राण भी ले लेता और कभी-कभी आत्मघात भी कर डालता है। आज क्योंकि धर्म का जमाना नहीं है, अतः क्रोधी व्यक्ति को कम से कम महात्मा की उपाधि तो मिलनी ही चाहिये।

आज का प्रत्येक बुद्धिवादी यह सिद्ध करने में लगा हुआ है कि धर्म और राजनीति भिन्न-भिन्न हैं, जबकि चोरी जुआरी मनमानी तथा अन्य अनेक दुष्कर्म करने पर कड़े दण्ड का विधान है। यदि राजनीति और धर्म अलग-अलग हैं तो दण्ड देने के बदले उन्हें पुरस्कृत क्यों नहीं किया जाता?

यथा राजा तथा प्रजा

महात्मा गांधी ने अपनी 'आत्म कथा' में साफ लिखा है कि वह लोग कुछ नहीं जानते जो कहते हैं कि राजनीति धर्म से अलग है। आज महात्मा गांधी के अनुयायी आम जनता को महात्मा गांधी के बताये मार्ग पर चलने का उपदेश देते समय धर्म-निरपेक्षता का ढिंढोरा पीटते फिरते हैं, किन्तु स्वयं उनके लिखे वाक्यों पर ध्यान नहीं देते। 'यथा राजा तथा प्रजा' शासकों की नकल प्रजा करती है। अतः आज हमारे हिन्दू भाई-बहिन उन्हीं के राग में राग मिलाने लगे हैं और कहते हैं कि धर्म का जमाना नहीं है।

धर्म की अज्ञानता बढ़ रही है

यथार्थ मे धर्म की अज्ञानता बढ़ रही है । आधुनिक शिक्षा के प्रचार से लोगों की बुद्धि का विकास तो हो गया है, किन्तु धार्मिक अध्ययन द्वारा प्रकाश न मिलने के कारण वह अंधेरे में भटक गई है और उल्टे मार्ग पर चलने लगी है। वह सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध करने में लगी हुई है। आज सत्य मार्ग (धम) को धर्म के नाम से धर्म के रूप में प्रस्तुत न करके कानून के नाम से कानून के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है जबकि कानून ने आज तक चोरी करने के अतिरिक्त कुछ नहीं सिखाया।

धर्म का हृदय पर प्रभाव

जो सत्य धर्म के रूप में हमारी आत्मा, मन वचन और कर्म को स्वस्थ निर्मल और पवित्र बनाने में सहायक होता है, वही सत्य कानून का रूप धारण करते ही हमें धोखा देना, कपटता कुटिलता, क्रूरता और चोरी करना सिखा देता है। कारण स्पष्ट है—धर्म का प्रभाव हमारे हृदय और मस्तिष्क दोनों पर पडता है, और कानून का प्रभाव हृदय को छूता तक नहीं केवल मस्तिष्क तक सीमित रह जाता है । जब तक सत्य धर्म के रूप में हमारे साथ है, तब तक धर्म के विरुद्ध पग उठाते समय अन्तःकरण झिझकता है, हृदय गवाही नहीं देता । बार-बार सोचना पडता है कि धर्म विरुद्ध पाप कर्म करें या न करें। वही सत्य धर्म का चोला उतार कानून का रूप धारण कर जब हमारे सामने आता है तो धर्म का कोई चिन्ह साथ नहीं लाता। अतः धर्म का भय भी नहीं रह जाता।

कानून चोरी करना सिखाता है

सत्य का कानूनी चित्र सामने आते ही भावना बदल जाती है और हम वह देखने में लग जाते हैं कि इससे बच निकलने का कौनसा उपाय है। अथवा कौनसी चाल चल कर अपना स्वार्थ सिद्ध हो सकता है और कानूनी पकड़ में भी बचा जा सकता है।

कानूनों की भरमार

यही कारण है कि आज धर्म के एक-एक अंश को लेकर कानून का जाल बिछ गया है। किसी ने कहा भी है "जिस देश में जितने कानून होंगे वह देश उतना ही पतित होगा।" संसार में सबसे लम्बा संविधान तथा इंडियन और क्रिमिनल पेनाल कोड की हजारों धारायें, पग-पग पर और रोज व रोज आर्डिनेंसों का जारी किया जाना तथा प्रत्येक प्रान्तीय सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा पास किये जाने वाले एक्ट उपरोक्त बात का स्पष्ट प्रमाण हैं।

चोर बाजार का बोल बाला

आज चोर बाजारी का बोल बाला है, साधारण व्यक्ति का जीना भी कठिन हो गया है। सर्वत्र अशान्ति छाई हुई है। इस कानूनी जाल ने आज प्रत्येक व्यक्ति को चोरी करना और धोखा देना सिखा दिया है। जमाना नहीं बदला हम स्वयं बदल गये हैं। हमारी शिक्षा बदल गई और हमारी बुद्धि बदल गई है, जिसे उचित मार्ग पर लाने में ही कल्याण है।

मानवता का लोप

स्मरण रहे जिस दिन मनुष्य-जीवन का प्रत्येक अंग धर्म-रहित हो जायगा, उसी दिन मानवता का लोप हो जायगा सारी व्यवस्था भंग हो जायगी। मनुष्य में और जंगली जानवरों में कोई भेद न रहेगा। विद्या, बुद्धि और आधुनिक विज्ञान के सारे चमत्कार समाप्त हो जायेंगे। यह कोरी कल्पना नहीं अखंड सत्य है। आज भी ऐसे अनेक टापू हैं जहाँ जंगली मनुष्य पाये जाते हैं। आज न उनका कोई धर्म है, न उनके पास सभ्यता का कोई चिन्ह है किन्तु भाषा है। इससे पता चलता है कि उनकी भी किसी समय कोई सभ्यता रही होगी और वे भी धर्म पर चलते होंगे, जिसका आज कोई नाम निशान नहीं है। हमने भी आज उसी मार्ग पर पग बढ़ाया हुआ है, जिसका अन्त भी निःसन्देह वही हो सकता है जो उनका हुआ है। इसी लिये मानव जीवन में धर्म पालन आवश्यक माना गया है।

योग अवनति का और मोक्ष मार्ग उन्नति का आधार माना गया है।

योग मार्ग आकर्षक है, वह सुहावना और सुखदायक प्रतीत होता है। किन्तु अन्त उसका दुखद है।

मोक्ष मार्ग शुष्क, नीरस, कंटकाकीर्ण और कष्टकर लगता है किन्तु उसका अन्त सुखद है।

मानव जीवन का लक्ष्य मोक्ष या स्वर्ग की सुख प्राप्ति करना है इसे तो सभी धर्म मानते हैं। संसार में भी जन्म लेने के उपरान्त सुख सम्पदा और शान्ति की प्रत्येक को आवश्यकता है। अत: जिससे लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति हो उसी को धर्म माना गया है।

आत्मा, मन, बुद्धि विद्या, शरीर, अर्थ और समाज के विकास की सामग्री जिसमें निहित हो वह धर्म है।

आधि दैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक तथा मानव जीवन सम्बन्धी कोई भी आवश्यक अंग जिसमे छूटा न हो और जो मोक्ष मार्ग भी प्रशस्त करता हो, वह धर्म का पूर्ण स्वरूप माना जा सकता है।

हिन्दू धर्म का आधार वेद है जिसे ब्रह्म-वाक्य सिद्ध किया जा चुका है (ऐसा पंडित लोग मानते हैं) इसका स्वरूप वर्णाश्रम धर्म है और इसका चिन्ह शिखा सूत्र है।

सत्य वैदिक सनातन धर्म पूर्ण है, अपूर्ण धर्म नहीं है। शेष सभी प्रचलित धर्म आंशिक होने के कारण अपूर्ण हैं। वैदिक धर्म के एक-एक दो दो अंश को लेकर उनकी उत्पत्ति हुई है।

कर्म, उपासना और ज्ञान मनुष्य जीवन की यह तीन गति हैं और वेद में यह तीनों ही पूर्ण रूप में विद्यमान हैं अत सत्य, वैदिक सनातन धर्म सब प्रकार से पूर्ण है। धर्म का कोई अश इससे छूटा नहीं। मानव जीवन का कोई उपयोगी भाग ऐसा नहीं जिसकी वैदिक धर्म में अवहेलना की गई हो।

सत्-चिद् आनन्द

कर्म, उपासना और ज्ञान सत् चिद् आनन्द तीनों मिल कर सच्चिन्दानन्द साक्षात् परमात्मा का स्वरूप बन जाता है। यद्यपि इसमें पूर्ण केवल परमेश्वर है। इसमें पूर्णता प्राप्त करने पर मनुष्य और ईश्वर में कोई भेद नहीं रह जाता किन्तु आज तक कोई भी मनुष्य इस पूर्णता को प्राप्त करने मे समर्थ नहीं हुआ। फिर भी उस पूर्णता को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहना ही धर्म का दिव्य स्वरूप माना गया है।

सत्य वैदिक सनातन धर्म उस सूर्य के समान है जिसके सामने चन्द्र फीका लगता है और तारों का अस्तित्व गौण रहता है। सूर्यास्त होने पर अन्धकार में ही दीपक अपना गौरव दिखाते हैं जुगनू भी ऐसे समय चमक उठते हैं।

कोई सिर न उठा मका

ससार में जब तक वैदिक धर्म के सूर्य का प्रकाश रहा तब तक कोई मत मतान्तर, कोई धर्म और कोई वाद सिर न उठा सके। जब से वैदिक धर्म रूपी सूर्य पर अज्ञान की काली घटा छाई है तभी से भाँति-भाँति के साम्प्रदायिक समूह राहू बन कर वैदिक धर्म रूपी सूर्य को ग्रसने को उद्यत हैं (आज हम लोगों की गणना भी उन्हीं राहू केतु मे की जा सकती है) इसका

रक्षक केवल परमात्मा है।

प्रस्तुत 'प्रश्न धर्म क्या है ?" को इस प्रकार समझा जा सकता है।

धर्म—धर्म के दो प्रकार हैं—सामान्य धर्म और विशेष धर्म
विशेष के कर्म दो प्रकार हैं—पुरुष धर्म और नारी धर्म
पुरुष धर्म के दो भेद हैं—वर्णधर्म और आश्रमधर्म
वर्ण चार हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र
आश्रम चार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास
मार्ग दो हैं—प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग

ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवृत्ति की शिक्षा दी जाती है और गृहस्थाश्रम में प्रवृत्ति का उपभोग किया जाता है।

वानप्रस्थाश्रममें निवृत्ति की साधनाओं का अभ्यास तथा निवृत्ति मार्ग का अध्ययन किया जाता है और सन्यासाश्रम में निवृत्ति की साधना की जाती है।

सामान्य धर्म के विषय में कुछ संकेत किया जा चुका है इसलिये यहाँ संक्षेप में ही लिखना उचित प्रतीत होता है।

"सामान्य धर्म या मानव धर्म"

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रिय निग्रह।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्म लक्षणम् ॥

मनु भगवान ने इस वचन के अनुसार धर्म के दश लक्षण कहे हैं।

१—धैर्य धारण करना, २ सहनशील होना, ३ मन को मारना, ४ चोरी न करना, ५ बाहर भीतर से पवित्र रहना, ६ इन्द्रियों को दमन करना, ७ बुद्धिमान होना, ८ विद्याध्ययन

करना, ६ सत्य भाषण करना, १० क्रोध न करना। सामान्य धर्म के यह दश लक्षण हैं। मनुष्य मात्र को किसी भेद भाव के बिना इसका पालन करना चाहिये किन्तु जितना चाहिये उतना सबके लिये संभव नहीं है। यदि जितना चाहिये उतना सब संभव भी हो जाय तो संसार में कोई दुःखी न रहे। यदि किसी प्रकार की साधना, अनुष्ठान, तप, त्याग इत्यादि के बिना स्वाभाविक रूप से मानव समाज की भावना या रुचि सामान्य धर्म पालन करने की ओर होती तो धर्म के किसी अन्य स्वरूप भेद-युक्त वर्णाश्रम धर्म इत्यादि व्यवस्था स्थापित करने की कोई आवश्यकता न थी। सब धैर्यवान हों, सब सहनशील हों, सब का मन वश में हो, कोई किसी प्रकार की चोरी न करे, सब मन वचन, कर्म और शरीर से भी पवित्र हों, सबका अपनी अपनी दसों इन्द्रियों पर नियन्त्रण हो, सब बुद्धिमान हों, सब विद्वान (दार्शनिक) हों, सब सत्य भाषण और तदनुकूल आचरण करते हों, और कोई किसी पर क्रोध न करता हो, इस प्रकार मानव समाज सन्त महात्माओं और सिद्ध महा पुरुषों का समुदाय हो तो किसी अन्य ऊपरी बन्धन की अर्थात् वर्णाश्रम धर्म आदि व्यवस्था यम-नियम तथा अन्य कर्तव्य कर्मादि को निर्धारित करने की उनके लिये कोई आवश्यकता न थी। ऐसे सिद्ध महापुरुषों को जीवन मुक्त मानने में भी कोई सन्देह नहीं रह जाता किन्तु यह अवस्था सम्भव नहीं। न केवल आज के समय में बल्कि किसी भी काल में ऐसा सम्भव नहीं हुआ। किसी को इसका ज्ञान न हो यह बात नहीं बल्कि आज भी सामान्य धर्म के प्रत्येक अंश को प्रत्येक वह व्यक्ति जो पागल नहीं जानता है, बल्कि किसी न किसी रूप में उचित भी मानता है फिर भी उसका पालन नहीं कर पाता कारण कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर, दम्भ, अहंकार, ईर्ष्या, द्रोह, आशा, तृष्णा, निद्रा, आलस्य और प्रमाद

तथा सामान्य विषयों में फंसा मानव इसकी सदा ही अवहेलना करता रहा है।

सामान्य धर्म के १० नियमों में से किसी एक का भी कोई व्यक्ति दृढ़ता से पालन करता है तो वह महान पुरुष कहलाने का अधिकारी माना गया है। एक से अधिक नियम के पालन करने वाला सिद्ध पुरुष माना जा सकता है।

धर्मराज युधिष्ठिर की बात आज पुरानी होगई, जिन्होंने केवल सत्य की साधना कर सशरीर स्वर्ग सिधारने की शक्ति प्राप्त की किन्तु महात्मा गांधी का ताजा उदाहरण हमारे सामने है जो केवल सत्य और अहिंसा की साधना के बल पर संसार की सबसे बड़ी शक्ति से न केवल टक्कर ले सके अपितु उसका हृदय परिवर्तन करने में और उसके पंजे से भारत को स्वतंत्र कराने में समर्थ हुये। संसार में दूसरा उदाहरण ऐसा नहीं है जिसमें किसी ने एक भी रक्त की बूंद बहाये बिना इतने भारी साम्राज्य का स्वेच्छा से परित्याग किया हो।

आज महात्मा गांधी के उत्तराधिकारी अनेक गिने जाते हैं किन्तु क्या कोई एक भी उनके समान साधक है?

तात्पर्य यह कि विश्व का कल्याण चाहने वालों ने जब देखा कि कुछ गिने चुने व्यक्तियों के अतिरिक्त सामान्य धर्म पालन करने की ओर जन-समूह आकर्षित नहीं है तभी उन्होंने विशेष धर्म की अर्थात् वर्णाश्रम-धर्म आदि यम-नियम की व्यवस्था स्थापित की होगी। यह ध्यान रखना चाहिये कि जो चीज कभी संभव न हो पायी वह आज भी असंभव ही है और संभवतः रहेगी भी।

विशेष धर्म

विशेष धर्म मनुष्य को कठिनाई सहन करना और तपोमय जीवन व्यतीत करना सिखाता है।

विशेष धर्म के अन्तर्गत सामान्य धर्म यम नियमादि साधनाओं के द्वारा मनुष्य आवागमन के बंधन से छुटकारा पाने की अंतिम पौढी पार कर सकता है। वर्णाश्रम-धर्म के अंदर ऋषि-ऋण, देव ऋण, और पितृ ऋण से छुटकारा पाने के विधान ने कर्तव्य पालन को चोटी पर चढा दिया है। यहाँ असंभव को संभव करके दिखाया गया है।

परस्पर के धर्म में भेद

वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था के मध्य—कर्म, कर्तव्य, ईश्वरोपासना, तप, दान यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठान, लोकाचार आर्थिक विभाजन और सामाजिक नियम इत्यादि के सम्मिश्रण द्वारा धर्म अनेक रूपों मे विभक्त हो गया है इसमे ब्राह्मण का धर्म अलग, क्षत्रिय का अलग, वैश्य का अलग और शूद्र का अलग है। राजा का धर्म सबसे अलग है।

इसी प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम का धर्म भिन्न है, गृहस्थाश्रम का धर्म भिन्न है, वानप्रस्थाश्रम का धर्म भिन्न है और सन्यासाश्रम का धर्म भिन्न है। राज्य के शासन का धर्म सबसे भिन्न है। यही नहीं व्यक्तिगत धर्म में भी भेद किया गया है यहा पिता का पुत्र के प्रति और पुत्र का पिता के प्रति अलग २ धर्म माना गया है।

गुरु का शिष्य के प्रति और शिष्य का गुरु के प्रति जो धर्म है उसमें भी भेद किया गया है।

राजा का प्रजा के प्रति धर्म-पालन की व्यवस्था में और प्रजा राजा के प्रति धर्म पालन की व्यवस्था में भी भेद माना गया है।

पत्नी का पति के प्रति और पति का पत्नि के प्रति अलग अलग धर्म-पालन की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार माता, बहिन, भाई, भौजाई, दादा, दादी, चाचा, चाची, बुआ, मौसी, नाना, नानी, मामा, मामी, बहू, बेटी, विधवा, अनाथ, अड़ौसी, पड़ौसी, सगे सम्बन्धी, जाति, बिरादरी, नौकर, चाकर सबका एक दूसरे के प्रति भिन्न २ धर्म कर्म और कर्तव्य निश्चित किया गया है। इनके अतिरिक्त सामाजिक धर्म जो सब पर लागू होता है वह भिन्न है।

ऐसा देखा गया है कि सरकार की ओर से पुलिस और फौज का समुचित प्रबन्ध होने पर भी बहुत बड़ी भीड़ पर नियंत्रण रखना साधारणतः थोड़े समय के लिए भी कठिन हो जाता है। इलाहाबाद की कुम्भ दुर्घटना-नरसंहार इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है जबकि यह बाहरी व्यवस्था से सम्बन्धित विषय है। धार्मिक नियंत्रण अंतः करण पर लागू होता है, जहां सबकी प्रकृति समान नहीं। कोई रागी है कोई विरागी है, कोई ब्रह्मनिष्ठ है, कोई शूर-वीर है, कोई संग्रह शील है और कोई सेवा परायण है। भिन्न-भिन्न प्रकृति, कर्म और स्वभाव के व्यक्तियों पर एक सा नियम लागू कर सबको एक ही सांचे में ढाल देना भी असंगत है क्योंकि जो विषय (धर्म) मनुष्य के हृदय को आकर्षित न करता हो उसका देर तक स्थिर रहना कठिन ही नहीं, असंभव है।

मनुष्य की इस प्रकृति का अनुसंधान कर वीतराग महर्षियों ने सबको भिन्न २ श्रेणियों में विभक्त कर उनकी प्रकृति, रुचि और स्वभाव के अनुसार उनके कर्म नियत किये। जिसकी

जैसी प्रकृति थी उसे उसी में प्रवृत्त कराया। मानव-समाज को ४ भागों में विभक्त कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की स्थापना की क्योंकि प्राकृतिक रूप मे भी मानव शरीर चार भागों मे विभक्त है। कन्धे से ऊपर का हिस्सा (ब्राह्मण) भुजायें (क्षत्रिय) पेट (वैश्य) और पैरों को शूद्र माना गया है। जिस प्रकार कोई भी एक अंग दूसरे अंग का स्थान कभी भी ग्रहण नहीं कर सकता, उसी प्रकार एक वर्ण का व्यक्ति इस जीवन में दूसरे वर्ण का स्थान प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्व जन्म कृतकर्म, रक्त वीर्य तथा पूर्वजों के गुणों की प्रकृति साथ में लिये होता है।

आज साइंसदानों ने अनुसंधान द्वारा यह स्वीकार कर लिया है कि मनुष्य का रक्त भी चार प्रकार है। एक प्रकार के रक्त का दूसरे प्रकार के रक्त में मिश्रित होने का परिणाम् तत्काल मृत्यु के रूप में आगे आता है अतः शरीर, रक्त, गुण, प्रकृति, स्वभाव, रुचि और कर्म के आधार पर वर्ण धर्म की व्यवस्था स्थापित की गई। ब्रह्म ज्ञानी को ब्राह्मण, शूरवीर को क्षत्रिय, अर्थ संग्रह कर्ता को वैश्य और जो केवल सेवा परायण थे उन्हें शूद्र की उपाधि दी गई। तदनुरूप उनके कर्म और कर्तव्य तथा जीविकोपार्जन के साधन निर्धारित किये गये।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य ये तीनों ही द्विज माने गये हैं। वेदाध्ययन, तपस्या, पठन, पाठन, यज्ञ, करना और दान देना ये उनके कर्म हैं।

ब्राह्मण

द्विजों को पढ़ाने और थोड़ी सी दक्षिणा (प्रत्याहार) लेने मे ब्राह्मणों की जीविका चल सकती है। ब्राह्मणों के लिये अर्थ संग्रह वर्जित सा है।

वेद पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना, दान देना और दान लेना ये उनके मुख्य कर्म हैं। वेद पढ़ाने से तथा यज्ञ कराने से दान-दक्षिणा में जो धन मिले ब्राह्मण को चाहिये उसे दान और यज्ञ में लगाये। अपने निर्वाह के लिये स्वल्प-मात्र ही बचाना चाहिये। यद्यपि तपस्या के बल पर ब्राह्मण दान लेने में समर्थ है किन्तु जहाँ तक बने प्रतिग्रह स्वीकार न करना ही उनके लिये श्रेयकर है। ब्राह्मण को अपने तप की रक्षा करनी चाहिये।

ब्राह्मणों को षट्-कर्मी माना गया है। उनके षट् कर्म ये हैं- प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, तर्क, और समाधि। ब्राह्मणों के लिये नित्य नियम से इसका पालन करना परमावश्यक माना गया है।

ब्राह्मण धर्म वेदाध्ययन, इष्ट-देव की पूजा, ब्रह्मध्यान, काम क्रोध और लोभ से रहित होना, माया, मोह ममता की शून्यता क्षमाशील, आर्यता, श्रेष्ठ आचरण का पालन करना, दान रूपी कर्म करना, मन और इन्द्रियों का दमन करना, शरीर, मन और वचन को पवित्र रखना तथा सत्य भाषण करना आदि ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत माना गया है। आर्थिक क्षेत्र में भी ब्राह्मण को मुख के समान आचरण करना चाहिये। जो सब कुछ भक्षण करने पर भी अपने पास कुछ नहीं बचाता। धन संग्रह करके रखने से ब्राह्मण का तेज घटता है।

क्षत्रिय धर्म

अस्त्र-शस्त्र ही इनकी जीविका के साधन हैं। स्त्री, बालक गौ, ब्राह्मण, आर्त, शरणागत, दीन, दुखी, पीड़ित और स्वामी पर आये हुये संकटों को टालने के लिये तत्पर हो वही क्षत्रिय श्रेष्ठ माना गया है। क्षत्रिय को तपस्या, यज्ञ, दान, वेद पाठ और

ब्राह्मण भक्ति ये सब कर्म करने चाहिये। क्षत्रिय का स्थान भुजा का है उसे भुजा के समान सारे समाज की रक्षा में तत्पर रहना चाहिये। अर्थ संग्रह करके रखना क्षत्रिय के लिये भी उचित नहीं। आवश्यकता से अधिक धन को तत्काल दान दक्षिणा तथा यज्ञादि शुभ कर्मों में लगादे अथवा दीन दुखियों में बांट दें। क्योंकि धन संग्रह करने से क्षत्रियों का बल घटता है।

वैश्य धर्म

अर्थोपार्जन में तत्पर, गौ आदि पशुओं का पालक, कृषि कर्म करने वाला, रसादि विभिन्न वस्तुओं का विक्रेता यह वैश्य के गुण हैं। वैश्य यज्ञ दान इत्यादि शुभ कर्मों का अनुष्ठान करे, स्वाध्याय करे, देवता और ब्राह्मण का पूजक हो ये सब वैश्य के धर्म हैं।

वैश्य का स्थान पेट का है जिस प्रकार पेट में सारे शरीर को बल-शाली रखने के लिये भोजन संग्रह किया जाता है, पेट भोजन का सत अपने तक ही सीमित न रख कर सारे शरीर को पुष्ट रखने के लिये उसका उचित रूप मे विभाजन करता रहता है उसी प्रकार वैश्य के पास भी चारों ओर से सिमिट कर पूंजी एकत्रित हो जाया करती है। वैश्यों को भी पेट के समान ही धर्म का पालन करते रहना चाहिये। अर्थात् दान यज्ञादि द्वारा अपने संचित धन का यथोचित वितरण करते रहना परमावश्यक है। नहीं तो वैश्य उसी अवस्था को प्राप्त हो सकता है जो कि पाचन शक्ति क्षीण होने पर पेट की होती है और पेट के कारण सारे शरीर की जो अवस्था हो जाया करती है वही स्थिति समाज की होनी संभव है।

शूद्र धर्म

तीनों वर्णों की सेवा तथा शिल्पादि (दस्तकारी) ही इनकी जीविका का साधन है। शूद्र भी प्रातः उठकर भगवान का चरण वन्दन करे। भक्ति मय श्लोकों का पाठ करने वाला शूद्र भी विष्णु के स्वरूप को प्राप्त होता है। जो शूद्र वर्ष में आने वाले वार और तिथि के अधि-देवता को प्रसन्न रखने के लिये व्रत, उपवास तथा जीवों को अन्न दान करता है वह शूद्र गृहस्थ श्रेष्ठ माना गया है। वह वेद मन्त्रों के उच्चारण के बिना ही सब कर्म करते हुये मुक्त हो जाता है। चतुर्मास का व्रत करने वाला शूद्र भी स्वर्ग को प्राप्त होता है।

राज-धर्म

इन चारों वर्णों के अतिरिक्त राज-धर्म की व्यवस्था शेष समाज से भिन्न मानी गई है। राज की स्थापना धर्म की रक्षा करने के निमित्त आवश्यक मानी गई थी क्योंकि राज-धर्म में कूटनीति से काम लेना पड़ता है। आर्य महर्षियों ने न केवल राज धर्म को अलग माना था अपितु राज-वंश को ही शेष समाज से अलग सा मान लिया था राजा लोग क्षत्रिय वर्ण के होते थे और व्यक्तिगत रूप से उनका धर्म वही था जो क्षत्रियों का था किन्तु शासन संचालन का विशेष उत्तरदायित्व ग्रहण करने पर राज-धर्म का पालन करना राजा का परम कर्तव्य है।

साम, दाम, दण्ड, भेद, राज धर्म के ये चार चरण बताये गये हैं। शासन संचालन में यथा समय राजा को इनसे काम लेना ही पड़ता है। राज्य (देश) और धर्म की शत्रु से रक्षा करना राजा का परम धर्म कर्म, और कर्तव्य माना गया है क्योंकि राज्य प्रजा और धर्म की रक्षा करने के लिये राजा को कुटिल नीति ग्रहण

करनी पड़ती है। अतः राजा के लिये अन्य विद्या प्राप्त करने के साथ कूटनीतिज्ञ होना भी परमावश्यक माना गया है। धर्म ग्रन्थों में इन्द्रादि देवताओं के ऐसे कल-बाल-छल के अनेक उदाहरण मिलते हैं। सत्यव्रती धर्मराज युधिष्ठिर को भी झूठ बोलना पड़ा था। महाभारत के शांति पर्व में भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को राजनीति संबन्धी उपदेश करते समय बताया कि जो मनुष्य शत्रु के साथ संधि करके उसका विश्वास कर लेता है उसे वृक्ष की डाल पर सोये हुये मनुष्य की तरह गिर कर ही होश आता है। जैसे पशु, यज्ञ और चित की शुद्धि मोक्ष के साधन हैं वैसे ही कोष, बल और विजय तीन राज्य को पुष्ट करने के प्रधान कारण हैं।

ऋण, अग्नि और शत्रु को अधूरा रखना ठीक नहीं है, यह थोड़े ही बचे रहने पर फिर बढ़ जाते हैं।

मनुष्यों का संहार, आने जाने के मार्गों का विनाश तथा घरों में आग लगा कर शत्रु के राज्य को चौपट कर देना इत्यादि अकर्म कर्म भी राज-धर्म का अंग माने गये हैं।

देव राज इन्द्र का भी एक इसी प्रकार का उदाहरण मिलता है जिसमें बताया गया है कि किस प्रकार इन्द्र ने इन्द्रासन छिन जाने के भय से तप करते हुये त्रिशिरा नामक ब्राह्मण को वज्र प्रहार द्वारा न केवल मार डाला बल्कि उसकी हड्डी गुड्डी पीस कर गंगा में बहा दी, धूल में मिला कर ही पीछा छोड़ा यद्यपि इसका इन्द्र को दण्ड भुगतना पड़ा। किन्तु अपने राज सिंहासन की रक्षा के आगे उसने इसकी चिंता नहीं की। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राजाओं को अपने व्यक्तिगत धर्म को छोड़ कर भी राज्य की रक्षा को प्रमुखता देनी पड़ती है (थी) उसे स्वर्ग और नर्क की चिन्ता (जिसमें उसका अपना परम हित और

अहित है) त्याग देनी पड़ती है। क्योंकि पाप कर्म का फल (नर्क) तो उसे भुगतना ही पड़ता है। यहां भी निष्काम भाव रखने से राजा राज धर्म के सहारे किये गये पापकर्म के दुष्फल भोगने से बच सकता है। किन्तु ऐसे निष्काम भाव रखने वाले बहुत कम होते हैं। अतः उन्हें दुष्कर्मों का फल भुगतना पड़ता है।

राज-वंश और राज-धर्म को जन साधारण से अलग रखने का यह भी कारण था कि कूटनीति अपनाये बिना शासन-तन्त्र चलता नहीं। न वह सुरक्षित ही रहता है। परन्तु जन साधारण के लिये कुटिलता वर्जित है। जनता को शुद्ध, सतोगुणी, पवित्राचरण, सरल स्वभाव, चरित्रवान और धर्मात्मा होना चाहिये। राजाज्ञा का पालन करना प्रजा का धर्म माना गया है। जब तक कि निष्काम भावना न हो तब तक कूटनीति पर चलने वाले का आचरण पवित्र होना कठिन है यह उन वीतरागी महर्षियों के लिये, अथवा ब्रह्मज्ञानी और दूरदर्शी ब्राह्मणों के लिये संभव था जो सब कुछ जानते और समझते हुये भी सबसे निर्लेप रहने की शक्ति रखते थे, जो राज्य-गुरु या मन्त्री पद पर आसीन होते थे। राज्य-गुरु राजा के आचरण पर हर घड़ी निगाह रखता था और हर घड़ी उसे धर्म और नीति बताया करता था। रामायण मे लिखा भी है कि वेद पुराण वशिष्ठ बखानहिं, सुनहि राम यद्यपि सब जानहि। महर्षि वशिष्ठ श्रीराम के राज्य गुरु थे, वह श्रीरामचन्द्र जी को वेद और पुराण की नीति बताया करते थे। यद्यपि रामचन्द्र जी सब कुछ जानते थे फिर भी उनकी सुनते थे। एक राज सभा होती थी चारों वर्णों में से चुने हुये व्यक्ति (विद्वान) जिसके सदस्य होते थे। राज्य संबन्धी किसी भी उलट फेर करने की आज्ञा देने से पूर्व राजा को प्रथम गुरु से आज्ञा माँगनी पड़ती थी। फिर सदस्यों की सम्मति लेनी

होती थी इनकी अवज्ञा करने पर राजा को गद्दी से उतार दिया जाता था।

राज्य प्रणाली वश क्रमागत होते हुये भी राज्य गुरु तथा सभा के सदस्यों और प्रजा की सम्मति बिना राजा अपने किसी पुत्र को युवराज (उत्तराधिकारी) घोषित नहीं कर सकता था।

ऐसा भी सुना जाता है कि राजा पर नियन्त्रण के लिये तथा उसकी सहायता के लिये सभा और समिति दो सभायें होती थीं।

राज्य सभा का होना प्रत्येक धर्म ग्रन्थ में लिखा है। राजा दशरथ और राजा राम के अतिरिक्त रावण (जोकि एक निरंकुश राजा माना गया है)तक की सभा का वर्णन रामायण में आया है।

राजा का धर्म है कि वह निष्काम भाव रहकर तन मन-धन से प्रजा के हित की रक्षा करता रहे। राजा को शूरवीर विद्वान और प्रत्येक विषय को तत्व से जानने वाला होना चाहिए। उसे यज्ञ, दान और तपस्या करनी चाहिए। वेद पाठ और ब्राह्मण-भक्ति तथा महात्माओं का सत्सग ये सब कर्म करते रहना चाहिए। स्त्री, बालक, गौ, ब्राह्मण, आर्त, शरणागत, दीन और पीडित पर आए हुए सकटों को टालने के लिए राजा को हर घडी तत्पर रहना चाहिए। (राम० रा० च०) उसका आदर्श होना चाहिए।

प्रत्येक राजा को ऋषिकुल का स्नातक होना परमावश्यक था। किसी अज्ञानी और अशिक्षित के हाथ में राज्य के सचालन का अधिकार देना वर्जित सा था। हमारे यहाँ के आश्रम-धर्म में आरम्भ से ही त्याग की शिक्षा दी जाती थी। ब्रह्मचर्याश्रम में राजकुमार भी ऋषिकुल में उसी रूप में रहता है (था) जिस रूप में एक निर्धन बालक और नियमत. ही वहा हवन सामग्रियों का

त्याग और इन्द्रियों पर संयम रखना पड़ता है। त्याग की इस प्रथम घाटी को पार करके वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। यहां उसे भोगों के बीच में रहकर त्यागी बनना पड़ता है। उन्हें शिक्षा ही इस प्रकार की मिलती है।

राजा को चाहिये कि वृद्धावस्था आने तथा शरीर शिथिल होने के पूर्व अपने योग्य उत्तराधिकारी को राज्य काज सौंप कर जंगल, पहाड़ या किसी तीर्थ स्थान में तपस्या करने को चला जाय। माता कौशल्या ने श्रीराम के वन जाते हुये कहा भी है "अन्तुहु उचित नृपहि बनवासू, वय विलोकि हिय होति हिरासू। जिसका अर्थ है कि अन्त में तो राजा के लिये वनवास करना ही उचित है किन्तु तुम्हारी बाल्यावस्था देख कर जी कचोटता है। ऐसे सर्व गुण सम्पन्न राजा के राज्य को ही राम-राज्य का आदर्श माना गया है।

ईश्वर का प्रतिनिधि

राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना गया है इसका कारण यह भी हो सकता है कि राजा जन समूह के कल्याण के लिये, उनके धर्म की रक्षा के लिये अपने परम स्वार्थ (मोक्ष) का परित्याग कर देता है वह स्वर्ग या नर्क (यम यातना) की ओर ध्यान दिये बिना प्रजा के धर्म कर्म और कर्तव्य तथा उनके आत्म कल्याण की रक्षा का भार वहन करता है इसी लिये वह महान माना गया है। राजा की जड़ (बुनियाद) कोष और सेना है। इसमें कोष बल का आधार है। बल सब धर्मों का मूल है (महाभारत शांति पर्व)

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि राज-धर्म और राज-वंश को जन साधारण से अलग रखने का मूल कारण राज संचालन में अपनाई जानेवाली कूटनीति की आवश्यकता है जिसके बिना राज तंत्र को सुरक्षित रखना कठिन है और जन समूह को चरित्र-

वान और धर्मात्मा होना चाहिये। राज-तंत्र और जन तंत्र को मिला देने का परिणाम जनता के प्रत्येक व्यक्ति को कपटी या कुटिल बनाना है। प्रत्येक व्यक्ति के कूटनीति अपनाने का परिणाम यही होगा जो कि आज भारत में देखने में आ रहा है। (आज यहाँ किसी का एक दूसरे पर विश्वास नहीं) सब परस्पर दूसरों को धोखा देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हैं। देश, धर्म, जाति या राज्य की सुरक्षा की ओर ध्यान देने का उनके पास अवसर कहाँ? इस प्रकार सारी व्यवस्था में राज्य व्यवस्था के भंग हो जाने का अंदेशा सदा बना रह सकता है। इस स्थिति में मानव-समाज की न लौकिक उन्नति हो पायेगी न परलोक ही सुधर सकेगा अथवा जो भी उन्नति होगी वह क्षणिक होगी स्थायी नहीं।

कोमलता, अहिंसा, सावधानी, कुटुम्बियों को यथोचित अंश देना, श्राद्ध करना, अतिथि सेवा करना, सत्य बोलना, क्रोध न करना, अपनी स्त्री से संतुष्ट रहना, ईर्ष्या न करना, पवित्र रहना, आत्म ज्ञान और सहनशीलता सब वर्णों के साधारण धर्म है (महाभारत शान्ति पर्व)

वर्जित

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य किसी को भी अधिक समय तक धन संचित नहीं रखना चाहिये। उससे सारे समाज की शक्ति क्षीण होती है। धन की ३ गति हैं दान, भोग और नाश। उनमें दान दे देना सबसे उत्तम है, दान न दे तो अपने ऊपर व्यय करे यह धन के उपभोग की निकृष्टावस्था है। इन दोनों अवस्थाओं पर से धन लेने पर तीसरी अवस्था (विनाश) को प्राप्त हो जाता है।

ब्राह्मण की स्थिति मुख के समान है। सारे शरीर को खुराक मुख

के द्वारा पहुचाई जाती है, मुख यदि कहे कि हम भोजन सामग्री को अपने पास ही रखेगे, पेट को नहीं देंगे तो भोजन मुख मे सड जायेगा, उसमें कोडे पडकर सारे शरीर की मृत्यु हो जायेगी आज ब्राह्मण लाभी हो गए हैं फलत हिन्दु धर्म और समाज आज अन्तिम घडी गिनने लगा है। धन संचित करने से ब्राह्मण विद्या बुद्धि और तेज रहित हो जाता है। आज यह अवस्था ब्राह्मणों की स्पष्ट देखने में आ रही है।

क्षत्रिय का स्थान भुजा का है। हाथ यदि कहे कि मुख को भोजन क्यों द, अपने पास ही क्यों न रख ले, उसके ऐसा करने से हाथ गिर जायेगा और सारे शरीर के साथ हाथ भी आघात हो जाएगा हाथ भी सडने लगेगा। इसी प्रकार धन संचित करने से क्षत्रिय का बल घटता है। आज क्षत्रिय भी धनी है फलत आज उनमे पहिले जैसी शक्ति नहीं रही। पंजाब की अनेक वीर जातियाँ धन-संग्रह करने में जबसे लगीं तभी से उनका बल घटने लगा। आज वही वीर लोग अपना संचित धन तथा घर-बार सब पाकिस्तान म छोड कर भारत के प्रत्येक भाग मे बिखरे हुये हैं। यह धन संचय का दुष्परिणाम है।

पेट को वैश्य माना है। इसकी स्थिति इन दोनों से भिन्न है। पेट में हाथ और मुख के द्वारा भोजन संग्रह होता है। जहाँ से पेट सारे शरीर को शक्ति प्रदान करता है जा फोक बचता है उसे भी समय पर बाहर निकाल देता है। यदि पेट भोजन का अश सारे शरीर को वितरण करना छोड दे तो सारा शरीर दुर्बल हो जायेगा और पेट म पीड़ा होने लगेगी। या तो उल्टी और दस्त के द्वारा वह स्वय निकल जायेगा अथवा डाक्टर के द्वारा जुलाब देने पर पीडा शात होगी। आज यही कुछ देखने में आ रहा है। आज वैश्यों के पास सारी पू जी संचित हो गई है। दान यज्ञ के

द्वारा सारे समाज में उसका वितरण करना छोड़ दिया गया है फलतः सारे समाज ने शक्ति हीन होने के कारण उनके प्रति विद्रोह करना आरम्भ कर दिया। पैर रूपी शूद्र या मजदूरों, साम्यवाद रूपी डाक्टर के पास जाकर समान बंटवारा रूपी जुलाब दिलाने की माँग कर रहे हैं। यह सब धर्म की अज्ञानता और उसकी अवहेलना का फल है।

पैरों की शक्ति पेट द्वारा पहुँचती है। पैरों का स्थान शूद्र का है, उसका काम सारे शरीर को लादे फिरना है यदि पैर कहें कि हम सारे शरीर को क्यों लादे फिरें तो सबसे पहिले पैरों को अपाहिज होना पड़ेगा उसके पीछे सारा शरीर अपाहिज हो जायेगा किन्तु मृत्यु नहीं होगी।

इसलिये धर्म-शास्त्रों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों के लिये तप, दान और यज्ञ करते रहने की आज्ञा दी है क्योंकि यदि ब्राह्मण धन को संचित करके रखता है तो उसका जो परम धन विद्या बुद्धि और ब्रह्म तेज है उससे वह हीन हो जाता है। क्षत्रिय बल हीन होता है और वैश्य महत्वहीन, अनुपयोगी सिद्ध होता है। शूद्रों के पास धन एकत्रित करके रखने की सामर्थ ही नहीं। उनके पास यदि अधिक धन हो भी जाय तो तत्काल दुर्व्यसनों में लग कर अन्यत्र चला जाता है, या पृथ्वी की गोद में पहुंचा दिया जाता है।

कोष भरा हो

राजा की स्थिति यहाँ भी भिन्न है। राजा का कोष भरा रहना चाहिये। महाभारत के शान्ति पर्व में लिखा है कि—"राजा की जड़ (बुनियाद) कोष और सेना है। कोष बल का आधार है, बल सब धर्मों का मूल है और धर्म प्रजा का मूल है।"

इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि राजा तप दान या यज्ञ न करें बल्कि राजा को यह तीनों कर्म सबसे बड़े पैमाने पर करते रहना चाहिये। बड़े २ दान देने का और बड़े २ महायज्ञ करने का राजा के लिये ही विधान है। यज्ञ के बारे में म० भा० के शान्ति पर्व में लिखा है कि जिससे बहुतों की तृप्ति हो वह महा-यज्ञ है। इतना करके भी राजा का कोष भरा पूरा रहना चाहिये।

यह राजा के तथा चारों वर्णों के धर्म, उनकी भिन्न २ प्रकृति और स्थिति के अनुसार भिन्न २ कर्म और जीविका निर्वाह के भिन्न २ साधन हैं जिसका पालन करता हुआ मनुष्य लोक और परलोक दोनों सुधार सकता है। राम-राज्य का स्वरुप यही है। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था का चित्र उपस्थित करने के उपरान्त व्यवस्थापकों (महर्षियों) के आगे फिर वही समस्या खड़ी होती है कि उनका पालन कैसे हो? इस व्यवस्था का सामूहिक रूप में परम्परागत चालू रखने का उपाय है क्या?

यह बतलाया जा चुका है कि मनुष्य-जीवन के प्रवृत्ति और निवृत्ति के दो ही मार्ग हैं। प्रवृत्ति की ओर मनुष्य-मात्र का स्वाभाविक आकर्षण है। निवृत्ति त्याग का मार्ग है क्योंकि भोग मार्ग से दूर रहने की आज्ञा देता है क्योंकि मानव-जीवन का उद्देश्य आवागमन के चक्र से मुक्त होना ही है। साथ ही वंश परम्परा (प्रजा-तन्तु) की रक्षा भी होनी ही चाहिये। यह सब सोच विचार कर आत्मज्ञ महर्षियों ने नियन्त्रित भोग-भोगने का अवसर प्रदान किया। जिसमें धर्मानुष्ठान आदि सत् कर्म करता हुआ मानव धीरे-धीरे निवृत्ति-मार्ग पर अग्रसर होता रहे इसके लिये चार आश्रमों की व्यवस्था का विधान लागू किया जैसा कि बताया जा चुका है अर्थात् आश्रम ४ हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास।

ब्रह्मचर्याश्रम

आठ दस वर्ष की आयु से बालक से ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करने का विधान है। इस अल्पायु से बालक जंगलों में गुरू (ऋषि) के आश्रम में प्रवेश करता था। स्नातक होने पर २५ वर्ष की अवस्था में पुनः घर वापस आता था। आश्रम में वह गुरू की सेवा करता था, अपने और गुरु के लिये गांव से भिक्षा मांग कर लाता था (इसमें राजकुमार भी होता था) श्री रामचन्द्र जी गुरु वशिष्ठ के तथा विश्वामित्र के आश्रम में रहे थे और श्रीकृष्ण अवन्ती (उज्जैन) में सन्दीपन गुरु के आश्रम में सुदामा के साथ रहे थे और गुरु के लिये जंगल से लकड़ी काट कर लाया करते थे। गुरु उन्हें जो शिक्षा देता था उसका मूल उद्देश्य था— आचरण को स्वच्छ, पवित्र और निर्मल बनाना। मन, प्राण और वीर्य को वश में रखने की शिक्षा दी जाती थी। ब्रह्मचारी प्राणायाम, समाधि आदि के द्वारा प्राणों को, ध्यान धारणा द्वारा मन को, मन, वचन और कर्म से आठ प्रकार के मैथुन का परित्याग कर वीर्य को वश में रखने का अभ्यासी हो जाता था। उसे ब्रह्म तत्व तथा आध्यात्मिक तत्व का ज्ञान कराया जाता था। ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवृत्ति की शिक्षा दी जाती थी, उसे गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर भोगों में रह कर त्यागी बनना सिखाया जाता था। उसे इस बात की शिक्षा दी जाती थी कि धन कमाना, अपने लिये नहीं सारे समाज के लिये, विश्व के लिये, भगवान के लिये पुत्रोत्पादन करना, केवल अपने लिये नहीं सारे समाज के लिये, धर्म के लिये और भगवान के लिये। वह संयमी और जितेन्द्रिय होता है उसे सबकी आत्मा में समदृष्टि रखना सिखाया जाता है। उन्हें बड़ों का मान करना बताया जाता है। उन्हें इस बात की शिक्षा मिलती है कि आचार्य, पिता, माता और बड़े भाई,

का उनके द्वारा सताये जाने पर भी अपमान न करें। ब्राह्मण को तो विशेष रूप से इनका अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति, पिता प्रजापति की मूर्ति, माता पृथ्वी की मूर्ति और बड़ा भाई अपनी ही दूसरी मूर्ति है (इनका अपमान करने से उन-उन देवताओं का अपमान होता है) उसे बताया जाता था कि जो मनुष्य नित्य बड़ों को प्रणाम करता है और उनकी सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल चारों बढ़ते हैं। (हिन्दू स० अ०)

विद्यार्थी को सर्व प्रथम ईश्वर में अटल विश्वास रखना तथा पुनर्जन्म और कर्म फल भोग मे पूर्ण विश्वास रखना सिखाया जाता था। धर्म पत्नि के अतिरिक्त संसार की समस्त स्त्री जाति को (उनकी आयु के अनुसार) माता, बहिन और पुत्री के समान समझने की भावना उनमें भरदी जाती थी। आचार्य, गुरु, माता, पिता इत्यादि गुरुजन, धर्म और समाज के अनुशासन में रहने की शिक्षा मिलती थी। उसे कर्मठ, पुरुषार्थी और स्वावलम्बी बनना सिखा दिया जाता था। वह अपनी आवश्यकता को कम से कम रखना सीख जाता था। उसे धर्म नियम, संयम में जकड़े रहने का महत्व समझाया जाता था।

यज्ञोपवीत की प्रचलित प्रथा से ऐसा प्रतीत होता है कि देश भर के अधिकांश (विशेषकर ब्राह्मण) विद्यार्थी यज्ञोपवीत के उपरान्त काशी पढ़ने जाया करते थे। विद्यार्थी जब से आश्रम में प्रवेश करता था तबसे स्नातक बनने तक उनका अपने घर से और माता पिता आदि से कोई भी सम्पर्क नहीं रहता था। आश्रम में प्रवेश करते समय जो कुछ सामग्री वस्त्रादि गुरु तथा गुरु पत्नी के लिये ले जाते थे उसके अतिरिक्त उनका कोई शुल्कादि नहीं लगता था। गुरु (जो कि अधिकतर सन्यासी होते

थे) और विद्यार्थी केवल कौपीन धारण करके रहते थे (आजकल तो इसे असभ्यता का सूचक माना जाता है) विद्याध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी को अपनी वृत्ति के अनुसार गुरु-दक्षिणा अवश्य देनी पड़ती थी। जब तक गुरु-दक्षिणा का प्रबन्ध न हो तब तक स्नातक को गुरु गृह में रहकर गुरु की सेवा करते रहने का विधान था। यदि वह कुछ भी दक्षिणा न दे सकता हो तो वह वृक्ष से एक ताजी दतौन तोड़ कर गुरु के आगे रख कर प्रणाम करदे इसी में उसकी गुरु-दक्षिणा पूरी हो जाती थी और उसे घर जाने की आज्ञा मिल जाती थी।

गृहस्थाश्रम

यह प्रथमावस्था पार करके वह गृहस्थाश्रम में जाता था। यहां वह जीविका निर्वाह के पैतृक साधन में जुटता है। यहां उसे माता पिता के अतिरिक्त सारे कुटुम्ब तथा इनके अतिरिक्त बहिन, बेटी, विधवा, अनाथ, दीन दुःखी के भरण पोषण का उत्तरदायित्व वहन करना पड़ता था। यही नहीं संसार के सभी प्राणी गृहस्थाश्रम के सहारे पलते थे। प्रवृत्ति का उपभोग करते हुए भी सबसे निर्लिप्त रहने की उसे शिक्षा मिली होती थी, वह इसका अधिक से अधिक पालन करने की चेष्टा करता था। वह सारे समाज का सेवक होता था। सबकी सेवा करके प्रसाद रूप में जो कुछ प्राप्त होता उसी को अमृत समझ कर वह अपना काम चलाता था। इस आश्रम में जीवन का एक महान उत्तर-दायित्व युक्त कर्म-पूर्ण अंश बिताकर, अपने सुयोग्य, सदाचारी और त्यागी उत्तराधिकारी पर घर का भार सौंप कर त्याग के पथ में और आगे बढ़ने के लिये वह वानप्रस्थाश्रम में पहुँचता था। इस आश्रम में संसार से पूर्ण निवृत्ति प्राप्त करने की शिक्षा ग्रहण करता था। अन्त में चतुर्थाश्रम में प्रवेश कर मोक्ष की

प्राप्त करता था। चारों आश्रम उत्तरोत्तर अधिकाधिक त्याग की स्थिति मे ले जाने वाले हैं और अपने पूर्वाश्रम की सुदृढ़ भित्ति पर स्थित है।

किसी भी विद्यार्थी के लिये लगभग १०-१५ वर्ष तक घर बार से सम्पर्क त्याग कर दूर जगलों मे निश्चिन्त भाव से लगे रहना तभी सभव था जबकि उसे जीविकोपार्जन की कोई चिन्ता नहीं थी। उसका भविष्य आजकल की भाति अनिश्चित नहीं था। जीविका निर्वाह के उसके पैतृक साधन सुरक्षित थे। उसे इस बात की भी चिन्ता नहीं करनी पडती थी। पिता तथा अन्य किसी प्रमुख व्यक्ति की मृत्यु हो गई तो माता या भाई बहिन अनाथ हो जायेंगे। उस समय सकुटुम्ब प्रणाली थी प्रत्येक व्यक्ति जिसका सदस्य था। किसी भी व्यक्ति के अभाव में उसके निकटस्थ सम्बन्धी के रहन सहन मे कोई अन्तर नहीं आता था सब पूर्व स्थिति मे रहते थे।

आज की शिक्षा का इस शिक्षा पद्धति से जरा मिलान करना चाहिये क्या अन्तर है? जैसी शिक्षा प्रणाली है वैसे ही लोगों के आचरण भी हैं।

आज की शिक्षा का मूल उद्देश्य नौकरी करना और जिस प्रकार भी बने धन कमाना है। चालाक व्यक्ति के यह दोनों उद्देश्य पूरे होते हैं और जो व्यक्ति (अपनी परम्परागत प्रकृति के वश अथवा धार्मिक संकोच के कारण) थोड़ा भी नैतिकता की ओर ध्यान देता है और अपने आचरण को पवित्र रखने की कोशिश करता है उसे ठोकरें खानी पड़ती हैं वह सबकी आंखों में खटकता है उसे बदनाम करने के लिये षड्यन्त्र रचा जाता है और उसके प्रति भ्रष्टाचार इत्यादि का अभियोग लगा उसे अपराधी सिद्ध कर पद से हटा दिया जाता है और बहुधा उसे

दण्ड दिया जाता है यह सब बातें प्रसंगवश लिखी गई हैं। हमारा विषय दूसरा है।

यहां तक वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था की रूप रेखा बताई गई इसका पालन कैसे संभव हो यह आगे बताया जायेगा।

सोलह संस्कार

वर्णाश्रम धर्म की पूर्ण व्यवस्था का विधान निश्चित हो जाने पर भी पुराना प्रश्न संभव कैसे हो ? किस प्रकार जन समूह से इसका पालन कराया जावे और उनके अन्दर धार्मिक भाव जाग्रत हों और उन्हें कल्याण मार्ग पर अग्रसर किया जाये ? यह प्रश्न जहाँ का तहाँ रहा क्योंकि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आशा, तृष्णा, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य और प्रमाद इत्यादि दुर्गुणों के चगुल में फसे मानव को ऊपर उठने का अवकाश कहाँ ? सब कुछ जानते बूझते, सोचते और समझते हुये भी उस पथ पर पग बढ़ाने का साहस नहीं। अतः वर्ण और आश्रम धर्म की पूर्ण व्यवस्था(योजना) व्यक्तिगत धारणा के बिना अपूर्ण सिद्ध हुई क्योंकि धर्म व्यक्तिगत सम्पत्ति है इसका संबन्ध अंतः करण से है। यह ऊपर से किसी के ऊपर लादा नहीं जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को इसकी धारणा करनी चाहिये जिसके लिये प्रत्येक व्यक्ति अंत:करण को शुद्ध कर उसे प्रभावित करने की अर्थात् हृदय परिवर्तन की आवश्यकता है और जब तक बचपन से इस ओर ध्यान आकर्षित न हो, इसके पालन का अभ्यास न हो तब तक इस नीरस शुष्क तथा कण्टकाकीर्ण मार्ग पर पग बढ़ा भी दिया जावे तो उस पर टिक रहना सम्भव नहीं है। साथ ही इस पथ को अपनाने की शक्ति प्राप्त करने के लिए ३ तरह के पिछले संस्कार चाहिये (१) पिछले जन्म के (२) पूर्वजों के

(३)गर्भ के संस्कारों की प्रेरणा। इस जन्म में किये हुये कर्म की प्राणी पर जो छाप लग जाती है उससे अगले जन्म मे प्राकृतिक प्रेरणा उस कर्म को करने की मिलती है अर्थात् अगले जन्म में वही संस्कार पड़ता है जिसे धर्माचरण द्वारा पवित्र बनाने की आवश्यकता है। दूसरा प्रभाव पूर्वजों के गुणावगुण का पड़ता है इसके लिये पितृ-कुल के सुसंस्कार चाहिये, वीर्य के संस्कार प्राणी के पूर्व जन्म के संस्कारों को दबा देते हैं। तीसरा संस्कार गर्भ में माता की गति विधि आचरण और स्वभाव का पड़ता है। यह पिछले दोनों संस्कारों से प्रबल और ऊपर होता है अतः दोनों को अपने रंग में रंग देता है। स्त्रियों के लिये नारी धर्म पालन करने के विधान का उद्देश्य बहुत कुछ सन्तति के गर्भ जनित उत्तम संस्कार से है। जन्म लेने के उपरान्त चौथा संस्कार बचपन मे माता पिता के आचरण का तथा बाल साथियों का पड़ता है इन चारों मे गर्भ जनित संस्कार सबसे प्रबल होता है यदि यह सुदृढ़ हुआ तो आगे किसी भी पड़ने वाले प्रभाव का कोई रंग इस पर चढ़ने नहीं पायेगा। इन सब को तत्व से परख कर महर्षियों ने सोलह संस्कारों का विधान किया, प्रत्येक व्यक्ति की साधना को मार्ग दिखाया।

१६ संस्कार

सब सत्कर्म उपासना और ज्ञान का आधार वेदों से प्राप्त हुआ है। अतः शास्त्रकारों ने वेद के आधार पर गर्भाधान से लेकर सन्यासाश्रम तक १६ संस्कार निश्चित किये, जिसका उद्देश्य मनुष्य को ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बनाना था। जैसे १६ कलाओं से युक्त चन्द्रमा पूर्ण माना जाता है वैसे १६ संस्कारों युक्त मनुष्य पूर्ण होता है अर्थात् जीव भाव को छोड़ कर ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है। वह ब्रह्म को प्राप्त करने योग्य होता है ऐसा महा-

स्माओं का कहना है।

प्रथम संस्कार गर्भाधान है (इसका महत्व तथा अन्य सब संस्कारों के विषय में श्री मुन्डलेश्वर महाराज ने अपने धर्मोपदेश में जो कुछ बताया है वह साथ में दिया जाता है) गर्भाधान से छटे महीने में *"पुंसवन"* संस्कार और आठवें महीने में *"सीमन्तोन्नयन"* संस्कार गर्भ रक्षा के लिये किया जाता है। जन्म के बाद नालछेदन से पहिले *"जातकर्म"* संस्कार किया जाता है। इसमें दान, पुण्य (*नान्दी मुख श्राद्ध*) किया जाता है और सुवर्ण शलाका से जीभ पर ओ३म् लिखा जाता है तथा कान में 'तव नाम वेदोऽसि' यह उच्चारण किया जाता है जिसका मतलब यह है कि तेरा गुप्त नाम वेद है अर्थात् तुझे अपना जीवन वेदमय बनाना है वेदों का ज्ञाता होकर वेद की रक्षा करनी है।

नाम-करण संस्कार

यह जन्म से १० वे दिन होता है। इसमें बच्चे का नाम रखा जाता है। यदि किसी कारण से १० वें दिन न हो सके तो १०१ दिन पर यह संस्कार किया जाता है। जन्म से छटे महीने में *"अन्न-प्राशन"* संस्कार होता है। इसमें हवनादि तथा प्रीतिभोज किया जाता है और प्रथम बार बालक को खीर (मिष्ठान) चटायी जाती है।

चूड़ाकर्म संस्कार

तीसरे साल में यह संस्कार किया जाता है। इसमें यज्ञ करके केप मुण्डन किया जाता है और चोटी रखी जाती है। चोटी क्यों ? यह प्रश्न खड़ा होता है। चोटी से हिन्दु धर्म की पहचान होती है इस लिये चोटी चारों वर्णो को समान रखनी चाहिये, इसमें किसी भेद भाव की आवश्यकता नहीं। यह चोटी

सी बात है जो में जानती हूं। इसका खुलासा श्री महाराज के धर्मोपदेश में देखा जा सकता है जोकि इसके साथ प्रस्तुत किया जाता है।

आठवाँ संस्कार *यज्ञोपवीत* (उपनयन) संस्कार है। यज्ञोपवीत संस्कार का मूल उद्देश्य धर्म को अपने अन्दर धारण करना है (इसका खुलासा आगे किया जायेगा) ९ वाँ "*ब्रह्म-व्रत*" संस्कार होता है। गुरु गृह में विद्याध्ययन के लिये रहने वाला ब्रह्मचारी "ब्रह्म व्रत" संस्कार से परमेश्वर प्राप्ति के मार्ग में आगे लड़ने का प्रण करता है। १० वाँ "*वेद-व्रत*" संस्कार है। वेदव्रत संस्कार से ब्रह्मचारी पूर्व दिशा की ओर मुँह करके नियम पूर्वक वेदाध्ययन करने का निश्चय करता है। ग्यारहवाँ "*समापवर्तन*" संस्कार है। इसमें विद्याध्ययन की समाप्ति के पश्चात ब्रह्मचारी *समापवर्तन* संस्कार करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये गुरु गृह से अपने घर आता है जैसे कि बताया जा चुका है–घर आने से पहिले ब्रह्मचारी गुरु को यथा शक्ति दक्षिणा देता है। गुरु को दक्षिणा देने से विद्या फलवती होती है।

बारहवाँ *विवाह* संस्कार है। विवाह के तीन उद्देश्य हैं— प्रजा-तन्तु की रक्षा, स्वेच्छा प्रवृति का निरोध और भगवत्प्रेम की शिक्षा (इसकी विवेचना श्री म० म० के उपदेश में देखनी चाहिये) हिन्दू धर्म में विवाह कभी न टूटने वाला, परम पवित्र धार्मिक संस्कार है, यज्ञ है। वह इन्द्रिय सुखोपभोग के लिये नहीं अपितु सुसन्तति सृजन के लिये और परलोक गत पितरों को सुख पहुँचाने के लिये तथा देवताओं को तुष्ट करने के लिये होता है। इसमें विवाह विच्छेद की बात तो दूर रही जन्म-जन्मांतर तक पति-पत्नी का पवित्रसम्बन्ध बना रहता है इसी से हिन्दू स्त्रियाँ पति के शव के साथ हंसते २ सती हो जाती थीं (इस गये

गुजरे जमाने में भी यदा यदा सतियों के चमत्कार देखने अथवा सुनने में आते ही रहते हैं) हि० सं० अ०

तेरहवाँ संस्कार *अग्न्याधान* है। विवाह के समय वेदी बनवा कर किया जाता है। वधू के साथ उस अग्नि को भी घर में लाकर उसकी स्थापना करनी पड़ती है। यह अग्नि सदा विद्यमान रहती है और उसी में नित्य हवन होता है और मरने पर उसी से दाह संस्कार होता है।

चौदहवाँ संस्कार *दीक्षा* का है। नित्य तथा नैमित्तिक कर्मानुष्ठान भाव शुद्धि पूर्वक विषय सेवन, अग्नि की परिचर्या इस प्रवृति मार्ग का धर्मानुष्ठान करने से मनुष्य में भगवत्प्रेम उत्पन्न होता है। (म० म०)

पन्द्रहवां संस्कार *महाव्रत* है, इससे वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश किया जाता है।

सोलहवां संस्कार *सन्यास* है। इसमें वेदान्त के श्रवण, मनन से ज्ञान होता है और ज्ञान से मुक्ति होती है।

धारणा—यह बताया जा चुका है कि यज्ञोपवीत संस्कार का मूल उद्देश्य धर्म को अपने अन्दर धारण करना है। किस की धारणा करना यह बताया जायेगा।

मनुस्मृति के अनुसार सामान्य धर्म के १० लक्षण हैं:—

धृति, क्षमा, दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्

श्री मद्भागवत् गीता में इस मानव धर्म को ३० लक्षणों में बताया गया है जिसका भावार्थ यह है—

सत्य, दया, तप, शौच तितिक्षा, उचितानुचित विचार, मन-संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, निष्कपटता, सन्तोष, सम -दृ

महापुरुषों की सेवा, धीरे धीरे सांसारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति, मनुष्य के अभिमान पूर्ण प्रयत्नों का फल विपरीत होता है—ऐसा विचार मौन, आत्म-चिंतन, अन्नादि पदार्थों का प्राणियों में यथायोग्य विभाजन, उन सब प्राणियों को विशेष कर मनुष्यों को अपनी आत्मा और इष्टदेव ही समझना, सन्तों की परम गति (ऐसा विचार), भगवान के गुण-महात्म्यादि का श्रवण, कीर्तन और स्मरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्म-समर्पण यह सभी मनुष्यों के लिये परम धर्म है। इस ३० लक्षण वाले धर्म के पालने से सबके आत्मा रूप भगवान प्रसन्न होते हैं। (हि० सं० अंक)

मानव धर्म के ३० लक्षण हैं। इसके अतिरिक्त १० यम १० नियम हैं—

यम—सत्य, क्षमा, आर्जव (सरलता एवं कोमलता) ध्यान, क्रूरता का अभाव, अहिंसा, दम (मन और इन्द्रियों का संयम) प्रसन्नता, मधुरता और मृदुता ये १० यम बताये गए हैं।

नियम—शौच (बाहर भीतर की पवित्रता) स्नान, तप, दान, मौन, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत, उपवास और उपस्थ इन्द्रियों को वश में रखना—ये १० नियम बताये गये हैं।

यज्ञोपवीत संस्कार

सब संस्कारों में महत्वपूर्ण संस्कार उपनयन संस्कार माना जा सकता है। इसमें मनुष्य को कसौटी पर चढ़ा दिया जाता है। मानव के चरित्र का व्यक्तिगत रूप से निर्माण करना, मन वचन और कर्म से पवित्र होना, नैतिक स्तर ऊंचा उठाना और आचरण को निर्मल और पवित्र बनाना ही यज्ञोपवीत धारण करने का मूल उद्देश्य है।

आर्ष महर्षियों ने वेद के आदेश को क्रियात्मक रूप देने के लिये, यज्ञोपवीत द्वारा प्रतिज्ञा ग्रहण करने का नियम लागू किया, वेद के आधार पर ब्रह्मचारी वर्ग विशेष धर्म के अन्तर्गत, सामान्य धर्म के १० यम नियमादि सदाचार युक्त कर्म और अपने कर्तव्यों के पालन करने का व्रत ग्रहण करता है। अर्थात् अपने अन्दर इसकी धारणा करता है और आचार्य तथा गुरु-जनों के सम्मुख आजीवन इसके पालन की प्रतिज्ञा करता है। इस व्रत के कारण उसकी संज्ञा व्रती हो जाती है। यहां व्रती इस बात का भी व्रत ग्रहण करता है कि मैं कर्म और उपासना का अनुष्ठान करने वाला बनूंगा।

सूत्र अथवा जनेऊ जिसे यज्ञोपवीत संस्कार के समय गले में (हृदय पर) धारण किया जाता है उसमें जो भाव और जो गुण हैं आगे उन्हीं को बताने की चेष्टा की जायेगी।

वेद के एक लाख मन्त्र हैं। इन एक लाख मन्त्रों में ८० हजार कर्म के, १६ हजार उपासना के और केवल ४ हजार ब्रह्मज्ञान के हैं। इनमें कर्म, उपासना के ९६ हजार मन्त्रों को लिया जाता है। ब्रह्मज्ञान के ४ हजार का सन्यासाश्रम में प्रवेश करने पर मुक्ति प्राप्त करने की साधना में प्रयोग किया जाता है।

यहां कर्म, उपासना के मन्त्रों को मिलाकर एक सूत्र कर दिया जाता है जिसे ब्रह्म-सूत्र कहते हैं। जिस जनेऊ का सूत्र इसी ब्रह्म-सूत्र का प्रतीक माना गया है। यज्ञोपवीत के समय ३३ करोड़ देवताओं का आह्वान किया जाता है।

कर्म उपासना की कड़ी गायत्री मंत्र

देव-ऋण, अग्नि, आचार्य, गुरु-जन तथा पंचों की साक्षी देकर व्रती इस बात की प्रतिज्ञा करता है कि अबसे जीवन में सभी कर्म उपासनामय होंगे। हमें प्रत्येक कर्म करते समय ईश्वर

का ध्यान रहेगा। सब दुष्कर्मों का मूल मन की अस्थिरता है। सांसारिक उलझनों, प्राकृतिक आकर्षणों तथा जीवन के अनेकानेक संघर्षों के कारण कर्मोपासना से विचलित न होजाये। इसलिये गायत्री मंत्र की कड़ी द्वारा उसका *मानसिक गठ-बन्धन* कर दिया गया था। मन ही सब पापों की जड़ है। अतः मन पर बंधन लगाने के लिये गायत्री मंत्र को वाणी का विषय न मान केवल मन तक सीमित कर दिया गया था। नित्य सायं-प्रातः स्नान कर स्वच्छ वस्त्र धारण कर, स्वच्छ स्थान में कुशासन पर कमलासन से बैठकर मन ही मन गायत्री मंत्र का जप करना, यज्ञोपवीत के धारी के लिये अनिवार्य था। जितना अधिक जप किया जाता उतना ही अधिक चित्त शुद्ध होता और मन, वचन तथा कर्म में पवित्रता आती दूसरे शब्दों में कर्म और उपासना को जोड़ने वाल गायत्री मन्त्र की गांठ दृढ़तर होती जाती। परन्तु आज स्थिति यह है कि गायत्री मन्त्र को मन पर से खींच कर न केवल वाणी का विषय मान लिया गया है बल्कि ताल-स्वर से उच्चारण कर एक *कला का रूप* दे दिया गया है। आज तबला, हारमोनियम चिमटा और खड़ताल पर गायत्री मन्त्र का कीर्तन मनोरंजन का प्रमुख साधन बना हुआ है। न केवल आर्यसमाजी बल्कि अपने को सनातन धर्मी कहलाने वाले भी यही करते हैं फलतः जिस गायत्री मंत्र के नियम पूर्वक जपने से महान शक्ति का संचार हुआ करता था, जो अनेकानेक बाधाओं को टालने में राम बाण सिद्ध हुआ करता था, आज उसमें कोई शक्ति दिखाई नहीं देती। यही नहीं, जो गायत्री मंत्र कर्म को उपासना से जोड़ने वाली कड़ी और मानसिक बन्धन का साधन था उसे मन पर से खींच लेने का परिणाम यह निकला कि आज कर्म और उपासना दोनों में कोई मेल नहीं रहा, कर्म अलग है और उपासना अलग। मन पर किसी प्रकार का कोई बन्धन या नियन्त्रण

नहीं। फलतः आज का आदर्श खेल बन गया है।

यज्ञसूत्र का विधान

जैसा कि ऊपर बताया गया है वेद में ८० हजार मन्त्र कर्म के और १६ हजार उपासना के हैं। इन ९६ हजार मन्त्रों को ही लिया गया है। ४ हजार जो ज्ञान के मन्त्र हैं उनके प्रयोग का अधिकारी केवल सन्यासी ही होता है।

यज्ञोपवीत का अनुष्ठान करते समय निम्नलिखित भावना और संकल्प के साथ जनेऊ (ब्रह्मसूत्र) तैयार करने का विधान है।

कर्म और उपासना के ९६ हजार मन्त्रों का प्रतीक मान कर दाहिने हाथ की चारों उंगलियों के पोरों को मिला कर उस पर सूत्र के ९६ लपेटे दिये जाते हैं। इसे कर्म और उपासना सम्बन्धी मन्त्रों का प्रतीक माना गया है। अब उंगलियों पर लपेटे सूत को खोल कर उसके तीन तार (तेहरा) करके एक में कर दिया जाता है। इन तीन तार से तात्पर्य तीन वेदों से है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये तीन वेद हैं (अथर्ववेद इन्हीं के अन्तर्गत आ जाता है) तीनों वेदों के प्रतीक तारों को बट कर एक सूत्र कर देने का तात्पर्य है कि—सत्य एक है, धर्म एक है और वेद एक है (जो कि उस समय तक तीन भागों में विभक्त हो चुका था) यह तीनों मिल कर एक ईश्वर को सूचित करते हैं। हमारे यहां जनेऊ के समय लोक गीतों में जनेऊ गाने की प्रथा है, जिसके बोल हैं—"एक गुण, द्वै गुण, त्रिगुण जनेऊ, त्रिगुण जनेऊ लेके त्रिपुरा को दीजे।" यह तीन २ गुणों का संकेत ऊपर बताये गये तीन वेदों के प्रतीक तीन तारों से है। अर्थात् ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद। संसार में प्रचलित सारे धर्म और कर्म के स्रोत

यही तीन वेद हैं त्रिपुरा को दीजे, से क्या तात्पर्य निकलता है यह ज्ञात नहीं हो सका, हो सकता है कि त्रिपुरारि (शिवजी) की ओर संकेत किया गया हो क्योंकि शिवजी को त्रिगुणी माना गया है।

अब उस बटे हुए सूत्र को पुनः तीन लट (तेहरा) करके पुनः एक में बट दिया जाता है। इस दूसरी बार तीन लट करने का अर्थ है—धर्म, अर्थ और भोग को मिलाकर एक सूत्र करके रखना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी यह ४ पुरुषार्थ हैं किन्तु मोक्ष को यहा भी छोड़ दिया जाता है। अर्थ और काम अर्थात् भोग और भोग के साधन की ओर प्राणी मात्र का स्वाभाविक आकर्षण है किन्तु मनुष्य की विशेषता धर्म से है। धर्म के द्वारा मनुष्य प्रकृति का भी उल्लंघन कर जाता है। धर्म के अर्थ और काम के प्रतीक ब्रह्मसूत्र के तीन तार को एक में बट देने का तात्पर्य यह कि धर्म, अर्थ और काम रूप जीवन के तीनों तारों को बट कर एक सूत्र करके रखना, अर्थात् व्रती इस बात का व्रत ग्रहण करता है कि हमारा अर्थ और भोग धर्म युक्त होगा। जिस प्रकार यह सूत्र के तीनों तार मिलकर एक रूप होगये हैं उसी प्रकार हमारा अर्थ और भोग धर्म युक्त होकर एक सूत्र के समान होगा, अलग २ नहीं। यहा व्रती अपने हृदय में इस बात की धारणा करता है कि हम जो अर्थोपार्जन करेंगे वह धर्म युक्त होगा और हम जो भी सांसारिक भोग भोगगे वह धर्म युक्त होंगे। इस धर्म के पालन मे जो भी कठिनाइयां आगे आयेंगी उनको सहन करेंगे इत्यादि प्रतिज्ञा यज्ञोपवीत धारण करने वाले व्रती को ग्रहण करनी पड़ती है।

"यथार्थ में आज यहीं पर तो कमी आगई है। आज

मानव जीवन के धर्म, अर्थ और काम रूपी तीनों तार खुल कर अलग-अलग बिखर गये हैं। आज अर्थोपार्जन करते समय धर्म का कोई ध्यान नही रहता। लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म या ईश्वर का कोई भय नहीं। उचित या अनुचित जिस प्रकार सम्भव हो धन की प्राप्ति करना मनुष्य ने एक मात्र लक्ष्य मान लिया है। अर्थोपार्जन में संलग्न होने पर सांसारिक भोग (जिसके लिये सब कुकर्म किये जाते हैं) की भी उपेक्षा करदी जाती है। सर्दी, गर्मी, बरसात भूख प्यास और हारी बीमारी अर्थोपार्जन में जुटा मानव सब कुछ भूल जाता है, उसका ध्यान केवल धन की ढेरी समेटने की ओर लगता है। परन्तु जिस समय भोग की ओर आकर्षित होता है उस समय धर्म अर्थ दोनों की अवहेलना करदी जाती है, धर्माधर्म का कोई ध्यान नहीं रखा जाता और पैसा भी पानी की तरह बहाया जाता है।

आज धर्म का अभाव हो यह बात भी नहीं है बल्कि धार्मिक प्रदर्शन जितने अब होते हैं उतने पूर्व समय में कदाचित देखने में आये हों। आज जगह जगह कीर्तन और सत्संग सुनाई देता है। भागवत का सप्ताह, रामायण और गीता का पारायण तथा अखण्ड पाठ, अखण्ड कीर्तन, महाभारतादि धर्मग्रन्थों की कथा, सन्त महात्माओं द्वारा वेद-वेदान्त के प्रवचन, धर्मोपदेश, सिक्ख सन्तों, जैन मुनियों के उपदेश, आर्य समाजी भाइयों के यज्ञादि धार्मिक प्रदर्शन की चारों ओर धूम सी मची रहती है। लाउड स्पीकर द्वारा न चाहने वालों को भी सब कुछ सुना दिया जाता है किन्तु प्रभाव किसी पर कुछ नहीं पड़ता। धर्म और कर्म में आज कोई मेल नहीं। एक व्यक्ति के धर्म का जो रुख है कर्म उसके सर्वथा विरुद्ध जाता है। आज वचन की कोई कीमत नहीं, वचन भंग में लज्जा नहीं बल्कि वचन तो भंग करने के लिये और देने के लिये ही दिया जाता है। आज प्रत्येक व्यक्ति

मन मानी करने में अपने को पूर्ण स्वतंत्र मानना है।

धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि सौ यज्ञ जब कोई पूरा करना चाहता था तो इन्द्रासन डोल जाता था। और उसमें विघ्न डालने की चेष्टा की जाती थी अर्थात् वह इन्द्र पद प्राप्त करता था। तीनों लोकों का स्वामी वह बनता हो या नहीं पर इस भू-भाग (पृथ्वी) के प्रत्येक व्यक्ति पर इतना प्रभाव अवश्य पड़ता होगा जो सब उसे मान्यता दें। जैसा किसी समय अंग्रेजों का था अथवा लैनिन, स्टेलिन, या हिटलर मुसोलिनी आदि के समान भी हो सकता है जिसके प्रति बहुतों का आकर्षण और बहुतों को भय लगा रहा। आज आर्य समाजी भाई सैकड़ों यज्ञ कर डालते हैं, किन्तु उनका घर में भी कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। कारण कि आज हम यज्ञ के रचनात्मक स्वरूप को भूल गये हैं।

इस प्रकार जनेऊ के एक तार में ६ गुण रूपी ६ तार गुथ कर एक सूत्र हो जाते हैं। जनेऊ सम्बन्धी लोक गीत में आगे आता है अर्थात् गाया जाता है कि "चार गुण, पांच गुण, ६ गुण जनेऊ, ६ गुण जनेऊ लेके त्री को दाजे"। ६ गुण तो ऊपर बताये गये किन्तु ६ गुण लेके त्री को दाजे इसका संकेत किस ओर है? इसका क्या अर्थ निकलता है यह अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया। आशा है विद्वद् वर्ग छान बीन कर इसका सही अर्थ प्रस्तुत करेंगे।

आगे पुन उस सूत्र की तीन लड़ करके उसके दोनों सिरों पर एक गांठ दी जाती है। वह एक गाठ आत्मा और परमात्मा के एकत्व का बोध कराती है। फिर जिसके जितने प्रवर होते हैं उतनी गांठें और दी जाती हैं।

अब तीन तार का जनेऊ गले में डाला जाता है इस तीन

तार के अलग-अलग रखने का अर्थ है—मनुष्य पर तीन ऋण अलग २ हैं ऋषि-ऋण, देव-ऋण, और पितृ-ऋण। ऋषियों ने वेदादि शास्त्रों की रचना कर मानव-मात्र के लिये अभ्युदय और निश्रेयस का पथ प्रदर्शन किया, मानव जाति को पाशविक स्थिति से ऊपर उठाने का मार्ग दिखाया जिससे मानव समाज की सभ्यता का विकास हुआ। विद्या और मस्तिष्क विकसित हुआ इस लिये आर्य-महर्षियों का हमारे ऊपर भारी ऋण है।

पंच तत्व का यह शरीर है और इन्हीं के सहारे जीवित है इनमें से एक तत्व भी यदि धर्म पालन (कर्म करना) छोड़ दे तो पल भर में सारा संसार समाप्त हो जाय। इसलिये पंच तत्व रूपी देवताओं का तथा जिन जिन देवताओं का प्राणी मात्र से सम्बन्ध है)उनका भी हमारे ऊपर ऋण है। माता पिता जन्म दाता हैं उनके वीर्य से बना हुआ यह शरीर है, वह पालन पोषण करते हैं इसलिये उनका भी हमारे ऊपर ऋण है। व्रती उन तीनों ऋणों को उतारने का संकल्प करता है और तीन ऋणों का प्रतीक तीन तार का जनेऊ गले में (हृदय पर) धारण करता है। अब यह जनेऊ व्रती के कर्म का प्रतीक बन जाता है। इसके लिये जनेऊ नामक लोक-गीत के आगे का बोल है—सात गुण, आठ गुण, नौ गुण जनेऊ, नौ गुण जनेऊ लेके बरुआ को दीजे" व्रज भाषा में 'बरुआ' व्रती को कहते हैं।

जनेऊ के प्रथम ६ तारों को तीन तीन करके एक में बट देने का तथा अन्तिम तीनों तारों को अलग २ रखने से तात्पर्य यह है कि तीनों वेद के आधार पर धर्म, अर्थ और काम एक सूत्र रहने चाहियें किन्तु अन्तिम तीन कर्म एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। अतः इन्हें अलग अलग रखा गया है।

सन्ध्या-वन्दन, गायत्री-जाप तथा वेदादि शास्त्रों का

अध्ययन, पठन-पाठन और स्वाध्याय करके ऋषि-ऋण से उऋण होना माना गया है।

यज्ञादि शुभ कर्म करके देव-ऋण उतर सकता है और माता पिता की सेवा, मरने पर शास्त्रोक्त विधि से उनका क्रिया-कर्म, पिण्ड दान, श्राद्ध-तर्पण और गया आदि तीर्थों मे उनके नाम का पिण्ड-दान करके तथा सदाचारी पुत्र की उत्पत्ति करके पितृ-ऋण से मुक्त हुआ जासकता है। इनमें से एक ऋण भी शेष रहने पर मनुष्य मोक्ष पाने का अधिकारी नहीं माना गया है। द्विजाति मात्र पर यह नियम लागू होता है। तीनों ही कर्म का क्रियात्मक-स्वरूप अलग अलग होने के कारण जनेऊ के अन्तिम तीन तारों को एक में न मिलाकर अलग २ छोड़ दिया गया है।

स्त्री और शूद्र नियम पालन में असमर्थ होने के कारण यज्ञोपवीत धारण करने के अधिकारी नहीं माने गये हैं। अतः उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार भी नहीं है क्योंकि वेद पढ़ने का अधिकार यज्ञोपवीत धारण करने के उपरान्त ही होता है। विवाह के समय स्त्री का जनेऊ भी पुरुष धारण करता है। विवाह के समय से वह दो जनेऊ पहरने लगता है इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री भी जनेऊ(कर्म करने के कारण) की भागीदार है और उसे भी जनेऊ धारण करने का अधिकार है किन्तु गृहस्थ महिलायें बाल बच्चों का साथ होने के कारण तथा विशेष स्थिति वश यज्ञोपवीत के कठोर नियमों का पालन नहीं कर सकतीं और उसकी पवित्रता को भी बनाये नही रख सकतीं, इस लिये उनके कर्म (जनेऊ) का उत्तरदायित्व पुरुष के सुपुर्द किया गया है। अर्थात् उसके कर्म का अधिकारी पुरुष को माना गया है क्योंकि स्त्रियों और पुरुषों की दोनों की स्थिति भिन्न है। और

दोनों ही विवाह के पूर्व अपूर्णावस्था में माने गए हैं। विवाह संस्कार के सम्पन्न होने पर दोनों मिलकर पूर्णावस्था को प्राप्त होते हैं इसलिए परस्पर एक दूसरे के कर्म के भागीदार हैं। यहाँ महत्व की बात यह है कि यहाँ जो पति कर्म करता है उसमें आधे की भागीदार पत्नी होती है क्योंकि पुरुष ने जनेऊ के रूप में स्त्री के कर्म का उत्तरदायित्व ग्रहण किया है। किन्तु पुरुष यदि पाप कर्म करता है तो उसकी भागीदार स्त्री नहीं है क्योंकि स्त्री ने पुरुष के कर्म का कोई उत्तरदायित्व ग्रहण नहीं किया है। दूसरी ओर स्त्री यदि पाप कर्म करती है तो उसका भागीदार पति हो जाता है किन्तु स्त्री के पुन्य कर्म का भागीदार पति नहीं है।

"जनेऊ की पवित्रता"

जनेऊ को पवित्र रखने के लिए मल-मूत्र त्याग के समय उसे कान पर चढ़ाया जाता है। यथार्थ में जनेऊका महत्व उसके पवित्र रखने में तथा उसके नियमों के पालन करने में ही है। जनेऊ के अपवित्र होने का अर्थ सम्बन्धित व्यक्ति के कर्म का अपवित्र होना माना गया है।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि जिसका जनेऊ नहीं होता वह ब्राह्मण कुल में जन्म लेने पर भी शूद्र के समान माना गया है किन्तु जिसका जनेऊ अपवित्र हो जाय वह ब्राह्मण भी अछूत के समान माना गया है किसी को उसके छूने का धर्म नहीं है। यथार्थ में अछूत वही है जिसका कर्म अपवित्र है।

जनेऊ के अपवित्र होने के अनेक कारण हैं जिनमें से कुछ ये हैं। जनेऊ की ३ लड़ में जो ३ वेद और ३ पुरुषार्थ रूपी ६ तार एक में गुथे होते हैं उनमें से यदि एक भी तार टूट जाये तो जनेऊ अपवित्र हो जाता है अर्थात् इन ६ में से एक को भी अलग नहीं होना चाहिए।

मल मूत्र के समय कान पर न चढ़ाने से (मल मूत्र का जनेऊसे स्पर्श होने से) रजस्वला स्त्री के स्पर्श से, बिना स्नानादि किये भोजन करने से, गायत्री जप तथा सन्ध्या इत्यादि के न करने से झूठ बोलने से, १०यम और १० नियम मे से किसी एक का भी भग करने से, तथा किसी भी अकरणीय कर्म के करने से जनेऊ का अपवित्र होना माना गया है। जनेऊ के अपवित्र होने का अर्थ है सम्बधित व्यक्ति के कर्म का अपवित्र होना।

जिसका जनेऊ अपवित्र हो जाय उसे किसी को छूना नहीं चाहिए न किसी प्रकार का कोई कर्म करना चाहिये, मुख से आवाज निकालना भी वर्जित है क्योंकि वाणी से अनेक कर्म होते हैं और यज्ञोपवीत के कर्म का प्रतीक माना गया है इसलिये जब तक नया जनेऊ धारण न कर लियां जाये तब तक मुख से बोलना मना है। यदि किसी प्रकार का बोलना भी पड जाय तो २४ घंटे के उपवास द्वारा प्रायश्चित करने का विधान है जिससे जनेऊ की उपेक्षा न होने पाये अर्थात् यज्ञोपवीत के समय ग्रहण की गई प्रतिज्ञा की अवहेलना न होने पाये। उपेक्षा करने से अकर्म को प्रोत्साहन मिलता है। यज्ञोपवीत के समय किया हुआ सकल्प विस्मृत न हो इसलिये उस सकल्प की स्मृति ताजा बनाये रखने के लिये सब प्रपच अपने मन, वचन और कर्म को पवित्र रखने तथा अपने चरित्र को उन्नतिशील बनाए रखने की साधना है जिसे समाज द्वारा स्थापित नियम भी माना जा सकता है।

जिस प्रकार पाषाणादि की मूर्ति मे ईश्वर के सत्य स्वरूप की कल्पना कर ध्यान धारणादि सभी साधना द्वारा मानव ईश्वर के सच्चे स्वरूप को प्राप्त करता है-उसी प्रकार यज्ञोपवीत को कर्म का सच्चा प्रतीक इस कल्पित कर्म की कल्पित अपवित्रता

में सच्चे कर्म की सच्ची अपवित्रता की कल्पना कर सच्चे प्राय-श्चितादि आदि साधनाओं की सच्ची कसौटी पर नित्य-प्रति करते रहने से मनुष्य के आचरण का जो तपा हुआ खरा और निर्मल चरित्र सामने आता है उसकी तुलना में सभी साधन फीके पड़ जाते हैं। जिसका जितना अधिक तप है उसकी आत्मा उतनी ही अधिक पवित्र है और साधक उतना ही श्रेष्ठ माना गया है।

उपजातियाँ

वर्ण-धर्म के अन्तर्गत छोटी छोटी उपजातियों की उत्पत्ति का कारण प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक नियन्त्रण के घेरे में अनु-शासन से लाना ही प्रतीत होता है क्योंकि जनेऊ धारण कर लिया, आचार्यादि गुरु-जनों के सम्मुख सदाचार युक्त कर्म करने की तथा नियम पालन की प्रतिज्ञा भी ग्रहण करली किन्तु यह शंका कि इसका (व्रती द्वारा किए हुए व्रत का) ठीक २ पालन हो भी रहा है या नहीं ? कहीं (आज के समाज) जनेऊ धारी अपने व्रत की अवहेलना तो नहीं करता ? जनेऊद्वारा जो वेद पढ़ने का अधिकार प्राप्त किया है। अतः उसका दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है ? जनेऊधारी (वेदव्रतधारी) जिसे मन से, वचन से और कर्म से सदा स्वच्छ पवित्र और निर्मल होना चाहिए। वह अकर्म द्वारा दुराचारी बनकर जन-साधारण की दृष्टि में वेद का महत्व घटा तो नहीं रहा है ? क्योंकि जन-समूह पर किसी ग्रन्थ विशेष का या मन्त्रोच्चारण का अथवा किसी महात्मा के उपदेश का उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि उसके अनुयायी (व्यक्ति विशेष) का पड़ता है। उसके तप और त्याग का पड़ता है।

पुरातन इतिहास

इस विषय को ठीक ठीक समझने के लिये पुरातन इति-

हास की ओर भी थोड़ा ध्यान देना चाहिये जैसा कि महाभारत के उपरान्त हो चुका है जबकि वेद के उपासकों ने भांति भांति के कुकर्म, दुराचार, अन्याय करना आरम्भ किया और हिंसा का मार्ग ग्रहण किया तो उस जनसाधारण की दृष्टि में वेद का महत्त्व इतना गिर गया कि जिसके फलस्वरूप वेद-विरोधी तत्व बौद्ध-मत का आविर्भाव सभव हुआ। वेद को ब्रह्म वाक्य या ईश्वर का श्वास माना गया है और गौतम बुद्ध को भी ईश्वर का अवतार माना गया है। इससे यह तात्पर्य निकलता कि अपने वाक्यों का दुरुपयोग होते देख साक्षात परमात्मा ने अपने ही आदेश वैदिक-धर्म के पालन का निषेध किया और अपने ही वाक्यों का विरोध किया जिसके फलस्वरूप न केवल समूचा भारत बल्कि समस्त एशिया महाद्वीप से वैदिक धर्म का मूलोच्छेदन होगया। भारत में सत्य और अहिंसा का राज्य हुआ।

यद्यपि सत्य अहिंसा बड़ा उत्तम गुण है, बड़े ऊंचे भाव हैं और बड़ी श्रेष्ट संज्ञा है किन्तु इसे पूर्ण धर्म या सब कुछ नहीं माना जा सकता। अपने पैरों पर खड़े रहकर शत्रु से रक्षा करने की सामर्थ्य नहीं है साथ ही अपने सत्य और अहिंसक स्वरूप को बनाये रखना भी उसके लिये असाध्य सिद्ध हुआ। भारत में तो शनैः शनैः सत्य और अहिंसा के पुजारियों का स्वरूप वामाचारी बनता गया। प्रथम प्रभाव तो इसका यह पड़ा कि भारत के क्षत्रियत्व का सर्वथा लोप हो गया। भारत में अकर्मण्यता छा गई।

जब से भारत में बौद्धों का अहिंसक राज्य स्थापित हुआ तभी से विदेशी आक्रमण होने लगे। शक, हूँण आये और अगणित लुटेरों ने धावे किये यह क्रम बराबर चालू रहा। हजारों वर्ष पर्यन्त यही स्थिति रही। सम्राट अशोक बड़े शूरवीर और

प्रतापी चक्रवर्ती राजा हुये उनका यश अमर है। प्रथम उन्होंने भारी लड़ाई लड़कर समूचे भारत में विजय प्राप्त की। पीछे बौद्ध-धर्म के मूल सिद्धांत अहिंसा का व्रत धारण कर देश-देशांतर में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। साथ ही जिस सेना के द्वारा दिग्विजय प्राप्त की थी उसे तोड़ दिया।

महाराज नन्द की जिस सेना का पराक्रम सुनकर सिकंदर थर्रा गया था, उसकी सेना का साहस टूट गया था—महाराज चन्द्रगुप्त ने जिस सेना के बल पर शत्रु का ईरान तक पीछा किया और शत्रु को सुलह करनी पड़ी, यहां तक कि लड़की ब्याह कर पराजय स्वीकार करनी पड़ी उस सेना को सम्राट अशोक ने अहिंसा का व्रत ग्रहण कर भंग कर दिया। इससे सम्राट अशोक का यश तो अमर हो गया किन्तु भारत वासियों को आगे चल कर उनके उस कदम की भारी कीमत आज तक चुकानी पड़ रही है। (इसे आज चाहे कोई स्वीकार न करे किन्तु तथ्य यही है) वे ही लोग जो किसी समय पराजित हो चुके थे उन्हीं के वंशज भारत पर हावी हो गये। भारत में बौद्ध-धर्म किसी न किसी रूप में लगभग हजार वर्ष पर्यन्त रहा।

पतन का कारण

राज-धर्म की अवहेलना—श्री स्वामी शंकराचार्य ने यद्यपि वैदिक-धर्म का पुनरुद्धार किया और अपनी अल्पायु के अल्प काल में ही भारत वर्ष को उत्तर हिमालय से लेकर दक्षिण रामकुमारी तक बौद्धों से खाली करा कर उसमें वैदिक-धर्म तथा वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था पुनः स्थापित की। किन्तु हजारों वर्ष की रग रग में भरी अकर्मण्यता दूर न हुई। साथ ही वैदिक-धर्म का पुनरुद्धार करते समय राज-धर्म (जो केवल राजाओं पर लागू होता है कूटनीतिज्ञ होना जिनके लिए परमावश्यक है उसकी अव-

हेलना करदी) में कोरे रह गये। जिनका परिणाम यह निकला कि मुट्ठी भर मुसलमानों ने भारत पर अधिकार जमा लिया। दारुण दुराचार, जघन्य अत्याचार, कोई ऐसे शेष नहीं बचे जिनकी आजमाइश मुसलमानों ने हिन्दु जाति पर न की हो।

मुसलमानों ने भारत पर जहाद (धर्म युद्ध) बोला था वह हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति का मूलोच्छेदन करने आये थे किंतु हमारी सामाजिक व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी और उस पर हमें इतना विश्वास था कि उनकी यम यातना भी हमें अपने स्थान से डिगा न सकी और थोड़े दिन नहीं आठ सौ वर्ष पर्यन्त अपने धर्म को, अपनी संस्कृति को और अपनी सभ्यता को, हजारों जातियों सहित बचा लाए। यहां तक कि अछूतवर्ग जिनके लिए आज सवर्णों के अत्याचार का ढिंढोरा पीटा जा रहा है और शोषण की दुहाई फेरी जा रही है वह भी मुसलमानों द्वारा मरते-कटते उनसे लड़ते-भिड़ते हमारे साथ ही रहे। विशेषकर उस अवस्था में जबकि मुसलमान और (पीछे) ईसाई दोनों का उनके लिये न केवल द्वार खुला था अपितु साथ में अनेक प्रलोभन भी थे। दोनों ही उन्हें अपनी ओर खींचना चाहते थे किन्तु वह आज तक अलग न हुये। इस प्रकार यदि देखा जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मुसलमानों ने भारत पर शासन करते हुए भी हिन्दु-समाज पर शासन नहीं किया। किंतु हिन्दू-समाज अंग्रेजों की कूटनीति के आगे नतमस्तक होगया। यद्यपि उन्होंने आज भारत के शासन-तंत्र से अपना पंजा समेट लिया है किन्तु हम उनके मानसी गुलाम बन चुके हैं जिससे छुटकारा पाने की आज कोई सूरत दिखाई नहीं देती। आज हम अपने धर्म का गला स्वयं काटने को तैयार हैं। हम अपने धर्म संस्कृति व सभ्यता सबका मूलोच्छेदन स्वयं कर डालना चाहते हैं। आज हमारी सारी शक्ति आत्म-घात करने में लगी

हुई है। यह है वेद के अनुयायी जन-समूह के हिमक तथा दुराचारी बनने का दूरवर्ती प्रभाव। इसे आज कोई चाहे भले ही स्वीकार न करे किन्तु तथ्य यही है इसीलिये शास्त्रकारों ने प्रत्येक व्यक्ति को वेद पढ़ने का अधिकारी नहीं माना है और वेद के व्रती के लिये बड़े कड़े नियमों के पालन का विधान लागू किया है। आज पाखण्ड बना कर जिसके प्रति घृणा पैदा की जा रही है। स्मरण रहे जिस घर की नींव कमजोर होगी उसके एक ही झटके में ढह जाने की सम्भावना है। इसी प्रकार समाज की जिस व्यवस्था का आधार कमजोर होगा, वह प्रथम आघात में छिन्न-भिन्न हो सकती है।

हमारी सामाजिक व्यवस्था में यदि थोड़ी भी कमी होती तो वह इतने भारी झंझावात (हजार वर्ष पर्यन्त विधर्मियों के शासन की प्रताडना) सहन न कर पाती बल्कि हिन्दू राज्य के डगमगाते ही भंग हो गई होती। ऐसा न होकर वह अब तक न केवल टिकी रही, बल्कि उसके आन्तरिक क्षेत्र में किसी प्रकार की अशान्ति भी उत्पन्न न हो पाई। साथ ही इसके जिस भाग में (शासन तन्त्र में) कमजोरी थी वह तत्काल छिन्न-भिन्न होगया।

यह सब मेरे लिखने का विषय नहीं है। इस सब प्रपचों की चर्चा तो प्रसंगवश करनी पड़ी। मूल विषय जो ऊपर रह गया वह यह है कि यज्ञोपवीत या व्रत ग्रहण करने पर पुनः प्रश्न उठता है कि इसके नियम का उचित रूप से पालन किस प्रकार संभव हो?

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि वेद के अनुयायी को तन, मन वचन और कर्मसे पवित्र रहना चाहिये वह कैसे सम्भव हो? क्योंकि बहुत से व्यक्ति संसार के अमित प्रलोभनों मे आकर्षित होकर यज्ञोपवीत धारण करते समय की गई प्रतिज्ञा पालन

करने में ढील डाल सकते हैं। यहाँ पूर्व के पड़े हुए कुसंस्कार भी बाधक बन सकते हैं जोकि अनेक प्रकारके होते हैं जैसा कि ऊपर बताया भी जा चुका है—इनमें ४ मुख्य हैं। १ पूर्व जन्म के, २ पूर्वजों के, ३ गर्भ के और ४ बचपन के। जैसे संस्कार होते हैं वैसी ही प्रकृति मनुष्य में आती है। संगति का प्रभाव भी पड़ता है अतः क्या किया जाय? प्रश्न ज्यों का त्यों रहा। क्योंकि विस्तृत घेरे में बिखरे हुये असंख्य-मानवों के आचरण पर नियंत्रण लगाना और उसे वंश-परम्परागत चालू रखना कठिन ही नहीं असंभव प्रतीत हुआ।

सामाजिक बन्धन और दण्ड का विधान

यदि यह भी मान लिया जाय कि वीतरागी महर्षियों के तप से, या उनके पुरुषार्थ से उनके समकालीन प्रत्येक व्यक्ति का आचरण पवित्र और निर्मल हो गया, उसका नैतिक स्तर बहुत ऊंचा उठ गया और उनमें से किसी के भी जीवन में परिवर्तन की कोई संभावना भी नहीं रही फिर भी शरीर नाशवान है। प्रत्येक व्यक्ति की विद्या, बुद्धि, विचार, कर्म और आचरण उसकी आयु तक सीमित है अतः मानव समाज के चरित्र चित्रण का यह क्रम वंश-परम्परा के लिये चालू कैसे रहे? यह समस्या सामने आई। ईश्वर और वेद में विश्वास रखने वाले सत्य के शोधक महापुरुषों के लिये कुछ भी असंभव नहीं। उन पारदर्शी महर्षियों ने वर्ण-धर्म के अन्तर्गत मानव-समुदाय को उनके भिन्न भिन्न कर्म तथा जीविकोपार्जन के भिन्न-भिन्न साधनों के अनुरूप छोटी-छोटी स्थानीय श्रेणियों में विभक्त कर प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक बन्धनों में बांध दिया। जातीय प्रथा प्रचलित हुई। इस प्रकार अपनी अपनी जाति के प्रत्येक व्यक्ति के आचरण पर दृष्टि रखने का साधन ढूंढ निकाला और प्रत्येक वर्ण के लिये

सरे का कर्म करना वर्जित कर दिया। गीता में श्री भगवान ने हा भी है—"श्रेयान स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्, स्वधर्मे निधनंश्रेयः परधर्मो भयावहः" गीता अ० ३ ३५ अर्थ— इसलिये उन दोनों (राग द्वेष) को जीत कर सावधान हो स्वधर्म का आचरण करे, क्योंकि अच्छी प्रकार आचरण किये हुये दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी कल्याण कारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है। (गीता)

सहकुटुम्ब प्रणाली ने रही सही कमी दूर कर प्रत्येक व्यक्ति की गति-विधि पर दृष्टि रखने में बड़ी सहायता की। सबको अपने धर्म पर इतना दृढ़ विश्वास था कि धर्माचरण के सम्बन्धमें कोई भी किसी प्रकार का पक्षपात नहीं कर सकता था। यहाँ तक कि पिता-पुत्र, भाई-बहिन, पति-पत्नी तक भी धर्म विरुद्ध आचरण करने वाले का कोई साथ नहीं देता था। जिस व्यक्ति के आचरण भ्रष्ट होने का सन्देह होता वह दूध में से मक्खी की भाँति बिना किसी पक्षपात के निकाल कर बाहर फेंक दिया जाता था अर्थात् जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था और जब तक प्रायश्चित न करले तब तक ऐसे व्यक्ति से कोई सम्पर्क स्थापित नहीं किया जा सकता था। धर्म ग्रन्थों में लिखा भी है—

एक कुटुम्ब की पवित्रता की रक्षा के लिए एक व्यक्ति का, एक ग्राम के लिये एक कुटुम्ब का, एक नगर के लिए एक गांव का और पूरे देश (राष्ट्र) की रक्षा के लिये एक नगर का भी त्याग कर देना चाहिये।

प्रत्येक समाज के पास दण्ड देने का यह सबसे बड़ा अधिकार सुरक्षित था क्योंकि दंड देने का अन्य अधिकारी न्यायाधीश को (जो कि राजा का प्रतिनिधित्व करता था)

गया है। किन्तु बड़े से बड़े दन्ड से बढ कर इस समाज के दण्ड का लोगों का भय रहता था। समाज से (जाति से) बहिष्कृत करने की पहिचान थी—उनका छुआ पका भोजन न करना और उनके साथ शादी-विवाह का व्यवहार न करना इत्यादि।

इस प्रकार आचार विचार सम्बन्धी सामाजिक नियम पालन करने में कठोरता बरती जाती थी यज्ञोपवीत सम्बन्धी अनेक नियम भी सामाजिक ही माने जाते थे। जाति से निष्कासित मनुष्य बरबाद हो जाता था क्योंकि कोई उसका साथ नहीं देता था।

अधिकारी नहीं

वैदिक-धर्म या वर्णाश्रम धर्म का पूरा ढांचा जनेऊ के आधार पर खड़ा किया प्रतीत होता है क्योंकि वेद निहित सारे कर्म-कांड और सारे संस्कार पालन करने के अधिकारी वे ही माने गये हैं जिनका जनेऊ हो चुका है। यज्ञोपवीत विहीन व्यक्ति के जीवन व मरण को कोई महत्व नहीं दिया गया। न द्विजातियों में उसको कोई अधिकार प्रदान किया है। चाहे जितना योग्य विद्वान तथा उच्च पदाधिकारी क्यों न हो उसके जीवन का कोई सामाजिक महत्व नहीं माना गया क्योंकि यज्ञोपवीत विहीन व्यक्ति की संज्ञा शूद्रों से की गई है। यद्यपि विपरीत काल में पड कर ब्राह्मणेत्तर व्यक्तियों ने जनेऊ धारण करना त्याग दिया और इसके पालन का उत्तरदायित्व केवल ब्राह्मणों पर छोड स्वयं निश्चिन्त हो गये। अत: आज भी ब्राह्मणों पर यह बन्धन लागू होता है।

यज्ञोपवीत विहीन व्यक्ति वैदिक विधि से विवाहादि वैदिक संस्कार का अथवा कोई पुण्य कर्म, यज्ञ दानादि धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकारी नहीं, वह माता पिता का क्रियाकर्म पिंड दान, श्राद्ध-तर्पण इत्यादि वैदिक विधि से कुछ नहीं कर सकता।

न शास्त्रों ने उसे पैतृक सम्पति का अधिकारी माना है। यहां तक कि ऐसे व्यक्ति के मरने पर उसका दाह संस्कार भी शास्त्रानुकूल करने का विधान नहीं है (ऐसे व्यक्ति का केवल जल प्रवाह किया जा सकता है) दसवा, ग्यारहवीं, तेरहवीं, मासी, वर्षी, चौबर्सी, श्राद्ध, तर्पणादि पाने का भी यज्ञोपवीत विहीन व्यक्ति अधिकारी नहीं माना गया है। फिर चाहे वह जैसा मान्य, सर्वगुण सम्पन्न और चाहे जैसी योग्यता रखने वाला ही क्यों न हो किन्तु उसके मरने पर सामाजिक नियमानुसार शोक मनाने का चलन आज भी कमसे कम ब्राह्मणों में तो नहीं है। न ऐसों के लिये घर वाले साल भर का स्यापा बिठाते थे और न ऐसों के लिये स्त्रियों में वर्ष या चार वर्ष पर्यन्त (जैसी कि प्रथा रही है) शोक मनाने का समाजिक नियम है। तात्पर्य यह है कि यज्ञोपवीत विहीन व्यक्ति के लिये जीवन का कोई महत्व नहीं दिया गया।

ताजा उदाहरण

ऐसे ताजे उदाहरण भी हैं जबकि जवान पढ़े लिखे लड़के की लाश को लेकर पिता श्मशान घाट पहुँचता है वहाँ समस्या खड़ी होती है कि इस लाश का क्या किया जाय ? जनेऊ न होने के कारण दाह संस्कार हो नहीं सकता और इतनी भारी दो मन की लाश का जल प्रवाह करते नहीं बनता, हृदय गवाही नहीं देता अतः क्या किया जाय ? उसी समय पाँच पंचों ने मिलकर उसके गले में जनेऊ डाला फिर उसका दाह संस्कार किया गया।

सबसे बड़ी शपथ यज्ञोपवीत की मानी गई है। संकट पड़ने पर भी कोई द्विज जनेऊ की कसम खाने से झिझकता था। जनेऊ की शपथ का अर्थ था जीवन पर्यन्त किये गये सब सत्कर्मों को दांव पर लगा देना जिसका सम्बन्ध न केवल इस जन्म से है

सब बुराई की जड़ मन और इन्द्रियाँ हैं इसमें भी प्रमुख मन है। मन की गति जल के समान है, जल नीचे को जाता है और मन भी नीचे की ओर ही भागता है। जैसे जल को ऊपर लाने को पुरुषार्थ करना पड़ता है उसे रोकने को बन्धन चाहिये उसी प्रकार मन को रोकने के लिये बन्धन लगाना पड़ता है। उसे ऊंचा उठाने के लिये कठिन पुरुषार्थ की आवश्यकता है जिसके लिये नित्याभ्यास चाहिये। अभ्यास (ध्यान, धारणा इत्यादि) से आंतरिक नियंत्रण लगाया जा सकता है।

वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था, १६ संस्कार का विधान, छोटे छोटे वर्ग की रचना और भिन्न २ श्रेणियों के अपने अलग २ नियम निर्धारित होने के उपरान्त भी मन और इन्द्रियां यदि वश में नहीं हैं और आन्तरिक नियंत्रण को स्थिर रखने लिये, बाहरी रोक न लगाई गई तो दोनों मिलकर सबकी अवहेलना कर जायेंगी। प्रत्येक व्यक्ति पर यह बात लागू होती है।

जहां एक अपराधी हो, वहां सब मिल कर उसे दण्ड दे सकते हैं। किन्तु जहां सभी समान अपराधी हों, वहां कौन किस पर उंगली उठा सकता है? (आज की स्थिति भी तो ऐसी ही है) क्योंकि सभी का सांसारिक भोगों के प्रति स्वाभाविक आकर्षण है। फलतः सामाजिक व्यवस्था अथवा मानवता के छिन्न होते देर न लगेगी और ऊपर से नीचे तक सारा बना बनाया ढांचा ढह जाने की संभावना सदा बनी रह सकती है। इसलिये मन तथा इन्द्रियों पर बाहरी नियंत्रण रखना परमावश्यक हो गया। पर यह अभ्यास कैसे हो, मन तथा इन्द्रियों पर ऊपरी दबाव कैसे डाला जाय यह प्रश्न पुन: प्रस्तुत हुआ।

भोजन में भेद

यहाँ सोचा गया कि भोजन का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति के मन और मस्तिष्क दोनों पर पड़ता है और प्रत्येक व्यक्ति का

ोटी से सम्बन्ध है। जिस प्रकार धर्म व्यक्तिगत सम्पत्ति है उसी प्रकार भोजन का सम्बन्ध भी व्यक्तिगत है। किसी एक व्यक्ति का किया हुआ भोजन, अर्थात् खाई हुई वस्तु का किसी दूसरे के पेट में पहुँचना कदापि सम्भव नहीं। यदि कोई व्यक्ति दूसरे के हाथ का छुआ भोजन नहीं करता तो वह अपनी हानि करता है न कि किसी दूसरे की। वह अपने शरीर को त्रास देता है न कि किसी दूसरे को। यह सब सोच विचार कर अपने मन तथा शरीर को कसने के लिये और मन को हर घड़ी नियंत्रण में रखने के लिये, भोजन सम्बन्धी भांति-भांति के नियम (आचार विचार) लागू हुए क्योंकि अपने भोजन को नियमित करना सबसे सरल प्रतीत हुआ। अधिकांश प्रदेशों में कच्चे और पक्के भोजन में भेद रखना स्वीकार हुआ अर्थात् जो अन्न का भोजन बिना घी बना हो उसे कच्चा और जो घी के साथ बने उसे पक्का माना जाय। सबने एक मत हो यह निर्णय किया कि कच्चा भोजन किसी दूसरी बिरादरी के हाथ का छुआ न खाया जाय। यही ाहीं यह नियम भी लागू हुआ कि कच्चा भोजन लिपे-पुते स्वच्छ चूल्हे पर लिपे-पुते स्वच्छ स्थान (चौके) में बैठकर धुले हुये स्वच्छ वस्त्र को धारण कर बनाया जावे और उसी प्रकार स्वच्छता के साथ चौके में बैठ कर ही खाया भी जाय। चौके के बाहर भी खाने में उसी प्रकार की स्वच्छता के पालन का नियम लागू हुआ। चौके के बाहर (अपवित्र स्थान में) भोजन करने से जनेऊ अपवित्र हुआ माना जाता था क्योंकि किसी भी नियम के भंग करने से जनेऊ का अपवित्र होना माना गया है। जिसके प्रायश्चित का विधान है। पक्का भोजन चारों वर्णों (जोकि अछूत नहीं है) के हाथ का छुआ हुआ खाने में कोई रुकावट नहीं।

कठोर नियम

अनेक जातियों ने इस नियम को और भी कठोर बना

लिया उनमें अपनी पुत्री या पुत्रवधू के हाथ का छुआ कच्चा भोजन नहीं करते। यह नियम भी एक से नहीं हैं सब जातियों के अपने अलग अलग नियम हैं। अनेक जाति में ऐसे नियम भी हैं जोकि कच्चा भोजन पुत्रवधू के हाथ का छुआ उस समय तक नहीं खाते जब तक उसके निमित्त बिरादरी का भोज करके उनके सामने बहू को कोई जेवर या बड़ी रकम न दे दें। किसी जाति में पुत्र-वधू के हाथ का छुआ खाने का चलन ही नहीं है। किसी जाति में ब्याही लड़की का और किसी में क्वारी लड़की के हाथ का छुआ कच्चा भोजन नहीं किया जाता।

अनेक प्रान्तों में कच्चे पक्के का भेद नहीं किया गया किन्तु वहाँ भी लड़की या पुत्र-वधू के हाथ का छुआ खाने में परहेज है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि द्विजातियों में भोजन सम्बन्धी नियम, अपने शरीर तथा मन को कसने के लिये और इन्द्रियों को नियंत्रण में रखने के लिए होते हैं। यहां विशेषता यह है कि इस व्यक्तिगत नियम को सामाजिक रूप देकर उसकी परम्परा लागू करदी गई जिससे आगे का सन्तति अनियंत्रित न हो जाय। (यज्ञोपवीत संबंधी) अनेक नियम और नियंत्रण इसमें सामाजिक ही हैं क्योंकि समाज का ही नियंत्रण रहना है) इस नियमित्त भोजन के बहुत से लाभ हैं भोजन में, पवित्रता तथा नियमित आहार से स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। विद्या, बुद्धि मन, मस्तिष्क और विचारों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। मन को नियंत्रण में रखने का अभ्यास भी बना रहता है जिससे कर्म भी अच्छे होते हैं। गीता में लिखा है—

"युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु,युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा"

अर्थ—यह दुखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार करने वाले का तथा कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने

वाले का और यथायोग्य शयन करने वाले तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है। गीता अ० ६। १७।

यह भोजन संबंधी सामाजिक नियम या बंधन कहने में जितना सरल प्रतीत होता है इसका उचित रूप मे पालन करना उतना ही कठिन है यहाँ भोजन सामने होने पर भी भोजन को त्याग कर नियम पालन की परीक्षा उस समय होती है जबकि कड़ाके की भूख लगी हो, नियमित भोजन का कोई प्रबन्ध न हो और अनियमित भोजन आगे हो।

इस प्रकार भोजन संबंधी कृत्रिम-भेद (कच्चा पक्का, छुआ-छूत, चौका चूल्हा अलग अलग रखने का) मूल कारण अपने मन को, शरीर को तथा इंद्रियों को हर घड़ी कसौटी पर कसते रहना था।

अपने मन को बाँध रखने का और बुराइयों से दूर रहने का अभ्यास बनाये रह कर इसे सामूहिक रूप क्रियान्वित करने का इतना उत्तम साधन दूसरा कोई आज तक किसी के समझ में नहीं आया (क्योंकि किसी ने ऐसी कोई दूसरी योजना प्रस्तुत नहीं की जिसका जन-साधारण के चरित्र को पवित्र रखने से संबन्ध हो और सामूहिक रूप मे जिसका सब पालन करें)। जो लोग इसके महत्व को नहीं समझते वे आडम्बर, पाखण्ड या ढोंग मानते हैं साथ ही भेद दृष्टि द्वारा प्रतिपक्षी का अपमान और उसके प्रति अत्याचार भी मानने लगे हैं किन्तु यह बात नहीं है। ऐसा करने वाला यदि किसी पर कोई अत्याचार करता है तो वह केवल अपने आप पर करता है, न कि किसी दूसरे पर। यह सामाजिक नियम था इसमें भोजन का प्रबन्ध व्यक्तिगत होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति के खान, पान, आचार विचार, तथा आहार बिहार पर समाज के प्रत्येक व्यक्ति की एक दूसरे पर

कड़ी निगाह रहती थी।

इतनी कड़ी तपस्या और इतने कठोर बन्धन लगाये जाने के उपरान्त तब कहीं यज्ञोपवीत के समय की गई प्रतिज्ञा का और दूसरे शब्दों में सामान्य धर्म का पालन किसी सीमा तक संभव हो पाता था क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति तत्व दर्शी नहीं है। सामाजिक नियम उनके जीवन को भी सुधार देते हैं जो केवल सांसारिक विषयों में फंसे रहने के आदि हैं। वे लोग जिनके पूर्व संस्कार ही राग द्वेष तथा ईर्ष्यामय हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि दुर्गुण ही जिन्हें प्रिय हैं, जिनकी स्वाभाविक प्रकृति ही कुत्सित है, सामाजिक नियम, बन्धन और धार्मिक ग्रन्थ उन्हें भी सीधे मार्ग पर चलने के लिये न केवल बाध्य करते हैं बल्कि उनके लिये जीवन मुक्त होने का साधन भी प्रस्तुत करते हैं। कम से कम उनको सांसारिक पतन और दुर्गुणों में रत होने से तो बचा ही लाते हैं।

शूद्रों पर प्रभाव

यह व्यवस्था द्विजातियों ने अपने अन्दर स्थापित की। सफलता मिलने पर शूद्रों को भी प्रोत्साहित किया। उन्होंने भी अपने अन्दर सुधार किया, और अपने सामाजिक नियम, पंचायतें तथा जाति-दण्ड इत्यादि निर्धारित किये अतः उनको भी अपने चरित्र सुधारने का अवसर मिला। उदाहरणार्थ मैं अपना अनुभव लिखती हूँ—अब से चार वर्ष पूर्व, मेरे घर में चाचा और भतीजे दोनों नौकर थे। भतीजे ने चोरी की, वह पुलिस के हवाले गया, वहाँ उसका चालान हुआ, चार महीने की सजा हुई। छूटने पर वह अपने घर मिर्जापुर गया तब तक चाचा ने पत्र द्वारा ग्राम में चोरी करने की सूचना भेज दी थी। फलतः उसकी बिरादरी वालों ने चोरी करने के अपराध में उसे

जाति बहिष्कृत कर दिया। कानूनी सजा भुगत कर तो वह ४ माह में वापस आगया किन्तु सामाजिक दण्ड से छुटकारा पाना उसके लिये असाध्य हो गया। उसे देखकर कितने ही व्यक्ति अपराध से बच गये।

विवाह के समय कुटुम्बी जन तथा बिरादरी वालों को साथ जाना यह बताता था कि वर का खानदान पवित्र है, बिरादरी वाले साथ हैं, वह बहिष्कृत नहीं है। यह है सामाजिक बन्धन और छोटी २ जातियों का महत्व।

यह सब लेख से बाहर का विषय है। यहाँ प्रसंग यह चल रहा है कि यज्ञोपवीत की साधना कितनी कठोर है जोकि मनुष्य को तपा कर खरा बना देती है। यदि ध्यान से देखा जाय तो सीधे-साधे सामान्य धर्म को क्रियान्वित करने के निमित्त भेद-युक्त विशेष धर्म का निरूपण हुआ, जिसके अन्तर्गत अनेक रोक लगाई गई और अनेक बन्धन डाले गये तब कहीं किसी सीमा तक सामूहिक रूप में इसका पालन संभव हुआ। इक्के दुक्के महापुरुष की बात दूसरी है जोकि विरले होते हैं। कुसंगति पाकर उनके गुण और पूर्व के सारे उत्तम संस्कार भी दबे रह जाते हैं। प्राकृतिक आकर्षण के प्रबल वेग का वही विवेकवान और विरले महापुरुष सामना कर सकते हैं जिन पर भगवान की विशेष कृपा हो। ऐसी ही महान आत्मायें हमारी मार्ग प्रदर्शक रही हैं। ऐसी महान आत्मायें सदा पृथ्वी पर नहीं आतीं। हजारों वर्ष में कोई एक उत्पन्न हो जाता है। वह भी तब जब भारत का नारी धर्म जोर पकड़ता है। मानव समाज का उद्धार करने के लिये जिनके रूप में ईश्वर प्रकट होता है तात्पर्य यह है कि ऐसी कठिन तपस्या तथा पग पग पर कसे जाने के उपरान्त तब कहीं मन, वचन और कर्म से व्यक्ति विशेष का चरित्र निर्मल, स्वच्छ और

पवित्र बन पाता है। ऐसे तपे हुये खरे स्त्री पुरुषों को जो समाज सामने आता है उसकी श्रेष्ठता मे किसी को सन्देह करने की कोई गुंजायश नहीं रहती।

आपद्धर्म

यह सारी व्यवस्था शान्ति-काल और स्वराज्य में पनप सकती है। अशान्त वातावरण मे अधर्मी या विधर्मी के राज्य में किसी का कोई धर्म-कर्म शेष नहीं रहता। सारी व्यवस्था भंग हो जाती है। जप, तप यम, नियम, खान पान, संयम, आचार विचार, आहार, विहार सब बदल जाते हैं। ऐसे समय के लिए आपद्धर्म को प्रयोग मे लाने का धर्म ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है (मारे हुये शत्रुओं के ऊपर बैठ कर भोजन करने का उदाहरण भी मिलता है) जिसके लिये समयानुसार धर्म का जितना अंश पालन करते बने उतना करना अवश्य चाहिये। सुअवसर प्राप्त होने पर प्रयश्चित कर अपने धर्म पर पुनः दृढ़ हुआ जा सकता है। बड़े से बड़े ब्रह्महत्या तक के पाप का प्रायश्चित धर्म ग्रन्थों में लिखा है किन्तु इस स्थिति को अधिक समय तक टिकना नहीं चाहिये। इससे धर्म का नाश और मानव सभ्यता के भंग होने का अवसर आ सकता है। महाशान्ति पर्व में लिखा है कि विपत्ति के समय अधर्म भी धर्म समझ कर किया जाता है किंतु सूक्ष्मदर्शी पंडितों का कहना है कि इस प्रकार का धर्म अधर्म ही है।

वैदिक धर्म की जितनी भी व्यवस्था, जितने भी नियम, और जितने भी साधन थे उनका मूल उद्देश्य आत्मान्नति करना तो था ही, साथ मे सबको सुखी करना भी था—

> "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत्॥

सर्वेस्तरतु दुर्गाणि, सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्व कामानावाप्नोतु, सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥

अर्थात् सभी प्राणी सुखी हों और सभी प्राणी निरोग हों, सभी अच्छी वस्तुओं को देखें और संसार में कोई व्यक्ति दुःख या कष्ट का भागी न रहे। जितने भी कष्ट हों उनको वे प्रसन्नतापूर्वक पार कर जायें। सभी प्राणी इच्छित का भोग करें (प्राप्त करें) और सब लोग सभी स्थान में रहकर सुखी और प्रसन्न रहें।

अनादि काल से वैदिक धर्म का, समाज का और परिवार का यही लक्ष्य रहा है और भारत के राष्ट्रीय जीवन का भी यही आदर्श होना चाहिये।

सहकुटुम्ब प्रणाली

भारत में वैदिक धर्म के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था के साथ यहां की पारिवारिक व्यवस्था भी अपना विशेष महत्व रखती है। प्राचीन काल से प्रचलित कौटुम्बिक प्रणाली अभी भी पूर्णतः समाप्त नहीं हो पाई है। कहीं-कहीं बहुधा गांव में आज भी इसका आभास मिलता है। यद्यपि वहां भी उसमें विषमता आ गई है और धीरे-धीरे वहां भी यह टूटती जा रही है। किन्तु अभी पूर्णतः समाप्त नहीं हो पाई है।

पारिवारिक व्यवस्था में सबके प्रति परस्पर कर्तव्य पालन को मुख्य स्थान दिया गया है। न केवल अपने-अपने स्त्री बच्चों का बल्कि परिवार के प्रत्येक असहाय व अपंग विभाग को इसमें सहारा मिल जाया करता था। यहाँ सौ सौ और दो-दो सौ प्राणियों तक का एक कुटुम्ब होता था। सबका खानपान (चूल्हा-चौका) रहन सहन एक था। घर का प्रत्येक व्यक्ति इस कुटुम्बरूपी संस्था के सदस्य के समान था। बड़े बूढ़े अनुभवी व्यक्ति की प्रधानता में घर का पूरा प्रबन्ध चलता था। भलाई बुराई का पूर्ण उत्तरदायित्व प्रधान के ऊपर रहता था। बड़े की आज्ञा सबको माननी पड़ती थी। किसी की कम और किसी की ज्यादा जैसी आय होती सब प्रमुख के हाथ मे देकर प्रत्येक युवक स्वास्थ्य को क्षीण करने वाली गृहस्थी की हर घड़ी की प्रत्येक उलझनों से मुक्त हो जाते थे। खाना, खेलना, परिश्रम करना, आनन्द से निश्चित रहना और सुख से सोना यह युवकों का काम था।

इसमें एक लाभ यह भी था कि अधिक आय वाले को अपनी

महानता का और कम आय वाले को अपनी हीनता का अनुभव नहीं हो पाता था। सब में समानता का भाव बना रहता। किसी व्यक्ति की मृत्यु से हुई क्षति का प्रभाव अबके समान उसके स्त्री बच्चों पर या किसी व्यक्ति विशेष पर न पड़ कर पूरे परिवार की क्षति मानी जाती थी। इससे परिवार रूपी संस्था का एक सदस्य कम होने के अतिरिक्त कोई विशेष अन्तर नहीं आ पाता। व्यक्तिगत लाभ और हानि का थोड़ा थोड़ा अंश सबमें विभाजित हो जाया करता था। इस प्रकार सब काम समान रूप से चला करता था। विधवाओं को पति के अभाव की मानसिक वेदना के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के अभाव की या बच्चों के पालन पोषण जनेऊ विवाह इत्यादि की कोई चिन्ता करनी न पड़ती। बल्कि इस बात की चेष्टा की जाती थी कि विधवा को किसी प्रकार का अभाव न खटके इसलिये अधिकांशतः यही देखने में आता है (था) कि घर का प्रत्येक अधिकार (पुरखान्त) उसके सुपुर्द कर उसे घर की मालकिन बना दिया जाता था। तात्पर्य यह है कि उसके दुःख कम करने की हर प्रकार चेष्टा की जाती थी।

मायके वाले भी विधवा बेटी या बहिन का बहुत ध्यान रखते थे। वहाँ भी उसके मन रखने का भरसक प्रयत्न किया जाता। वह कभी मायके और कभी सुसराल में रह कर हंसी-खुशी बेफिकरी से अपना जीवन काट लेती थी। सधवाओं के लिये तो सुसराल में बंध के रहना आवश्यक था। किंतु विधवाओं के लिये तो दोनों द्वार खुले होते। दोनों ही जगह मान पाती। उन्हें किसी प्रकार के अभाव का अनुभव न हो, उनका चित्त न दुखे, इस बात का प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान रखना पड़ता था (विधवाओं के प्रति यह बर्ताव अब भी किसी किसी भद्र-कुल या समाज में पाया जाता है, किंतु बहुत कम। समाज का ध्यान भी

इस ओर विशेष रहता और विधवाओं के कष्ट पाने पर घर वालों को समाज की कड़ी आलोचना (बदनामी) का सामना करना पड़ता था।

इसी प्रकार बिना माँ-बाप के बच्चे पिता या माता के कुल में एक व्यक्ति के भी जीवित रहने पर अनाथ नहीं माने जाते थे। अनाथ वही गिना जाता—जिसका एक भी सगा या संबंधी जीवित न हो और न उसके पास कोई निजी संम्पत्ति हो। जिसे कुटुम्ब का सहारा तकना पड़े, उसी की गणना अनाथों में की जाती थी ऐसे भी कितने ही प्राणी बालक तथा विधवायें कुटुम्ब के सहारे पल जाया करते थे। लड़कियों का पैतृक सम्पत्ति में कोई अधिकार न होने पर भी उन्हें उचित अंश अनेक रूप में समय समय पर जीवन पर्यन्त बल्कि पीछे उनके बालकों तक को मिला करता था अभी भी यह प्रथा भंग नहीं हो पायी है। भांजे-भांजियों के विवाह में भात देने का अब भी चलन है।

यदि स्त्रियों में थोड़ी सी सूझ-बूझ समझदारी तथा सुलह से रहने की क्षमता हो तो यह मानना चाहिये कि कुल मिला कर यह व्यवस्था पूर्ण थी। इससे अच्छा संगठन की व्यवस्था का कदाचित ही कोई दूसरा उदाहरण मिल सके।

किन्तु इस समय वातावरण ही कुछ और है। इस बदली हुई मनोवृत्ति के फलस्वरूप सधी हुई पारिवारिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई जिसका कुप्रभाव प्रत्यक्ष देखने में आता है और पूर्ण रूपेण प्रभाव जैसा कुछ आगे आने वाला है, इसका आभास अभी से मिलने लगा है।

तत्कालीन प्रभाव जिस भाग पर पड़ा है वह कुटुम्ब के सहारे जीने वाला असहाय या अपंग विभाग, जोकि इस समय बिल्कुल अनाथ हो गया है।

स्मरण रहे, असमर्थ और दुर्बल व्यक्ति ही मेरा-तेरा सगे सम्बन्धी का सहारा तका करता है। परन्तु आज की डाँवा-डोल स्थिति और बदली हुई मनोवृत्ति के कारण प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य क्षेत्र अपने स्त्री बच्चों तक सीमित रह गया है। माता-पिता का सिर पर रहना (जीवित रहना) आज एक दुर्भाग्य की बात बन गई है और उनका भी भरण पोषण करना स्वेच्छा पर निर्भर है। ऐसा करने वाला कर्तव्य परायण और उदारता का प्रतीक माना जाता है, जबकि प्राचीन प्रथा के अनुसार अब भी न केवल माता-पिता बल्कि भाई बन्धु, सगे-संबन्धी, निर्धन, अनाथ, असहाय, विधवायें जिनका कोई निजी सहारा न हो, अपने-अपने सम्बन्ध के अनुसार सभी समर्थ व्यक्ति से आर्थिक सहायता तथा हार्दिक सहानुभूति पाने की लालसा करते हैं। किंतु आज सब ओर से उन्हें ठोकरें मिलती हैं। इस यातना का पूर्ण रूपेण शिकार आज कुलीन विधवाओं तथा अनाथ बच्चों को बनना पड़ता है। गृहस्थ विधवा को सहारा देने वाले आज बहुत कम कहीं कोई विरले दिखाई देते हैं। वे स्त्रियाँ जो सदा से घर में पुरुषों के ही सहारे रहती आई हैं और बाहरी संसार से सर्वथा अपरिचित हैं, उनके ऊपर तो पहाड़ सा ही टूट पड़ता है। वह लज्जावश न कहीं आ-जा सकती हैं, न बाहर निकल कर कोई मेहनत मजदूरी ही कर सकती हैं। न वह जीवकोपार्जन का कोई ढंग ही जानती हैं न उन्हें शिक्षा सम्बन्धी कोई ज्ञान है। सम्बन्धी कोई पूछते नहीं। ऐसी सूरत में वह कहां जायें क्या करें ? क्यों कर छोटे छोटे बच्चों का पालन करें और अपने जीवन के दिन पूरे करें। यह सोचने और समझने की बात है। जिसके घर में छोटे छोटे पांच सात बच्चे हैं उन्हें घर से ही बहुत कम अवकाश मिल पाता है, तिस पर विधवा हो या सधवा, आज-कल बाल-बच्चों वाली स्त्रियों का स्वास्थ्य बहुत कम अच्छा

पाया जाता है। अतः आज उन्हें दाने दाने को तरसना पड़ता है और दर दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। उनके अच्छे अच्छे होनहार बच्चे जो शिक्षा प्राप्त कर देश का सितारा बन सकते हैं, आज अशिक्षित रह कर असभ्य तथा कुमार्गी बन कर देश का कलंक बनते जा रहे हैं। किन्तु उनके सम्बधियों का न तो उनकी ओर कोई ध्यान है, न कोई चिन्ता है न वे उनके प्रति अपना कोई कर्तव्य मानने को तैयार हैं। निर्धन व्यक्ति दुखियों के प्रति किंचित सहानुभूति प्रदर्शित करने का कभी कभी साहस भी करता है, किन्तु समर्थ व्यक्ति ऐसों से बात तक करने में अपनी हेठी समझते हैं। ऊचा वेतन पाने वालों की तथा अधिक आय वालों की अपनी आवश्यकतायें इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि उनकी अपनी ही पूर नहीं पड़ती, वे किसी की सहायता कर भी कैसे सकते हैं।

दीर्घ कालीन विदेशी दासता, विदेशी शिक्षा-दीक्षा और विदेशी सभ्यता के प्रभाव के फलस्वरूप हमारी सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई है। जिसका मिश्रित प्रभाव हमारी संस्कृति पर कुछ ऐसा पड़ा है कि हम अपने आपे को भूल गये हैं। अन्धानुकरण करने के अतिरिक्त अपनी ओर से सोचने और समझने की शक्ति क्षीण हो गई है। यह देखते हुये भी कि जिस मार्ग पर हम आगे बढ़े जा रहे हैं, उसके आगे गहरी खाई है, फिर भी पीछे देखना नहीं चाहते। खान पान, आचार-विचार, रहन-सहन सब में जब तक विदेशी लटका न आ जाय तब तक बात रुचती नहीं इस आधुनिक प्रगतिवाद की चकाचौंध ने हम भारत वासियों को पंगु बना दिया है।

आज हमारे उदार भाई तथा हितैषी बहिनें हमारे लिए पुरुषों के समान अधिकार, उत्तराधिकार और विवाह विच्छेद के

श्री गणेशाय नमः

यज्ञ, दान और तप

यज्ञ, दान और तप के शास्त्रीय अंग का विस्तृत विवेचन श्री महाराज के ११ से १४ तक के उपदेशों में किया जा चुका है। यहाँ उसका पुन दोहराना अनावश्यक होगा, किन्तु उसका व्यवहारिक रूप क्या है? पाठकों का इस ओर ध्यान आकर्षित करने के निमित्त ही आगे कुछ पंक्तियाँ लिखने का दु साहस कर रही हूँ। इसमें जो त्रुटियाँ हों, आशा है विद्वत वर्ग उसे सुधारने की कृपा करेंगे।

यज्ञ, दान और तप ये तीन प्रधान शक्तियां हैं। तीनों का परस्पर घनिष्ट संबन्ध है। यदि इधर ध्यान दिया जाय तो यह स्वीकार करना पडेगा कि सृष्टि का सृजन भी इन्हीं शक्तियों के आधार पर संभव हुआ है। न केवल सृजन बल्कि प्रकृति भी इन्ही शक्तियों के द्वारा सृष्टि का सचालन (पालन और विनाश भी) करने मे समर्थ रही है। उसके क्रम मे थोडा भी अन्तर आते ही प्राणी मात्र का जीवन संकट में पड जाता है। चौरासी लाख योनियों में मानव समाज की प्रधानता का कारण भी मानव में इन्हीं तीनों शक्तियों का संचय है। इन्हीं शक्तियों को संचित कर मानव महान् बना। इन्हीं शक्तियों के द्वारा मनुष्य योगी, ज्ञानी और ध्यानी बना। यहाँ तक कि इनके द्वारा सिद्धियाँ प्राप्तकर मनुष्य तीनों लोक चौदहों भुवन की थाह लेने और उनका

विवेचन करने में समर्थ हुआ।

इन्हीं शक्तियों द्वारा सिद्ध महापुरुषों ने विश्रंखल मानव समुदाय को संगठित होना सिखाया। इन्हीं शक्तियों ने मनुष्य को एक सूत्र में बांधना, सुदृढ़ व्यवस्था स्थापित करना और जीवन को नियमित साँचे में ढालना सिखाया। इन्हीं के प्रभाव से मानव ऋषि, मुनि, योगी और देवता बना, साथ ही भू पति, नरपति, सुरपति और स्वर्ग का स्वामी बनने में समर्थ हुआ।

पृथ्वी आकाश और पाताल ये तीन लोक हैं, और इन तीनों लोक का स्वामी, इन्द्र को माना गया है। धर्म ग्रन्थों में अनेक स्थान पर यह लिखा मिलता है कि अमुक ऋषि ने महान तप किया, जिसे देख कर इंद्र डरने लगा और उसने विघ्न उपस्थित कर उनके तप भंग करने की चेष्टा की।

कोई बड़ा दानी बन गया तो उसके लिये भी इंद्र ने डरकर बाधा खड़ी की। किसी राजा ने सौ अश्वमेध यज्ञ पूरे करने चाहे तो वहाँ भी इन्द्र का इन्द्रासन डोलने लगा और उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचना करने लगा। इत्यादि

तीनों लोक का स्वामी इन्द्र कोई बनता हो या न बनता हो, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि तप, दान या यज्ञ इनमें से एक शक्ति भी जिसके पास हो, उसका इस भूभाग पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

बड़े २ राजाओं के तप करने की बात धर्म ग्रन्थों में लिखी मिलती है, बड़े २ दान और बड़े-बड़े महायज्ञ भी राजा लोग ही करते थे। अतः सौ यज्ञ करने वाले राजाओं का प्रत्येक व्यक्ति अथवा प्राणी मात्र पर इतना प्रभाव अवश्य पड़ता होगा कि पृथ्वी पर उस राजा की सत्ता को चुनौती देने वाला दूसरा कोई न हो इसमें सन्देह नहीं।

और स्त्रियों को पथ भ्रष्ट करने के समाचार नित्य प्रति सुनने में आया करते हैं, इसे तामसी तप माना जा सकता है।

आज हमारे यहाँ दान न दिया जाता हो यह बात नहीं है। दानी लोग आज भी अपने नाम के लिये बड़े-बड़े दान करते हैं। उनके उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है अर्थात् उनका नाम हो जाता है। बड़े-बड़े अक्षरों में छप भी जाता है।

यज्ञ भी गिनती गिनाने के लिये नित्य प्रति अनेक हुआ करते हैं। आज ऐसे लोग भी अनगिनत मिलेंगे, जिन्होंने सौ-सौ और दो-दो सौ यज्ञ किये हैं। उनके सौ-सौ यज्ञ का इन्द्र पर प्रभाव पड़ना तो दूर की और बहुत बड़ी बात है, यहाँ पर में भी किसी पर कोई प्रभाव पड़ता दिखाई नहीं देता। ऐसा सुनने में आया है कि वह वायु को शुद्ध करने के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं। अतः उनके घर की वायु अवश्य शुद्ध हो जाती होगी।

ये तीनों कर्म दूर चले गए हों यह बात भी नहीं है। आज भी मानव समाज पर इन्हीं शक्तियों का प्रभुत्व छाया हुआ है इसमें सन्देह नहीं। अर्थात् विश्व पर शासन आज भी उन्हीं लोगों का है, जिसके हाथ में ये तीनों शक्तियाँ क्रियात्मक रूप में विद्यमान हैं।

यह ऊपर बताया गया है कि हमारे यहाँ इन कर्मों का केवल नाम मात्र अथवा चिन्ह मात्र रह गया है। कर्तव्य भाग अन्यत्र चला गया है, जहाँ कि आज उसका स्वरूप कुछ बदला हुआ सा प्रतीत होता है। कहाँ और किस रूप में है, इसका संकेत इस प्रकार मिलता है—

यदि ध्यान से देखा जाय तो यह ज्ञात होगा कि प्रथम अंगरेज आदि गोरी जातियों ने अपने देश धर्म और जाति की उन्नति के लिये तथा विश्व पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिये तप

हैं, उनका कारण ये महान् उपदेश ही हैं। यदि ये उपदेश न हों तो धार्मिक समारोह भी पीछे पड़े रह सकते हैं। इन सबको आज तप का सात्विक स्वरूप माना जा सकता है।

यथार्थ में धर्म के प्रति उदासीनता, स्वार्थपरता तथा पेट की ज्वाला ने यथार्थ तप भंग प्रायः कर दिया है। यद्यपि तीर्थों में आज भी भीड़ होती है और बहुत से साधु-गण आज भी तपने का प्रदर्शन करते हैं। वह बीच बाजार में पंचाग्नि तापने बैठते हैं। वे जनता की दृष्टि में अपना मान बढ़ाने की भावना से ऐसा करते प्रतीत होते हैं। अतः उनकी मान्यता-पूजा-प्रतिष्ठा भी खूब होती है। उधर लोग-बाग अधिकांश में सैर करने की नियत से तीर्थों में एकत्रित होते हैं, धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति दर्शन, स्नान तथा दान-पुण्य भी करते हैं। इस प्रकार एक पंथ दो काज वाली कहावत के अनुसार उन्हें सैर करने का आनन्द और जो दान आदि करते हैं पुण्य लाभ दोनों मिलते होंगे। इसे राजस तप माना जा सकता है।

आज भारत में जितने सच्चे महात्मा हैं, उनसे सैकड़ों गुणा अधिक रंगे सियार अर्थात् बनावटी साधु हैं। जिन्होंने दूसरों को और विशेष कर स्त्रियों को उठाने, उन्हें पथ भ्रष्ट करने के लिए ही गेरुआ वस्त्र धारण किया है, इनमें पढ़े-लिखे विद्वान भी बहुत देखने में आते हैं, जोकि उपदेश भी बड़े जोरों से करते हैं। इनमें बहुतों की प्रसिद्धि तो इतनी अधिक हो जाती है कि लोग-बाग दूर-दूर से चल कर उनके दर्शनों को आने लगते हैं, उनके द्वार पर मोटर कारों का ताँता सा लगा देखने में आता है। उनकी पोल तब खुलती है जब कि वह किसी कुकृत्य में पकड़े जाते हैं। आये दिन ऐसी तथा इससे मिलती जुलती छोटी बड़ी दुर्घटनायें सुनने में आती हैं। चोरी करने, बच्चों को उड़ाने

और स्त्रियों को पथ भ्रष्ट करने के समाचार नित्य प्रति सुनने में आया करते हैं, इसे तामसी तप माना जा सकता है।

आज हमारे यहाँ दान न दिया जाता हो यह बात नहीं है। दानी लोग आज भी अपने नाम के लिये बड़े-बड़े दान करते हैं। उनके उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है अर्थात् उनका नाम हो जाता है। बड़े-बड़े अक्षरों में छप भी जाता है।

यज्ञ भी गिनती गिनाने के लिये नित्य प्रति अनेक हुआ करते हैं। आज ऐसे लोग भी अनगिनत मिलेंगे, जिन्होंने सौ-सौ और दो दो सौ यज्ञ किये हैं। उनके सौ-सौ यज्ञ का इन्द्र पर प्रभाव पड़ना तो दूर की और बहुत बड़ी बात है, यहाँ घर में भी किसी पर कोई प्रभाव पड़ता दिखाई नहीं देता। ऐसा सुनने में आया है कि वह वायु को शुद्ध करने के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं। अतः उनके घर की वायु अवश्य शुद्ध हो जाती होगी।

ये तीनों कर्म दूर चले गए हों यह बात भी नहीं है। आज भी मानव समाज पर इन्हीं शक्तियों का प्रभुत्व छाया हुआ है इसमें सन्देह नहीं। अर्थात् विश्व पर शासन आज भी उन्हीं लोगों का है, जिसके हाथ में ये तीनों शक्तियाँ क्रियात्मक रूप में विद्यमान हैं।

यह ऊपर बताया गया है कि हमारे यहाँ इन कर्मों का केवल नाम मात्र अथवा चित्र मात्र रह गया है। कर्तव्य भाग अन्यत्र चला गया है, जहाँ कि आज उसका स्वरूप कुछ बदला हुआ सा प्रतीत होता है। कहाँ और किस रूप में है, इसका सकेत इस प्रकार मिलता है—

यदि ध्यान से देखा जाय तो यह ज्ञात होगा कि प्रथम अंगरेज आदि गोरी जातियों ने अपने देश धर्म और जाति की उन्नति के लिये तथा विश्व पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिये तप

कि आज हो रहा है। आज भी शूद्र नहीं बल्कि असुर तप कर रहे हैं। आज की विश्व व्यापी अशाँति का कारण भी शूद्रों (असुरों) द्वारा किया हुआ (तमोगुणी) तप है। आज प्रत्येक प्रमुख राष्ट्र एटम बम और हाइड्रोजन बम के जखीरे बढ़ाने में लगा है। क्या इसे शूद्रों द्वारा किया गया तामसी तप नहीं माना जा सकता? आखिर यह जो विनाशक शक्ति एकत्रित की जा रही है, इसका होगा भी क्या? ये एटम बम और हाइड्रोजन बम एकत्रित किये जा रहे हैं इन्हें एक दिन फटना है। जबकि एक एटम बम से भारी जंगी जहाज और पूरा टापू भाप बन कर उड़ सकता है, तो जिस समय हजारों ऐसे बम परस्पर टकराने लगेंगे उस समय संसार में क्या बचेगा? सर्वनाश से तो अच्छा यही था कि इसके निर्माता को इसकी प्रारम्भिक स्थिति में ही गोली से उड़ा दिया जाता। इसी से मिलती जुलती स्थिति में रामचन्द्र जी ने शूद्र का वध कर उचित ही किया होगा।

दान

आज अमरीका दानी बना हुआ है। अतः आज कदाचित ही कोई देश ऐसा हो जो अमरीका का ऋणी न हो। फलतः आज विश्व पर अमरीका का प्रभाव छाया हुआ है। यहाँ दान भी, कहीं अपना प्रभाव बढ़ाने के लिये आर्थिक रूप में और कहीं विनाश के लिये शस्त्रादि विनाशक सामग्री के रूप में किया जा रहा है। अतः कहीं रजोगुणी और कहीं तमोगुणी है। यह भी अशाँति का सूचक है।

यज्ञ

अब रह गई तीसरी शक्ति यज्ञ, जो कि क्रियात्मक स्वरूप में इस समय रूस के पास है। उसने अपने घर में बैठे-बैठे

ऐसा सम्मोहनी (साम्यवादी) मंत्र फूंका है, जिसके आकर्षण से सारी दुनियाँ अनायास उसकी ओर खिंची चली जा रही है। प्रत्येक व्यक्ति, देश या राष्ट्र उचित अनुचित का विचार किये बिना जनमेजय के सर्प-यज्ञ के समान उसमें झुके चले जा रहे हैं। यद्यपि यह तमोगुणी यज्ञ है और बहुत संभव है कि यह महा-यज्ञ भी सर्प मेध यज्ञ के समान नरमेध यज्ञ ही सिद्ध हो, किन्तु आज इसका प्रवाह रुकता दिखाई नहीं देता।

तप, दान और यज्ञ ये तीनों ही महान शक्तियाँ हैं। तीनों में प्रबल आकर्षण है। इनमें एक शक्ति भी प्रबल होने पर उथल पुथल मचा सकती है। धर्म ग्रन्थों में लिखा मिलता है कि महर्षि विश्वामित्र जी जब कोई वर मांगे बिना प्रबल तप करते रहे तो उनमें से ऐसी ज्वाला प्रकट हुई, जिससे संसार भस्म होने लगा। तब उनकी अनुनय विनय कर उन्हें ब्रह्मर्षि की पदवी प्रदान कर गुरु वशिष्ट ने शांत किया और उनको तप करने से रोका।

राजा हरिश्चन्द्र दानी हुये। अतः इन्द्र ने उन्हें छल कर उनका राज पाट सब हरण करवा दिया।

राजा बलि सौवें यज्ञ की पूर्णाहुति डालने लगा। अतः स्वयं भगवान को बामन का अवतार धारण कर उसे छलना पड़ा।

तात्पर्य यह है कि इन तीनों शक्तियों में एक भी प्रबल होकर विश्व में उथल पुथल मचा सकती है। किन्तु आज यह तीनों ही शक्तियाँ तीन ओर से प्रबल हैं। तीनों में आकर्षण है, तीनों ही एक दूसरे को अपनी ओर खींचना चाहती हैं। फलतः तीनों ही परस्पर टकराने के लिये तनी खड़ी हैं। यदि ये तीनों शक्तियाँ एक दूसरे से आपस में टकरा गई, तो महाप्रलय निश्चित है। अणुबम और उद्रजन बम के जखीरे जिस समय परस्पर

टकरायेंगे, उस समय के दृश्य की कल्पना मात्र कर लेने से ही रोमॉच हो जाता है।

शॉति की स्थापना के लिये सतोगुणी कर्म की आवश्यक्ता है। साथ ही यज्ञ के समय तीनों शक्तियॉ संगठित होनी चाहियें। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक सघर्ष का कारण बना रहता है।

तप एकाकी हो सकना है और दान भी एकाकी हो सकता है। किन्तु यज्ञ तभी सफल हो सकता है, जब इसके साथ तप भी हो और दान भी हो। बल्कि तप और दान से सयुक्त यज्ञ ही यथार्थ यज्ञ कहला सकता है। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक शाति की स्थापना सम्भव नहीं।

हमारे यहाँ यज्ञ के आदि और अन्त मे शांति पाठ करने का प्रचलन है। यज्ञ आदि कर्म का अर्थ ही व्यापक शाति का प्रयास करना है।

यज्ञ क्या है उसका समाधान करते हुये धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि जिससे बहुतों की तृप्ति हो वह यज्ञ है और जिसमें समस्त संसार की तृप्ति हो वह महायज्ञ है। यज्ञ के समय व्रत उपवास आदि द्वारा तप करने का तथा दान देने की प्रथा है। बिना तप और दान के यज्ञ को अपूर्ण माना गया है। अतः इस यज्ञ और महायज्ञ द्वारा समाज का वर्गीकरण और सब का श्रम तथा आर्थिक विभाजन कर प्रत्येक व्यक्ति को जीवित रहने का अधिकार प्रदान कर सब का भिन्न-भिन्न सामाजिक कर्म मे एकाधिकार स्वीकार किया गया था और आर्थिक श्रम तन्त्र में इस प्रकार गूँथ दिया गया था, जिनका अलग होना असम्भव था। यह सब बड़े बडे महायज्ञों के समय किया गया अपने परम स्वार्थों का महा दान था, जिसे वश परम्परा के लिये न हथियाने

प्रतिज्ञा करना—महा बलिदान था। शान्ति स्थापित रखने
साधन भी यही था, जोकि पूर्णतः सफल रहा। आज तक
ाचित ही कोई ऐसा अवसर आया हो जबकि परस्पर जातियों
संघर्ष की नौबत आई हो। बल्कि हजार वर्ष दासता की बेड़ी में
ड़े रहने पर भी हिन्दू समाज को जीवित रखने मे ये कर्म
र्थ हुये। यह था सच्चे तप, दान और यज्ञ का प्रभाव, तथा
ी शांति का सच्चा साधन।

शास्त्र विहित कर्म समुदाय का उपलक्षण यज्ञ है। अभीष्ट
। प्रदान करने से ही इसे इष्ट कामधुक् जैसा चाहें वैसा फल
वाला कहा गया है। गी० अ० ३।१०

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रस विष्यध्व मेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥
महायज्ञै श्च यज्ञै श्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः। (मनु० २। २८॥
यज्ञदान तपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे॥
यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्य्य मेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ गी. अ. १८।५

ठीक समुचित शास्त्रीय विधि से किये हुए यज्ञ तप दान
व ही सफल हुए हैं। जब भी इनका समुचित अनुष्ठान किया
येगा, अवश्य ही ये कल्याण कारक एवं सफल होंगे। यह एक
चोखा तथ्य है। इसमें अणुमात्र भी झूठ नहीं है। परोक्ष
नहीं अपरोक्ष फल भी यज्ञो का श्री कृष्णचन्द्र ने बताया है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्या दन्न संभव।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः॥ गी. अ. ३। १४

श्री गणेशाय नमः

मूर्तिपूजा और मंदिर का उद्देश्य

परम पिता परमात्मा के सगुण और निर्गुण अर्थात् माया रहित और माया विशिष्ट दो भेद हैं। इसमें माया रहित ईश्वर का कोई स्वरूप नहीं, उसमें कोई गुण नहीं और उसका कोई आकार नहीं। किन्तु माया विशिष्ट ईश्वर के अनन्त रूप हैं, अनन्त गुण हैं और वह अनन्त आकार वाला है। उसकी लीला अपरम्पार है। वह कोटानुकोटि आकारों वाला होते हुये भी एक और अखण्ड है।

भगवान के इन अनन्त रूपों में केवल पाँच रूप ही हमारी सामाजिक व्यवस्था और हमारे संस्कारों के प्रमुख अंग माने गये हैं। ये हैं—१ भगवान् विष्णु २ भगवान सूर्य ३ आद्या महा शक्ति भगवती (देवी दुर्गा या लक्ष्मी) ४ भगवान गणेश जी ५ भगवान शिव-शंकर या महादेव। श्री राम और श्रीकृष्ण तथा नृसिंह आदि अवतारों की आराधना भगवान विष्णु की कोटि में की जाती है। प्रत्येक आराधना और प्रत्येक मंगल कार्यों में प्रथम पूज्य श्री गणेश जी को माना गया है। क्यों माने गये हैं इसके दृष्टांत भी मिलते हैं।

यद्यपि मानव जीवन का लक्ष्य उस निर्गुण और निराकार को ही प्राप्त करना रहा है, जोकि मन वाणी और इन्द्रियों से परे केवल ज्ञान स्वरूप है। वेद ने जिसका परिचय नेति-नेति कह कर दिया है। अतः वह ध्यान का विषय भी नहीं है, क्योंकि

ध्यान भी किसी स्वरूप का किया जा सकता है। श्री रामायण में लिखा है—

गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई॥

अर्थात् जहां तक इन्द्रिय तथा वाणी का सम्बन्ध है और जहाँ तक मन जा सकता है वह माया है, जबकि ध्यान मन का विषय है।

उसका माया विशिष्ट स्वरूप जिसके रोम रोम में अनन्त कोटि भगवान समाया हुआ है वह भी मन वाणी और इन्द्रियों के विषयों से बहुत दूर पड़ जाता है। फिर उसे प्राप्त कैसे किया जाय ? यह समस्या आगे आती है।

वह (ब्रह्म) अजर अमर और प्रत्येक रज रज तथा कण कण में व्याप्त है। सारा संसार उसमें ओत-प्रोत है, बल्कि सारा संसार काल्पनिक है! उसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। हमारे (प्रत्येक व्यक्ति के) रोम-रोम में वह रमा हुआ है। वह घट-घट वासी है। मिट्टी, जल, अग्नि, पवन और आकाश सब में वही वह है। अत: जो कुछ सुलभ है उसी के सहारे उस निर्गुण निराकार पारब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त करने का मार्ग निकाला गया। मिट्टी, पत्थर, पीतल, तांबा, सोना-चांदी अथवा कागज पर उस रूप में भक्ति और श्रद्धा सहित साधना करके मुक्ति प्राप्त करने के दुर्लभ मार्ग को सुलभ कर लिया गया। बस सर्व व्यापी को ढूंढने के लिये कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। भगवान के पाँच- स्वरूपों में से किसी भी एक स्वरूप की मूर्ति सामने रख उसकी अपने हृदय में धारणा करके (ध्यान योग द्वारा भगवान का स्वरूप अपने हृदय में अंकित कर) वहीं प्रभु का दर्शन किया जाता है। जब तक एकाग्र नहीं होता (अपने हृदय में भगवान का दर्शन नहीं होने लगता) तब तक किसी प्रत्यक्ष स्वरूप (मूर्ति) का सहारा लेना पड़ता है इस प्रकार से अभ्यास

श्री गणेशाय नः

मूर्तिपूजा और मंदिर

परम पिता परमात्मा के सगुण और ।
माया रहित और माया विशिष्ट दो भेद हैं। इसमें
ईश्वर का कोई स्वरूप नहीं, उसमें कोई गुण नहीं
कोई आकार नहीं। किन्तु माया विशिष्ट ईश्वर के अ
अनन्त गुण हैं और वह अनन्त आकार वाला है।
अपरम्पार है। वह कोटानुकोटि आकारों वाला है
और अखण्ड है।

ज्ञान श्रेष्ठ है, और परोक्ष ज्ञान से मुक्त परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यान से भी सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग करना श्रेष्ठ है, और त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है। (गी० अ० १२। १२)

सनातन धर्म में भगवान के निर्देशित इन तीनों ही मार्गों को अपनाने की न केवल चेष्टा की गई है बल्कि उसका यथा-शक्ति पालन भी किया गया है।

यह सब गूढ ज्ञान का और प्रसंग से बाहर का विषय है। हमें तो यहाँ केवल उपासना (मूर्ति पूजा) के विषय में कुछ कहना है।

प्रतिमा का महत्व

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पंच महाभूत हैं। इन्हीं पंच तत्व के सहारे संसृति की रचना हुई है। इन पच महाभूतों में प्रत्येक तत्व का एक अधिष्ठात्र देव है। जैसे कि जल तत्व के देवता गणेश जी हैं। पृथ्वी के शिव, वायु के सूर्य, अग्नि की शक्ति, और आकाश के अधिष्ठात्र देव भगवान विष्णु हैं।

इन देव मूर्तियों की पूजा के साथ-साथ कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों को ही सम्मिलत किया गया था। जैसे—

भगवान की अर्चना चंदन, धूप, दीप नैवेद्य आदि चढ़ाने से तथा समय समय पर हवन यज्ञ आदि करने से कर्म तो हो ही जाता है। भगवान का ध्यान, धारणा तथा स्तुति द्वारा उपासना होती है और सन्त महात्मा इत्यादि तत्वज्ञानी महा पुरुषों के उपदेशों तथा भिन्न-भिन्न स्वरूपों द्वारा भिन्न-भिन्न तत्व का ज्ञान भी प्राप्त किया जा सकता है। कारण कि प्रत्येक मन्दिर में विद्वत वर्ग के उपदेशों का प्रबन्ध भी रहता ही था। जैसे—

करते करते जब भगवान की साक्षात मूर्ति हृदय में विराजमान हो जाती है तब फिर किसी मूर्ति की कोई आवश्यकता नहीं रहती। इस प्रकार जो व्यक्ति संसार के प्रत्येक विषय से अपने मन और इंद्रियों को समेटकर (विरक्त हो) हर घड़ी चिंतन मनन करता भगवान में ध्यान लगाये रहता है, वह स्वयं तद्रूप (भगवान का ही रूप) हो जाता है। वह प्रथम अपने हृदय में भगवान के दर्शन करता है, फिर वह अपने रोम-रोम मे भगवान को देखने लगता है। इसके उपरांत उसे सारा जगत ही ब्रह्ममय दिखाई देने लगता है। इसतुरीय अवस्था को प्राप्त होने वाला जीवन मुक्त माना गया है। अर्थात् वह अपने जीवन मे ही मुक्त हो ब्रह्म में लीन हो जाता है। मोक्ष प्राप्त करने के कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों मार्गों में यह उपासना का स्वरूप है। निष्काम कर्म और ज्ञान के द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के ये दो मार्ग और हैं। इनमें ज्ञान मार्ग को कठिन माना गया है। भगवान ने गीता में कहा है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषां मव्यक्ता सक्तचेतसाम्।
अव्यक्ताहि गतिर्दुःखं देहवद्भिर वाप्यते ॥ (गी. अ. १२।५)

अर्थः—उन सच्चिदानन्द घन निराकार ब्रह्म में आसक्त चित्त वाले पुरुषों के साधन में क्लेश अर्थात् परिश्रम विशेष है क्योंकि देहाभिमानियों से अव्यक्त विषयक गति दुःख पूर्वक प्राप्त की जाती है। अर्थात् जब तक शरीर में अभिमान रहता है, तब तक शुद्ध सच्चिदानन्द घन निराकार ब्रह्म में स्थिति होनी कठिन है। श्री भगवान ने गीता में निष्काम कर्म को सबसे श्रेष्ठ माना है। गीता में लिखा है—

श्रेयोहि ज्ञानमभ्यासा ज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्म फल त्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

ज्ञान श्रेष्ठ है, और परोक्ष ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यान से भी सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग करना श्रेष्ठ है, और त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है। (गी० अ० १२। १२)

सनातन धर्म में भगवान के निर्देशित इन तीनों ही मार्गों को अपनाने की न केवल चेष्टा की गई है बल्कि उसका यथा-शक्ति पालन भी किया गया है।

यह सब गूढ़ ज्ञान का और प्रसंग से बाहर का विषय है। हमें तो यहाँ केवल उपासना (मूर्ति पूजा) के विषय में कुछ कहना है।

प्रतिमा का महत्व

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पंच महाभूत हैं। इन्हीं पंच तत्व के सहारे संसृति की रचना हुई है। इन पंच महाभूतों में प्रत्येक तत्व का एक अधिष्ठात्र देव है। जैसे कि जल तत्व के देवता गणेश जी हैं। पृथ्वी के शिव, वायु के सूर्य, अग्नि की शक्ति, और आकाश के अधिष्ठात्र देव भगवान विष्णु हैं।

इन देव मूर्तियों की पूजा के साथ-साथ कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों को ही सम्मिलत किया गया था। जैसे—

भगवान की अर्चना चंदन, धूप, दीप नैवेद्य आदि चढ़ाने से तथा समय समय पर हवन यज्ञ आदि करने से कर्म तो हो ही जाता है। भगवान का ध्यान, धारणा तथा स्तुति द्वारा उपासना होती है और सन्त महात्मा इत्यादि तत्वज्ञानी महा पुरुषों के उपदेशों तथा भिन्न-भिन्न स्वरूपों द्वारा भिन्न-भिन्न तत्व का ज्ञान भी प्राप्त किया जा सकता है। कारण कि प्रत्येक मन्दिर में विद्वत वर्ग के उपदेशों का प्रबन्ध भी रहता ही था। जैसे—

भगवान शंकर

जैसा कि ऊपर बताया गया—पृथ्वी तत्व के अधिष्ठात्र देव भगवान महादेव शिवशंकर हैं। शिव मूर्ति के द्वारा पृथ्वी तत्व के रज कण अथवा परमाणुओं का भी ज्ञान कराया जाता हो, कोई आश्चर्य नहीं। भगवान शिव के आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक और पारब्रह्म स्वरूप के ज्ञान की शिक्षा दी जाती होगी।

भगवान गणेश जी

जल तत्व के अधिष्ठात्र देव गणेश जी की प्रतिमा द्वारा आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक और ब्रह्म स्वरूप के ज्ञान के साथ जल कण का ज्ञान कराया जाना संभव है।

आद्या महा शक्ति

अग्नि तत्व की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा है। यहाँ देवी की प्रतिमा द्वारा उनके आधिदैविक, आधिभौतिक अध्यात्मिक और ब्रह्म स्वरूप के ज्ञान के साथ साथ अग्नि तत्व के कण-कण की और उसकी प्रचन्ड महा शक्ति का परिचय कराया जाता होगा।

भगवान सूर्य देव

वायु तत्व के अधिष्ठात्र देवता भगवान सूर्य हैं। भगवान सूर्य प्रत्यक्ष विराजमान हैं। इसलिये सूर्य प्रतिमा अथवा सूर्य-मंदिर की स्थापना बहुत कम सुनने में आती है। प्रत्यक्ष सूर्य-नारायण की पूजा करने का चलन भी है, और उसी के द्वारा तीनों स्वरूपों के साथ उनके ब्रह्म स्वरूप का वायु तत्व का ज्ञान कराया जाता होगा।

भगवान विष्णु

गगन तत्व के अधिष्ठात्र देव भगवान विष्णु हैं। श्री लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा द्वारा भगवान के तीनों स्वरूपों के साथ ब्रह्म स्वरूप और उनके विराट स्वरूप का ज्ञान कराया जाता होगा। होगा ही नहीं बल्कि "था" कहना चाहिये क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस प्रकार मूर्ति और मन्दिर तत्व ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान के केन्द्र होते थे।

इस सूक्ष्म और अति सूक्ष्म ज्ञान को प्राप्त करने के लिये उनमें श्रद्धा और विश्वास चाहिये और चाहिये अन्तः करण की प्रेरणा। इसी अन्तः करण की प्रेरणा श्रद्धा और विश्वास को उत्पन्न करने के लिये उनकी पूजा का विधान है। वह विद्या क्या थी और मूर्तियों के द्वारा कैसे दी जाती थी। यह सब गूढ़ ज्ञान का और प्रसंग से बाहर का विषय है। हमें तो यहां केवल उपासना का आधार मूर्ति पूजा और मन्दिर के मूल उद्देश्य की ओर ध्यान आकर्षित करना है। जिसे अपनी बुद्धि के अनुसार बताने की चेष्टा की गई है।

ध्यान-धारणा में अड़चन न पड़े। इसीलिये बड़े-बड़े मन्दिरों का—अधिकांशतः निर्जन स्थानों में, ऊंची पहाड़ियों पर गंगा-यमुना या किसी पवित्र नदी के किनारे एकान्त में बनाने का चलन था। जहां भाड़-भाड़ न हो। पुराने जितने भी बड़े मन्दिर हैं, सब इसी प्रकार के स्थानों पर दिखाई देते हैं। जिसे देख कर समझ में नहीं आता कि वहां पानी और मलबा किस प्रकार पहुँचाया गया होगा।

प्रत्येक मन्दिर के साथ धर्मोपदेश देने का प्रबन्ध रहता था। जहां सन्त-महात्मा तथा मण्डलेश्वर अथवा पण्डित-पुजारी या मन्दिर के महन्तों का कर्तव्य था कि वह नित्य प्रति उपदेश दें और मूर्ति के द्वारा भगवान के विराट स्वरूप, सूक्ष्म

स्वरूप, अध्यात्म स्वरूप और ज्ञान स्वरूप को समझावें। इसके अतिरिक्त वेद-वेदान्त, उपनिषद, भगवद् गीता, भागवत, पुराण, रामायण महा-भारत इत्यादि धर्म के सब ग्रन्थों का महत्व, उससे पड़ने वाला प्रभाव सब कुछ समझा दिया जाता था। यह उपदेश ऐसे स्थान पर होते जहां से प्रत्येक व्यक्ति सुन सके।

प्रत्येक मन्दिरों के साथ पठन-पाठन तथा स्वाध्याय के लिए एक पुस्तकालय होता था। धार्मिक शिक्षा और विद्याध्ययन का भी सुन्दर प्रबन्ध रहता था। इसमे छोटे मन्दिरों के साथ छोटा और बड़े मन्दिरों के साथ बड़ा प्रबन्ध रहता। छोटे विद्यार्थियों के लिये मन्दिरों के साथ पाठशाला का होना परमावश्यक था। साथ ही बड़े विद्यार्थियों के ज्ञानार्जन—(अध्ययन) के लिये विद्वानों का प्रबन्ध रहता था। जिससे स्थानीय बालक विद्याध्ययन कर सकें।

अपनी पूर्व की वह सारी व्यवस्था विधर्मियों के शासन तथा उनके अत्याचारों के कारण अस्त-व्यस्त हो गई। मन्दिरों की महत्वपूर्ण व्यवस्था भी शनैः शनैः भंग हो गई। केवल दर्शन स्पर्शन, पूजा-प्रतिष्ठा का भाग शेष रहा (जो कि अब तक है) कालान्तर की परिस्थिति के प्रभाव से सभी मे तप और त्याग की उपेक्षा की भावना आने लगी और लोभ की वृत्ति बढ़ती गयी। यहां तक पतन हुआ कि अनेक मन्दिरों के कर्मचारी तथा महन्तों में आचरण हीनता तथा व्यभिचार आदि के भी उदाहरण प्रस्तुत होने लगे।

मन्दिरों के निकट बाजार लगने लगा। श्रद्धालु भक्तों के अतिरिक्त अनेक लोग चाट खाने और बहुत से धक्का मुक्की करने तथा गांठ काटने के लिए वहां पहुँचने लगे। देहली के कुछ प्रसिद्ध मन्दिर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

यहां प्रश्न उठता है कि क्या सभी मन्दिर बेकार हो गये ?

क्या अब भले लोगों को भगवान का दर्शन करने के लिये उनमें नहीं जाना चाहिये ? इत्यादि

इसका उत्तर होगा कि अवश्य जाना चाहिये। न केवल जाना ही चाहिये वल्कि उनमें जो त्रुटियां या कमजोरियां दिखाई दें, उनको दूर करने और प्राचीन पद्धति के अनुसार व्यवस्था स्थापित कर आदर्श मन्दिर बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। मन्दिर वह स्थान है, जहां भाव-कुभाव किसी भी प्रकार जाते रहने से एक समय वह आने की सम्भावना रहती है जब पत्थर के समान कठोर हृदय भी पसीज सकता है, अर्थात् नास्तिकों के हृदय में भी भगवान में विश्वास और श्रद्धा की भावना उत्पन्न हो सकती है।

सभी मन्दिरों की यह अवस्था नहीं है। कुछ छोटे और बड़े मन्दिरों की व्यवस्था आज भी कुछ अंशों में सन्तोषजनक है। यद्यपि ऊपर बताई गई प्राचीन पद्धति कहीं दिखाई नहीं देती।

अभी कुछ दिन पूर्व स्वा. श्री १०८ नृसिंहगिरि जी महाराज महा मण्डलेश्वर ने देहली में वेला रोड पर सन्यासाश्रम में कुछ ऐसे ही आदर्श मन्दिर की स्थापना की है जिसमें भगवान् के पांचों स्वरूप—विष्णु, सूर्य, शक्ति, गणेश और शिव की स्थापना की गयी है। नित्य सुबह सात बजे से आठ बजे तक श्री महाराज का अमृतमय उपदेश होता है। जिसमें कभी नागा नहीं पड़ता। स्थाना भाव तथा अर्था भाव के कारण अभी बहुत सा काम रुका पड़ा है। जैसे कि यमुना घाट, पुस्तकालय तथा विद्यालय का प्रबन्ध अभी नहीं हो पाया है। देहली में यह मन्दिर (सन्यासाश्रम) एक नमूना है। सभी मन्दिरों में इसी प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिये। जिससे जनता के हृदय में लुप्त प्रायः धर्म के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न की जा सके।

श्री गणेशाय नमः

भगवान का साकार स्वरूप

आज के युग मे जबकि परम पिता परमात्मा के अस्तित्व को चुनौती दी जा रही है, तब उसके साकार स्वरूप पर अविश्वास करना कोई अचम्भे की बात नहीं है। यह सब भगवान की माया की प्रबलता है। जो प्राणीमात्र को अपने भ्रम जाल में उलझाए रहती है। वह सत्य को असत्य और असत्य को सत्य प्रदर्शित करने में प्रबल है। अत: जो नास्तिक हैं, उनसे तो भगवान के विषय में कुछ भी कहना व्यर्थ है किंतु जिनका भगवान में विश्वास है, उनमे भी बहुत लोग यह नहीं मानते कि जो निर्गुण निर्विकार, निराकार सत् चित् आनन्द शुद्ध-बुद्ध, विभु और व्यापक है, जिसका परिचय वेद मे केवल नेति नेति कह कर दिया गया है, वह कभी साकार स्वरूप धारण कर सकता है। इसका उत्तर केवल यह है कि जो परमात्मा कोटानु कोटि ब्रह्माण्ड की रचना कर सकता है, पंच महा भूतों और, चौरासी लाख योनियों की रचना भी जो सहज ही कर सकता है, अपने लिए भी एक छोटे से शरीर की रचना कर लेना उसके लिये कोई बड़ी बात नहीं है। यदि वह अवतार धारण न कर सके तो उसे सर्व शक्तिमान कैसे माना जा सकता है।

दूसरी शंका यह उठाई जाती है कि उसे (परमात्मा को) अवतार धारण करने की आवश्यकता क्या है? जबकि उसकी इच्छा मात्र से ही सब कुछ बन और बिगड़ सकता है, तब उसे शरीर धारण कर पृथ्वी पर आने की आवश्यकता क्या? आदि

तर्क-कुतर्क करना आज लोगों का स्वभाव बन गया है। ऐसा सोचने वाले क्या बता सकते हैं कि आखिर सृष्टि सृजन करने को भगवान को क्या आवश्यकता पड़ी ? जिस कारण वह संसृति का सृजन, पालन और संहाररूपी खेल खेल सकता है, उसी कारण-वश अवतार धारण कर पृथ्वी पर विचरण भी कर सकता है। वे यह भूल जाते हैं कि जीव अनादि काल से कर्म के बन्धन बंधा चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ दुःख भोग रहा है। इसके कल्याण के लिए, इसे जीवन-मरण के चक्र से छुटकारा दिलाने के लिए भगवान समय समय पर अवतार धारण कर उसका मार्ग प्रदर्शित करते रहे हैं। केवल यही नहीं भक्तों की रक्षा और दुष्टों (असुरों) का दलन करने के लिए भी भगवान को अवतार धारण कर पृथ्वी पर विचरण करना पड़ता है।

यह तो प्रत्यक्ष देखने में भी आता है कि जब दो विरोधी शक्तियों में संघर्ष होता है, तब तीसरी महाशक्ति (तेज) की उत्पत्ति होती है। दो अरनी की रगड़ से अथवा दो पत्थरों के टकराने से अग्नि की, दो बादलों के टकराने से बिजली की उत्पत्ति होती है (सृष्टि क्रम इसी प्रकार चालू है) इसी प्रकार धर्म और अधर्म, दैवी प्रकृति और आसुरी प्रकृति में जब परस्पर संघर्ष होता है (इसी को देवासुर संग्राम कहा जाता है). इसी देवासुर संग्राम में जब देवताओं की हार होने लगती है, असुरगण प्रबल होकर उन पर हावी हो जाते हैं तब तीसरी महाशक्ति भगवान को शरीर धारण कर धर्म की रक्षा करनी पड़ती है। वह दुष्टों का दलन कर, भक्तों की रक्षा करते हैं। इसका विस्तृत विवेचन और अनेक प्रकार की शंकाओं का समाधान श्री महाराज के उपदेशों में किया जा चुका है। यहाँ उन्हें पुनः दोहराना उचित प्रतीत नहीं होता।

गीता में भगवान ने कहा है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम् ॥

अर्थात्—हे भारत जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपने रूप को रचता हूँ, अर्थात प्रकट करता हूँ।

अब तक भगवान के अवतार कितने हो चुके—यह कोई नहीं बता सका, स्वय भगवान भी गीता मे नहीं बता पाए। धार्मिक ग्रन्थों मे लिखा मिलता है कि एक कल्प मे भगवान के २४ अवतार होते हैं जिसमे २३ हो चुके, चौबीसवाँ कल्कि अवतार होना अभी शेष है। जो कलियुग के अन्त में होगा। भगवान कल्कि अवतार धारण कर अधर्मियों का विनाश कर सतयुग की स्थापना करेंगे।

इन २४ अवतारों मे भी पूर्णावतार—मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम और लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण को माना गया है। शेष सब अंशावतार हुए। आगे इन्हीं दोनों अवतारों पर कुछ विचार करना है।

संत महात्माओं के उपदेशों में सुनने मे आता है कि ऋषिगण अपने शिष्यों को ब्रह्मज्ञान का परिचय देते समय—विधि निषेध—इन दोप्रकार से ब्रह्मज्ञान को समझाते थे। अर्थात् जो कान का भी कान है, जो आँख की भी आँख है, जो वाणी की भी वाणी है, जो मन का भी मन है, जो बुद्धि की भी बुद्धि है, जो प्राण का भी प्राण है—वह परमात्मा है। इसे विधि अर्थात् सीधा मार्ग कहते हैं। जब इस प्रकार बताने पर शिष्य की समझ में नहीं आता तब प्रत्येक का निषेध करके बताते थे। अर्थात्—मन भी नहीं, बुद्धि भी नहीं, प्राण भी नहीं, कान भी नहीं, आँख भी नहीं, वाणी भी नहीं, सब कुछ नहीं के उपरांत जो बच रहता

है वह पारब्रह्म परमात्मा है। इसे निशेध—उल्टा मार्ग कहते हैं। वेद में इसी का नेति-नेति कह कर परिचय दिया गया है।

रामावतार और कृष्णावतार में भी यही विधि और निशेध वाली युक्ति फिट बैठती है।

प्रत्येक चित्र के भी सीधे और उलटे दो भाग होते हैं। सीधे को शुभ और टेढ़े को अशुभ माना गया है।

भगवान के पांच स्वरूप—विष्णु, सूर्य, शक्ति, शिव और गणेश—इन सबके चित्र सीधे और सौम्य दिखाये गये हैं। भगवान शंकर को भी शिव स्वरूप में सुन्दर दिखाया गया है। किंतु जब वह रुद्र रूप धारण कर जगत् का विनाश* करने पर उतारू होते हैं, उनका वह ताण्डव नृत्य करता हुआ प्रलयंकारी चित्र ही टेढ़ा दिखाई देता है। शक्तियों के स्वरूप में भी यही बात लागू होती है। सभी देवी (शक्तियों) के चित्र या मूर्तियाँ अधिकांश में सुन्दर होती हैं, केवल चन्डी, महाकाली या शीतला का संहारक स्वरूप ही टेढ़ा देखने में आता है। भगवान के साकार स्वरूप में भी यही बात लागू होती है। श्री राम का चित्र भी सीधा सादा और सुन्दर है। परन्तु भगवान श्री कृष्णचन्द्र आनन्द-कन्द का चित्र सुन्दर होते हुये भी टेढ़ा क्यों? यह प्रश्न आगे आता है। नीचे से ऊपर तक उनके अंग को टेढ़ा दिखाया गया है। इसीलिये उनका नाम बांके बिहारी पड़ा है। वह पैर पर पैर धरे टेढ़े खड़े दिखाई देते हैं घुटने को भी टेढ़ा किये हैं। बीच भी टेढ़ा, कन्धे टेढ़े, गर्दन टेढ़ी, मुकुट भी टेढ़ा और हाथ में मुरली भी टेढ़ी लिये हैं। (स्मरण रहे! टेढ़ी वंशी बजाने का बड़ा गूढ़ अर्थ निकलता है) साथ ही उनकी लीलायें भी टेढ़ी हैं। भगवान के इस टेढ़े पन का भी कोई गूढ़ रहस्य अवश्य होना चाहिये। जब तक इस टेढ़ें पन के रहस्य को नहीं

समझ पायेंगे तब तक कृष्णावतार के तत्व को समझने में असमर्थ ही रहेंगे।

यदि रामावतार और कृष्णावतार का मिलान किया जाय तो प्रतीत होगा कि रामावतार का सर्वथा उलटा कृष्णावतार है। दोनों की लीलायें भी परस्पर उल्टी हैं।

श्रीराम के साथ सीता का नाम लिया जाता है। सीताराम कहा जाता है। सीता राम की मर्यादित धर्म पत्नी थीं, अतः सीता राम कहना धर्म की मर्यादा के अनुकूल है।

श्रीकृष्ण के साथ राधा का नाम आता है। राधेकृष्ण कहा जाता है। यद्यपि कृष्ण की मर्यादित (विवाहित) पत्नियाँ अनेक थीं। उनके सौ रानी और आठ पटरानी थीं। इनमें से कम से कम आठों पटरानियों को तो श्रीकृष्ण की मर्यादित पत्नी अवश्य ही माना जा सकता है। परन्तु कृष्ण के नाम के साथ इनमें से किसी का नाम न आकर केवल राधा का नाम आता है। अर्थात् राधा कृष्ण-राधेश्याम कहा जाता है जोकि किसी प्रकार भी कृष्ण की मर्यादित पत्नी नहीं मानी जातीं। इसमें भी भगवान के कृष्णावतार धारण करने का गूढ़ रहस्य छिपा प्रतीत होता है।

एक बात और ध्यान देने की है, कि ईश्वर प्राप्ति के तीन आधार—कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों को वर्णाश्रम व्यवस्था की साधना के अन्तर्गत कर्म का उपासना से गायत्री मन्त्र द्वारा गठ बन्धन कर तीनों आधार को केवल दो भागों में विभक्त कर दिया गया। इसके प्रमाण स्वरूप रामावतार की कथा के प्रतीक केवल दो ग्रन्थ—रामायण और योग वाशिष्ट माने गये हैं। रामायण में कर्म को उपासना-युक्त प्रदर्शित कर योग वाशिष्ट में सम्पूर्ण ज्ञान का आदर्श प्रकट किया गया है, जबकि कृष्णावतार में कर्म उपासना और ज्ञान—इन तीनों आदर्शों के प्रतीक अलग

अलग तीन ग्रन्थों का निर्माण किया गया है जैसा कि श्रीमहाराज ने अपने उपदेश ४६ में बताया भी है कि—कर्म का पूर्ण आदर्श महाभारत में, उपासना का पूर्ण आदर्श भागवत में और ज्ञान का पूर्ण आदर्श गीता मे पाया जाता है। यहाँ कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों को तीन ग्रंथों में विभक्त करने का तात्पर्य यह भी निकलता है कि कर्म को उपासना से अलग रखने का परिणाम महा विनाश कारी और भयंकर है। जैसा कि कौरव वंश का और पीछे यादव कुल का हुआ और जिनके विनाश के भय से अर्जुन लड़ना नहीं चाहते थे उसी स्थिति में उन्हें जीना पड़ा।

यह भी ध्यान देने की बात है कि श्रीराम ने गुरु वशिष्ठ के आश्रम के शान्त वातावरण में शान्त चित्त से शिष्य के रूप में गुरु के चरणों में बैठ कर गुरु से ज्ञान का उपदेश सुना जबकि भगवान कृष्ण ने सारथी के रूप में रणस्थल के अशान्त, वातावरण में अशान्त चित्त वाले अर्जुन को ज्ञान का उपदेश सुनाया। जिसके फलस्वरूप महाभारत का महा विनाश कारी युद्ध हुआ। साक्षात पारब्रह्म भगवान कृष्ण के श्री मुख से निकले ज्ञान में तो कोई कमी नहीं रही। यहां अन्तर तो केवल वातावरण का, क्षेत्र का और अधिकारी में, पड़ गया जिसका उलटा परिणाम निकला।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जो ज्ञान उचित क्षेत्र में उचित व्यक्ति (सद्गुरु) के द्वारा सुनने से अपूर्व शान्ति प्रदान कर सकता है वही सत्य ज्ञान अनुचित क्षेत्र में अनधिकारी के द्वारा सुनने का परिणाम विनाश कारी सिद्ध हो सकता है।

इससे यह भी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि अनुचित स्थान पर अस्थिर चित्त वाले को अथवा अनधिकारी के रूप में

चाहे स्वयं ब्रह्म ही के श्री मुख से सम्पूर्ण ज्ञान का उपदेश क्यों न करें परिणाम वही निकलेगा जो गीता के उपदेश का निकला। इसीलिये शास्त्रकारों ने अधिकारी और अनधिकारी पर विशेष ध्यान दिया है। यहा भगवान कृष्ण ने पार ब्रह्म स्वरूप होते हुए भी सारथी के रूप में अर्जुन को ज्ञान का उपदेश दिया जबकि एक सारथी ज्ञानोपदेश का अधिकारी नहीं है। यही सब उल्टे मार्ग का भयकर परिणाम दिखाने के लिये तो भगवान ने लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण के रूप में अवतार धारण किया। वैदिक धर्म की साधना का आधार यज्ञोपवीत को माना गया है। पंच महादेव—ब्रह्मा, विष्णु, शिव सूर्य और गणेश तथा मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम आदि सब धर्म की मर्यादा पालन करने वालों के चित्र यज्ञोपवीत धारी हैं किन्तु लीला पुरुषोत्तम भगवान कृष्ण को कहीं भी यज्ञोपवीत धारण किये नहीं दिखाया गया। यह भी विचारणीय विषय है।

आज भारतवर्ष की ही नहीं बल्कि समस्त संसार की वही स्थिति है, जो महा भारत के समय थी। आज कर्म उपासना और ज्ञान तीनों अलग-अलग अपनी चरम सीमा को पहुँचे हुये हैं। फलत आज अणु आयुध, उद्रजन आयुध और नेत्र जन आयुध हमारा द्वार खटखटा रहे हैं। विश्व व्यापी अशान्ति और भयकर भय छाया हुआ है। अत रामावतार और कृष्णावतार इन दोनों पर गहन अध्ययन की आवश्यकता है। आगे इन्हीं दोनों अवतारों पर प्रकाश डाला जायगा।'

अवतार

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र जी

यों तो भगवान के २४ अवतार माने गये हैं। किन्तु रामावतार और कृष्णावतार यही दो सोलह कला सम्पन्न पूर्ण पुरुषोत्तम माने गये हैं।

भगवान के जितने भी अवतार हुये सभी मानव समाज के लिये कल्याणकारी हुए। परन्तु रामावतार और कृष्णावतार ये दोनों विशेष महत्वपूर्ण इस लिए हैं कि इन दोनों अवतारों में भगवान ने मानव समाज के सम्मुख मोक्षमार्ग और भोग मार्ग के दो चित्र प्रस्तुत करके दोनों मार्ग (धर्म और अधर्म) के सुखद और दुखद परिणामों से मानव समाज को अवगत करा कर यह भी दिखा दिया है कि धर्म के कंटाकीर्ण मार्ग पर चलने का तथा तप और त्याग का परिणाम सुखान्त है और भोग मार्ग में प्रवृत होने का परिणाम दुःखान्त है जोकि सर्व नाश के रूप में आगे आता है।

भगवान श्री रामचन्द्र

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्र जी ने बचपन से ही धर्म और मर्यादा का पालन किया, सच्चिदानन्द स्वरूप होने पर भी उन्होंने कोई विलक्षण चमत्कार नहीं दिखाया। यदि दिखाया भी तो नाम मात्र के लिये, ऐसा जो किसी को पता न लगे। भगवान ने प्रथम महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की, ताड़का राक्षसी का वध किया, अहिल्या का उद्धार किया, धनुष तोड़ श्री जानकी जी से विवाह किया।

श्री परशुराम के कठोर वचन के आगे विनम्रता का परिचय दे उन्हें बोध कराया। माता-पिता की आज्ञा से १४ वर्ष का बनवास स्वीकार किया। बन में रावण के द्वारा सीता का अपहरण हुआ। गीध (जटायु) तथा शबरी को मुक्ति दी सुग्रीव से मित्रता कर बाली का बध किया और सुग्रीव को राज्य दिया। विभीषण को राजतिलक किया, समुद्र पर पुल बाँध शिव की स्थापना की। लंका पर चढ़ाई कर परिवार सहित रावण का संहार किया। विभीषण को लंका का राज्य दे अयोध्या वापस आये। राज्य-तिलक करवाया। पृथ्वी का एक-छत्र राज्य स्थापित कर सबको सुख दिया। श्रीजानकीजी के प्रति प्रजा के मनमे भ्रम उत्पन्न होने पर श्रीजानकी जी को बन भेज कर प्रजाके सुख का पालन किया और कर्तव्य पालन के आगे नारी का भी परित्याग किया। साथ ही दूसरा विवाह न कर एक नारी व्रत के पालन का आदर्श प्रस्तुत किया। अन्त में लव, कुश को राज्य दे परमधाम को प्रस्थान किया। उनके वंश का परिचय महाभारत काल तक मिलता है।

यह है धर्म और मर्यादा पालन करने का वह चित्र जिसके द्वारा मनुष्य सुख समृद्धि को प्राप्त करता हुआ मुक्ति-मार्ग में प्रवेश करता है अर्थात् लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति कर सकता है।

शंका

आज मनुष्यों में अविश्वास और तर्क की मात्रा बढ़ गई है। अत. श्री राम के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की शकायें करना जनसाधारण की बातचीत का विषय बन गया है। उनमें से कुछ शंकायें ये हैं—

१—राम ने बाली को छुप कर क्यों मारा ?

२—सीता को तुच्छ व्यक्ति (धोबी) की शंका पर बन में

क्यों भेज दिया ? अर्थात् राज्य का परित्याग क्यों नहीं किया है ?

३—शूद्र को तप करते हुए क्यों मारा ? इत्यादि

१—राम ने बाली को छुप कर क्यों मारा ? इसका उत्तर यह है वैदिक धर्म पूर्ण है, अपूर्ण नहीं और उसकी पूर्णता का प्रमुख कारण उसका राज्य-धर्म से युक्त होना भी माना जा सकता है। कूटनीति जिसका प्रमुख अग है। राज्य की रक्षा कूटनीति से होती है। जो धर्म राज्य की रक्षा की व्यवस्था न कर सके उसे पूर्ण धर्म नहीं माना जा सकता। इसलिये राजा को राज्य की रक्षा के लिये राजनीतिज्ञ (कूटनीतिज्ञ) होना परमावश्यक है।

भगवान राम को पूर्ण पुरुषोत्तम माना गया है। वे महा-राजाधिराज थे। यदि वे प्रबल शत्रु के सम्मुख राजनीति का परिचय न देते तो उनका पूर्णावतार कैसे सिद्ध हो सकता था। भगवान राम ने यहाँ कूटनीति का परिचय देकर राज्याधिकारी और देश के शासकों के लिये मार्ग प्रदर्शित किया है। यह दिखाया है कि प्रबल शत्रु को पराजित करने के लिये सभी हथकण्डे काम मे लाने चाहियें। राजनीति में धर्म या अधर्म पर ध्यान नहीं दिया जाता। युद्ध के समय इसकी विशेष आवश्यकता पड़ती है।

बाली प्रबल शत्रु था। उसे यह वरदान प्राप्त था कि जो कोई उसे लड़ाई के लिये ललकारेगा, उसका आधा बल बाली में प्रवेश कर जायेगा इस लिये वह महा बली माना गया। उसे कोई भी पराजित नहीं कर सकता था। सुग्रीव राम का मित्र था। और बाली भाई होने पर भी उसका परम शत्रु बन गया था। वह सुग्रीव को मारने केलिये फिरता था। इसलिये सुग्रीव बाली के भय के कारण ऋष्य-मूक पर्वत पर—जहाँ ऋषि के शाप के कारण बाली नहीं जा सकता था—जाकर छुपा था। इस स्थिति में रह कर सुग्रीव सीताकी खोज भी कैसे करवा सकता था और सीता का पता

चल जाने पर भी लंका पर चढ़ाई करने में श्री राम की सहायता कैसे कर सकता था ? यहां यह भी तर्क स्वाभाविक है कि यदि श्रीराम बाली से मिलते तो वह उनकी सहायता अवश्य करता। यह तब की बात है कि जब श्रीराम सुग्रीव के पास न जाकर सीधे बाली के पास जाते। राम स्वयं तो नगर में प्रवेश कर नहीं सकते थे, तो फिर क्या सहायता की याचना के लिये लक्ष्मण को बाली के पास भेजते। ऐसा करने पर आज राम कहाँ होते ? वह बाली के अहसान के नीचे दब जाते। यथार्थ में यह स्थिति भगवान राम के और राज्य-धर्म के भी अनुकूल न थी। माँगने से महत्व घटता है, बढ़ता नहीं। इसलिये उन्होंने प्रथम पर्वत पर जाकर सुग्रीव से मित्रता की और बाली को बिना ललकारे छुपकर मारा। सुग्रीव को राज्य दिया। यद्यपि राज्य का अधिकारी अंगद था, किन्तु उसको राज्य का अधिकारी मानते हुये भी राज्य न देकर केवल युवराज बनाया और सुग्रीव को राजा बनाया। यह भी ध्यान देने की बात है। यदि राम ने उस समय अंगद को राजा बना दिया होता तो स्वयं अंगद राम-भक्त न रह कर प्रथम श्रेणी का शत्रु होता। यह भी एक तर्क है कि बाली ने राम से कहा है—

धर्म हेतु अवतरेहु गुसांई। मारेहु मोहि व्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पियारा। कारण कवन नाथ मोहि मारा॥

अर्थात्—हे राम! तुम्हारा अवतार धर्म की रक्षा के लिए हुआ है और तुमने मुझे अधर्म युक्त रूप से व्याध की तरह (छुपकर) मारा। क्या मैं तुम्हारा बैरी हूं और सुग्रीव प्यारा है (जब कि भगवान के लिये सब समान होने चाहियें) क्या कारण है जो आपने मुझे मारा है। इसके उत्तर में राम ने कहा—

अनुज-वधू, भगिनी, सुत-नारी। सुन शठ ये कन्या सम चारी॥
इनहिं कुदृष्टि बिलोके जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

अर्थात्—छोटे भाई की स्त्री, बहिन, बेटे की स्त्री और पुत्री—ये चारों समान हैं इन पर कुदृष्टि डालने वाले के मारने का पाप नहीं होता इत्यादि। यहां यह तर्क की जाती है कि सुग्रीव ने भी बाली की पत्नी तारा और विभीषण ने रावण की पत्नी मन्दोदरी को पत्नी बना कर क्यों रखा? उन्हें भी राम ने दन्ड क्यों नहीं दिया, इत्यादि।

यह विषय सामाजिक है। जिस जाति में जैसी व्यवस्था होती है, उसके अनुकूल आचरण करना पाप या अधर्म नहीं माना जाता। यद्यपि भद्र समाज में बड़े भाई की पत्नी को माता के समान मानना चाहिये, फिर भी देखने में यह आता है कि देवर बड़ी भौजाई से सब प्रकार के हंसी मजाक करता है और उनका ऐसा करना समाज में अनुचित नहीं माना जाता। कोई कोई देवर का अर्थ ही द्वेवर—दूसरा वर लगाते हैं। बल्कि शूद्रों में और पहाड़ों में आज भी बड़े भाई की विधवा छोटे भाई की स्त्री बनती है। परन्तु छोटे भाई की स्त्री जेठ (पति के बड़े भाई) से बड़ा भारी परदा करती है। इतना पर्दा श्वसुर का नहीं करती, जितना जेठ का करती है। यदि छोटा भाई मर जाता है, तो उसकी विधवा को (शूद्रों में भी) बड़ा भाई अपनी स्त्री बना कर नहीं रख सकता। यह व्यवस्था पुरानी चली आ रही है। जोकि आज प्रचलित है। सुग्रीव और रावण की सामाजिक व्यवस्था इसी प्रकार की हो सकती है, तभी उसका विरोध नहीं हुआ।

२—आज श्रीराम की आलोचना का मुख्य विषय है (जो कि अधिकाँश व्यक्ति करते हैं) कि राम ने राज्य करते हुये एक तुच्छ धोबी के सन्देह करने पर गर्भावस्था में सीता को वन में भेज दिया। आलोचकों का कहना है कि जब सीताजी ने अग्नि-परीक्षा द्वारा श्री रामचन्द्र जी को अपनी पवित्रता का परिचय

दे दिया था, तब फिर धोबी के सन्देह करने पर उन्हें वन में क्यों भेज दिया। इत्यादि

यथार्थमें आज लोगों ने धर्म को महत्व देना कम कर दिया है, इसलिये भगवान पर विश्वास भी ढीला पड़ गया है इसीलिये वे धर्म के गूढ़ भेद को समझ नहीं पाते, और यह सब तर्क कुतर्क करने में ही उन्हें आनन्द आता है। यदि भगवान पर विश्वास करके निष्पक्ष भाव से इस पर यह विचार करें कि आखिर भगवान के ऐसा करने का कारण क्या है? ऐसा करने से उन्हें स्वतः ही उत्तर मिल जायगा। उन्हें ज्ञात होगा कि राम राज्य का सार तत्व यही प्रकट होता है। उन्हें यह भी ज्ञात हो जायगा कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने अवतार धारण कर प्रत्येक वर्ग को अपने-अपने धर्म की मर्यादा पालन करने की शिक्षा दी है। यहां श्री राम ने यह बताया है कि राजा को प्रजा के छोटे से छोटे वर्ग की भावना को कितना अधिक महत्व देना चाहिये, और एक तुच्छ व्यक्ति के मन में भी राजा के (शासक के) प्रति किसी प्रकार की शंका या भ्रम नहीं रहना चाहिये।

सीता ने अग्नि परीक्षा लंका में श्री राम तथा उनके वानर दल और लंका वासियों के आगे दी। वे सब लोग इसके साक्षी थे। उनके बताने से अयोध्या वासियों ने तथा अन्य सभी ने विश्वास किया। यद्यपि उन्होंने सीता को अग्नि परीक्षा देते देखा न था, फिर भी सबको विश्वास हो गया। किन्तु एक तुच्छ बुद्धि-धोबी के मनमें शंका बनी रही। यह शंका जब तक उसके मन में रही, तब तक कोई बात न थी, परन्तु जब वह शंका प्रकट हो उठी, तब श्री राम के लिए (अथवा किसी भी राजा के लिये) एक समस्या के रूप में आगे आती है। अब श्री राम के आगे तीन विकल्प खड़े होते हैं—

१—यह कि धोबी की बात पर कोई ध्यान न दिया जाय।

२—सीता के सहित राज्य का परित्याग कर दिया जाय।

३—तीसरा यह कि सीता जी को वन में भेज दिया जाय।

प्रथम पग बढ़ाने में लोक मत न केवल सीता के बल्कि उसकी सन्तति के विरुद्ध जाने की आशंका है और धर्म का ह्रास होता है। द्वितीय चरण में प्रजा का विनाश होता है किन्तु तृतीय चरण में परस्पर तपने के अतिरिक्त किसी अन्य की कोई हानि नहीं होती।

धर्मात्मा राजा के लिये यह परीक्षा का समय है, क्योंकि बुरी बात बड़ी जल्दी फैलती है और जो बात आज तक धोबी की जबान पर आई है, वही कुशंका शनै शनै बहुतों में प्रवेश कर जन समूह की आम चर्चा का विषय बन सकती है, अथवा दबी अग्नि की भांति भीतर ही भीतर बढ़ सकती है और यही भ्रम एक दिन विराट रूप धारण कर (राम के आगे नहीं तो उनकी सन्तति के आगे सही) विद्रोह खड़ा कर सकता है।

यदि मान भी लिया जाय कि जनता के मन में राजा के प्रति किसी प्रकार की आशंका केवल परस्पर चर्चा का विषय बनने तक ही सीमित रहेगी, वह राम के समान प्रजा पालक राजा का कुछ भी अहित न कर सकेगी—यह कोरा भ्रम है। यदि प्रजा में किसी प्रकार की गड़बड़ या अशान्ति उत्पन्न न भी हो, तब भी बड़े अनर्थ की सम्भावना यह है कि प्रजा राजा का अनुकरण करती है। जब प्रजा के मन में अपनी महारानी के आचरण पर सन्देह हो (चाहे वह सन्देह निराधार ही क्यों न हो) तो प्रजा का आचरण भी ठीक नहीं रह सकता क्योंकि यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार प्रजा राजा के पद चिन्हों पर चलती है। इस प्रकार भी धर्म का प्रवाह पतन की ओर मुड़ जाता है।

यह बात भी है कि सीता गर्भवती है और जो शंका सीता के प्रति उत्पन्न हो चुकी है, वही शंका सन्तति के आगे आती है जिसे राज्य करना हो उसके प्रति प्रजा के मन मे इस प्रकार की शंका अनर्थ की जड है।

दूसरा मार्ग प्रजा के परित्याग का है (आज के प्रगतिशील व्यक्ति आलोचना करते समय इसी का समर्थन करते हैं) यदि श्रीराम किंग एडवर्ड के समान राज्य पद त्याग कर श्री सीताजी सहित राज्य से बाहर-वन में चले जाते हैं तो जिस प्रकार किंग एडवर्ड की प्रजा ने किंग के गद्दी से उतारे जाने का समर्थन किया उसी प्रकार श्रीराम की प्रजा राम के राज्य-पद का त्याग कदापि स्वीकार न करती। यदि प्रजा की अवहेलना करके वह राज्य के पद त्याग करते हैं तब भी वह इस क्षति को सरलतापूर्वक स्वीकार नहीं कर सकती थी। जनता में परस्पर विद्रोह खड़ा हो जाता। प्रथम तो सभी अपना क्रोध उस धोबी पर उतारने की चेष्टा करते। कुछ धोबी का समर्थन करते, कुछ राम (सीता) का पक्ष लेते। इस प्रकार राम की प्रजा के परस्पर विरोधी दो दल खड़े हो एक दूसरे का संहार करने पर उतारू हो सकते थे और इस विनाश का कारण होते श्रीराम. अर्थात् राम का राज्य त्याग जो कि प्रजा पालक है वही उसका घातक सिद्ध हो—यह राम सरीखे प्रजा रक्षक राजा के लिये अभीष्ट न था।

धर्म शास्त्रों की आज्ञा है कि एक कुटुम्ब के धर्म की रक्षा के लिए एक व्यक्ति का, एक ग्राम के धर्म की रक्षा के लिये एक कुटुम्ब का त्याग कर देना चाहिये। इसी प्रकार एक नगर के धर्म की रक्षा के लिए एक ग्राम का और पूरे देश के धर्म की रक्षा के लिये एक नगर का भी त्याग कर देना चाहिये। यहां एक ओर सारी प्रजा का धर्म और जीवन है दूसरी ओर है, श्री राम की सबसे प्रिय वस्तु

और भविष्य की आशा सीता और उनके गर्भ स्थित बालक। इन्हीं दोनों के लिये मानव नाना प्रपंच रचता, सब प्रकार के कर्म कुकर्म करता है और भगवान को भूला रहता है—उसी के त्याग करने का प्रश्न राम के आगे आता है। एक ओर असंख्य प्रजा और दूसरी ओर गर्भवती सीता—इनमें एक का त्याग करना आवश्यक है।

अब तीसरा विकल्प ही शेष रहता है—यह कि राम-सीता परस्पर एक दूसरे के प्रति सच्चे हैं। सीता के प्रति धोबी के मन में शंका है अतः केवल सीता को ऋषियों के आश्रम में भेज देने मात्र से सारी समस्या हल हो जाती, क्योंकि धोबी भी प्रजा का एक भाग है और राज्य पाट सब प्रजा के साथ है। जब प्रजा को (एक अंग को ही सही) उन पर सन्देह है तो उन्हें (सीता को) राज्य के सभी वैभवों का परित्याग करना ही उचित है।

प्रजा का सभी वर्ग राम को चाहता है,किंतु केवल एक व्यक्ति सीता के आचरण पर संदेह करता है, यह सब सोच विचार कर राम ने सीता को ऋषि आश्रम के निकट वन में छोड़ आने का लक्ष्मण को आदेश दिया। सीता ने वन में और रामचद्र जी ने राज्य प्रमाद में रहते हुए भी तपोमय जीवन व्यतीत किया। इस प्रकार राजाओं के आगे प्रजा पालन का उदाहरण प्रस्तुत किया। श्रीराम के इस महान त्याग की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता।

आगे पुन शंका उठाई जाती है कि राम ने सीता को बताया क्यों नहीं? धोखे से वन में क्यों भेज दिया? इत्यादि

यहाँ स्त्रियों की प्रकृति पर विचार करके ही राम ने ऐसा किया होगा। यदि उन पर उठाई जाने वाली सारी कुशकायें सीता को बताते और उन्हें वन भेजने का अपना सकल्प प्रदर्शित करते तो इससे सीता को भारी आघात लगता और राम को

छोड़ कर जाने के पूर्व सम्भव था कि सीता जी वहीं प्राण त्याग कर देतीं। इस प्रकार तो अचानक आई विपत्ति के रूप में सब कुछ सहन कर लिया जाता है, जैसा कि उन्होंने आगे चल कर किया।

जब लव कुश की वीरता का परिचय मिल गया और सीता जी सबके सम्मुख अन्तिम परीक्षा देकर पृथ्वी मे प्रवेश कर गयीं और उनके प्रति उठाई गई शका निराधार सिद्ध हुई। तब लवकुश के प्रति शका उठाने का कोई कारण नहीं रहा। वे अयोध्या के राजा हुये।

३—तीसरी शका यह उठाई जाती है कि शूद्र को तप करते हुये क्यों मारा ?

स्मरण रहे शूद्र का तप कभी सतोगुणी नहीं होता बल्कि तमोगुणी होता है, जिससे दूसरों का विनाश हो। आज भी यही हो रहा है। आज भी शूद्र ही तप कर रहे हैं। विश्व व्यापी अशाति का बड़ा कारण यही है। आज प्रत्येक बडे देश अणु आयुध तथा उद्‌जन आयुध के जखीरे बढाने मे लगे हैं। क्या इसे शूद्रों द्वारा या असुरों द्वारा किया गया तामसी तप ही नहीं माना जा सकता। यह जो विनाश की सामग्री संग्रह की जा रही है इसका होगा भी क्या ? आखिर एक दिन इन्हें फटना है और जिस दिन ये सब फटने लगेंगे, उस दिन ससार मे क्या बचेगा ? जबकि एक बम से भारी जंगी जहाज और पूरा टापू भाप बन कर उड़ सकता है तो जिस समय हजारों और सब ओर से लाखों ऐसे बम छूटेंगे, उस समय संसार में क्या बचेगा। इस सर्वनाश के निर्माता को प्रारम्भ में ही गोली से उड़ा देना क्या बुरा था ? इसे शूद्रों द्वारा किया हुआ तप का परिणाम ही तो माना जा सकता है। इससे मिलती जुलती स्थिति में ही श्रीराम ने शूद्र को तप करते हुए मार कर ससार की रक्षा की।

कृष्णावतार

रामावतार और कृष्णावतार के मिलान करने से यही सिद्ध होता है कि रामावतार में भगवान ने धर्म, लोक और कुल की मर्यादा पालन करने की शिक्षा दी है। लौकिक और पारलौकिक उन्नति का तथा मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित किया है किंतु कृष्णावतार में धर्म, लोक और कुल की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले को सावधान किया गया है। अपने कुल का विनाश कर यह दिखा दिया है कि धर्म, लोक मर्यादा और कुल की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले का पतन अवश्यम्भावी है।

राम का अर्थ ही निर्मल, स्वच्छ सफेद और उज्ज्वल होता है, किंतु कृष्ण का अर्थ ही काला है। प्रत्येक चित्र के भी सीधे और उल्टे दो भाग होते हैं।

रामावतार बसन्त ऋतु के चैत्र मास—शुक्ल पक्ष में नवमी तिथि को दिन के १२ बजे राजमहल में हुआ। चैत्र सब महीनों में सुहावना मास है। चारों ओर बसन्ती छटा छाई होती है। उनके जन्म लेने का इतना हर्षोल्लास तथा महोत्सव मनाया गया, जिसे देखने के लिये सूर्य भगवान एक महीने तक अपना रथ रोके खड़े रह गये।

कृष्णावतार भादों मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को अंधेरी रात के १२ बजे कारागार में हुआ। भादों की रात भयावनी प्रसिद्ध है।

स्मरण रहे! भादों का महीना बारहों मास में निषिद्ध

माना गया है। वर्षा की झड़ी लगी रहती है, काली घटा छाई होती है, बादल गरजते होते हैं और बिजली चमकती होती है। सभी नदी-नाले बढ़े होते हैं। बाढ़ें आई होती हैं। स्थान स्थान पर कीचड़ और दल-दल के कारण मार्ग अवरुद्ध रहता है। साँप बिच्छू, ततैये, मच्छड़, मक्खी, कीट-पतंगों की भरमार होती है और सभी में विष की मात्रा बढ़ जाती है।

जिस समय भगवान प्रकट हुये उस समय रोहिणी नक्षत्र और बुधवार था। साथ ही भद्रा लगी हुई थी। स्मरण रहे शुभ या अशुभ किसी भी कार्य मे भद्रा का होना बहुत बुरा माना गया है। वार बुध था—जिसका तारा सुनते हैं कि आज तक किसी को दिखाई नहीं दिया, इसलिये बुध को खाली दिन, कुबुद्धिदायक और कहीं-कहीं अमंगल सूचक भी माना गया है। कोई शुभ कार्य बुध के दिन नहीं किया जाय—ऐसा वह दिन था। रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न होने वाला कीर्तिमान होता है, अत भगवान कृष्ण की कीर्ति में आज तक किसी को कोई सन्देह नहीं।

भादों की व्यायी गाय को तो कोई घर में रखता भी नहीं, मनुष्य के लिये भी लोग नहीं चाहते कि भादों के महीने में बालक का जन्म हो। कोई घर भी भादों में नहीं बदलता।

भगवान कृष्ण के उत्पन्न होते ही उन्हें किसी प्रकार छुपा देने की चिंता वसुदेव और देवकी को लगी। वह उसी समय उन्हें लेकर गोकुल पहुँचाने के लिये चल पड़े।

श्रीराम ने बचपन से ही सुशीलता दिखाई, किंतु कृष्ण बचपन से ही नटखट हुये। माखन की चोरी करना, गोपियों के चीर हरण करना, उनसे दान मांगना, उनके साथ विहार करना, रास रचाना इत्यादि। इनके ये सभी व्यवहार धर्म और मर्यादा के विरुद्ध थे।

श्रीराम ने एक मात्र सीता को पत्नी रूप में ग्रहण कर आदर्श उपस्थित किया, किंतु कृष्ण ने बचपन में ही सोलह हजार गोपियों के साथ विहार किया। मथुरा पहुँचते ही एक मालिन (कुब्जा) उन पर मोहित हो गई, अत. उसकी भी मंशा पूर्ण करने के लिये उसके घर जाकर रहे।

भगवान कृष्ण के सौ रानी, आठ पटरानी और सोलह सहस्र राजकन्या थीं जो सब उनकी पत्नियां थीं। इन सबके आठ-आठ सन्तानें हुईं। इस प्रकार सन्तति तथा नाती-पोतों का लाखों तक विस्तार हो गया, जबकि राम के केवल लव और कुश ये दो पुत्र हुये।

जैसा कि ऊपर बताया गया—प्रत्येक चित्र के सीधे और उल्टे दो भाग होते हैं। रामावतार में भगवान राम ने धर्म की मर्यादा का पालन कर चित्र का सीधा भाग दिखाया है। उन्होंने कोई ईश्वरीय चमत्कार न दिखाते हुए यह बताया है कि मानव जीवन में जो कठिनाइयाँ और धर्म पालन में जो बाधायें आती हैं उन्हें सहन करते हुये किस प्रकार धर्म पर चला जा सकता है। यह भी बताया है कि साधारण मनुष्य भी धर्म पर चलते हुए किस प्रकार सुखी और सम्पन्न रह सकता है। माता-पिता गुरू तथा भाई-बन्धु, पति-पत्नी और मित्रादि के साथ किस प्रकार अपने धर्म कर्म और कर्तव्य का पालन करना चाहिये। साथ ही राजा को प्रजा के छोटे से छोटे व्यक्ति के भी विचारों को कितना महत्व देना चाहिये। भगवान राम ने धर्म की मर्यादा पालन करना तथा धर्म की रक्षा करना सिखाया है और यह दिखा दिया है कि इसका अन्तिम परिणाम लोक और परलोक दोनों के लिए सुखद है। मनुष्य मात्र को इसका अनुकरण करना चाहिये।

लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण

कृष्ण का अर्थ काला है। कृष्णावतार में भगवान ने धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करके चित्र का उल्टा भाग दिखाया है और अपने कुल का विनाश कर मनुष्य मात्र को यह चेतावनी दी है कि धर्म और शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करने वालों की यही गति होगी जो अन्तिम समय में कृष्ण वंश की तथा स्वयं उनकी हुई। अर्थात् उनका करोड़ों का परिवार जो महान बली और शक्ति शाली था, जो कि दुर्व्यसनी और अभिमानी बन गया था। वह परस्पर लड़ कर समाप्त हो गया। कृष्णावतार का तथा कृष्ण भगवान का लक्ष्य भी यही था। अपने कुल का विनाश हुआ सुन कर वह द्वारिका वापस न जाकर जंगल में एक वृक्ष के नीचे उदासीन भाव से लेट गये जहां हिरण के धोखे में एक व्याध ने उन्हें तीर का निशाना बनाया। निकट पहुँच कर खेद प्रकट करने पर शव को समुद्र में विसर्जन करने का उसी व्याध को आदेश दिया। उसी समय उद्धव जी वहां पहुँच गये, उनसे इन दुर्घटनाओं का समाचार अर्जुन तक पहुँचाने के लिये कह कर भगवान अपने दिव्य धाम को पधार गये। कालान्तर में उनकी दिव्य अस्थियाँ उड़ीसा (पुरी) में प्रगट हुईं जोकि श्री जगन्नाथ जी के क्लेवर के मध्य आज तक विराजमान हैं—ऐसा सुना जाता है।

उद्धव द्वारा यह सब दुखद समाचार सुन कर जब अर्जुन द्वारिका पहुँचे उस समय द्वारिका पुरी की स्थिति श्मशान सी बन चुकी थी। चारों ओर क्रंदन और विलाप छाया हुआ था। अधिकांश युवा पुरुष परस्पर की लड़ाई में काम आ चुके थे। श्रीकृष्ण भगवान के माता पिता वसुदेव देवकी जो प्रभाप क्षेत्र की यात्रा से लौटे आ रहे थे, इस विनाश का समाचार सुन कर मार्ग में ही

प्राण त्याग कर दिया। महाराजा उग्रसेन ने जो जर्जर अवस्था में अभी जीवित थे अर्जुन के द्वारा भगवान के निधन का समाचार पाते ही शरीर त्याग दिया। यह सभी क्रम उलटा रहा, जिनका सबसे पहले अन्त होना चाहिये था क्रमशः उनका सबसे पीछे अन्त हुआ। श्रीकृष्ण भगवान की हजारों पत्नियाँ तथा कुलवधुयें सब विधवा हो गईं। उनमें से बहुत सी सती हो गईं, फिर भी बहुत सी विधवा-युवतियों की भीड़ बची रही। अर्जुन सब दिवंगत आत्माओं की क्रिया कर्म के उपरांत जैसे ही द्वारिका पुरी के बाहर हुये—वैसे ही द्वारिका समुद्र में समा गयी। इधर अर्जुन सब स्त्रियों को अपने साथ हस्तिनापुर लिये जा रहे थे। मार्ग में कोल-भील उन पर टूट पड़े और स्त्रियों को अर्जुन के सामने से ले भागे। कुछ स्त्रियाँ अपनी इच्छा से उनके साथ चलदीं। अर्जुन के अतुल बल और गाण्डीव-धनुष ने उस समय उनका कोई साथ न दिया। केवल नन्हें बालक को उसकी माता के साथ लेकर अर्जुन हस्तिनापुर पहुँचे। उसके पालन-पोषण की व्यवस्था और मथुरा का राज्य उसके नाम कर, परीक्षित को अपना राज्य देकर द्रोपदी सहित पाँचों पाण्डव हिमालय में गलने के लिये चले गये। राज्य-सिंहासन पर बैठने के कुछ समय उपरांत उस बालक का भी प्राणांत हो गया।

यह सब बीभत्स और भयानक दृश्य भगवान ने अकारण नहीं दिखाया बल्कि मानव समाज को दुष्कर्मों से बचाने के लिये उसे सावधान करने के लिये ही उन्होंने अवतार धारण किया।

आज यह प्रत्यक्ष देखने में आ रहा है कि धर्म और समाज की मर्यादा का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति यदि बुद्धिमानी से चलता रहा तो वह स्वयं एक बार बहुत उन्नति करता प्रतीत होता है। कारण कि वह बुराई और भलाई का भेद जानता है अतः बुराई का त्याग कर

भले मार्ग को ग्रहण करता है। नवीनता का उत्साह नवीन पथ पर चलने का उत्साह उसे कठिनाई सहन करने में घबड़ाने नहीं देता। इसलिये उसक धन, बल और यश तीनों में वृद्धि हो जाती है किन्तु सामाजिक बन्धन टूटने के उपरांत आगे चल कर उसी की सन्तति पथ भ्रष्ट हो उल्टा मार्ग ग्रहण करती है। किसी प्रकार का नियन्त्रण न रहने के कारण उसे जिधर आकर्षण मिलता है उधर ही झुक जाती है। उनमें भी जो विवेकशील हैं, सदाचार में जिनकी रुचि है, वह आगे भी उन्नति करते हैं वरना दुर्व्यसनों का शिकार बन कर एक दो पीढ़ी में ही उसका पतन अनिवार्य हो जाता है।

भगवान जब अवतार धारण कर पृथ्वी पर विचरण करते हैं, तब वह अपने भौतिक जावन का एक पल भी ऐसा नहीं जाने देते जो मानव समाज के लिये उपकारी न हो, बल्कि उनके जीवन का एक-एक क्षण मानव समाज तथा प्राणी मात्रके लिये कल्याण-कारी और महान शिक्षा प्रदान करने वाला होता है।

भगवान श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र से मनुष्य अगणित शिक्षा तथा समस्त ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उनका सम्पूर्ण जीवन-चरित्र अद्भुत चमत्कारों से भरा पड़ा है।

वह चतुर्भुजी स्वरूप में प्रकट हुये और प्रकटते ही अपना चमत्कार दिखाना आरम्भ किया। माता-पिता की बेडी और जेल के फाटक खुल गये। पहरेदार सब सो गये, जमुना (जो अगम अथाह थी) ने चरण स्पर्श करते ही मार्ग दे दिया। वसुदेवजी उन्हें यशोदा के पास सुला कर और यशोदा के पास से नवजात कन्या को लेकर चुपके से वापस आ गये। तब तक किसी की निद्रा भंग न हुई। बन्दी गृह के सब पहरेदार भी पड़े सोते रहे। वसुदेव जी जब वापस बन्दीगृह में आ गये, उनके पैरों में बेड़ियां स्वतः पड़

गई। फाटक बन्द हो गया। कन्या रोने लगी। तब पहरेदारों की भी आँखें खुलीं। उन्होंने चट-पट कंस को सूचना की। कंस कन्या को उठा ले गया। उसको पैरों से पकड़कर पत्थर पर पटकने केलिये हाथ ऊँचा किया ही था—कन्या हाथ से छूट कर आकाश में जा बिजली की भाँति चमकी और कंस से बोली कि तेरे मारने वाला ब्रज में उत्पन्न हो गया है।

भगवान कृष्ण जिस समय ६ दिन के थे तभी उन्होंने एक दैत्य शकटासुर का वध किया। दस दिन के होने पर पूतना का संहार किया, अगणित अघासुर, बकासुर और बच्छासुरों को मारा किन्तु नन्द यशोदा उन्हें बालक ही समझ लाड़-प्यार करते और ताड़ना देते रहे। इससे प्रथम तो भगवान की माया की प्रबलता का पता चलता है जोकि प्राणी मात्र को अपने भ्रम जाल में उलझाये रखना चाहती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य कितना विस्मरणशील है और कितनी जल्दी भगवान को तथा उनके प्रताप को भूल जाता है।

भगवान कृष्ण ने बचपन में मांटी खाने का स्वांग रचा। मुख खुलवाने पर यशोदा को कोटि-कोटि ब्रह्मांड तीनों लोक और चौदह भुवन की झाँकी अपने नन्हें से मुख में दिखलादी। यह देख क्षण भर के लिये यशोदा हक्की-बक्की सी रह गई। दूसरे ही क्षण भगवान के ठिनकने पर उन्हें बहलाने लगी। कुछ ही समय उपरांत दही की मटकी फोड़ देने पर उन्हें ऊखल से बांधने लगी। भगवान यहां भी अपना चमत्कार दिखाते हैं। सारी रस्सी का जोड़ भी केवल चार अंगुल छोटा पड़ता है। जब हार मान कर यशोदा मैया अपनी चोटी में बंधी डोर खोल कर जोड़ती है तो भगवान चट-पट बंध जाते हैं।

पांच वर्ष की अवस्था में भगवान ने गोवर्धन पर्वत को

एक हाथ पर उठा लिया और लगातार सात दिन-रात उठाये रहे। इस प्रकार इंद्र के प्रकोप से सारे व्रज मण्डल की रक्षा की किंतु फिर भी व्रजवासी इसे गोवर्धन पहाड़ की कृपा ही समझते रहे और गोवर्धन धारी भगवान को बालक समझ उनके हाथों को सहला कर उनके हाथों की थकावट दूर करने की चेष्टा करते रहे। कृष्णावतार में पग-पग पर ऐसे अनगिनत चमत्कार दिखाये गये हैं।

अर्जुन को गीता का उपदेश सुनाते समय भगवान ने सारी श्रुति-स्मृति का सार तत्व निचोड़ कर १८ अध्याय में रख दिया। दस अध्याय सुनाने पर जब उसका मोह दूर न हुआ तब भगवान ने अर्जुन को दिव्य-दृष्टि प्रदान कर अपना विराट रूप दिखाया। सारे कौरवों को सेना सहित मरा हुआ दिखा दिया। उनके रोम-रोम में अगणित ब्रह्मांड की रचना देख कर अर्जुन घबरा गया और पुनः अति शीघ्र मनुष्य रूप धारण करने के लिए भगवान से प्रार्थना करने लगा किंतु भगवान का मनुष्य (कृष्ण) रूप धारण करते ही पुनः मोह ग्रस्त हो गया। अतः भगवान को गीता के सात अध्याय और सुनाने पड़े। तब कहीं अर्जुन का मोह छूटा और वह युद्ध करने पर उतारू हुआ।

भगवान कृष्ण को लीला पुरुषोत्तम माना गया है। वह सभी कलाओं में परिपूर्ण थे।

वह ऐश्वर्यशाली थे। उनके ऐश्वर्य में कोई कमी नहीं थी।

वह कीर्तिमान थे, हम आज पाँच हजार वर्षों से उनकी कीर्ति का गुण गान कर रहे हैं।

वह श्री सम्पन्न थे, उन्होंने रातों रात द्वारिकापुरी बसा ली। जिसमें रत्न जड़ित महल खड़े कर दिये। सुदामा की सोने की नगरी बसा दी।

यह धर्मात्मा थे-अनेकानेक अधर्मी असुरों का विनाश कर धर्म की रक्षा की।

उनमें पूर्ण ज्ञान था--गीता में उन्होंने सारी श्रुतियों का सार निचोड़ कर रख दिया।

उनमें पूर्ण वैराग्य था--किसी से उनको राग या द्वेष नहीं था। इसीलिए उन्हें योगी राज--श्री कृष्ण कहा जाता है।

इतना सब कुछ होने पर भी उनके कुल का पतन हुआ, यह क्यों? यह प्रश्न उठता है।

यथार्थ में यही कृष्णावतार का सार तत्व है। यही दिखाने के लिये भगवान ने लीलावतार धारण किया। यहीं पर मनुष्य शिक्षा ग्रहण कर सकता है।

कृष्णावतार में भगवान ने यह स्पष्ट करके दिखा दिया कि कोई चाहे जैसा यशस्वी, कीर्तिवान, धनवान, धर्मात्मा, ज्ञानी, वैरागी और सभी गुण सम्पन्न भले ही हो किंतु शास्त्रों की मर्यादा उल्लंघन करने वाले का पतन अवश्यम्भावी है जैसा कि श्रीकृष्ण के कुल का पतन अनिवार्य हो गया।

हमें श्री कृष्ण की लीलाओं का गुण गान करते हुए भी उनकी लीला का अनुकरण नहीं करना चाहिए। इसके लिए तो देखना चाहिए कि भगवान ने हमारे लिए गीता में क्या आदेश दिया है। श्री भगवान ने गीता में कहा है--

श्रेयान स्वधर्मो विगुणः पर धर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः॥

अर्थात्--इसलिये उन दोनों (मन और इन्द्रियों) को जीत कर सावधान हुआ मनुष्य स्वधर्म का आचरण करे। क्योंकि अच्छी प्रकार आचरण किये हुये दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी कल्याण कारक है, और दूसरे का धर्म भय देने वाला है।

रामावतार एवं कृष्णावतार का तुलनात्मक अध्ययन

रामवतार तथा कृष्णावतार के उद्देश्यों को समझने के लिये अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं, केवल दोनों अवतारों के नाम का अर्थ, जन्म का समय, लक्षण, गुण और मानव लीलाओं पर थोड़ा ध्यान देने से ही स्पष्ट हो जाता है। जैसे कि राम और कृष्ण दोनों का ही श्याम वर्ण माना गया है। फिर भी राम का अर्थ श्वेत और कृष्ण का अर्थ काला है। अत दोनों अवतारों के निम्नलिखित लक्षणों पर ध्यान देना चाहिये।

१—राम और कृष्ण के जन्म का समय स्थान और कर्म में भेद।

२—उनके नामों का अर्थ भी परस्पर उलटा है (यहाँ उनके ब्रह्म स्वरूप व आध्यात्मिक स्वरूप का नहीं, केवल स्थूल स्वरूप व उनकी मानव लीलाओं पर विचार करना चाहिये।

३—श्री राम के साथ राम की मर्यादित पत्नी सीता का नाम आता है। 'सीताराम' कहते हैं, जबकि श्री कृष्ण के साथ उनकी लोक मर्यादित पत्नियों में से किसी का नाम न आकर केवल अमर्यादित पत्नी 'राधा' का नाम लिया जाता है—राधा-कृष्ण, गोपीकृष्ण या राधेश्याम' उच्चारण किया जाता है।

४—भगवान कृष्ण ने राधा व सोलह सहस्र गोपियों के साथ (धर्म की मर्यादा का उल्लघन कर) यद्यपि विहार किया, किन्तु मथुरा पधारने के उपरान्त पुन उनकी कोई सुधि न ली। वे आजीवन कृष्ण के विरह मे व्याकुल रहीं। यहा सभी स्त्रियों को यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पर पुरुष से प्रेम (अनुराग) अनुचित सम्बन्ध स्थापित करने से स्त्रियों के हाथ सिवा

विरह, व्यथा तडपन के अतिरिक्त उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता। यद्यपि यह गोपिया तथा ग्वाल-बाल सभी दिव्य विभूतिया थीं और भगवान की लीलाओं में सम्मिलित होने के लिये ही मानव शरीर धारण किया था। परन्तु भगवान की लीला तो मानव रूप मे मनुष्य को भोगों में आसक्त होने का परिणाम दिखाने के के लिये रची गयी थी—यह भूलना नहीं चाहिये।

५—श्री राम का स्वरूप सीधा-सादा सरल चित्रित किया गया है, जबकि श्री कृष्ण को सिर से लेकर पैर तक टेढा दिखाया जाता है। उनके जन्म के समय चन्द्रमा भी टेढा उदित होता है।

६—भगवान के सभी स्वरूप (सृष्टि के सचालक) ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश और सूर्य ये सभी अपने अपने धर्म पर आरूढ हैं। अत धर्म का चिन्ह यज्ञोपवीत भी सभी ने धारण किया हुआ है। भगवान राम और लक्ष्मण आदि के गले में भी जनऊ चित्रित किया जाता है किन्तु कृष्ण भगवान के गले में भी वैजन्ती माला दिखाई गई है जनऊ नहीं। यद्यपि उनका यज्ञोपवीत होने और सान्दीपन गुरू के आश्रम में विद्याध्ययन करने की चर्चा भागवत मे आती है, फिर भी धर्म पालन का चिन्ह जनेऊ उनके चित्रों में कहीं दिखाया नहीं देता। इस युक्ति से भी भगवान का धर्म की मर्यादा का उल्लघन करना ही सिद्ध होता है। आज भी भारत के द्विज वर्ग यही कर रहे हैं।

७—भगवान ने अर्जुन को गीता का उपदेश सुनाया, जिसमें श्रुति स्मृति का सार निचोड़ कर रख दिया। यहां तक कि विराट रूप भी दिखा दिया। यहां ध्यान देने की बात यह भी है कि ज्ञानोपदेश सुनने व सुनाने के लिये, शान्त चित्त, शान्त वातावरण तथा सद्गुरू की आवश्यकता सिद्ध की गई है। ज्ञान प्राप्त करने का परिणाम परम शान्ति है।

भगवान राम ने चक्रवर्ती (त्रिभुवन) सम्राट होते हुये भी ज्ञान प्राप्त करने के लिये गुरू के आश्रम में प्रवेश किया। जहाँ शिष्य के रूप में गुरू के चरणों में शांत चित्त से, शांत वातावरण में बैठ कर ज्ञानोपदेश सुन कर परम शांति प्राप्त की, जबकि भगवान कृष्ण ने युद्ध स्थल के महा अशांत वातावरण में जहां १८ अक्षौहिणी सेना परस्पर टकराने को उतावली खड़ी है, जिसे देख अर्जुन का हृदय भर्रा कर डावाडोल हो उठा है ऐसे अशांत क्षेत्र में सारथी के स्वरूप में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता का ज्ञान सुनाया जिसका परिणाम महाभारत का महा विनाश हुआ।

८—राम के केवल दो ग्रन्थ—रामायण और योगवाशिष्ठ हैं जबकि कृष्ण ग्रन्थों के महाभारत, भागवत् और भगवद्गीता ये तीन भाग हैं। रामायण में कर्म उपासना युक्त है और योग वाशिष्ट में ज्ञान है। वैदिक धर्म की मर्यादा का आधार भी यही है। यहाँ कर्म का उपासना युक्त पालन करके मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़ा जाता है।

कृष्ण लीला में कर्म उपासना और ज्ञान तीनों के तीन भाग कर दिये गये हैं। यहाँ कर्म का आदर्श महाभारत में उपासना का आदर्श भागवत में और ज्ञान का आदर्श गीता में प्रदर्शित किया गया है। इन तीनों के अलग-अलग होने का परिणाम भी भयंकर सिद्ध हो सकता है, जैसा कि महाभारत के महाविनाश के उपरान्त यादव कुल का भी अन्त दिखाया गया है।

९—कृष्ण लीला का पटाक्षेप जिस रूप में हुआ, यही तो कृष्णावतार का सार तत्व है। यही उलटा परिणाम दिखाने के लिये तो भगवान ने लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्द-कंद के रूप में अवतार धारण किया और भोग मार्ग (उल्टे मार्ग) का प्रदर्शन कर उसका उल्टा परिणाम भी दिखाया है। यहाँ पूर्णरूपेण उलटा क्रम चालू हुआ है, जिसे सर्व प्रथम स्वर्ग सिधारना

चाहिये गह अपने पूरे कुल का विनाश देखने के उपरान्त प्राण त्याग करता है। अर्थात् सर्व प्रथम कृष्ण और बलराम परिवार परस्पर लड़ कर समाप्त हो जाता है। फिर कृष्ण भगवान अपनी मौलिक लीला समाप्त करते हैं। इनके पीछे वसुदेव-देवकी और सबके समाप्त होनेके उपरान्त महाराजा उग्रसेन का शरीर छूटता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि जब भगवान कृष्ण ने स्वयं धर्म की मर्यादा का उल्लंघन किया है फिर गीता में क्यों कहा है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

अर्थ—हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् प्रकट करता हू।

क्योंकि साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिये तथा धर्म-स्थापना करने के लिए युग-युग में प्रकट होता हूँ।

यथार्थ में कृष्णावतार में भगवान ने उल्टे मार्ग का उल्टा (भयंकर) परिणाम प्रत्यक्ष रूप में इसीलिये दिखाया है जिससे मानव समाज दुष्कर्मों के वीभत्स परिणामों से भयभीत हो अधम के उल्टे मार्ग का त्याग कर धर्म के सीधे मार्ग पर अग्रसर हो। जैसा कि भगवान ने गीता के चौथे अध्याय के १६ वें श्लोक में कहा भी है—

कर्मणो ह्यपि बोधव्यं बोधव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोधव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ गीता अ० ४ १७

अर्थात—कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये तथा निषिद्ध कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये क्योंकि कर्म की गति गहन है।

इस प्रकार भगवान ने रामावतार व कृष्णावतार धारण कर सद्कर्म जो करना चाहिये और असद् कर्म जिसका त्याग करना चाहिये, दोनों अवतारों में दोनों प्रकार के कर्मों का व्यवहार कर उसको स्वरूप से दिखा दिया है तथा दोनों के सुखद और दुःखद परिणामों से भी अवगत करा दिया है।

१०—रामावतार में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने कोई अलौकिक चमत्कार नहीं दिखाया, किन्तु कृष्णावतार में लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द-कन्द ने पग २ पर अपना चमत्कार दिखाकर जनसमूह का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। गीता में प्रत्येक स्थान पर यह भी मैं हूं, वह भी मैं हूं, तू मेरी शरण में आ। इत्यादि द्वारा प्रत्यक्ष पग पर अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का परिचय दिया है। कारण कि धर्म स्वरूप से तेज पुञ्ज तथा प्रकाशवान् है और युगों पर्यन्त जन-साधारण का ध्यान अपनी ओर आकर्षित रखने की उसमें अपूर्व शक्ति है। यही कारण है जिससे राम के कोई अलौकिक चमत्कार न दिखाने पर भी हजारों या लाखों वर्ष व्यतीत होने पर भी लोग-बाग आज राम को नहीं भूल पाये हैं। इसके विपरीत अधर्म का स्वरूप ही तमाच्छादित (अन्धकारमय) है। धर्म का उल्लंघन करने वाला चाहे जैसा प्रसिद्ध रहा हो किन्तु भविष्य में लोग उसकी उपेक्षा कर उसे भूल जाते हैं। जैसे कि भगवान कृष्ण ने इन्द्रदेव की पूजा के स्थान पर गोवर्धन पहाड़ की पूजा प्रचलित कर कुलदेव की अवहेलना तथा लोक मर्यादा का उल्लंघन किया। यहां यदि इन्द्र का ब्रज पर प्रकोप न हुआ होता, और गोपाल कृष्ण ने गोवर्धन पहाड को हाथ पर उठा कर ब्रज की रक्षा करने का अलौकिक चमत्कार न दिखाया होता तो कुछ ही दिनों में लोगबाग इस परिवर्तन को भूल जाते। भगवान ने यहां यह दिखाया है कि धर्म लोक व कुल मर्यादा का उल्लंघन तथ... ...की

अवज्ञा के फलस्वरूप आई हुई विपत्ति (दैवी प्रकोप) से भगवान ही अपना कोई अलौकिक चमत्कार दिखा कर रक्षा करें तो हो सकती है वरना संसार की किसी भी शक्ति में दैवी प्रकोप से रक्षा करने की सामर्थ्य नहीं।

स्मरण रहे कि भगवान के अवतार और उनकी लीलायें ब्रह्मज्ञानियों के लिये नहीं होतीं, क्योंकि ज्ञानी जो कि अपनी आत्मा में रमण करते हैं और संसार को कल्पित समझ, कण २ में ब्रह्म के दर्शन करते हों उनके लिये अवतारों का कोई महत्व नहीं। भगवान की लीलायें तो विषय भोग में लिप्त अज्ञानियों का मार्ग प्रदर्शन कर उनका उद्धार करने के लिये होती हैं, जो कि संसार को ही सब कुछ समझ धर्म से विमुख हुये विनाश के गर्त में गिरते जा रहे हों। उन्हीं का मार्ग प्रदर्शन करने की आवश्यकता है। अतः पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान ने रामावतार व कृष्णावतार धारण कर उन्हीं अज्ञानियों का मार्ग प्रदर्शन किया है, ब्रह्मज्ञानी महात्माओं का नहीं। सन्त महात्मा इन अवतारों के ब्रह्म स्वरूप तथा आध्यात्मिक स्वरूप का दिग्दर्शन कराते समय उनकी भौतिक लीलाओं पर भी प्रकाश डाल दिया करें तो इससे जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ सकता है। कम से कम इतना तो होगा कि आज जो लोग चोरी-जारी तथा सहनृत्य (डांस) करते समय बेधड़क कृष्ण की उपमा देकर इसे अपनी परम्परा बताने लगते हैं उसमें कुछ संकोच तो करेंगे।

११—श्री राम के विषय में लिखा है कि उन्होंने सशरीर महाप्रयाण किया, जबकि भगवान कृष्ण की दिव्य अस्थियां आज तक श्री जगन्नाथ जी के कलेवर में विद्यमान बताई जाती हैं। जगन्नाथ जी के भजनों में गाते सुना भी है—

ओड़ीसा जगन्नाथ पुरी में भले विराजे जी। स्यो गेहूँ और ज्वार बाजरो खाय ब्रज में से निसरयो ओड़ीसा में जाय विराज्यो, दाल भात से अटक्यो ठाकुर भले विराजे जी।

श्री गणेशाय नमः

श्रीराम लीला और श्रीकृष्ण लीला

श्री राम लीला में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम की लीला और श्रीकृष्ण लीला में (जिसे रास लीला कहते हैं) लीला पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण चंद्र आनन्द-कन्द की लीला का प्रदर्शन किया जाता है। जिसका मूलोद्देश्य धर्म पालन के सुखद और अधर्माचरण के विनाशकारी परिणामों से जन साधारण को अवगत कराना है। साथ ही जगत भर को सत्य धर्म की शिक्षा देना रहा है। इसी रामलीला और रासलीला से देश-विदेश के लोग और सभी जातियाँ धर्म पालन की शिक्षा ग्रहण करती थीं। मन्दिरों की भाँति इन लीलाओं में भी सन्त, महात्मा, विद्वान तथा धर्म के प्रकाण्ड पण्डितों के उपदेश का प्रबन्ध रहता होगा, जो धर्म अधर्म के, अच्छे, बुरे परिणामों से जनता को अवगत कराते जाते होंगे। यह धर्म की शिक्षा का महत्वपूर्ण साधन था। वह मानव समुदाय को यह बताते चलते थे कि सच्चिदानन्द घन भगवान मानव समाज के कल्याण के लिये, मनुष्य जाति को धर्म की मर्यादा बताने के निमित्त मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री रामचन्द्र के रूप में अवतार धारण कर इस पृथ्वी पर प्रकट हुये और धर्म पालन के द्वारा मोक्ष मार्ग पर चलने का पथ प्रदर्शन किया।

रामलीला में विद्वत्-वर्ग भगवान की लीला का एक एक महत्वपूर्ण अर्थ समझाते जाते होंगे। वे यह समझाते होंगे कि

धर्म पालन में बड़ी-बड़ी बाधायें आती हैं, बड़े-बड़े कष्ट और श्राम भी सहन करने पड़ते हैं, बड़ा तपना पड़ता है। ऐसे समय मनुष्य को घबराना और विचलित हो जाना तथा साहस छोड़ना नहीं चाहिये। धैर्य से काम लेकर सारी कठिनाइयों को दृढ़तापूर्वक सहन करते हुये अपने धर्म पर अटल रहने का परिणाम सुखद होता है। श्री रामलीला से यही शिक्षा मिलती है। यहाँ भगवान ने अवतार लेकर धर्म की मर्यादा का दिग्दर्शन कराया है

भगवान श्रीकृष्ण की अद्भुत लीला का अद्भुत रहस्य

धर्म पालन के लिये, धर्म और अधर्म, भलाई और बुराई दोनों का समान ज्ञान आवश्यक है। जब तक इन दोनों का ज्ञान न होगा और दोनों के भले-बुरे परिणामों से अवगत न हो पायेंगे, तब तक धर्म पालन की कठिनाई सहन करना भी सम्भव न होगा। इसलिये श्री सच्चिदानन्द घन भगवान ने लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्द-कन्द के रूप में प्रकट हो भोग-मार्ग (अधर्म के मार्ग का) दिग्दर्शन कराया है। अतः श्री कृष्ण लीला के साथ में विद्वत् गण यह समझाते होंगे कि भगवान ने श्री कृष्ण चन्द्र के रूप में अवतार धारण कर यह दिखा दिया है कि चोरी-जारी, विलासिता, मनमानी और अवसरवादिता से क्षणिक सुख का अनुभव भले ही हो, किंतु इन सबका अन्तिम परिणाम दुखद है जोकि सर्वनाश के रूप में आगे आता है। श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में तथा अन्य स्थानों पर उद्धव आदि को जो उपदेश दिया है। उसका अनुकरण करना चाहिये। उनके चरित्र अथवा उनकी लीलाओं का अनुकरण नहीं करना चाहिये। श्री कृष्ण की अद्भुत लीला से मनुष्य को यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

राम लीला में रावण की बहुत बड़ी दस सिर की मूर्ति

बना कर उसे जलता हुआ दिखाया गया है। यहाँ यह दिखाया जाता है कि रावण जाति का ब्राह्मण चारों वेदों का बहुत बड़ा विद्वान था। वह विश्व-व्यापी बलवान था। सारा संसार उसके भय से थर्थर काँपता था। यही नहीं वह सोने की लंका का स्वामी था। अधर्म युक्त आचरण करने से उसका भी सर्वनाश निश्चित हुआ। इससे यह शिक्षा मिलती है कि कोई चाहे कितना बड़ा नरपति, भूपति, धनी, विद्वान और बलवान हो, अधर्म युक्त आचरण करने पर विनाश को प्राप्त होता है। यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दुराचारी होने पर ब्राह्मण को भी मारने का पाप नहीं लगता।

कृष्णलीला में दिखाया जाता है कि कंस, शिशुपाल आदि और दुर्योधन इत्यादि अधर्मी और दुराचारी थे, अतः सब सर्वनाश को प्राप्त हुये। साथ ही श्रीकृष्ण भगवान ने भी धर्म का उल्लंघन किया। उनके वंशजों का सामना करने वाली संसार में कोई दूसरी शक्ति न थी, अतः वह सभी परस्पर लड़ कर विनाश को प्राप्त हुये। यहाँ पण्डित गण उनके एक-एक चरित्र का कारण उससे पड़ने वाले प्रभाव की विशद व्याख्या करके बताया करते होंगे।

तात्पर्य यह है कि श्रीरामलीला से श्रीराम के चरित्र का अनुकरण करने की और कृष्ण लीला से उनके मनमाने (अधर्म युक्त) चरित्र का त्याग करने की जनसाधारण को प्रेरणा प्राप्त होती है। प्रत्येक लीला का अन्तिम दृश्य शिक्षा प्रद हुआ करता है। जोकि अब कहीं नहीं दिखाया जाता (कदाचित भगवान के अंतरध्यान होने की घटना को दुखान्त दृश्य मान कर उसकी उपेक्षा कर दी गई है।)

विश्व भर के दर्शक और जिज्ञासु भारत में आकर इस

प्रकार धर्म पालन की शिक्षा ग्रहण करते और जिसको धर्म का जो भी अंश महत्त्वपूर्ण लगता वे अपने देश वासियों में उसका प्रचार करते। इस प्रकार भारत जगद्-गुरू बना।

प्रत्येक व्यक्ति तथा जन-समूह का ध्यान आकर्षित करने के लिये छोटे-छोटे बालकों को सजा-बजा कर भाँति-भाँति की वेष-भूषा में नाच गा कर भगवान की लीला दिखाते। इससे जनता का मनोरञ्जन भी होता, साथ में शिक्षा भी मिलती। कुछ धर्म की ओर कुछ मनोरंजन की भावना से सभी वर्ग उसमें सम्मिलित होते, अतः यह विश्व भर के लिये धर्म की शिक्षा का केन्द्र बन गया था। इन्हीं सब तरीकों द्वारा भारत विश्व भर को धर्म मार्ग पर अग्रसर करने में समर्थ हुआ था।

आज अवस्था विचित्र है। आज राम लीला और रास लीला (श्रीकृष्ण लीला) दोनों होती हैं। आज भी जनता का इससे मनोरञ्जन होता है। यथार्थ में आज केवल मनोरञ्जन मात्र के लिये इसकी लीक पीटी जाती है। इसके अतिरिक्त उनका कोई दूसरा उद्देश्य नहीं होता। अन्तिम दृश्य किसी का दिखाया नहीं जाता, जिससे लोग-बाग कुछ सोच-विचार भी सकें।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की लीला आदर्श युक्त है, अतः उनकी लीला का प्रभाव प्रत्येक रूप में अच्छा ही पड़ सकता है। किन्तु राम लीला जो भगवान कृष्ण की बाल लीला के चरित्र को रासधारी लोग जगह-जगह दिखाते फिरते हैं, उसका प्रभाव उस समय तक अच्छा नहीं पड़ सकता जब तक उनके साथ शिक्षाप्रद उपदेश का प्रबन्ध न हो और राम लीला की भाँति उनकी पूरी लीला क्रमशः एक साथ न दिखाई जाय।

धर्म पालन के लिये धर्म और अधर्म, भलाई और बुराई जब तक दोनों का ज्ञान नहीं होगा, दोनों के भले और बुरे

परिणामों से अवगत नहीं हो पायेंगे तब तक धर्म के कठिन मार्ग पर चलना सम्भव नहीं। भगवान ने गीता में कहा है—

> किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
> तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

अर्थ—कर्म क्या है? और अकर्म क्या है? इस प्रकार इसका निर्णय करने में बुद्धिमान मनुष्य भी मोहित हो जाते हैं। इस लिये वह कर्म तत्व मैं तुझे भली भाँति समझा कर कहूँगा जिसे जान कर तू अशुभ से अर्थात् कर्म बन्धन से मुक्त हो जायगा। आगे भगवान कहते हैं—

> कर्मणो ह्यपि बोधव्यं बोधव्यं च विकर्मणः।
> अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥

अर्थ—कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये तथा निषिद्ध कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये; क्योंकि कर्म की गति गहन है। (गीता अ० ४। १६-१७)

इससे भगवान के रामावतार व कृष्णावतार धारण करने का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। अर्थात भगवान ने रामावतार में कर्म का तथा कृष्णावतार में विकर्म या निषिद्ध कर्म का स्वरूप दिखाया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य काल में किसी समय भक्तिवाद का प्रादुर्भाव होने पर रामायण और भागवत सरीखे शिक्षा प्रद तथा अनुकरणीय ग्रन्थों को केवल उपास्य ग्रन्थ मान लिया और उपास्य ग्रन्थ का रूप देने के लिये अनुवाद करते समय इसमे कुछ काट छाँट भी हुई है क्योंकि इसके अंतमें जो शिक्षा प्रद सामग्री अर्थात चेतावनी भी अवश्य होनी चाहिए जोकि अब नहीं मिलती। भ्रम का कारण यही है। अन्तिम दृश्य को भगवान के वियोग की या दुखांत घटना समझ कर इस प्रसंग की चर्चा सीमित कर दी गई है।

रामावतार का पटाक्षेप सुखांत माना जा सकता है, किंतु

यहाँ भी भक्त श्री तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में सीता वनवास, लव कुश कांड या भगवान के परमधाम पधारने का कोई उल्लेख नहीं किया। इसी प्रकार भागवत में श्री कृष्ण के महा प्रयाण की चर्चा भी सीमित है। इससे मनुष्य को क्या शिक्षा मिलती है ? इसका कोई संकेत भी नहीं। फलतः रामायण, भागवत, भगवद्गीता इत्यादि अवतार सम्बन्धी ग्रन्थ तथा उनकी लीलायें हमारे लिये केवल भक्ति का साधन मात्र बन कर रह गई हैं और मन्दिर दर्शन-पर्शन तथा मनोरञ्जन के साधन बन गये।

इसी प्रकार रामलीला राज्य तिलक तक और कृष्णलीला व्रज विहार तक सीमित कर दी गई। जब केवल गुण गान ही करना है तो अन्तिम महा प्रयाण की दुखांत घटना के स्मरण करने का कोई महत्त्व भी नहीं रह जाता। अतः आज हम रामायण, भागवत तथा भगवद् गीता पढ़ते भी हैं (श्रद्धालु भक्त मन्दिरों में भी जाते हैं, रामलीला और रासलीला भी देखते हैं) सब करते हैं केवल भक्ति करने की भावना से, नित्य नियम की पूर्ति करने के लिये, उससे किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

यह सही है कि मनुष्य में इतनी सामर्थ्य नहीं, जो मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम, जो कर्म उपासना और ज्ञान में परिपूर्ण पूर्ण पुरुषोत्तम थे, उनकी समानता कर सकना किसी भी मनुष्य के लिये सम्भव नहीं किंतु यह सोच कर मनुष्य को हताश होकर नहीं बैठ जाना चाहिये, बल्कि राम की समानता करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। जब हम उनका पूर्ण अनुकरण करने के लिये प्रयत्नशील होंगे, तब कहीं थोड़ा सा आगे बढ़ पायेंगे। अर्थात् धर्म का थोड़ा सा पालन कर सकेंगे। वरना जहाँ के तहाँ बने रहेंगे, या अवनति की ओर अग्रसर होंगे। इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं।

साकार स्वरूप और भक्ति

वेदादि ग्रन्थों में भगवान के ५ स्वरूप—विष्णु, सूर्य, शक्ति, गणेश और शिव—उपास्य देव माने गये हैं। पूजा, प्रतिष्ठा, मन्त्र जाप, भजन, कीर्तन, ध्यान, धारणा का विधान इन्हीं के लिये है। भगवान के साकार स्वरूप (अवतारों) की उपासना इन्हीं पन्च महादेवों की श्रेणी मे आती है। किंतु अवतारों की उपासना में और इन पन्च महा देवों की उपासना में भेद है। यह कि पन्च महादेवों की उपासना का आधार जहाँ उनकी पूजा, अर्चना, मन्त्र जाप, भजन, कीर्तन आदि माना गया है, वहाँ अवतारों की उपासना का आधार उनके आदेश का पालन करना तथा उनके दिखाये मार्ग पर चलना है। साकार अवतारों की भक्ति कर्म प्रधान है। रामायण और भागवत शिक्षा-प्रद ग्रन्थ इन्हें केवल उपास्य ग्रन्थ नहीं मानना चाहिये, जैसा कि माना जा रहा है।

जैसा कि श्री महाराज के उपदेशों में वर्णन किया गया है, कि भगवान के अवतार चार प्रकार के होते हैं—आवेश, प्रवेश, आविर्भाव और स्फूर्ति। क्षत्रियों का संहार करने के लि परशुराम के शरीर में भगवान का आवेश हुआ। क्षत्रियों क २१ बार संहार करने के उपरांत आवेश समाप्त हो गया औ परशुराम केवल परशुराम रह गये।

द्रौपदी की लाज बचाने के लिए भगवान ने साड़ी प्रवेश किया। यह प्रवेशावतार था। नृसिंह अवतार स्फूर्ति अ

तार है। प्रह्लाद की रक्षा करने के लिये खम्भे में से प्रकट हो हिरण्यकशिपु को मार कर अन्तर्ध्यान हो गए।

श्रीराम और कृष्ण के रूप में भगवान का आविर्भाव हुआ। यह आविर्भावावतार था। यहा भगवान को मानव समाज के लिए आवागमन से छुटकारा पाने का मार्ग प्रदर्शित करना था। इसलिये पारब्रह्म परमात्मा ने गर्भ से लेकर महाप्रयाण तक मार्ग दर्शन किया है। कर्म, अकर्म, विकर्म क्या है, किस मार्ग पर चलने का क्या परिणाम है विधि, और निषेध के द्वारा इसका जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत करके दिखाया है। उनके दिखाए मार्ग पर चलना ही राम और कृष्ण की भक्ति का स्वरूप माना जा सकता है। यही मनुष्य के कल्याण का मार्ग है।

यदि केवल असुरों का वध करना ही रामावतार व कृष्णावतार का उद्देश्य होता तो मानव के समान ही आचरण करने की तथा सुखद या दुखद परिणाम दिखाने की भी उन्हें क्या आवश्यकता थी? वह परशुराम के समान आवेशावतार या नृसिंह के समान स्फूर्ति अवतार द्वारा असुरों का विनाश करके अदृश्य हो सकते थे किंतु ऐसा न कर भगवान ने रामावतार में, धर्म, लोक और कुल की मर्यादा का पालन कर उसका सुखद परिणाम दिखाया है, और कृष्णावतार में भगवान ने धर्म, लोक और कुल की मर्यादा का उल्लंघन कर उसके दुखद परिणाम से (वंश विच्छेद के रूप में) अवगत कराना ही अवतार धारण कर पृथ्वी पर विचरण करने का उद्देश्य हो सकता है। उस सर्व शक्तिमान पारब्रह्म परमात्मा का कोई काम निरर्थक या निरुद्देश्य नहीं हो सकता, किंतु जब हम यह समझकर कि केवल रावण आदि तथा कंसादि असुरों का वध करने के लिए, गोपियों के साथ विहार करने के लिए, अथवा भक्तों पर दया दिखाने के लिए ही

भगवान ने रामावतार व कृष्णावतार धारण किया, रावण या कसादि का वध करना ही अवतार धारण करने का उद्देश्य था, तो इन दोनों ही महान अवतारों की सार्थकता को हम निरर्थक सिद्ध कर देते हैं।

भक्ति का स्वरूप

पन्च महादेवों की उपासना का आधार जहाँ जप तप, सयम, नियम, ध्यान, धारणा, प्राणायाम और समाधि है, वहा राम और कृष्ण की भक्ति—उपासना का आधार अपने-अपने धर्म-कर्म और कर्तव्य का पालन है। वेदादि शास्त्र उपास्य ग्रथ हैं, किंतु रामायण और भागवत ये दोनों शिक्षा प्रद और अनुकरणीय ग्रन्थ माने जा सकते हैं। ये केवल उपास्य ग्रन्थ नहीं हैं, जैसा कि उन्हें आज मान लिया गया है। इसकी शिक्षा या व्याख्या के लिए सदगुरू और सद उपदेशक की आवश्यकता है।

यों तो प्रत्येक प्राणी मात्र ईश्वर का अश होने से ईश्वर स्वरूप ही है। दृढ विश्वास और लग्न के साथ किसी भी स्वरूप में भगवान की धारणा कर निस्वार्थ भाव से भक्ति करने पर उसी मे भगवान का साक्षातकार किया जा सकता है। याज्ञवल्क्य मुनि भगवान की धारणा कर रोटी में घी चुपड़ने के लिए जब कुत्ते के पीछे दौड़े तो भगवान ने उन्हें वहीं दर्शन दिया। किसी भक्त ने चाण्डाल को भगवान के रूप में देखा तो उसी में भगवान प्रकट हो गए। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। श्रीकृष्ण और श्री राम तो साक्षात पारब्रह्म ही प्रकट हुए थे। उनकी भक्ति करके मनुष्य का बेड़ा पार लगने में कोई सन्देह नहीं रह जाता, किंतु ऐसा करके हम मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। धर्म की रक्षा करने में सहायक नहीं हो सकते। इस प्रकार तो भगवान ने जिस उद्देश्य को लेकर अवतार धारण कर हमारे कल्याण के लिये जिस मार्ग का

प्रदर्शन किया, उसकी अवज्ञा होती है। आज हो भी यही रहा है। आज राम और कृष्ण की भक्ति के जितने प्रदर्शन हो रहे हैं, उतने पहले कभी देखने व सुनने मे नहीं आये। इन्हें प्रदर्शन इसलिए कहना पडता है, क्योंकि इसका आचरण पर उल्टा प्रभाव दिखाई देता है। आज जितनी चरित्रहीनता बढ गई है, उतनी इसके पूर्व कभी नहीं थी। आज रामायण के सप्ताह मास पारायण भागवत के सप्ताह नित्य हुआ करते हैं। जगह-जगह गीता भवन खुल गए हैं। उनमें गीता तथा अन्य ग्रन्थों के उपदेश भी होते ही रहते हैं किंतु धर्म कर्म (सत्याचरण) का ओर लोगों का कितना ध्यान जाता है, यह, वातावरण से स्पष्ट हो जाता है। फलत आज सनातन धर्म की मर्यादा का सरे आम उल्लघन हो रहा है। उसे कलंकित सिद्ध कर उसका बहिष्कार किया जा रहा है। यही नहीं उसे जड़ मूल से खोद कर बहाने की तैयारी पूरी हो चुकी है। जिससे भक्ति या ज्ञान का अकुर उगता है और मनुष्य में इसके संस्कार पड़ते हैं। जब वह आधार ही नष्ट हो जायेगा, तब यह प्रदर्शन भी कब तक चालू रह पाएगा क्योंकि आज प्रदर्शन-कारियों के भी पूर्व के पडे हुए धार्मिक संस्कार हैं। तभी उनके मुख से किसी प्रकार सही भगवन्नाम उच्चारण भी होता है। श्री तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है—

भाव कुभाव अनख आलस हूँ। नाम जपत मगल दिसि दस हूँ॥

अर्थात्—मन से, वे मन से, अनखा या अलसा के भी जो भग वान का नाम लेता है, उसके लिये भी दसों दिशायें मगलकारी हैं। तात्पर्य यह कि भगवन्नामोच्चारण से कभी किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं है। कपट त्याग कर ऊपरी मन से भगवद् भजन करते-करते एक समय वह आ सकता है, जब सच्ची श्रद्धा उत्पन्न होकर उसमे लग्न लग जाय। भगवान में लौ लगने पर सारे अगले पिछले कर्म क्षय होकर प्राणी भगवान में लीन

हो जाता है। उस स्थिति में पहुंचने वाले के लिये किसी भी धर्म-कर्म का बन्धन नहीं रहता। ऐसे भक्त विरले होते हैं। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए पूर्व के प्रबल संस्कार चाहियें। किंतु जिसके संस्कार ही नहीं पड़े, उसके मुख से भूले से भी भगवान का नाम निकल ही नहीं सकता। इसीलिए कर्मकाण्ड का बन्धन लगाया गया है। जिसके ऐसे संस्कार पड़े हों, वह भक्त जीवनमुक्त हो सकता है, किंतु सत्य सनातन धर्म का लक्ष्य जो मानव समुदाय के कर्म को उपासनामय बनाता है, जिससे भगवद् भक्ति या ज्ञान के संस्कार पडते हैं केवल भक्ति के प्रदर्शन से वह आधार ही नष्ट हो जाता है। आज जो स्थिति है इसका परिणाम यह होगा कि यह भक्ति का प्रदर्शन भी एक दो पीढ़ी में प्रदर्शनकारियों के साथ समाप्त हो जायगा, क्योंकि जब संस्कार ही नहीं पड़ेंगे तो फिर ईश्वर का नाम ही मुख से निकलना कठिन होगा। अतः सनातन धर्म की इति श्री होगी, इसमे संदेह नहीं

जगद् गुरू भारत

रामावतार व कृष्णावतार में सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान ने भोग और मोक्ष तथा धर्म और अधर्म दोनों मार्ग का चित्र प्रस्तुत कर यह दिखा दिया है कि धर्म उन्नति का साधन है। धर्म (मोक्ष मार्ग) पर चलने का अन्तिम परिणाम सुखदायक है, और अधर्म अथवा भोग मार्ग पर चलने से अन्त में दुःख मिलता है। जिसका अन्तिम परिणाम सर्व नाश के रूप मे आगे आता है।

इस मायावी जगत में काम, क्रोध, लोभ-मोह, आशा तृष्णा तथा अनेक छल-छिद्र से घिरा मानव धर्म का सब कुछ महत्व समझते-बूझते भी धर्म का पालन करने में सदा असमर्थ रहा है।

यह बताया जा चुका है कि, सामान्य-धर्म का पालन प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये। फिर भी इसका पालन करने वाले विरले ही होते हैं।

सनातन धर्म मे विशेष-धर्म के अन्तर्गत सामान्य धर्म के पालन का क्रियात्मक-चित्र प्रस्तुत करके इसके पालन करने का मार्ग दिखाया गया है। तप, त्याग, धर्म, कर्म, कर्तव्य पालन, अनुशासन तथा साधना और धर्म की धारणा का प्रत्यक्ष उदाहरण (प्रयोग) प्रस्तुत कर संसार के प्रत्येक व्यक्ति के लिए मार्ग प्रदर्शित किया गया गया है। इसमे यह दिखाया गया है कि धर्म के प्रत्येक अंग की साधना किस प्रकार करनी चाहिए और यह सम्भव किस प्रकार हो सकता है।

यह धर्म पालन की वह जीती-जागती प्रयोगशाला है, जिससे प्रेरणा पाकर लोग-बाग देश देशातरों में धर्म की ध्वजा फहराते रहे हैं। कहा जाता है कि ईसा मसीह १२ वर्ष भारत में रह कर धर्म का अध्ययन करते रहे। अपवित्रता के समागम से चित्र गदला न हो जाय, इसलिए अवांछित तत्व की निरन्तर छटनी करते रह कर इस सनातन धर्म रूपी चित्र को स्वच्छ, पवित्र और निर्मल बनाये रखने की चेष्टा की गई थी। अर्थात् इसमे रहने का उसी व्यक्ति को अधिकार दिया गया था जो तपोमय जीवन व्यतीत करने मे समर्थ हो और इसके कठोर नियम का पालन कर सके।

सत्य वैदिक सनातन धर्म त्रिकाल सत्य है। सत्य में कभी परिवर्तन नहीं होता। इसका यथार्थ स्वरूप शुद्ध, पवित्र और निर्मल है। वह अचल है, अटल है और स्थिर है। फुदकती चिडिया नहीं और उछलती गेंद भी नही, जो कभी इस गली पर, कभी इस डाली से उस डाली पर भूलती, भूमती, चहकती, फुदकती सबका रस चाखती फिरे और कहीं स्थिर न रहे।

भारत जगद-गुरु इसीलिये माना गया था कि यहा के लोग हर घड़ी साधनामें लगे रहते थे। धर्म, कर्म, त्याग और तप की वह प्रतिमूर्ति थे। मन और इन्द्रियों के दमन की क्रियात्मक शिक्षा यहा मिलती थी। जिसका तेज दूर से ही मानव के अंत करण को प्रकाशित करता था। सीधा हृदय पर प्रभाव डालता था। वह सूर्य मण्डल के समान अटल और निश्चल रह कर धर्म का प्रकाश कोने-कोने मे फैलाया करता था जिससे प्रत्येक व्यक्ति प्रेरणा पाता था। उसका किसी से विरोध नहीं था। वह साधना का केन्द्र था। प्रचार का मोहताज नहीं। उसमें सूर्य के समान तेज था। सूर्य को किसी प्रचार की आवश्यकता नहीं पड़ती उसका अस्तित्व ही पूरे ब्रह्माड को प्रकाशित करता है।

आज हमारे कर्णधार नेतागण साम्प्रदायिकता विरोधी नारा लगाते हैं और जो शुद्ध सत्य है, उसे फुदकती चिड़िया का रूप देकर साम्प्रदायिकता के गहरे रंग में रंग देना चाहते हैं।

सत्य वैदिक सनातन धर्म प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की प्रेरणा देता है कि सब अपने-अपने क्षेत्र में रह कर सामान्य धर्म तथा यम नियम और संयम का जीवन व्यतीत करें। अर्थात् जितना जिससे बन पड़े उतना पालन करें। सनातन धर्म किसी पर कोई दबाव नहीं डालता।

धर्म व्यक्तिगत सम्पत्ति है। इसका सम्बन्ध अन्तः करण से है। यह ऊपर से किसी पर लादा नहीं जा सकता। इसके लिये तो अन्तः करण की प्रेरणा चाहिये। हमारे तप, त्याग, सत्याचरण करने का दूसरों के हृदय पर प्रभाव पड़ता है। प्रथम श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा के द्वारा हमारा अनुकरण करने की प्रेरणा मिलती है और प्रभावित व्यक्ति यथाशक्ति अनुकरण करने की चेष्टा करता है।

महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा की साधना की। अनेक व्यक्ति उनके इस तप से प्रभावित हुये और महात्मा गांधी का अनुकरण करने का व्रत धारण किया। किन्तु कोई भी तद्रूप न हो सका। किसी पर यह साधना थोपी भी न जा सकी।

महात्मा गान्धी ने चर्खे का व्रत ग्रहण किया। यदि दिन में कातने का समय नहीं मिला तो रात के दो बजे तक कातकर अपना नियम पूरा किया। इससे अनेक व्यक्तियों के हृदय में चर्खा कातने का भाव उत्पन्न हुआ और बहुतों ने चर्खा कातना प्रारम्भ किया। किन्तु यहां भी कोई कदाचित्‌ही पूरा उतर पाया हो।

इसी प्रकार सनातन धर्म की व्यवस्था है। उसके अपने नियम हैं। उसमें जिस कठोर जीवन यापन का व्रत लिया जाता है, उससे दूसरे सभी मनुष्य को प्रेरणा मिलती है। इसीलिये भारत को जगद् गुरू माना गया है।

श्री गणेशाय नमः

गो रक्षा और हिन्दू धर्म

सत्य वैदिक सनातन धर्म में यद्यपि प्राणी मात्र की रक्षा का आदेश दिया गया है फिर भी गोरक्षा उसका अभिन्न अंग है। यह मानव समाज की सुख-समृद्धि और जीवन से सम्बन्ध रखने वाला आधार है। इसलिये गऊ हमारे जीवन का प्रच्छन्न अंग बन गई है। वैदिक धर्म में सबसे बड़ा पद माता का माना गया है। गऊ माता के समान ही जीवन दान देने वाली है। अतः गऊ को भी माता के समान ही पूज्य माना गया है। इस विषय पर विचार करने से ज्ञात होता है कि हमें माता से अधिक गऊ का आभारी होना चाहिये। क्योंकि हमारा जीवन ही गऊ के सहारे चलता है। वह हमें दूध और घी देती है, बैल से खेती होती है। गऊ के गोबर से भूमि उर्वरा होती है और खेती की उपज (पैदावार) बढ़ती है। इसलिये गऊ की रक्षा करना हमारा धर्म, कर्म और कर्तव्य हो जाता है। ऐसा न करने से हम कृतघ्न बन जाते हैं, जिसका कोई प्रायश्चित नहीं।

गाय हमारा शुद्ध आर्थिक तत्व है। हमारा सम्पूर्ण आर्थिक ढांचा गऊ के सहारे खड़ा है। अतः गऊ के नष्ट होने से हमारा समस्त आर्थिक आधार ही लड़खड़ा जाता है। आज यही हो रहा है।

परम पूज्य महात्मा गान्धी ने अपने प्रसिद्ध पत्र 'यंग इण्डिया' के ता० २६-६-१६२६ ई० के अंक में गो की महत्ता में लिखा था कि मैं गो रक्षा के प्रश्न को किन्हीं दिशाओं में स्वराज्य

के प्रश्न के न केवल बराबर महत्व का ही समझता हूँ, बल्कि मेरी यह धारणा है कि गो रक्षा का प्रश्न स्वराज्य से भी अधिक महत्व रखता है। जब कि (जब तक) हम गाय को बचाने का कोई उपाय ढूंढ नहीं निकालते, तब तक स्वराज्य अर्थहीन बना रहेगा। मेरी राय में गोवध और मनुष्य-वध एक ही चीज के दो पहलू हैं। (महात्मा गान्धी)

यह कहा जाता है कि भैंस गऊ से अधिक दूध और घी देती है, फिर क्यों नहीं भैंस की रक्षा करना धर्म का अंग माना गया—इत्यादि अनेक तर्क-कुतर्क किये जाते हैं।

अवश्य भैंस दूध और घी गऊ से अधिक देती है। वह चारा भी अधिक चरती है, दाना भी अधिक खाती है, पानी भी अधिक पीती है और गोबर भी अधिक करती है। यदि गऊ को भैंस का आधा भी दाना दिया जाय और उसकी सेवा सुश्रूषा की जाय, तो भैंस का आधा दूध गाय भी अवश्य दे सकती है। फिर क्या अधिकता ही सब कुछ है? गुणों का कोई महत्व नहीं? गाय में गुण कितने हैं। गाय का महत्व उसके गुणों के कारण है। भैंस के दूध घी और गोबर में वह विशेषता नहीं, जो गाय के घी, दूध और गोबर तथा गोमूत्र में है। धर्म-ग्रन्थों में लिखा है—गऊ के रोम-रोम में देवता निवास करते हैं। गऊ का दूध बाल, वृद्ध और रोगी सभी के काम आता है। गऊ के दूध और घी से मस्तिष्क और बुद्धि का विकास होता है। विचार शक्ति बढ़ती है। गाय के गोबर से लीपने से घर पवित्र हो जाता है। सब प्रकार के दूषित कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। आज के वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकार करते जा रहे हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा में अनेक रोगों की अचूक औषधि गो मूत्र से तैयार की जाती है। गो मूत्र का सेवन अनेक रोगों में लाभ कारी सिद्ध हुआ है।

गाय की बुद्धि तीव्र होती है, जब कि भैंस को बुद्धि हीन जानवर माना गया है। हमारे यहां पवित्रता के लिये पंच गव्य (गाय के घी, दूध, दही, गोबर और गो मूत्र को मिलाने से पंच गव्य बनता है) पीने का विधान है। इससे शरीर शुद्ध और पवित्र होता है। गऊ के दूध पीने से शरीर में स्फूर्ति आती है। बुद्धि विकसित होती है जबकि भैंस के दूध को बादी माना गया है। उससे शरीर में शिथिलता आती है, बुद्धि कुण्ठित होती है और विचार शक्ति क्षीण होती है। इसलिये पढ़ने वाले विद्यार्थियों को अथवा विचार शील पुरुषों को भैंस का दूध नहीं पीना चाहिये।

आहार का प्रभाव प्राणी मात्र के मन, मस्तिष्क, विचार-शक्ति और आचरण पर पड़ता है। कुछ वर्ष पूर्व की एक सच्ची घटना इस प्रकार है—

एक घोड़ी के बछेड़ा हुआ। थोड़ी देर बाद घोड़ी मर गयी। अतः उसके नव-जात बछेड़े को भैंस का दूध पिला कर पाला गया। बछेड़ा खूब मोटा, तगड़ा, ऊंचा और बड़ा सुन्दर घोड़ा हुआ। एक पुलिस अफसर ने उसे अच्छे दाम देकर खरीद लिया। वह एक दिन उस पर चढ़ कर किसी ग्राम में चोरी की जांच करने जा रहा था, बीच में एक नदी पार करनी थी। उस नदी में पानी था, घोड़ा जब नदी के बीच पानी में पहुंचा तो उसमें भैंस के समान लोट गया। कुछ व्यक्ति जो वहां थे, उन्होंने बड़ी कठिनाई से दरोगा जी को मूर्छितावस्था में निकाल कर थाने में सूचना दी और दरोगा जी अस्पताल पहुंचाये गये। भैंस के दूध का यह प्रभाव घोड़े पर पड़ा था। मनुष्य पर भी ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। अतः दूध और घी के लिये गोरक्षा करना परमावश्यक है।

गोरक्षा आज भारत व्यापी विषय बना हुआ है। अतः मैं इतना ही लिख कर इस विषय को समाप्त करती हूँ।

श्री गणेशाय नमः

शिक्षा प्रणाली

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की बात सुनने में आ रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे कर्णधार नेतागण आध्यात्मिक शिक्षा का महत्व कुछ २ समझने तो हैं, किन्तु उसे व्यवहारिक रूप देना नहीं चाहते। ऐसा करने में दकियानूसी पन या साम्प्रदायिकता की उन्हें गंध आती है। क्योंकि अभी तक कोई सक्रिय पग नहीं बढ़ाया गया इसलिये "कुछ-कुछ" शब्द का प्रयोग करना पड़ता है। जनता में फैली हुई अनैतिकता, चरित्र हीनता और भ्रष्टाचार ने उनकी आंखें खोल दी हैं। इसलिये अब कभी कभी आध्यात्मिक ज्ञान, चरित्र निर्माण तथा नैतिक स्तर ऊंचा उठाने की बात सुनाई देने लगी है। यही नहीं सभी ओर से वर्तमान शिक्षा प्रणाली के प्रति असन्तोष प्रदर्शित किया जा रहा है। किन्तु शिक्षा प्रणाली में क्या उलट फेर हो, और उसका क्या स्वरूप हो इस पर बहुत कम अर्थात् नहीं के बराबर प्रकाश डाला गया है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली यथार्थ में दूषित ही है। इससे न तो हमारी आध्यात्मिक उन्नति होती है, न हमारे लिये जीविका निर्वाह के साधन ही यह सुलभ करती है। इसके विपरीत बहुत कुछ नैतिक पतन में ही सहायक हुई है। अतः हमारी सम्मति में इसमें निम्नलिखित परिवर्तन होना आवश्यक है।

प्रथम तो शिक्षा प्राप्त करने का शहरी क्षेत्र ही गलत

बुद्धि आ प्रकट हो वह यदि चाहे, अथवा इसके संरक्षक उसे आध्यात्मिक ज्ञान की ओर आगे बढ़ाना चाहें तो उसे पुनः विद्याध्ययन केलिये आश्रममें प्रवेश कराना चाहिये। शेष सभी को उनकी रुचि के अनुसार व्यावसायिक शालाओं में (बुनियादी शिक्षा के केन्द्र में) प्रविष्ट कराना उचित होगा। जहां वह जीवन निर्वाह करने की (अर्थोपार्जन करने की) योग्यता प्राप्त कर सकें। यहां अर्थ को धर्म युक्त बनाये रखने की ओर भी विशेष ध्यान देना होगा।

आध्यात्मिक शिक्षा—जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है-आध्यात्मिक ज्ञान की विद्या प्राप्त करने का केन्द्र ग्रामों के निकट २-४ मील पर जंगल की ओर होना चाहिये, जहां रहने के लिये कच्चा-पक्का (जो भी प्रबन्ध हो सके) सुरक्षित स्थान हो। साथ में खेती, बागबानी तथा गोपालन केलिये उतनी भूमि अवश्य होनी चाहिये, जितने की उपज सब आश्रम वासियों के लिये पर्याप्त हो। प्राचीन काल की परिपाटीके अनुसार विद्यार्थी-ब्रह्मचारी जितने समय में भिक्षा मांग कर लाया करते थे, उतना समय वह खेती इत्यादि करने में लगा सकते हैं। भोजन भी छात्रों की बारी-बारीसे मिलजुल कर अपने हाथोंसे बना लेना चाहिये। यदि कृष्ण भगवान गुरु के लिये सुदामा के साथ जंगल से लकड़ी काट कर ला सकते थे, तो कोई कारण नहीं कि आधुनिक काल में जन्मे छात्र खेती अथवा अन्य परिश्रम गोपालन इत्यादि न कर सकें, भोजन न बना सकें या लकड़ी न काट सकें।

त्यागी, सच्चरित्र और परखे हुये संस्कृतके प्रौढ़ विद्वानों की देख रेख में आश्रम की व्यवस्था हो, पाठ्य क्रम में संस्कृत-साहित्य का अध्ययन अनिवार्य विषय होना चाहिये। आध्यात्मिक ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, धर्म, कर्म के अतिरिक्त सभी आवश्यक विषय

स्थान पर है यहा नाटक सिनेमा, सरकस, खेल, तमाशे, व्याह, शादी तथा अन्य अनेक प्रकार की चहल-पहल और भाति भाति के आन्दोलनों में विद्यार्थी का मन उलझा रहता है। पाठ्य क्रम की ओर ध्यान देने का उन्हें अवसर ही बहुत कम मिलता है। इसलिये अधिकाश छात्रोंकी पढाई परीक्षासे कुछ ही समय पहले होती है। उनमे जो प्रखर बुद्धि के होते है उन्हें अच्छे नम्बर मिलजाते हैं। अत प्रथम परिवर्तन शिक्षा प्राप्त करनेके क्षेत्रमे करना आवश्यक है। शिक्षा का केन्द्र शहरों से हटा कर एकान्त क्षेत्र मे ले जाना होगा। शिक्षा का क्षेत्र निर्जन स्थान में होना चाहिये जहा किसी प्रकार के बाहरी विकार उन्हें अपनी ओर आकर्षित न कर सकें। इसके लिये ग्रामके निकट (२-४ माल पर) जगल मे प्रबन्ध करना श्रेष्ठ माना जा सकता है।

शिक्षा को तीन भागों में विभक्त करना चाहिये। (१) प्रारम्भिक शिक्षा (२) आध्यात्मिक ज्ञान की शिक्षा (३) व्यवसायिक या बुनियादी शिक्षा।

दस वर्ष तक के बालकों के लिये प्रत्येक नगर, ग्राम व मोहल्लों मे प्रारम्भिक शिक्षा के लिये पाठशाला का प्रबन्ध हो, जिस मे अक्षर ज्ञान से लेकर थोडा-थोडा गणित भूगोल इत्यादि आवश्यक विषय का ज्ञान करा देना आवश्यक होगा साथ ही उन की आयु के अनुसार ईश्वर में विश्वास रखना, माता-पिता गुरू तथा बडों की आज्ञा पालन करना और सामान्य धर्म (जिसका कोई विरोधी नहीं) की शिक्षा का प्रबन्ध रखना भी परमावश्यक है। अमीर गरीब सब के लिये एक सा प्रबन्ध हो, सब मिल जुल कर समान शिक्षा प्राप्त करें।

इस प्रारम्भिक शिक्षा का समय दस या बारह वर्ष (जो आयु नियत की जाय) तक होना चाहिये। इस में जो बालक प्रखर

बुद्धि आ प्रकट हो वह यदि चाहे, अथवा इसके संरक्षक उसे आध्यात्मिक ज्ञान की ओर आगे बढ़ाना चाहें तो उसे पुनः विद्याध्ययन केलिये आश्रममें प्रवेश कराना चाहिये। शेष सभी को उनकी रुचि के अनुसार व्यावसायिक शालाओं में (बुनियादी शिक्षा के केन्द्र में) प्रविष्ट कराना उचित होगा। जहां वह जीवन निर्वाह करने की (अर्थोपार्जन करने की) योग्यता प्राप्त कर सकें। यहां अर्थ को धर्म युक्त बनाये रखने की ओर भी विशेष ध्यान देना होगा।

आध्यात्मिक शिक्षा—जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है-आध्यात्मिक ज्ञान की विद्या प्राप्त करने का केन्द्र ग्रामों के निकट २-४ मील पर जंगल की ओर होना चाहिये, जहां रहने के लिये कच्चा-पक्का (जो भी प्रबन्ध हो सके) सुरक्षित स्थान हो। साथ में खेती, बागबानी तथा गोपालन केलिये उतनी भूमि अवश्य होनी चाहिये, जितने की उपज सब आश्रम वासियों के लिये पर्याप्त हो। प्राचीन काल की परिपाटीके अनुसार विद्यार्थी-ब्रह्मचारी जितने समय में भिक्षा मांग कर लाया करते थे, उतना समय वह खेती इत्यादि करने में लगा सकते हैं। भोजन भी छात्रों की बारी-बारीसे मिलजुल कर अपने हाथोंसे बना लेना चाहिये। यदि कृष्ण भगवान गुरु के लिये सुदामा के साथ जंगल से लकड़ी काट कर ला सकते थे, तो कोई कारण नहीं कि आधुनिक काल में जन्मे छात्र खेती अथवा अन्य परिश्रम गोपालन इत्यादि न कर सकें, भोजन न बना सकें या लकड़ी न काट सकें।

त्यागी, सच्चरित्र और परखे हुये संस्कृतके प्रौढ़ विद्वानों की देख रेख में आश्रम की व्यवस्था हो, पाठ्य क्रम में संस्कृत-साहित्य का अध्ययन अनिवार्य विषय होना चाहिये। आध्यात्मिक ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, धर्म, कर्म के अतिरिक्त सभी आवश्यक विषय

(जिस में आधुनिक काल की समस्यायें, उनकी जटिलतायें, अशांति के कारण तथा शांति के साधन का भी समयानुसार उन्हें ज्ञान हो) के अतिरिक्त धर्म की धारणा और उसकी साधना का अभ्यास कराना परमावश्यक है। जिससे वह अपना आचरण पवित्र रख सकें केवल आध्यात्मिक ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान अथवा तत्व-ज्ञान की जानकारी मात्र प्राप्त कर लेने से आचरण में पवित्रता नहीं आती। जब तक उपर्क्त साधना करने का अभ्यासी नहीं होगा तब तक चरित्र में कोई अन्तर नहीं आ सकता, क्यों कि ज्ञानी और पण्डित तो रावण भी बहुत बड़ा था, किन्तु चरित्रवान न था।

भारत में आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत जंगलों में ही शिक्षा दी जाती थी जिसमें आध्यात्मिक विद्या, तत्व ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा के अतिरिक्त गुरु (जोकि तत्व दर्शी महर्षि होते थे) उनका सारा समय शिष्यों के आचरण की ओर ही लगा रहता था। वे अपने शिष्यों को मन, प्राण और वीर्य पर नियं-त्रण रखने का आदी बना देते थे जोकि सच्चरित्रता का आधार है। यहां मानव समाज के कल्याण कारी सभी विषय का ज्ञान प्रत्येक विद्यार्थी को कराया जा सकता है।

सबकी वेष-भूषा, रहन-सहन, आहार-विहार समान हो। अमीर-गरीब का वहां कोई भेद न हो, सब एक समान परिश्रम करते हों, सबका आहार शुद्ध सात्विक हो, क्योंकि आहार का प्रभाव मनुष्य की बुद्धि और विचारों पर पड़ता है और विचारों के अनुसार ही मनुष्य के कर्म होते हैं। इसलिये शुद्ध सात्विक पवित्र भोजन विद्यार्थी के लिये परमावश्यक है। अध्ययन काल में तथा छुट्टियों में भी छात्रों को घर आने की छूट नहीं होनी चाहिये।

नाच, गाने, सिनेमा, थियेटर इत्यादि से विद्यार्थी को दूर

रखना चाहिये। यदि मैं भूलती नहीं और जहाँ तक मुझे ज्ञात हो पाया है, वह ठीक है तो मैंने सुना है कि अंग्रेजों के बालकों के लिए जो पब्लिक स्कूल शिमला, मसूरी, नैनीताल में हैं उनमें भी छात्रों को इस दूषित वातावरण से दूर रक्खा जाता है।

दस वर्ष से १८ या २० (जो आयु निर्धारित की जाय) वर्ष के उपरांत स्नातक की उपाधि मिलने पर घर वापस आने की स्वीकृति मिलनी चाहिये।

इस प्रणाली को प्रोत्साहन तभी मिल सकता है जबकि शहरी क्षेत्र के बड़े बड़े स्कूल और कालिज बन्द कर दिए जायें। इन सभी स्थानों को भिन्न-भिन्न प्रकार की विशेष योग्यता (ट्रेनिंग) प्राप्त करने का केन्द्र प्रयोगशाला इत्यादि में परिवर्तन कर देना चाहिए, जिससे बड़े-बड़े पदों को सम्हालने वाले उनमें अभ्यास कर सकें। ऊचे पदों पर आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर तपे हुए स्नातकों में से योग्य व्यक्ति की नियुक्ति होनी चाहिए।

प्रत्येक जिले मे ऐसे चार छः आश्रम हों, जिससे आश्रमों में भीड़ अधिक न हो। थोड़े छात्रों की शिक्षा पर उचित रूप से ध्यान दिया जा सकता है।

संस्कृत के त्यागी और निःस्वार्थी महापुरुषों की छाया में रह कर मानव का चरित्र महान बन सकता है। सिवा इसके आचरण में पवित्रता लाने का दूसरा कोई साधन नहीं है।

रही स्त्रियों की शिक्षा, उनके लिए नारी धर्म की शिक्षा का स्थानीय प्रबन्ध हो जिससे सुसन्तति सृजन और महापुरुषों को जन्म देने का मार्ग बन्द न हो पाए। स्त्री को आदर्श गृहणी तथा आदर्श माता बनना चाहिए। इसके समान संसार में न कोई धर्म है, न कर्म है, न तप है, न साधना है न इसके बराबर कोई कला है। स्त्रियों को भी धर्म के प्रत्येक अंग का ज्ञान होना चाहिए। आध्यात्मिक शिक्षा स्त्रियों के लिये भी उत्तम है।

श्री गणेशाय नमः

नारी धर्म

पाणि ग्रहण की प्रतिज्ञा

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः
भगोऽर्यमामा पुरधर्मह्यं त्वा दुर्गाह पत्याय देवाः
जीवन के इस पुण्य पर्व में धरता हूँ मैं हाथ।
रहो सुहाग भरी तुम चिर दिन तुम सुभगे ! मेरे साथ ॥
सुन्दरि तुमसे मुझे मिलाया है देवों ने आज।
तुमको देता हूँ मैं अपने गार्ह पत्य का राज ॥
अमोऽहमस्मि मा त्वं मा त्व मस्य योऽहम्।
सामा हमस्मि ऋक् त्वं द्योरह पृथ्वी त्वं ॥
तुम लक्ष्मी हो मैं तो अब तक था लक्ष्मी से हीन।
सचमुच तुम लक्ष्मी हो, मैं था बिना तुम्हारे दीन ॥
सुभगे तुम हो ऋचा साम की मैं हूँ स्वर का लास।
तुम हो सुजला सुफला धरणी, मैं निर्मल आकाश ॥
तावेहि विवहा वहे सहरेतो दधात्रहे।
प्रजा प्रजनन या वहे-पुत्रान् विन्दा वहे वहून् ॥
आओ बांधें प्राण परस्पर ले विवाह का सूत।
दें दुनियां को मिलित शक्ति से रच कर कयी सपूत ॥
ते सन्तु जरदष्टयः सम्प्रियौ रोविष्णु समनस्य मानो।
पश्यमेय शरदः शतं जीमेव शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं ॥

श्री स्त्री समाज, सहारनपुर

[नामावली पीछे देखिये]

श्री गणेशाय: नमः

नारी धर्म

पाणि ग्रहण की प्रतिज्ञा

गृम्णाभि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः
भगोऽर्यमामा पुरधर्मह्यं त्वा दुर्गाद पत्याय देवाः
ीवन के इस पुण्य पर्व में धरता हूँ मैं हाथ।
रहो सुहाग भरी तुम चिर दिन तुम सुभगे! मेरे साथ॥
्न्दरि तुमसे मुझे मिलाया है देवों ने आज।
तुमको देता हूँ मैं अपने गार्हपत्य का राज॥
अमोऽहमस्मि मा त्वं मा त्व मस्य योऽहम्।
सामा हमस्मि ऋक् त्वं द्यौरह पृथ्वी त्वं॥
तुम लक्ष्मी हो मैं तो अब तक था लक्ष्मी से हीन।
सचमुच तुम लक्ष्मी हो, मैं था बिना तुम्हारे दीन॥
सुभगे तुम हो ऋचा साम की मैं हूँ स्वर का लास।
ुम हो सुजला सुफला धरणी, मैं निर्मल आकाश॥
तावेहि विवहा वहै सहरेतो दधावहै।
प्रजा प्रजनन या वहै-पुत्रान् विन्दा वहै वहून्॥
आओ बांधें प्राण परस्पर ले विवाह का सूत।
दें दुनियां को मिलित शक्ति से रच कर कयी सपूत॥
ते सन्तु जरदष्टयः सम्प्रियौ रोविष्णु समनस्य मानो।
पश्यमेव शरदः शतं जीमेव शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं॥

श्री स्त्री समाज, सहारनपुर
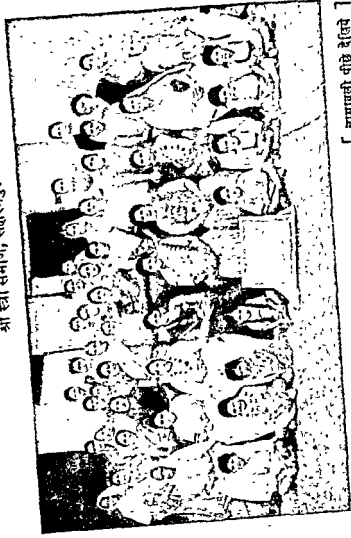
[नामावली पीछे देखिये]

कुर्सी पर बैठी हुई (बायें से दायें)—सर्वश्रीमती अतरकौरदेवी, सावित्रीस्वरूप, सत्यवतीदेवी (माताजी) खेमका, इन्द्राणी पाठक, व्रजरानीदेवी, इन्द्रादेवी चौधरी, नरेन्द्रा सेठी, सरला सक्सेना, भागवतीदेवी

खड़ी हुई प्रथम लाइन (बायें से दायें)—सर्वश्रीमती छत्रकान्तादेवी, पद्मारानी विमलादेवी अग्रवाल एम. ए., इन्द्रा माथुर, हीरादेवी वैजल, राधासरन, चन्द्रादेवी चड्ढा बी. ए. बी टी. मिस्रोदेवी, शैलकुमारी सिनहा, कुमारी आशा सिनहा, इन्दु मेहरा, दयावतीदेवी गुप्ता।

" *दूसरी लाइन (बायें से दायें)*—सर्वश्रीमती सरस्वतीदेवी (पण्डितानी), भारती प्रभा दीक्षित स्नातिका कन्या गुरुकुल, चमेलीदेवी भगत, शान्तीदेवी, गोदावरी देवी, सत्यवती देवी, अनुरागिनी देवी, शान्तिदेवी कोकिला।

" *तीसरी लाइन (बायें से दायें)*—सर्वश्रीमती प्रेम गुप्ता, एम. ए. कृष्णाकुमारी भोजराज, कमलेश माथुर शान्तिदेवी गुप्ता, शारदादेवी कौशिक, इन्द्रादेवी, अनुसूयाप्रसाद।

हम दोनों सुन्दर छवि लेकर रहें प्रेम में मग्न।
दोनों के मानस हों मंगलमय भावों मे मग्न॥
देखें शत शरदों की शोभा, जियें सुखी सौ वर्ष।
सुने कोकिला के कलरव मय सौ वसन्त के हर्ष॥
(ऋग्वेद ८। ३। १। २७) नारी अक कल्याण

नारी धर्म

जहाँ तक "नारी धर्म" का सम्बन्ध है, इस विषय पर कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं क्योंकि आज भी भारत में पुरुष-धर्म के विषय में चाहे कोई कुछ भी न जानता हो किंतु भारत का नारी धर्म विश्व-विख्यात है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति को हिंदू नारी के धर्म का पूरा ज्ञान है। कारण कि पुरुष-धर्म के समान नारी धर्म की कोई लम्बी चौड़ी व्याख्या नहीं है। पतिव्रत धर्म का पालन करना ही नारी धर्म का मूल मन्त्र है। हिंदू-धर्म में नारी-धर्म की सारी समस्यायें इसी एक बिन्दु के आधार पर केन्द्रित हो चुकी हैं। तन, मन सर्वस्व अर्पण कर पति को सुख पहुँचाना, उन्हें प्रसन्न रखना तथा उनकी सदा सर्वदा कल्याण की भावना से हर प्रकार की सेवा के लिये प्रस्तुत रहना नारी का धर्म माना गया है।

श्री तुलसी कृत रामायण मे पतिव्रत धर्म पर अनुसूया जी द्वारा श्री सीता जी को दिये गए उपदेश का वर्णन निम्न चौपाइयों मे आता है।

मात-पिता भ्राता हितकारी-मितप्रद सुख सुनु राजकुमारी।
अमित दान भर्ता वैदेही-अधम सो नारी जो सेव न तेही॥
धीरज, धर्म, मित्र और नारि–आपत्काल परखिए चारी।
वृद्ध, रोग, बस, जड़, धन हीना-अंध बधिर क्रोधी अतिदीना॥

ऐसेहुँ पति कर किय अपमाना–नारि पाय यमपुर दुख नाना।
एकइ धर्म, एक व्रत नेमा–काय, वचन, मन पति पद प्रेमा॥
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं–वेद पुराण संत अस कहहीं।
उत्तम के अस बस मन माहीं–सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर पति देखहि कैसे–भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।
धर्म विचारि समुझि कुल रहहीं–ते निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं॥
बिनु अवसर भय ते रह जोई–जानेहुं अधर्म नारि जग सोई।
पति बंचक परपति रति करहीं–रौरव नर्क कल्प सत परहिं॥
छन सुख लागि जन्म सतकोटी–दुःख न समझ तेहिसम कोखोटी।
बिनु श्रम नारि परम गति लहहीं–पतिव्रत धर्म छाँड़ि छल गहहीं॥
पति प्रतिकूल जन्म जहं जाई–विधवा होहि पाइ तरुणाई।
सहज अपावनि नारि–पति सेवत शुभ गति लहहिं॥
यश गावहिं श्रुति चारि–अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय।

अर्थ—अनुसूया जी कहती हैं—हे राजकुमारी! माता पिता भाई सभी हितकारी हैं परन्तु सब ही एक सीमा तक सुख देने वाले हैं परन्तु हे जानकी! पति (मोक्ष रूपी) असीम (सुख) देने वाला है। वह स्त्री अधम है जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती।

धैर्य, मित्र, धर्म और स्त्री इन चारों की विपत्ति के समय परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त दीन पति का भी अपमान करने से स्त्री यमपुर में भाँति भाँति के दुःख पाती है। शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना, स्त्री के लिए बस यह एक ही धर्म है एक ही व्रत है और एक ही नियम है।

जगत में चार प्रकार की पतिव्रतायें हैं। वेद, पुराण और सन्त सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत में मेरे पति को छोड़ कर

दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है। मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराये पति को कैसे देखती है जैसे वह अपना सगा भाई पिता या पुत्र हो। अर्थात् समवयस्क को भाई, बड़े को पिता और छोटे को पुत्र रूप देखती है जो धर्म को विचार कर और कुल की मर्यादा समझ कर बची रहती हैं वे निकृष्ट श्रेणी की स्त्रियाँ हैं, ऐसा वेद कहते हैं। और जो स्त्री मौका न मिलने से या भय वश पतिव्रता बनी रहती हैं जगत में उसे अधम स्त्री जानना चाहिये। पति को धोखा देने वाली जो स्त्री पराये पति से रति करती है वह तो सौ कल्प तक रौरव नर्क में पड़ी रहती है। क्षण भर के सुख के लिये सौ करोड़ (असंख्य) जन्मों के दुःख को नहीं समझती उसके समान दुष्टा कौन होगी। जो स्त्री छल छोड़ कर पतिव्रत धर्म को ग्रहण करती है वह बिना ही परिश्रम परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करती है किंतु जो पति के प्रतिकूल चलती है वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है वहीं भरी जवानी में विधवा हो जाती है। स्त्री जन्म से ही अपवित्र है किंतु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है। (पतिव्रत धर्म के कारण ही) आज भी तुलसी जी भगवान को प्रिय हैं और चारों वेद उनका यश गाते हैं। यह है एक महान नारी का दूसरी महान (शक्ति) नारी के प्रति दिया गया पतिव्रत धर्म (नारी धर्म का) उपदेश। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पति में ईश्वर की भावना कर तन, मन, वचन और कर्म से उसकी सेवा करना ही नारी का एक मात्र धर्म है। किंतु आज तर्क करने का जमाना है अतः आज यहां शंका की जाती है और प्रश्न किया जाता है–यह क्यों? स्त्री और पुरुष के धर्म में क्यों भेद किया गया है? शास्त्रों ने केवल स्त्री के लिये ही पतिव्रत धर्म क्यों लागू किया? क्यों नहीं पुरुष को भी स्त्री-व्रत धर्म के बन्धन में डाल दिया इत्यादि। धर्म में भेद का कारण स्त्री पुरुष की शारी-

रिक रचना तथा उनके कर्म में भिन्नता ही स्त्री पुरुष के धर्म में भिन्नता का कारण है।

हमें सत्य को आगे रखना है। सत्य पर पर्दा डाल कर हम कोई उन्नति नहीं कर सकते, न कोई स्थायी सुधार कर सकते हैं इसलिए प्रथम यह देखना चाहिए कि सत्य क्या है? और वीतरागी महर्षियों के स्त्री और पुरुष के धर्म में भेद करने का कारण क्या था?

नारी धर्म पर विचार करने के पूर्व यह समझ लेना उचित होगा कि स्त्री क्या है और पुरुष क्या है?

काल्पनिक जगत

शास्त्रकारों का कहना है कि सारा जगत काल्पनिक तथा ईश्वरमय है, सिवाय ईश्वर के और कुछ भी नहीं है। अब प्रश्न उठता है कि यह सारा प्रसार जो देखने में आ रहा है यह क्या है? उत्तर मिलता है कि कल्पना के द्वारा ईश्वर दो भागों में विभक्त हो गया है। एक ईश्वर और दूसरी उसकी शक्ति माया। यह सारा प्रसार माया का है। श्री तुलसी दास जी ने रामायण में कहा है—

"गो गोचर जहँ लगि मन जाई, सो सब माया जानहुँ भाई"

अर्थात् जहां तक वाणी का तथा इन्द्रियों का विषय है और जहाँ तक मन जा सकता है वह सब प्रसार माया का है। स्वयं ईश्वर माया के आवरण में समाहित हो खोया हुआ है। यह सब गूढ़ ज्ञान का विषय है। हमें केवल स्त्री और पुरुष के अस्तित्व पर और नारी-धर्म पर यहां विचार करना है।

माया का स्वरूप नारी

स्त्री और पुरुष दोनों ही ईश्वर का अंश होने पर भी

स्त्री माया का और पुरुष ईश्वर का स्वरूप माना गया है। धर्म शास्त्रों ने स्त्री और पुरुष के स्वरूप का इस प्रकार परिचय दिया है—

स्त्री पुरुष की एकता

पुरुष विष्णु है, स्त्री लक्ष्मी, पुरुष विचार है स्त्री भाषा, पुरुष धर्म है स्त्री बुद्धि, पुरुष तर्क है स्त्री भावना, पुरुष अधिकार है स्त्री काव्य, पुरुष संचयिता है स्त्री रचना, पुरुष हठ है स्त्री इच्छा, पुरुष दया है स्त्री दान, पुरुष मन्त्र है स्त्री उच्चारण, पुरुष अग्नि है-स्त्री ईंधन, पुरुष सूर्य है-स्त्री आभा, पुरुष विस्तार है-स्त्री सीमा, पुरुष आँधी है स्त्री गति, पुरुष समुद्र है-स्त्री किनारा, पुरुष धनी है-स्त्री धन, पुरुष युद्ध है स्त्री शक्ति, पुरुष दीपक है स्त्री प्रकाश, पुरुष दिन है- स्त्री रात्रि, पुरुष वृक्ष है-स्त्री फल, पुरुष संगीत है-स्त्री स्वर, पुरुष न्याय है-स्त्री स्वत्व पुरुष सागर है-स्त्री नदी, पुरुष स्तम्भ है स्त्री पताका, पुरुष आत्मा है-स्त्री शरीर, यह है दोनों अभिन्न मित्रों की भिन्नता में अभिन्नता।

जिस प्रकार माया के द्वारा चराचर जगत का प्रसार हुआ उसी प्रकार नारी वर्ग का मुख्य धर्म अपने अपने क्षेत्र में विस्तार एवं संतति सृजन के द्वारा प्राकृतिक नियम वा क्रम उत्तरोत्तर चालू रखना है। ईश्वर ने जिस धर्म के लिये नारी वर्ग की उत्पत्ति की उस क्षेत्रमें श्रेष्ठता प्राप्त करना नारी जाति का परम धर्म माना गया है।

अखिल सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन प्रधान स्वरूप माने गए हैं। यहाँ ब्रह्मा सृजनकर्ता, विष्णु पालन कर्ता और रुद्र रूप में शिव संहार कर्ता हैं। ब्रह्मा की सृजनात्मक शक्ति का नाम सरस्वती है।

सरस्वती की सहायता के बिना ब्रह्मा एक कण का भी निर्माण नहीं कर सकता। विष्णु लक्ष्मी के द्वारा पालन कर्ता है और शिव की संहारक शक्ति का नाम दुर्गा है। तात्पर्य यह है कि जगत का आधार होते हुए भी ईश्वर बिना माया के कुछ भी करने में असमर्थ है। परन्तु ईश्वर यदि अपनी सत्ता समेट ले तो प्रकृति (जो प्रथम ही जड़ रूप है) के नाम पर कुछ रह ही नहीं जाता। यदि पन्च-तत्व का ढांचा खड़ा भी रहा तो वह गतिहीन होने से निरर्थक सिद्ध होगा। यहां यह सिद्ध हो जाता है कि माया ईश्वराधीन है। ईश्वर माया के आधीन नहीं, वह अनन्त है।

यही अवस्था स्त्री और पुरुष की है इसीलिए बिना पुरुष के स्त्री और बिना स्त्री के पुरुष को अपूर्ण माना गया है। दोनों के मिलने पर एक इकाई बनती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विवाह-संस्कार का विधान लागू किया गया।

स्त्री सब कुछ कर सकती है

जहां तक कुछ करने का प्रश्न है वहां यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि विद्या बुद्धि द्वारा करने वाला कोई कर्म या हाथ पैर से करने वाला कोई परिश्रम ऐसा नहीं जिसे स्त्री न कर सकती हो। पुरानी कहावत है कि—"कहा न पावक जरि सके, का न समुद्र समाय। त्रिया कहा नहि करि सके, काल काहि नहीं खाय" स्त्री यदि चाहे तो अपवाद स्वरूप सब कुछ कर सकती है किंतु अधिक संख्या जिसका समर्थन करती है उसी को प्रधानता मिलती है।

स्त्री को तप प्रधान और पुरुष को यज्ञ प्रधान माना गया है।

स्त्री चार प्रकार की होती हैं

(१) ब्रह्म निष्ठा, (२) प्रभु भक्ता (३) गृह-कार्य सक्ता (४

चुकी हैं जो ये हैं—

गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, अरुन्धती, अनुसूया, मदालसा, अपाला, विश्ववारा, वाक सूर्य, रोमशा, शाश्वती, चुड़ाला, ममता और उशिज इत्यादि अनेक देवियाँ ब्रह्मवादिनी के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं और वेद की अनेक ऋचाओं में इनकी ध्वनि आज भी गूंजती है। ऋग्वेद के १०म मण्डल के ८५ वें सूत्र की ४७ ऋचायें केवल ब्रह्मवादिनी सूर्या की बताई जाती हैं। यह सूक्त विवाह सम्बन्धी है। अन्य भी अनेक ऋचायें—स्त्री की रचना है। ऐसी आदर्श और ब्रह्मनिष्ठ महिलायें अनेक हो चुकी हैं फिर भी इनकी गणना कुछ अपवादों में ही की जा सकती है। ये महान मातायें साधारण स्त्री की प्रकृति से बहुत ऊची उठ चुकी थीं।

प्रभुभक्ता नारी वह होती है जिसका स्नेह ईश्वर में होता है स्त्री की प्रकृति तप प्रधान होने के कारण आज भी अनेका इसी रूप में देखने में आती हैं। उनमें भक्ति की भावना है किंतु सांसारिक झंझटों में उलझे रहने के कारण उनकी भक्ति को दृढ़ता नहीं मिल पाती। निश्चल भक्ति जैसी मीरा की थी ऐसी अतीत काल में भी किसी की सुनने में नहीं आई। केवल रामावतार में शबरी की और कृष्णावतार में गोपियों की भक्ति का उल्लेख मिलता है अतः प्रभुभक्ता स्त्रियाँ भी गिनी चुनी होने के कारण अपवाद ही मानी जा सकती हैं।

घर वाली

गृह-कार्य मक्ता—स्त्री वर्ग का सबसे बड़ा भाग इसी श्रेणी का है। स्त्री की स्वाभाविक प्रकृति ही घर गृहस्थी में प्रवृत्त रहने की है। घर का अर्थ ही स्त्री है। स्त्री का मन जैसा घर गृहस्थी जुटाने में तथा उसकी सार संभाल करने में लगता है ऐसा किसक

अन्य क्षेत्र में नहीं लगता घर की व्यवस्था, उसकी सजावट करना सीना, बुनना, कढाई करना, भांति-भाति के भोजन (पकवान) आदि बनाना स्त्री के स्वाभाविक गुण हैं।

न केवल मानव समाज में बल्कि जलचर, थलचर या नभचर किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो नारी वर्ग को समय पर घर बना कर बैठने की आवश्यकता पडती है। चिडियें घोंसले बनाती हैं (बया का घोंसला बडा कारीगरी को बनता है) पृथ्वी पर चरने वाले प्रत्येक जीव (कुतिया बिल्ली खरगोश इत्यादि) कोई न कोई सुरक्षित स्थान टटोल लेते हैं जहा वे बच्चों को सुरक्षित रख सकें। इसी प्रकार जलचर जल की तलहटी में किसी गढ़े या खुगाल में, अथवा किनारे के दल दल वाले रेत मे सुरक्षित स्थान ढू ढ लेती हैं जहा अन्डे बच्चे की देख भाल कर सके। नर प्राणी को इसकी विशेष आवश्यकता नहीं वह चाहे जहा बैठ या सो सकता किंतु मादा को बच्चों की रख-वाली करनी पड़ती है इसलिए उसे घर का, घोंसले की या अन्य किसी प्रकार के घर बनाने की आवश्यकता पडती है इसीलिये स्त्री को "घर वाली" कहते हैं।

आज पुरुष के समान अधिकार प्राप्त करने पर भी दुनिया के प्रत्येक पर्दे में सभी स्थानो पर यह पाया जाता है कि जहा ४, ६ महिलायें मिल कर बैठती हैं वहा कुछ न कुछ गृह-चर्चा अवश्य हो जाती है।

पतिव्रता

नारी धर्म का मूल आधार पतिव्रत धर्म ही माना गया है। पतिव्रत धर्म पालन के लौकिक और पारलौकिक अनेक महत्त्व हैं। यथार्थ मे धर्म उसी को माना गया है जिससे लोक और परलोक दोनों में सुधार हो। पति को परमेश्वर मान कर सेवा

करने से परम-पद (ईश्वरत्व) की प्राप्ति होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। पतिव्रत धर्म के द्वारा दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है (क्योंकि ईश्वर की आराधना के लिए किसी को भी निमित्त माना जा सकता है) पति में ईश्वर वृत्ति रख, एकाग्रता प्राप्त करने से सुसन्तति सृजन (महा पुरुषों की उत्पत्ति) करके लोकोन्नति का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। दोनों के लिए एकाग्र-वृत्ति चाहिये जोकि पति में एकाग्र-वृत्ति रखने से ही स्त्री जाति के लिए संभव है।

विवाह के समय कन्या को कच्चे सूत में लपेटा जाता है जोकि इशारे से टूटता है किंतु उसका टूटना बड़ा अमंगलकारी माना गया। इसलिए सावधानी से उसकी रक्षा की जाती है जिसका तात्पर्य है कि स्त्री में जो चञ्चलता रूपी दुर्गुण है उससे सदा सावधान रहना चाहिए। स्त्री को अपने सतीत्व की रक्षा उस कच्चे सूत के समान सावधानी से करते रहना चाहिए जोकि ज़रा से इशारे पर भंग हो सकता है। काँच की चूड़ी को सुहाग मानने का प्रयोजन भी यही है। यही नारी धर्म का आधार।

श्री अनुसूया जी ने चार प्रकार की पतिव्रताओं का वर्णन किया है। उत्तम, मध्यम, निकृष्ट और अधम। इनमें प्रथम श्रेणी की संख्या कम रही है। शेष सभी हिंदू महिलायें (जोकि धर्म को मानती हैं) अन्तिम तीनों श्रेणियों में आ जाती हैं (किंतु शक्ति का संचय प्रथम श्रेणी में ही पहुँच कर सम्भव है।

आदर्श सन्तति

बच्चे तो सभी प्राणी के होते हैं किंतु नारी धर्म पालन का लौकिक महत्व आदर्श सन्तानोत्पादन करना है। उत्तम, धर्मात्मा, सद्गुणी, सुशील, सदाचारी और विवेकवान सन्तान

का उत्पादन जिससे सम्भव हो, वहीं नारी जाति का उत्तम धर्म माना जा सकता है। नारी धर्म के पालन का मूल उद्देश्य यही है जोकि पतिव्रत धर्म के पालन द्वारा ही सम्भव हो सकता है। वंश-परम्परा चालू रखना और आदर्श सन्तति का निर्माण ही वैवाहिक बन्धन मे बाधने का मुख्य कारण है। विषय भोग मे रत तो सभी प्राणी रहते है किंतु नारी-जाति का महत्व तो आदर्श माता बनने में है। हमारे लोक गीतों में माता के इसी महत्व का पग-पग पर वर्णन मिलता है।

यद्यपि उपर्युक्त सभी गुण ईश्वर में एकाग्र चित हो ध्यान धरने से अथवा ईश्वर भक्ति के द्वारा सन्तान मे आ सकते हैं, किंतु सामान्य नारी वर्ग के लिये यह स्थिति सम्भव नहीं। न केवल स्त्री बल्कि पुरुष के लिये भी बिखरे हुए मन को समेट कर भगवान में लगा देना सरल नहीं। यह कार्य बडा कठिन है इसके लिये पूर्व जन्म से लेकर सभी संस्कारों का सग्रह चाहिए और चाहिए ईश्वर की असीम कृपा, जिसके बिना ईश्वर भक्ति संभव नहीं।

चन्चल प्रकृति

स्त्री स्वभाव से ही चन्चल है, इसीलिए नारी जाति को किसी लम्बे चौडे कर्म काण्ड के ऐसे बन्धन में नहीं बाधा गया जिसका पालन करने मे वह असमर्थ हो। बल्कि सभी झगड़ों से मुक्त रख उसी में प्रवृत्त कराया गया है जिसमे नारी वर्ग का स्वभाविक आकर्षण हो। यद्यपि नारी जाति भी कर्म से वचित नहीं है। अच्छा या बुरा कार्य तो स्त्री भी करती ही है और कर्म फल भी उसे भोगना ही पडता है। धर्म का उद्देश्य प्रकृति पर नियन्त्रण प्राप्त करना है परन्तु पारदर्शी महर्षियों ने प्रत्येक स्थान पर इस बात का बड़ी बारीकी और सावधानी से ध्यान रखा है

कि जिस पर जो नियम लागू किया जाता है वह उसके पालन करने में समर्थ हो सकेगा भी या नहीं बल्कि जिसकी जो स्वभाविक प्रकृति है, उसमें जो प्राकृतिक सद्गुण हैं उन्ही में से उसे प्रवृत्त कराके प्राकृतिक दुर्गुणों के दबाने का मार्ग ढूंढ़ निकाला था।

स्त्री और पुरुष दोनों में ही कुछ सद्गुण और कुछ दुर्गुण स्वभाविक होते हैं। सद्गुणों की वृद्धि होने पर दुर्गुण और दुर्गुणों की वृद्धि होने पर सद्गुण दब जाते हैं। धर्म का उद्देश्य प्राकृतिक दुर्गुणों का दमन कर उन्हें उनके स्वभाविक सद्-गुणों में प्रवृत्त कराना है। माया का स्वरुप होने के कारण स्त्री पर प्राकृतिक आकर्षण का प्रभाव भी अधिक पड़ता है। कुछ स्त्रियोचित कमजोरियाँ भी हैं। साथ ही घर गृहस्थी तथा बाल-बच्चों में घिरी रहने के कारण कर्म-काण्ड के कठोर नियमों का पालन करना उसके लिये कठिन है अतः जैसा कि यज्ञोपवीत सम्बन्धी प्रकरण में बताया जा चुका—विवाह के समय स्त्री का कर्म भार यज्ञोपवीत द्वारा पुरुष को ग्रहण करना पड़ता है इस प्रकार स्त्री कर्म कांड के बन्धनों से मुक्त रहती है। इससे स्त्री को दोहरा लाभ है अब से पुरुष के पुण्य कर्म का आधा भाग स्त्री को प्राप्त हो जाता है किंतु पाप कर्म का नहीं। क्योंकि स्त्री ने पुरुष के कर्म का कोई उत्तरदायित्व ग्रहण नहीं किया। उधर यदि स्त्री कोई पाप-कर्म करती है तो उसके आधे पाप का भागीदार पुरुष को बनना पड़ता है क्योंकि पुरुष ने स्त्री के कर्म का उत्तर-दायित्व (जनेऊ) ग्रहण किया है। इसलिए वह स्त्री के पापों का भागीदार है। साथ ही स्त्री यदि कोई पुन्य कर्म करती है तो उसके फल का कोई भाग पुरुष को नहीं मिलता। स्त्री के पुन्य का फल पुरुष को तभी प्राप्त हो सकता है जब स्त्री उसे देना चाहे

अर्थात् अपने पुण्य का भाग पति के नाम संकल्प करदे (ऐसा मेरा विचार है)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री समाज को कर्म-कांड की झंझटों से मुक्त रख उसे उसी मे प्रवृत्त कराया गया है जिसमें उसका स्वाभाविक आकर्षण हो। स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक आकर्षण है। स्त्री जबसे युवावस्था में पदार्पण करती है तभी से उसकी कामना पति का प्रेम प्राप्त करने की होती वे। ज्ञात में हो या अज्ञात मे, उसकी वह चाहना माता बनने में सहायक होती है। इसीलिए स्त्री को पति में ईश्वर-भाव से एकाग्र चित्त हो प्रेम करना, पति के अनुशासन में रहना, उसके सोने के पीछे सोना, उसके जागने के पूर्व जागना, जिससे पति प्रसन्न हो वह आचरण करना अर्थात् पति के माता-पिता तथा अन्य अन्य कुटुम्बी जनों का यथायोग्य आदर-सत्कार और सेवा सुशुश्रा करना, बच्चों का पालन-पोषण तथा देश भाव रखना, उन्हें उचित शिक्षा दीक्षा देना, घर-गृहस्थी की सार-संभाल करना, घर को व्यवस्थित ढंग से रखना नारी का धर्म माना गया है। स्त्री को मधुर-भाषिणी और सहनशील होना चाहिये जिससे कहा-सुनी के द्वारा गृह-कलह तथा अशांति उत्पन्न न हो। सारांश मे नारी धर्म की व्याख्या यही है यही स्त्री का तप माना गया है। इसी से स्त्री मानव समाज को उन्नति के शिखर पर चढ़ा सकती है। साथ ही परम पद प्राप्त करने की अधिकारिणी भी बन जाती है।

स्त्री और पुरुष दोनों में ही अदृश्य शक्ति का अंश है जिसका अनेक कारणों द्वारा ह्रास हुआ करता है जोकि ईश्वर की शक्ति है) का स्वरूप होने के कारण स्त्री में शक्ति की मात्रा अधिक है। तप, त्याग, सत्याचरण, सहनशीलता आदि साधनाओं के द्वारा शक्ति सन्चित होती है और काम, क्रोध, लोभ,

मोह, मद, मत्सर इत्यादि दुर्गुणों द्वारा सचित शक्ति का भी ह्रास हो जाया करता है। पुरुष जिस शक्ति को कठोर तप करके प्राप्त करने की कामना करता है उससे अधिक शक्ति स्त्री केवल पतिव्रत धर्म का पालनकर के प्राप्त कर सकती है। इसी एक साधन के द्वारा वह अक्षय शक्ति का भण्डार सचित कर सकती है।

तीन स्वरूप

स्त्री जहा सरस्वती के स्वरूप मे सृजन तथा लक्ष्मी बन कर पालन करती है वहा उसका तीसरा स्वरूप भी है अर्थात् वह दुर्गा, महा काली और चण्डी बन कर सहार भी कर सकती है।

आज नारी समाज ने अपने तीसरे स्वरूप को अपना कर संसार को विनाश के किनारे पर ला खड़ा किया है।

पूज्य महात्मा गाधी ने अपनी आत्म कथा में अनेक स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से मातृ-शक्ति का महत्व प्रदर्शित किया है। वे लिखते हैं—मैं अनुभव से कह सकता हूँ कि शिक्षा की शुरुआत तो माता के उदर से ही हो जाती है। गर्भाधान के समय की मानसिक एव शारीरिक स्थिति का प्रभाव बच्चे पर अवश्य पडता है। माता की गर्भ कालीन प्रकृति, माता के आहार विहार के अच्छे बुरे फल को विरासत मे पाकर बच्चा जन्म पाता है इत्यादि।

वह आगे पुन लिखते हैं कि—"मेरी इतनी कोशिश के बाद भी मेरे बालकों के जीवन मे जो खामिया दिखाई देती हैं मेरा यह दृढ मत है कि वे हम दम्पति की खामियों का प्रति बिम्ब है। बालकों को जिस प्रकार मा बाप की आकृति विरासत मे मिलती है उसी तरह उनके गुण-दोष भी विरासत मे मिलते हैं। महात्मा जी ने इस पर बहुत कुछ लिखा है। महात्मा जी यह भी कहा करते थे कि "मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है वह सब

मेरी जननी की देन है जो एक अशिक्षित हिंदू-नारी थी।"

महात्मा जी के अनुभव पूर्ण कथन से यही तथ्य निकलता है कि जगत में जितने भी प्राकृतिक तथा मानव रचित पदार्थ हैं अदृश्य रूप में सबकी निर्माण कला नारी जाति के हाथ में है। गर्भ-कालीन अवस्था में वह कर्म, गुण, स्वभाव, रहन-सहन, आहार-विहार द्वारा जिन भावनाओं का रग रग में संचार कर बालक को जन्म देती है बड़े होने पर बालक उन्हीं का कला-कौशल द्वारा नाना प्रकार से प्रदर्शन करता है। कला से कलाकार का महत्व अधिक है।

हमारे पूर्वज महर्षियों ने इन सब तथ्यों का शोधन कर जिस संस्कृति का निर्माण किया उसमें सबसे बड़ा पद माता को प्रदान किया है। मनुस्मृति में लिखा भी है कि "दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता और हजार पिताओं की अपेक्षा माता का गौरव अधिक है।"

महा भारत में लिखा है कि "सुभद्रा के गर्भ में स्थित वीर अभिमन्यु ने चक्र-व्यूह में प्रवेश करने की शिक्षा सीख कर जन्म लिया था इसलिये वीर अभिमन्यु ने व्यूह में प्रवेश तो कर लिया किंतु उसमें से निकल न सका क्योंकि निकलना नहीं सीख पाया था।"

कंस के अत्याचारों से पीड़ित, दीर्घ काल तक अपने पति के सहित कारागार की यातना से आकुल, नवजात शिशुओं की निर्मम हत्या से व्यथित माता देवकी ने आर्त स्वर से भगवान की प्रार्थना की फलतः लीला पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्णचंद्र ने जन्म लेकर और कन्स का वध कर, माता पिता को बन्धन-मुक्त किया तथा आततायियों का संहार कर गीता का उपदेश सुनाया।

वन जाने की आज्ञा देते समय माता कौशल्या ने श्री रामचन्द्र जी से कहा है—

जो केवल पितु आयसु ताता–तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जो पितु-मातु कहें वन जाना–तो कानन सत अवध समाना॥

इस उपदेश में जहां माता की महानता और कौशल्या के त्याग का परिचय मिलता है वहां श्री रामचन्द्र जी की जननी के अनुरूप उनके शुद्ध सरल हृदय और धर्म-युद्ध भावना का भी अनुमान लगाया जा सकता है जिन्होंने श्रीरामचंद्रजी के समान प्रिय पुत्र को राज्य के स्थान पर बनवास देने वाली कैकेई की आज्ञा को माता की आज्ञा स्वीकार कर उन्हें वन जाने दिया। हृदय की पवित्रता और अपने धर्म में दृढ़ता के फलस्वरूप उनकी कोख से मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम ने अवतार लिया।

धर्म प्रधान देश होने के कारण भारत में एक दो नहीं असंख्य ऋषि-मुनि, अगणित सन्त, महात्मा एवं त्यागी, शूर-वीर, दानी, बड़े-बड़े प्रसिद्ध महा प्रतापी राजा हो चुके हैं।

यहाँ भद्र समाज में साधारण व्यक्ति के लिए भी सत्य, धर्म, कर्म और कर्तव्य का पालन करना तथा सदाचारी होना अपनी अपनी समाज में सम्मिलित रहने के लिए परमावश्यक था। प्रत्येक नैतिक-पतन और चरित्र-हीनता का किंचित मात्र भी संकेत पाते ही समाज के कठोर दण्ड का भाजन बनना पड़ता था। यह सब भारतीय नारी-धर्म (मातृ-जाति) के त्यागी जीवन के प्रभाव से सम्भव था जिसकी आज उपेक्षा की जा रही है क्यों कि तप प्रधान होने के कारण स्त्री जैसी चाहे वैसी सन्तान का उत्पादन कर सकती है।

यदि महात्मा गांधी की माता श्रीमती पुतली बाई ने गर्भ-कालीन स्थिति में कठोर व्रत, संयम, नियम द्वारा सत्य,

धर्म, तप और त्याग की दृढ़ भावना का श्री गांधी जी के रग-रग में संचार न किया होता तो पूज्य गांधी जी विश्व-वंद्य महा पुरुष और रामकृष्ण की श्रेणीमे प्रतिष्ठित कदापि न होपाते न आज संसार उनका स्मरण करता और आज यह कौन बता सकता है कि उस अवस्था में भारत माता की बेड़ी खुलने में कितना समय और लगता। खेद है कि आज भारत ने पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव में आकर इस तत्व को ही भुला दिया है।

स्त्रियों में कुछ गुण और कुछ दुर्गुण भी होते हैं।

नारी के भूषण

लज्जा, सौन्दर्य, वाणी में मधुरता इत्यादि नारी के बाहरी आभूषण हैं।

क्षमा, प्रेम, उदारता, विनय, सहिष्णुता, समता, शांति, धीरता, वीरता, पर-दुख कातरता, सत्य, सेवा, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, शील, प्रभु-भक्ति, सद्गुण, सद्भाव, संयम, तप, गंभीरता, समता सुव्यवस्था, सफाई, श्रम, शीलता, निर्भिमानता और उदारता ये आंतरिक सौंदर्य के प्रतीक हैं। प्रत्येक स्त्री में इनका होना अनिवार्य है। इन गुणों के धारण करने से साधारण स्त्री भी महान नारी का रूप धारण कर सकती है।

क्षमा, दया, सहनशीलता, कोमलता, स्नेह, ममता, सेवा, विश्वासऔर श्रद्धा स्त्रियों के स्वाभाविक गुण हैं।

नारी के दूषण

कलह, निंदा, लड़ कर रोना, रूठना, हिंसा, द्वेष, ईर्ष्या, भेद, विलासिता, शौकीनी, फिजूल खर्ची, गर्व, अभिमान, दिखावा, हंसी, मजाक, वाचालता, स्वास्थ्य की लापरवाही, मोह, कुसंग, आलस्य और व्यभिचार। यद्यपि ये स्त्रियोचित

दोष बताए गए हैं किंतु स्त्री हो या पुरुष ये दोष दोनों में हो सकते हैं और दोनों के लिए ही त्याज्य हैं।

श्री तुलसी कृत रामायण में आठ प्रकार के स्त्रियोचित दुर्गुण वर्णन किये गये हैं। रावण मन्दोदरी से कहता है—

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं–अवगुण आठ सदा उर रहहीं।
साहस अनृत चपलता माया–भय अविवेक अशौच अदाया॥

अर्थात् दुस्साहस, अनृत (झूठ), चन्चलता, माया (छल), भय, अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता। इनमें भय, अविवेक, चपलता और दुस्साहस तो प्रत्यक्ष देखने में आया करता है शेष कारण वस समय समय पर प्रकट होते रहते हैं। जिस प्रकार एक झूठ को छिपाने के लिए अनेक झूठ बोलने पड़ते हैं उसी प्रकार एक सद्गुण के साथ अनेक सद्गुणों का विकास होता है और एक दुर्गुण के उत्पन्न होते ही अनेक दुर्गुण उत्पन्न हो जाया करते हैं। यह मानसिक दुर्बलता की निशानी है जोकि स्त्री-पुरुष दोनों में सम्भव है क्योंकि स्त्रियों की मानसिक स्थिति अधिक दुर्बल होती है अतः उनमें ये सभी दुर्गुण अधिक मात्रा में प्रवेश कर जाते हैं।

स्त्रियों में एक दुर्गुण यह भी देखने में आता है कि वे प्रत्येक बात में अति कर जाती हैं जिस पर उनको दया आती है तो अति दयालु हो जाती हैं और जब क्रुद्ध होती हैं तो उसको जड़ से काट डालना चाहती हैं। वे बड़ी जल्दी बातों में (बहकाने में) आ जाती हैं और आगा पीछा सोचे बिना अपनी संचित पूंजी लुटा बैठती हैं। अथवा अन्य अनाचार की शिकार होती हैं। आए दिन ऐसी घटनायें सुनने में आती हैं।

धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि पुरुष में स्त्रियों के गुण आने से वह साधु कहलाता है और स्त्रियों में पुरुषोचित गुण आने से

वह पिशाचिनी का रूप धारण करती है। यह बात प्रत्यक्ष देखने में आती है।

स्त्री का सबसे बड़ा दुर्गुण उसकी अनुचित हठ है और जहाँ भी अनुचित हठ है वहाँ ही ताड़ना की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि अनुचित हठ से कभी कभी भारी हानि हो जाती है।

हठ तीन प्रसिद्ध हैं

राज-हठ, बाल-हठ, तिरिया-हठ। बालक अबोध होने से हठ करता है। वह अग्नि से खेलना चाहता है। रोकने से रोता है, मचलता है अथवा चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है उसके लिए रोता है वह ताड़ना के योग्य नहीं क्योंकि नासमझ है। अतः उसे बहलाया फुसलाया जा सकता है।

राजा या जिसके हाथ में राज-सत्ता हो वह हठ करता है। वह समर्थ होता है इसलिए अपनी हठ पूरी करके रहता है। जनता चाहे जितनी चीख पुकार करती रहे किंतु वह सत्ता के मद मे किसी पर ध्यान नहीं देता। अनेक बार राजा की इस अनुचित हठसे भारी हानि होजाया करती है। यहाँ भी ताड़ना की आवश्यकता है किंतु राजा का एकाध व्यक्ति या थोड़े व्यक्ति भी कुछ नहीं बिगाड सकते। यहाँ प्रजा के संगठन की आवश्यकता पड़ती है। इस संगठन शक्ति द्वारा विश्व-भर मे राज्य-सत्ता समाप्त प्रायः हो चुकी है। जो नाम मात्र के गिने चुने राजाओं का नाम सुनने में आता है वह भी धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है।

स्त्रियाँ भी हठ करती हैं। त्रिया हठ प्रसिद्ध है। यह प्रायः सभी स्त्रियों में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है। स्त्रियाँ जब हठ करती हैं तो उसके भीषण परिणाम की ओर कोई ध्यान नहीं देती। उनकी हठ से दूसरों को तो हानि होती ही है उनकी

स्वयं को भी कम हानि नहीं होती। इस स्त्रियोचित हठ का आज भी प्रत्येक को अनुभव हो सकता है। आए दिन गृह-कलह का कारण अधिकांश में स्त्रियों की अनुचित हठ का ही परिणाम है अनेक घर इससे नष्ट होते देखे गये हैं। इस हठ की मात्रा साधारण, अज्ञान या अशिक्षित स्त्रियों में ही पाई जाती हो यह बात नहीं। बड़ी बड़ी पूज्य देवियाँ भी इस हठ से अछूती नहीं बच सकीं।

सती ने अपने पति से अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जाने की हठ की इन्हें भस्म होना पड़ा। कैकेई ने श्रीराम को वन भेजने की हठ की उन्हें अन्य रानियों के साथ विधवा होना पड़ा और कुछ भी हाथ न लगा बल्कि आज तक उसका नाम कलंकित है। यहाँ तक कि सीता जी ने भी वन में बैठ कर हठ की। लक्ष्मण जी के लाख समझाने पर भी एक न मानी और उन्हें कठोर वचन सुना कर राम के पास जाने के लिये बाध्य किया। फलत. अवसर पा रावण उन्हें उठा कर ले गया जिसके कारण सीता जी का समस्त जीवन ही दुखमय हो गया।

यह प्राचीन इतिहास है जिसे आज लोगों ने कपोल-कल्पित कहना आरम्भ कर दिया है परन्तु मध्य-काल में पृथ्वीराज और आल्हा-ऊदल की लड़ाई में पुन यही स्थिति आगे आई। आल्हा खण्ड में स्थान स्थान पर स्त्रियों की हठ का उदा-हरण मिलता है। बड़ी बड़ी लम्बी लड़ाइयाँ स्त्रियोचित हठ का परिणाम थीं। इन लड़ाइयों में दोनों पक्ष की ओर से भारत के सब चुने हुये वीर योद्धा मारे गये। पृथ्वीराज की शक्ति इतनी क्षीण हो गई कि गौरी जो १७ बार पृथ्वीराज से पराजित हो चुका था, वह जयचन्द के सहयोग से भारत पर हावी हो गया। भारत दासता की बेड़ी में जकड़ा गया।

इन्हीं सब कारणों को लक्ष्य कर श्री तुलसीदास जी ने स्त्रियों को भी ताड़ना का अधिकारी माना है और लिखा है—

ढोल गवार शूद्र पशु नारी–ये सब ताड़न के अधिकारी ॥

यद्यपि उपर्युक्त चौपाई में समुद्र द्वारा की गई रामचन्द्र की प्रार्थना के प्रसंग का विषय प्रदर्शित किया गया है फिर भी इसे वैदिक धर्म शास्त्रों का स्त्रियों का विरोधी होने का प्रमाण मानकर, भारी वितण्डा वाद खड़ा कर दिया गया है। कुछ सुशिक्षित कहलाने वाली स्त्री और पुरुष तो ऐसे क्षुब्ध हो गए हैं कि हिंदू-धर्म की सारी मर्यादाओं को ही भंग करने पर उतारू हैं।

एक सन्त की वाणी को हिंदू-धर्म की भावना मान कर शास्त्रकारों को पुरुषों का पक्षपाती तथा अत्याचारी तक कहने मे संकोच नहीं करते। किंतु जिस हठी स्वभाव के कारण स्त्री को ताड़ना की पात्र माना गया है (स्मरण रहे ताडना से तात्पर्य यहाँ शारिरिक त्रास देना नहीं है। उसकी अनुचित हठ पूरी न करना ही स्त्रियों के लिये ताडना है) आज भी वही हो रहा है। आज प्रगतिशील महिलाओं तथा उनके साथियों ने (जिनके हाथ मे भारत की बाग डोर है) मिल कर वैदिक धर्म, संस्कृति (हिंदू संस्कृति केवल नाच-गाने तथा वेष-भूषा तक सीमित नहीं है जिसकी रक्षा का नारा लगाया जा रहा है) सभ्यता और मर्यादा सबको उलट डालने की हठ सी पकड़ी हुई है। ये लोग हिंदू-जनता के लाख विरोध करने पर भी हिंदू-कोडबिल को किसी न किसी रूप से हिंदू-समाज पर लागू कर वैदिक धर्म की मर्यादा को जड़ मूल से उखाड फेंकने पर उतारू हैं। ये हिंदू-जनता में छाई धर्म का अज्ञानता, अश्रद्धा और उपेक्षाभाव का अवसर चूकना नहीं चाहते। वे पार्टी बहुमत के बल पर ऐसा करके रहेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं बल्कि इन पंक्तियों के प्रकाशित होने तक बहुत सम्भव है हिंदू-कोडबिल हिंदू-समाज पर लागू हो चुका होगा। इसके दुःखद परिणाम क्या क्या आगे आते हैं उसके देखने का अथवा फल भुगतने का उनके लिये कोई अवसर नहीं आएगा बल्कि वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है इसके देखने का भी

कोई अवसर मिले इसमें सन्देह है क्योंकि हिंदू-कोडबिल के समर्थकों मे एक भी ऐसा नहीं जो अमर हो।

३ हजार वर्ष पूर्व वेद के अनुयाइयों ने वैदिक आदेश के विरुद्ध आचरण करते समय क्या इसके परिणाम की ओर कोई ध्यान दिया था जिसके फलस्वरूप वेद विरोधी तत्व बुद्धिज्म का आविर्भाव हुआ और भारत में वैदिक धर्म का मूलोच्छेद प्रायः हो गया ? क्या वे इस स्थिति को देख पाए ?

क्या सम्राट अशोक अपनी विश्वविजयी सेना के भंग करने का परिणाम सेना की अकर्मण्यता अथवा कायरता को, देख सके ? नहीं !

क्या पृथ्वीराज, जयचन्द, आल्हा-ऊदल(योद्धा-गण)तथा अन्य राजा गण (जिन्होंने शत्रु को सिर पर खड़ा देखते हुए भी गृह युद्ध में संलग्न रह कर भारत की सारी शक्ति क्षीण करदी) देश की बहु-कालीन दासता की करुणाजनक झाँकी देख सके ?

क्या वे महिलायें जिनकी हठ के कारण ही अनेक युद्धों का सूत्रपात हुआ यवनों के द्वारा की गई हिंदू देवियों की दुर्गति राजस्थान तथा अन्य स्थानों के अनगिनत जौहर, अथवा पाकिस्तान द्वारा किए गए दानवी दुराचार तथा जघन्य अत्याचार के दृश्य नग्न परेड) देख सका ? नहीं सब अपनी अपनी मन-मानी करते चले गये किंतु सबका दुख:द परिणाम पीछे वालों को भुगतना पड़ा और आगे भुगतना पड़ेगा इसमे कोई सन्देह नहीं। किंतु आज भविष्य की बात सोचना ही मूर्खता का प्रमाण मान लिया है। जबकि देखने में यही आता है कि भविष्य की ओर ध्यान न देना बड़ी सबसे ही मूर्खता है।

शिक्षा

शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये चहुमुखी विकास करना, अर्थात् लौकिक और पारलौकिक उन्नति का मार्ग जिससे प्रशस्त

हो वह शिक्षा है। जिससे आत्मा, मन, शरीर, बुद्धि, विवेक, अर्थ और समाज की उन्नति हो, विनम्रता, सरलता, कोमलता, सुशीलता इत्यादि सद्गुणों का प्रादुर्भाव हो, सदाचार हो, चरित्र में पवित्रता हो तथा जिसमें नैतिक उत्थान की सामग्री निहित हो वही यथार्थ में शिक्षा है जिससे आर्थिक, मानसिक, आत्मिक शारीरिक और सामाजिक पतन हो, बुद्धि विवेक का ह्रास होता हो, चरित्र में हीनता उत्पन्न हो, अपवित्राचरण करने में प्रोत्साहन मिले और दुर्गुणों का विकास हो उसे शिक्षा नहीं 'अशिक्षा माना जा सकता है। आधुनिक शिक्षा के द्वारा केवल विवेकहीनता औरभ्रष्ट बुद्धि का विकास हो पाया है। इसने मनुष्य की बुद्धि और विचार शक्ति का क्षेत्र सीमित कर दिया है। वे जो कुछ पुस्तकों मे पढ़ते हैं उसी घेरे में सोचते हैं और उसी हद तक विचार करते हैं। उससे ऊपर उठ कर स्वतन्त्र रूप से या पक्षपात रहित विचार करने की शक्ति उनमें बहुत कम पाई जाती है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ने मनुष्य को दो गुण सिखाये हैं। पत्रादि लिखना तथा केवल मनोरंजन का साहित्य पढ़ना। इसके अतिरिक्त मध्यकाली (झूठे सच्चे) इतिहास, भूगोल, गणित इत्यादि भी उन्हें बता दिया जाता है। यद्यपि परीक्षा पास करने के लिये उन्हें अन्य विषय भी रटने पड़ते हैं किन्तु डिगरी प्राप्त करने के उपरांत उनमें से अधिकांश के पल्ले जो पड़ताहै वह केवल लिखनेऔर पढ़नेकी कलाहै। इस लिखाई और पढ़ाई की विद्या द्वारा वे छोटी-बड़ी, ऊँची-नीची हर प्रकार की नौकरी करना सीख गए हैं। वर्तमान शिक्षा चालू ही इसी उद्देश्य से की गई है अतः वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य ही केवल अर्थोपार्जन करना माना जा सकता है। कल, बल, छल से जिस प्रकार भी सम्भव हो धन की प्राप्ति करना ही आज शिक्षित

समाज का धर्म सा बन गया है। अर्थोपार्जन के निमित्त ही इसे पुरुषों ने अपनाया अतः इसका कुप्रभाव भी उन्हीं तक सीमित रहा। शनैःशनैः वे आत्म विस्मृत होते गये। उनका नैतिक स्तर गिरता गया, वेप-भूषा रहन-सहन बदलने से उनका निजी व्यय बढ़ता गया। फलतः जहां एक व्यक्ति को अनेक व्यक्तियों का भार वहन करना पड़ता था, वहां वह अयोग्य सिद्ध होने लगा। शिक्षित, अशिक्षित, गरीब-अमीर, देहाती और शहरी में भेद प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। अंग्रेजी रहन सहन उनके आचार-विचार की नकल करने की प्रवृत्ति ने उन्हें कर्तव्यहीन बना दिया। यह भावना भी उत्पन्न होने लगी कि अपने स्त्री बच्चों के अतिरिक्त किसी के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं होना चाहिए। आज तो यह भावना यहां तक विस्तृत होती जा रही है कि स्त्री पुरुष का परस्पर उत्तरदायित्व निबाहने में भी खींचतान होने लगी है।

उनकी इस भावना का प्रभाव भारतीय समाज, धर्म और संस्कृति तथा सह-कुटुम्ब प्रणाली पर बहुत बुरा पड़ा। पारिवारिक व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गई। फलतः बहुत सी विधवा, अनाथ तथा अपाहिज जिनका निर्वाह सह कुटम्ब के सहारे हुआ करता था उनका कोई सहारा न रहा बल्कि आज तो उन विधवाओं तथा अनाथों का धन (रही सही पूंजी) और नारियों का स्त्री धन तक हड़प करने मे भी लोग नहीं झिझकते।

जबतक शिक्षित पुरुषोंकी संख्या कम थी उन्हें बड़ी २ नौकरियाँ तथा सरकारी पद प्राप्त करने में कोई कठिनाई न पड़ी। जैसे २ यह संख्या बढ़ती गई और नौकरी प्राप्त करने में प्रतियोगिता होने लगी वैसे वैसे शिक्षित बेकारों की संख्या में भी वृद्धि होने लगी। आज शिक्षित पुरुष जितनी बड़ी संख्या में बेकार पाये जाते हैं उतने अशिक्षित कदाचित ही मिलें। कारण कि वे सब

प्रकार की मेहनत मजदूरी करके अपना निर्वाह करने के आदि हैं जबकि शिक्षित व्यक्ति केवल नौकरी की तलाश में ही घूमा करते ते हैं।

कुछ समय पूर्व तक यह बेकारी की स्थिति पुरुषों तक ही सीमित थी। कारण कि स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार देर से हुआ। शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत भी माता-पिता का एक मात्र लक्ष्य पुत्री का विवाह करना था, उन्हें नौकरी की तलाश नहीं थी। लड़कियों को केवल इसी उद्देश्य से पढाया जाता था कि उनके लिये उत्तम घर वर मिलने में कठिनाई न पड़े तथा संकट का मुकाबला आसानी से कर सकें। जब तक शिक्षित लडकियों की कमी थी उन्हें इसमें सफलता मिली। अब क्योंकि शिक्षित लडकियों की संख्या भी अधिक है अतः शिक्षित लड़कियों के लिये भी उत्तम घर बार मिलना कठिन हो गया अर्थात् उतना आसान नहीं जितना कुछ समय पूर्व था। समानाधिकार भी नहीं मिला था इसलिये विवाह करने के सिवाय दूसरा चारा भी नहीं था।

समानाधिकार मिलने के फलस्वरूप उनकी भावना भी बदल गई है। अब लड़कियाँ स्कूल तथा कालेज में पढ़ते समय से बडी बड़ी ऊंची पदवी प्राप्त करने का स्वप्न भी देखने लगी हैं। जब स्त्रियाँ नौकरी करने की इच्छुक नहीं थीं उस समय जो नौकरी करना चाहती थीं उन्हें नौकरी प्राप्त करने मे कठिनाई नहीं पड़ती थी। अब यह बात नहीं है। अब शिक्षित युवतियों में भी बेकारी बढ़ती जा रही है। उधर पुरुषों मे भ्रमर वृत्ति की भावना भी बढ़ती जा रही है। अनुत्तरदायित्व की भावना का विकास यहाँ तक हो गया है कि पुरुष स्त्री का भार वहन करने में संकोच करने लगे हैं। ३०, ३५, ४० वर्ष तक विवाह नहीं करते अतः जो दुर्गुण प्रथम पुरुषों में प्रवेश कर चुके थे वे अब स्त्रियों

में भी आते जा रहे हैं। आज की शिक्षित स्त्रियां भी धर्म-कर्म और कर्तव्य पालन से हटती जा रही हैं। स्त्रियोचित सद्गुण मया, कोमलता, सहनशीलता इत्यादि का उनमें प्रायः अभाव सा हो गया है। इन सबका स्थान, क्रूरता, कठोरता तथा अक्खड़ता ने ले लिया है।

सासों के अत्याचार

आज बहुत दिनों से कहानी, उपन्यास लेखादि द्वारा इस बात का आंदोलन भी किया जा रहा है कि सासें बहुओं पर अत्याचार करती हैं। वर्षों से आल इण्डिया रेडियो के द्वारा भी यही प्रचार किया जा रहा है। इन प्रचारों से ऐसा प्रतीत होता है कि सास और बहू के थोक अलग अलग हैं जिनमें सासों की जमात अत्याचार करने वाली है और बहुओं की अत्याचार सहने वाला। अथवा स्त्रियों के हिमायती प्रगतिशील स्त्री-पुरुष सासों की गणना पुरुषों में करने लगे हैं इसलिये उनको अत्याचारी मानते हैं।

आज लड़कियों को ही नहीं लड़कों को भी यह सिखाया जाता है कि सासें अत्याचार करती हैं इसलिये उनसे अलग रहना चाहिये। लड़के इसी लिये आज जल्दी विवाह नहीं करते, वे विवाह करने को तभी तैयार होते हैं जब अलग घर रखने की उनमें सामर्थ्य हो। बहुयें विवाह के उपरांत तभी चैन से रह सकती हैं जब अलग घर बन जाए।

सास हो या बहू कोई आकाश से नहीं उतरती। जो आज बहू के रूप में है कुछ दिन उपरांत उसी को सास बनना है जो कर्कश स्वभाव की है वह बहू के रूप में सासों पर सासों से कहीं अधिक अत्याचार करती है वही जब सास बनती है तब बहुओं को त्रास देती हैं।

पुत्र होने की खुशी सबसे अधिक माँ को होती है जिसका एक कारण यह भी है कि पुत्र का मुंह देखते ही माँ के मन में बहु का मुख देखने की लालसा लग जाती है। लड़कियों को पराये घर जाना है और बहू को अपने घर रहना है इसीलिये लड़कियों को देने लायक हल्के-पतले जेवर देकर भारी कीमती जेवर कपड़े जोड़-जोड़ कर सासें बहुओं के लिये रखती हैं। अधिकाँश सासों के मन में इस बात की उमंग रहती है कि कब बहू आये और हमारे आगे पहिन ओढ़ कर गुड़िया सी बनी फिरे। वे आशा यह करती हैं कि बहू हमारे अनुशासन में चलेगी किंतु आज अधिकांश बहुयें पढ़ी लिखी होती हैं। वे सासों को मूर्ख समझती हैं अतः सास की बात मानने में उन्हें अपना अपमान मालूम होता है। सास की इस भावना को ही आज अत्याचार मान लिया गया है।

अब नया प्रचार भी सुनने में आया है अर्थात् ऐसे लेख भी पढ़ने मे आये हैं कि सासें बहुओं को साफ सुथरा अथवा जेवर कपड़े पहिने नहीं देख सकतीं। अतः विवाह से पूर्व लड़कियां यह धारणा कर लेती हैं कि सास-सुसर से अलग रहना है। सास की कही हुई हित की बात भी उन्हें बुरी लगती है।

सासें बहुओं पर हुकूमत उस समय चला सकती थीं जब लड़के बोलते नहीं थे, पर्दा होता था, छोटे-छोटे लड़के और लड़कियों के विवाह होते थे। अतः उन्हें गुण ढंग सिखाने के लिये ताड़ना भी देती होंगी। उनमें जो क्रूर या दुष्ट स्वभाव की होंगी वे बहुओं को शारीरिक त्रास भी देती होंगी और भी अनेक प्रकार के अत्याचार करती होंगी। उस स्थिति में होने पर कदाचित ही आज की अवस्था वाली सासें अत्याचार कर सकती आज वही सासें अत्याचार करने की स्थिति में हो सकती हैं

जिनके लड़के बेकार हों। और लड़के वहू दोनों सास ससुर (माता पिता) के ऊपर निर्भर हों। ऐसी सूरत मे उनके लिये और कोई चारा भी तो नहीं। आज परिस्थिति भिन्न है। सवर्ण हिंदुओं मे बाल-विवाह बहुत कम होने लगे हैं। २०-२५ या इससे भी अधिक आयु मे लड़कियों के विवाह होते है। बहुयें आते ही लड़कों पर ऐसा जादू डालती हैं कि वे अपने सारे घर वालों को भूल जाते हैं। सास-ससुर यदि हुये तो वृद्ध होते हैं। ऐसी सूरत मे अत्याचार करने की स्थिति मे बहुयें हो सकती हैं न कि सासें। आज सासें अत्याचार करने की स्थिति में हों या न हों, बहुयें अपना यह कहने का अधिकार सुरक्षित समझती हैं कि हमारे ऊपर अत्याचार हो रहा है। मानो यह भी उनके लिये फैशन का ही एक आवश्यक अग हो।

यथार्थ मे हमने अंग्रेजों के दुर्गुणों की नकल करने का ठेका सा ले लिया है। अंग्रेजों में विवाह के उपरांत माता पिता को छोड कर लडके स्त्री के साथ अलग रहते हैं जबकि भारत मे पूरे कुटुम्ब के साथ रहने की प्रथा थी। अंग्रेजी पढ़ने के उपरांत उनका रहन सहन भी अपनाना आवश्यक मान लिया गया है इसी लिए आज सासें बुरी लगती हैं।

प्रत्येक मे कुछ गुण और कुछ अवगुण होते हैं। अंग्रेजों में भी यही बात है किंतु भारतवासियों ने उनका कोई गुण ग्रहण न कर सारे अवगुण छॉट लिये हैं। जैसे समय तथा वचन की पाबन्दी, त्याग, तप, कर्मठता, दूरन्देशी और अपने धर्म में निष्ठा इत्यादि उनमें जो सद्गुण थे उनमें से एक भी ग्रहण न कर पाये। कारण स्पष्ट है कि उनमें कुछ कठिनाई सहन करनी पड़ती। यदि कठिनाई सहन करना ही उन्हें अभीष्ट होता तो अपने धर्म मे क्या कमी थी। किंतु हम तो उनके भोग-विलास

फैशन आदि की ओर आकर्पित हुए हैं। इस प्रकार उनके सारे दुर्गुण आज हम में प्रवेश कर गये हैं।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली द्वारा भारतीय नारी-धर्म और हिंदू-संस्कृति का जितना पतन और जितनी हानि हुई है उतनी किसी से नहीं। आज की शिक्षित और प्रगतिशील महिलायें साधारण हिंदू सभ्यता से सर्वदा अलग होकर बहुत दूर चली गई हैं। शिक्षा का उद्देश्य सद्गुणों का विकास और दुर्गुणों का त्याग होना चाहिए किंतु यहां इसका सर्वथा उल्टा देखने में आता है। आज की शिक्षित महिलाओं के अन्दर स्त्रियोचित प्राकृतिक दुर्गुण तो सब जहाँ के तहाँ विद्यमान हैं साथ ही उनमें पुरुषोचित दुर्गुण और प्रवेश पाने लगे हैं, उन्हें नये नये हथकंडे और याद हो गए हैं। उन्हें शिक्षा मिली है कि दुनियां उत्तरोत्तर तरक्की करती जा रही है अतः बड़ों को मूर्ख और अपने को बुद्धिमान समझना स्वाभाविक है। बड़ों का कहना मानने में वे अपना अपमान समझती हैं। आज शिक्षित महिला का किसी कुटुम्बी के साथ रहना दोनों ओर से कष्टकर हो गया है। उन्हें यह भी शिक्षा मिली है कि चार हजार वर्ष पूर्व का कोई इतिहास नहीं मिलता और रामायण, महाभारत इत्यादि धर्म ग्रन्थ सब कपोल कल्पित हैं अतः सबका त्याग करने में वे प्रगतिशीलता समझने लगी हैं। ईश्वर तथा धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन, पूजा पाठ, देवी-देवता, तप दानादि तथा अन्य धार्मिक कृत्य का अन्ध-विश्वास के नाम पर त्याग करने में उन्हें सहायता मिली है। जप, तप, संयम, नियम, लोकाचार, कुलाचार सबका प्राचीन रूढ़ियों के नाम पर परित्याग कर दिया। बड़े बड़े तीज-तेहवार, पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान, धार्मिक पर्व तथा दान यज्ञ के विशेष दिन कब आते हैं और कहाँ निकल जाते हैं आज के शिक्षित वर्ग को इसका कोई पता नहीं लगता। इनमें जो दुःख-भंजन शक्ति है, आध्यात्मिक

अध्ययन की सामग्री है, हार्दिक आनन्द की तरंग है उल्लास है, उत्साह की लहर है, उमगों का श्रोत है आज के शिक्षित स्त्री पुरुष उससे सर्वथा वंचित रहते हैं। आज उनके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं, कोई ध्येय नहीं। उनका समस्त जीवन ही आज उद्देश्य विहीन, उत्साह हीन, शुष्क और नीरस बन गया है। उनके हृदय का कमल कभी खिल नहीं पाता। उन्हें न भूख लगती है, न सुख की नींद आती है, न उनके जीवन में कोई आनन्द है। वे भोजन करते नहीं बल्कि उन्हें भोजन करना पड़ता है, सोते नहीं सोना पड़ता है और जीना पड़ता है इसलिये जीते हैं।

आज के बालक-बालिका संस्कार विहीन रह जाते हैं। इनकी (संस्कारों की) गणना भी प्राचीन रूढ़ियों में कर ली गई है। जिन संस्कारों का प्रभाव मनुष्य का चित्तवृत्ति, भावना और भावना चरित्र पर पड़ता है, जो मनुष्य को शुद्ध, स्वस्थ, पवित्र, निर्मल और कर्मठ बनाते हैं और जो मनुष्य को ईश्वर की ओर आकर्पित करते हैं आज उन सबको प्राचीन रूढ़ियों के नाम पर तिलांजलि दे दी गई है आज उनका लक्ष्य केवल विषय भोग है। आहार, निद्रा और मैथुन इन्हीं तीनों में रत रहने के कारण आज स्त्री पुरुषों की आयु भी क्षीण होती जा रही है।

आनन्दमय श्रोत का परित्याग

आज हमारी प्रगतिशील महिलायें (पुरुष भी) गाना, बजाना, नाचना, हंसना और बोलना सब भूलती जा रही हैं। गाना वही गा सकती हैं जिन्होंने उस्तादों से गाने, बजाने तथा नाचने की शिक्षा प्राप्त की हो (ऐसी हजारों में कोई एकाध है) साधारण शिक्षित युवतियें तो आज गाने के नाम से गूंगी बन गई हैं, वे गाना ही नहीं गुनगुना भी भूल गई हैं।

हमारे समय के लोकगीत, भिन्न-भिन्न अवसर की भिन्न-

भिन्न राग-रागनियां, प्रत्येक संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले ठिक-ठिक के गाने, जिनके एक एक शब्द महत्वपूर्ण होते थे जिनमें न केवल होने वाले संस्कारों का वर्णन होता था बल्कि संस्कारों की पूर्ण-विधि के साथ आध्यात्मिक ज्ञान का भण्डार भरा था, साथ ही हर्ष, उल्लास, उमंग, अनुराग, उत्साह, वात्सल्य तथा हार्दिक प्रेम से ओत-प्रोत होता था। जिसे गाते समय हर्ष से हृदय गद-गद हो जाता था, केवल यही नहीं बल्कि धर्म, कर्म, कर्तव्य, संस्कृति, सभ्यता, लोकाचार, मर्यादा, बड़ों का आदर-सत्कार और सदाचार की शिक्षा मिलती थी। इन गीतों के द्वारा स्त्रियों को सात पीढ़ी तक की पूरी वंशावली और अपने पूरे कुटुम्ब, अड़ौसी, पड़ौसी, मुहल्ले वाले तथा बिरादरी वालों की पूरी वंशावली कण्ठस्थ होती थी। (पुरुषों को यही सब नाम तर्पण और विवाह के समय शास्त्रोच्चार के द्वारा याद रहते थे) जिस गीत को सुन कर ब्राह्मण सच्चा ब्राह्मण, क्षत्रिय सच्चा क्षत्रिय, वैश्य सच्चा वैश्य बनता था और शूद्रों को भी जिनके द्वारा सदाचार पालन की प्रेरणा मिलती थी। औद्योगिक रूप में इन्हीं प्रचलित लोकगीतों को गाकर मजदूर भावना में विभोर हो कड़े परिश्रम की थकान को भूल जाता था। जिन्हें गा-गाकर फिरोजशाह तुगलक की आज्ञा से अशोक की इतनी भारी लाट को (जो देहली में फिरोजशाह के कोटले में आज भी खड़ी है) मजदूर सहारनपुर से देहली तक खींच लाए (ऐसा सुना जाता है) जिन गीतों को गाकर स्त्रियां घड़ियों आटा पीस डालती थीं, धोबी आज भी मनों की लादी धो डालता है, यात्री जिन्हें गाते हुए बीसियों कोस की यात्रा की थकान का कोई अनुभव नहीं करते। भूखे, निर्धन और बेकार भी अथवा जंगली लोग जो आज भी टोली बांध कर जब गाने के लिये बैठ जाते हैं तो जीवन के सारे अभाव को भूल जाते हैं। उनके इस आनन्द को देख कर

आज भी लोगों को ईर्ष्या होती है और इन्हीं में हिल मिल जाने के लिये, उस आनन्द को प्राप्त करने के लिये मन ललचा उठता है।

आज हमारे प्रगतिशील तथा शिक्षित स्त्री-पुरुषों का समुदाय उस आनन्दमय श्रोत को न जाने कब का ठुकरा चुका। उसने न केवल उन गीतों को, संस्कारों को, रस्म-रिवाजों को, लोकाचार और कुलाचार को ठोकर मारी है बल्कि आंतरिक आनन्द के साधन में ही लात मार दी है।

सामाजिक बन्धन के विरोध ने आज युवक युवतियों को स्वच्छन्द बना दिया है। आज उन्होंने शील, संकोच, बड़ों का मान, मर्यादा सबका बन्धन तोड़ फेंका है।

पर्दा क्या उठा है आज हमारी सारी बहिनें घर छोड़ कर बाहर आ गई हैं। अपने अंग, प्रत्यंग को दिखाना आज फैशन में शुमार कर लिया गया है।

किसी समय तप, दान, यज्ञ करके स्वर्ग में पहुँचने पर परियों के दर्शन की बात सुनने में आती थी किंतु आज चाहे जिस सड़क पर निकल कर जाओ उधर ही परियों के झुण्ड दिखाई देते हैं यद्यपि उनकी यह सूरतें भी असली नहीं, ऊपर से नीचे तक कृत्रिम रंग में रंगी होती हैं।

आज संस्कृति शब्द सुनने में आता है, सम्मेलनों में भारतीय संस्कृति में सुधार करने की बड़ी बड़ी योजनायें बनाई जाती हैं।

आज हमारे कर्णधारों (शासकों) का भारतीय संस्कृति (जिसे वे वेष-भूषा और नाच गाने तक ही सीमित समझते हैं) की रक्षा की ओर ध्यान आकर्षित हुआ है। अतः वे स्वयं अलग-थलग खड़े रहकर भारतीय संस्कृति की रक्षा का आदेश दे रहे हैं।

"सामाजिक सेवा-क्षेत्र या स्त्री-संस्थायें"

आज सभा सोसाइटी और संगठन का जमाना है इसलिये आज उनके अनगिनत संगठन क्षेत्र खुल गए हैं। सभायें बन गई हैं किंतु देखने में यह आता है कि अधिकांश शिक्षित बी० ए०, एम० ए० की डिगरी प्राप्त युवतियों की भी इसमें कोई रुचि नहीं है। उनकी प्रगति अधिकतर सिनेमा, क्लब, खेल-तमाशे, पिकनिक आदि घूमने फिरने तथा मिलने जुलने की ओर है। वह मनोरन्जन को अधिक महत्व देती है। इसके अनेक कारण हैं।

प्रथम तो उनमें इसके महत्व को समझने तथा इसके लिए थोड़ा सा भी त्याग करने की क्षमता नहीं है। वे खेल, तमाशे, पिकनिक, पार्टी आदि को अधिक आवश्यक समझती हैं।

दूसरे जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है स्त्री वर्ग की प्रकृति गृह-कार्य में रत रहने की है। वह घरवाली है, बाहर वाली नहीं। स्त्री का घर से बाहर आना तभी होता है जब वह घर के सभी कामों से निवृत्त हो जाय। घर में सब प्रकार से अमन-चैन हो, कोई रोगी या बीमार न हो, कोई छोटा बच्चा न हो, कुटुम्बी जनों के यहाँ शादी ब्याह, सोवड़ आदि न हो, घर में से किसी को परदेश न जाना हो और कोई परदेश से आ न रहा हो तथा उसके पतिदेव की छुट्टी का दिन भी न हो। यही नहीं कोई मिलने वाला न आ रहा हो और किसी से मिलने जाना भी न हो। इसके अतिरिक्त रोटी, ब्यालू, चाय आदि का समय न हो। पति के दफ्तर आदि और बच्चों के स्कूल आदि आने-जाने का समय भी न हो तब वह सभा आदि में पहुँच सकती हैं।

आर्थिक दृष्टि से आज स्त्रियां भी गरीब-अमीर और मध्यम तीन श्रेणी में विभक्त हो गई हैं। जो अमीर हैं उन्हें

नौकरों से काम करवाना तथा उसकी रखवाली करने की भारी रुकावट रहती है, अत जब तक घर का ही कोई व्यक्ति रखवाली करने के लिये न हो तब तक वे घर से नहीं निकल सकतीं। समय मिलने पर वे उसी स्थान पर पहुँच सकती हैं जहां उनका कुछ देर मनोरञ्जन भी हो।

मध्यम श्रेणी आज दो भागों मे विभक्त हैं, एक वह जिनकी आय कुछ अधिक है, घर मे एक नौकर है घर का किराया भी अधिक है और किसी २ के पास छ टी पू ी मोटर भी है। यह अमीरों के पग पर पग धरती हैं, उन्हीं की नकल करती हैं, किंतु जिनकी आय कम है वह गरीबों में मिली जुली रहती है। उन्हें घर के काम-धन्धे स्वयं करने पड़ते हैं अत उन्हें आने-जाने का कोई समय नहीं मिलता। दोनों समय भोजन बनाना चौका-बर्तन, पानी, कपडे धोने, बच्चों की देख-भाल, सिलाई-बुनाई, कढ़ाई करने में ही सारा समय लग जाता है। पर्दा प्रथा उठने से बाजार का काम और उनके ऊपर आ गया है। आज के पुरुष सौदा खरीदना भूल से गये हैं। इनमें जिनकी धार्मिक वृत्ति है वे दोपहर में समय मिलने पर बाल-बच्चों को साथ ले निकट लगने वाले साप्ताहिक सत्सग मे कुछ देर के लिये जा बैठती हैं। वे भजन-कीर्तन आदि सत्संग में रस लेती हैं अतः भजन गाकर थोडी देर के लिये मनोरञ्जन कर लेती हैं। इसके अतिरिक्त सभा आदि को सभी श्रेणी की महिलायें (शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही) बहुत कम महत्व देती हैं।

यथार्थ में सामाजिक सेवा आदि कार्य विधवायें कर सकती हैं। इसके लिये उन्हें प्रोत्साहन मिलना चाहिए, और उनकी शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिये।

नारी स्वातन्त्र्य

समानाधिकार

आज महिलाओं द्वारा नारी स्वतन्त्रता की तथा पुरुषों के समान अधिकारों की मांग न केवल की जा रही है बल्कि सरकार द्वारा उसे प्राप्त भी किया जा चुका है। महिलायें राज-दूत तथा गवर्नर के पद पर पहुंच चुकी हैं। पार्लियामेंट की मेम्बर तो प्रत्येक प्रांतों में और केन्द्र में भी अनेक हैं। इसके अतिरिक्त सब सरकारी नौकरियों के द्वार उनके लिये खुल गये हैं। फिर भी हिंदू-समाज की ओर से अभी उन्हें समानाधिकार प्रदान नहीं किया गया है। हमारे प्रगतिशील स्त्री-पुरुष इसी के लिए प्रयत्न-शील हैं और यह सब उस पुरुष वर्ग से प्राप्त करने का प्रदर्शन किया जा रहा है जिसके पास अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है जोकि विशालकाय होने पर भी स्त्री की ही रचना है और सदा स्त्री के बीच उसी प्रकार खोया रहता है जिस प्रकार सर्व शक्तिमान होने पर भी ईश्वर अपनी शक्ति (माया) के भीतर खोया हुआ है। अर्थात् सर्व व्यापी भगवान ने अपने अस्तित्व को माया के आवरण में छिपा लिया है। अखिल सृष्टि में जो कुछ दिखाई या सुनाई देता है, जितने इन्द्रिय तथा वाणी के विषय हैं और जहाँ तक मन जा सकता है यह सब प्रसार माया का ही तो है। स्वयं ईश्वर तो माया के भीतर ऐसा गुप्त हुआ है कि आज तक किसी की पकड़ में नहीं आया। वेद ने भी इसका नेति-नेति कह कर ही

गुण गान किया है। अर्थात् यह भी नहीं, वह भी नहीं इत्यादि कहकर ही जिसका परिचय दिया है। सब कुछ नहीं के उपरांत जो कुछ बच रहे उसे ही ईश्वर मान कर सन्तोष किया गया है। किंतु मानव जीवन का लक्ष्य उस गुप्त हुए ईश्वर को प्राप्त करना है। न केवल पुरुष का बल्कि स्त्री का लक्ष्य भी उसी गुप्त तत्व को प्राप्त करना है जो माया के २५ पर्दों के भीतर छुपा हुआ है। माया के प्रत्येक पर्दे का छेदन किये बिना जिसकी प्राप्ति सम्भव नहीं।

यही अवस्था स्त्री और पुरुष की है। ईश्वर का प्रतीक होने के कारण पुरुष भी सदा उस स्त्री के बीच खोया रहता है, जोकि माया का प्रतिनिधित्व करती है। स्त्री में रमे रहने के कारण पुरुष अपने अस्तित्व को भूला रहता है।

संसार में स्वेदज, उद्भिज, अण्डज और जरायुज ये चार प्रकार के प्राणी हैं अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले वृक्षादि, पसीने से उत्पन्न होने वाली जुयें, चील्हड आदि, अण्डों से उत्पन्न होने वाले पक्षी इत्यादि और जेर से उत्पन्न होने वाले गाय, भैंस आदि पशु और मनुष्य। यह सभी स्त्री माया रूपी के जाल में उलझे अपने अस्तित्व को भूले रहते हैं।

वृक्षों की उत्पत्ति पृथ्वी से होती है। विशाल-काय वट-वृक्ष में राई से नन्हे बीज का भाग कहां छुपा है इसका कुछ पता नहीं चलता। किन्तु पृथ्वी की रचना स्पष्ट देखने में आती है। इनमें भी दो भेद हैं ? १-वृक्ष, २-लतायें। वृक्षों की प्रकृति ऊंचा उठने की है जबकि लतायें नीचे नीचे फैलती है। लतायें वृक्षों की ओर दौड़ती हैं उनका सहारा पाते ही उनपर छा जाती हैं। और उनके आकार को इस प्रकार दबा लेती है कि उनके स्वरूप का भी पता नहीं लगता। वृक्षों का सहारा पाकर लतायें स्वयं

खूब फैल फूट कर फलती फूलती हैं किन्तु बिचारे वृक्षों को पनपने तक नहीं देती। वृक्ष वही पनपता है और ऊंचा उठता है जोकि लताओं के सम्पर्क में न आया हो।

चतुर माली जिस वृक्ष को फलता फूलता देखना चाहता है उसके आस पास लताओं की जड जमने नहीं देता। किन्तु जिन वृक्षों की रखवाली के लिये माली नहीं है उनपर छाकर लतायें उनको कस लेती हैं। वे अपनी छटा दिखाती हैं किन्तु वृक्षों को सिर उठाने तक का अवकाश नहीं देती। जिन लताओं को वृक्षों का सहारा नहीं मिलता वे शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

अण्डज-पक्षी आदि जोकि अण्डे से उत्पन्न होते हैं उनमें अधिकतर एकता पाई जाती जाती है किन्तु उनमें भी मादा (स्त्री) के पीछे नर पक्षी ऐसे लडते हैं कि एक दूसरे का रक्त बहा देते हैं। यह मेरा निजी अनुभव है एक बार दो नर और वस मादा (छोटी लाल चिडिया) एक ही पिंजरे में रख दिये। दोनों नर परस्पर ऐसे लडे कि दोनोंके रक्त बहने लगा। यह देख कर एक नर और एक मादा को अलग रख दिया तब फिर कभी उनमें परस्पर लडाई नहीं हुई।

जरायुज—जेर से उत्पन्न होने वाले—हाथी, घोडे, गाय, भैंस, भेड, बकरी, शेर, भालू आदि चौपाये जानवर और मनुष्य हैं। इन जानवरों में जहा एक मादा होती है वहा अनेक नर मडराया करते हैं और दो नर एकत्रित होते ही ऐसे लडते हैं कि मरने की स्थिति को पहुच जाते हैं। हाथी बडा चतुर जानवर होता है उसे भी फांसने के लिए हथिनी को बाध दिया जाता है। हथिनी को देखते ही हाथी अपनी सारी चतुराई भूल जाता है और मनुष्य के डाले हुये फदे में फंस जाता है। प्रत्येक प्राणी की यही अवस्था है और यही स्थिति मानव समाज की है।

मानव-समाज यद्यपि धर्म के द्वारा पाशविकता से ऊपर उठ गया है, उसकी बुद्धि का भी विकास हो गया है, उसने ज्ञान-विज्ञान की खोज भी की है और मुक्ति मार्ग की जानकारी भी। बड़े बड़े आविष्कार करके ईश्वर की चुनौती देने का साहस करने से भी वह नहीं चूका किन्तु स्त्री के मायाजाल से वह बेचारा भी आज तक छुटकारा नहीं पा सका।

जिस प्रकार विशाल वट-वृक्ष के आकार में नन्हे बीज का अंश और नन्हे बीज में विशाल वृक्ष का स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता उसी प्रकार पुरुष के लम्बे चौड़े शरीर में भी पुरुष अश गौण रहकर स्त्री के रक्त द्वारा निर्मित आकार ही प्रत्यक्ष देखने में आता है। वह दस महीने माता के गर्भ में रहता है, उसका स्तन पानकर पलता है। जब तक अबोध रहता है मां की गोद ही उस का आगार है फिर लालन पालन में तथा उसके अनुशासन में रहता है। बालक (लड़की हो या लड़का) मां के आगे जैसा निर्भय रहता है, उसके आगे जैसी हठ करता है, मचलता है, रोता है और झगड़ता है ऐसा पिता के आगे नहीं जैसे जैसे बड़ा होता जाता है उसका ध्यान माता की ओर से हटकर स्त्री की ओर आकर्षित होने लगता है।

धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि पुरुष का (यज्ञोपवीत) उपनयन संस्कार के द्वारा और स्त्री का विवाह संस्कार के द्वारा दूसरा जन्म होता है। अर्थात् पुरुष का यज्ञोपवीत के समय की गई प्रतिज्ञा द्वारा साधना क्षेत्र में पदार्पण करने के कारण तथा यज्ञोपवीत सम्बन्धी नियम पालन करने में जो कठिनाइयां सहन करनी पड़ती हैं और जीवन में जो परिवर्तन आता है उसके कारण पुरुष का दूसरा जन्म माना गया है। इसी प्रकार विवाह के उपरान्त स्त्री के जीवन में जो आमूल चूल परिवर्तन आता है उसके कारण स्त्री का दूसरा जन्म माना गया है। अर्थात् विवाह के

साथ ही स्त्री का गोत्र, अल्ह और नाम बदल जाता है। उसे अपना घर बार तथा जन्म के साथियों को छोडकर नये देश, नये घरमें जाना पड़ता है, नये नये अजनबी लोगों मे, नई स्थिति में, नये नये स्त्री पुरुष नये नये स्वभाव तथा नये व्यक्तियों के अनुशासन मे रहना पड़ता है। स्त्री को अपना रहन सहन, आहार विहार, आचार विचार सबका परित्याग कर पति गृह के ढांचे मे ढल जाना पड़ता है। इसलिये विवाह के द्वारा स्त्री का दूसरा जन्म माना गया है। किन्तु आज अवस्था बदल गई है। पुरुष ने अपना यज्ञोपवीत का बन्धन तोड फेंका है इस लिये आज विवाह के उपरान्त पुरुष का दूसरा जन्म होता है।

यह बताया जा चुका है कि पुरुष जैसे जैसे बड़ा होता है उसका ध्यान माता की ओर से हटकर स्त्री की ओर आकर्षित होने लगता है। आज विवाह के उपरांत पुरुष मे आमूल चूल परिवर्तन हुआ पाया जाता है। वह अपने आपको पूर्ण रूपेण स्त्री के विचारों के अनुरूप ढाल लेता है। रहन सहन आहार विहार, लोकाचार मर्यादा सब प्रकार से आज का पुरुष स्त्रीमय हो गया है।

स्त्री का मुख देखते ही पुरुष माता-पिता, भाई-बन्धु कुटुम्ब-कबीला, सगे सम्बन्धी तथा हितैषी सबको भुला बैठता है स्त्री जिसे अच्छा मानले वह अच्छा और जिसे बुरा मानले वह बुरा है। पति के माता पिता, भाई-बन्धुओं तथा कुटुम्बी जनों से सम्बन्ध रखना या न रखना आज स्त्री की रुचि या दया पर निर्भर है। अधिकांश स्त्रियों की यह चाहना और चेष्टा रहती है कि पति उनमें आसक्त होकर उनके वस मे रहे, उनके इशारे पर चले, उनकी रुचि के अनुसार अपने माता पिता आदि गुरुजन तथा शेष कुटुम्बीजनों से व्यवहार करे। आज होता भी यही है

पूर्व समय में लोक लाज तथा गुरुजनों के प्रति कर्तव्य पालन का स्मरण कर पुरुष संकोचवश इस भावना को प्रगट नहीं कर पाते थे। धर्म-कर्म और शास्त्राज्ञा, लोकाचार और कुल मर्यादा की ओर भी कुछ ध्यान था। (जिसमें त्रियासक्त होना निंदनीय माना गया है) अब आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से अथवा पश्चिमी सभ्यता के ग्रहण करने मे स्थिति बदल गई है। धर्म-कर्म और कर्तव्य क्या है इसे कोई जानता नहीं। जो जानते भी हैं वे इसे बहुत कम महत्व देते हैं। अतः वेद पुराण तथा स्मृति ग्रन्थादि कुछ भी क्यों न बका करें स्त्री जो गुरु-मन्त्र पढ़ादे वही पुरुषों के लिये ब्रह्मवाक्य हो गया है।

दूसरी ओर स्त्री अपने सम्बन्धियों को नहीं भूलती, वह उनसे अधिक से अधिक सम्पर्क रखती है। साथ ही पुरुषों को भी आज सुसराल वाले भले-नेक सद्गुणी और सच्चे प्रतीत होते हैं, वे उनसे सम्पर्क बढ़ाने मे अपना गौरव समझते हैं, उनकी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं, जबकि उन्हें अपने घर वालों के विषय में यह भी बहुत कम पता रहता है कि कौन, कहाँ, क्या कर रहा है।

उपर्युक्त स्थिति आज सदाचारी पुरुषों की है किंतु जो दुराचारी हैं वे घर में स्त्री के होने पर भी दर-दर की खाक छाना करते हैं। आज की प्रगति शील महिलायें पुरुषों की इस स्थिति से भले ही सन्तुष्ट हों किंतु यह अवस्था कल्याण-कारक नहीं है बल्कि दोनों के पतन का चिन्ह है।

प्रकृति का अंश होने के कारण स्त्री का अधिकतर ध्यान खाने, पहनने, साज शृंगार करने, जेवर-कपड़े, विलासिता, निंदा, कलह, ईर्ष्या, द्वेष, दिखावा, गर्व, हर्ष-विषाद, हंसी-मजाक, आलस्य और प्रमादादि में लगता है (न केवल भारत की बल्कि

सभी देश की स्त्रियों में ये बातें देखने में आती हैं) साथ ही बाल-बच्चों की भोली-भाली बातों मे व्यस्त रहने के कारण अधिकाँश स्त्रियों की बुद्धि का विकास नहीं हो पाता। उनकी बुद्धि कुण्ठित रह जाती है। प्राकृतिक रूप से भी नारी वर्ग में बुद्धि का क्षेत्र कुछ सीमित सा है। अत जो पुरुष स्त्रियों में आसक्त रह कर स्त्री की बुद्धि पर चलता है उसकी बुद्धि और विचार-शक्ति का क्षेत्र भी सीमित रह जाता है। आज यही देखने में आ रहा है। आज लगभग सभी पुरुष किसी न किसी रूप में स्त्रियों में खोये से रहते हैं। अतः आज स्वतन्त्रता की आवश्यकता किसे है? स्त्री को या पुरुष को? पुरुष स्त्री के प्रभाव से मुक्त रह कर अर्थात उसमें लिप्त न होकर अपनी बुद्धि का विकास कर सकता है। विचार-शक्ति को बढ़ा सकता है और किसी प्रकार की कोई भी उन्नति कर सकता है। इसीलिये शास्त्रकारों ने स्त्री के माया-जाल से बचे रहने का आदेश दिया और इसके लिये अनेक साधन नियत किये किंतु यहाँ सब व्यर्थ हो जाता है। कोई विरले महापुरुष ही ऐसे होंगे जो स्त्री के मोहिनी-जाल से बच निकले हों।

महाभारतादि ग्रन्थों में बड़े २ महर्षियों के उल्लेख मिलते हैं जो हजारों वर्ष जंगल में बैठे तप करते रहे, उनका तप चरमसीमा को पहुँचा देख भयभीत हो इन्द्र ने उनका मन विचलित करने को अप्सरायें भेजी तो उनका नाच गाना सुनते ही मुनियों के तप भंग हो जाते थे। यह अवस्था अनादि काल से पुरुषों की रही है। इस स्थिति में स्वतन्त्रता की आवश्यकता पुरुष को है न कि स्त्री को। वैदिक-धर्म का मूल उद्देश्य यही है अर्थात् स्त्री में आसक्त न हो। विषय भोगादि में नियन्त्रण लगा, अपने कर्तव्य-पालन में लगे रह कर ईश्वर की ओर अग्रसर होते जाना धर्म के लक्षण हैं न केवल पुरुष बल्कि स्त्री का लक्ष्य भी उसी गुप्त-तत्व (ईश्वर) की प्राप्ति करना है। अतः स्त्री को भी यही चाहिये कि पुरुष के

धर्म-कर्म और कर्तव्य पालन में बाधक न बने बल्कि उसे प्रोत्साहन दें और स्वयं भी धर्म में रत रहें। ऐसा करने से स्त्री पुरुष दोनों का कल्याण है।

आज स्त्री जाति पर पुरुषों के अत्याचार की जो दुहाई दी जाती है, वह निराधार है। यथार्थ में स्त्री ही स्त्री पर अत्याचार करती है। सास, ननंद, देवरानी, जिठानी, सौतेली माँ अथवा सौत के रूप में स्त्री जाति ही स्त्री पर जितना अत्याचार करती है उतना पुरुष नहीं करता।

ऊपर बताया गया है कि वैदिक धर्म में उनकी प्रकृति गुण और स्वभाव के अनुसार उन्हें उन-उनके जातीय सद्गुणों में ही प्रवृत्त कराया गया है। स्त्री गृह-कार्य दक्षता से कर सकती है। वह कोमल शरीर और कोमल स्वभाव होने के कारण पुरुषों के समान कठोर परिश्रम करने में असमर्थ है, साथ ही गृह में उसकी स्वाभाविक रुचि है। अतः स्त्री को गृह-कार्य में प्रवृत्त कराने की व्यवस्था की गई। यद्यपि आज यह बन्धन ढीला पड़ गया है, फिर भी पुरुषों के समान भाग-दौड़ तथा अन्य कठिन शारीरिक परिश्रम स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं। दूर की यात्रा भी अकेले करना, उनके लिए घातक सिद्ध हो सकता है। इसीलिए आज भी स्त्रियों के स्कूल तथा कालिज आदि में तथा स्त्रियों की अन्य संस्थाओं में चौकीदार, चपरासी इत्यादि का काम करने के लिये अधिकतर पुरुष नौकर रखे जाते हैं।

स्वतन्त्रता का अर्थ किसी के आश्रित न रहना ही माना जा सकता है। इस प्रकार नारी-स्वातन्त्र्य का अर्थ किसी प्रकार से दूसरे के (विशेषकर पुरुष के) आश्रित न रहना। आर्थिक स्वतन्त्रता भी इसका उद्देश्य है। अतः नारी स्वातन्त्र्य की जटिलता यहीं आगे आती है। कारण कि साधारण स्त्री को घर-गृह... से

ही कठिनता से अवकाश मिलता है। बाल-बच्चों का साथ होने के कारण कभी बच्चों की, कभी अपनी हारी-बीमारी लगी रहती है। यदि इस प्रकार की कोई अड़चन न भी हो तो घर के धन्धे में ही सारा समय निकल जाता है। इसके अतिरिक्त व्याह-शादी तथा स्यापा और शोक-प्रदर्शन में भी उन्हें सम्मिलित होना पड़ता है अतः स्त्री के पास इतना समय नहीं जो वह बाहर निकल कर अर्थोपार्जन का भार भी उठा सके। जो ऐसा करती हैं वे बच्चों व घर को नौकरों पर छोड़ती हैं। उनके घर का काम भी नौकर संभालते हैं। जो गरीब हैं वे बच्चों को अफीमादि देकर घर में सुला जाती हैं तब काम पर जाती हैं। इसी को आज तथा कथित स्वतन्त्रता मान लिया गया है।

इन्हीं सब कारणों से महर्षियों द्वारा वैदिक-धर्म की व्यवस्था स्थापित करते समय स्त्री को बाहर की सभी उलझनों से मुक्त रख कर घर का उत्तरदायित्व प्रदान किया गया और बाहरी प्रत्येक प्रताड़ना सहन करने के लिये पुरुषार्थ को आगे किया गया था।

अर्थोपार्जन करना पुरुष का कर्तव्य माना गया है और उसके धन का सदुपयोग करने का उत्तरदायित्व स्त्री के सुपुर्द किया गया है। पुरुष अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार सदा स्त्री को प्रसन्न, सुखी और सन्तुष्ट रखने की चेष्टा में लगा रहता है। पुरुष के साथ स्त्री का दर्जा भी ऊंचा नीचा बना रहता है।

पुरुष यदि मेहनत-मजदूरी (कुलीगिरी आदि शारीरिक परिश्रम) करता है तो उसकी स्त्री को घर का सब काम समेटना ही पड़ता है। वह सुबह आटा पीसती, झाड़ू देती, बर्तन माँजती, रोटी बनाती, बाल-बच्चों को संभालती, यदि गाय भैंस घर में हुई तो उनका दूध, दही, मट्ठा, कुट्टी, चारा, गोबर, सानी, पानी सब

काम पूरा न करती हैं (यद्यपि अवकाश के समय पुरुष भी हाथ बटाता है) इससे ऊपर जो बाबू क्लास है वह स्त्री की सुविधा के लिये सर्व प्रथम चौका-बर्तन, पानी तथा गाय भैंस के लिये नौकर का प्रबन्ध करते हैं। आर्थिक स्थिति में और सुधार होने पर बच्चों को खिलाने के लिये तथा भोजन बनाने के लिए क्रमशः नौकरों में वृद्धि होती जाती है। तात्पर्य यह कि अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार पुरुष-वर्ग स्त्री व बच्चों के लिए सुख के साधन जुटाने में व्यस्त रहता है। यद्यपि पुरुषों को अर्थोपार्जन करने में जुटा रहना पड़ता है। सर्दी, गरमी या बरसात कभी भी वह निश्चिन्त होकर घर में चैन से नहीं बैठ सकते, जबकि स्त्रियां खस की टट्टी लगा कर पंखे के नीचे आराम करती हैं तब पुरुष गरम लू में मारे मारे फिरते हैं। उनके काम के समय में कोई बचत नहीं होती।

स्त्रिया सक्ति बढ़ने के कारण पुरुषों की बुद्धि और विचार-शक्ति का क्षेत्र संकुचित होता जा रहा है। विचार करने की आज उनके पास कोई सामग्री नहीं और उनमें इसकी शक्ति भी नहीं। उनकी बुद्धि-विवेक की सीमा स्त्रियों की बुद्धि तक सीमित रह जाती है।

आज पुरुष की बुद्धि अर्थोपार्जन में लगती है। उचिता-नुचित जिस प्रकार भी सम्भव हो धन की प्राप्ति करना मनुष्य ने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है। कारण कि प्रत्येक की आव-श्यकता बढ़ गई है। स्त्रियों की बढ़ी हुई आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए भी धन चाहिए। अर्थोपार्जन के उपरांत जो समय बचता है उसमें स्त्री पुरुष दोनों का ध्यान खेल, तमाशे आदि मनोरन्जन की ओर लगता है। आज खेलों को ही आदर्श मान लिया गया है।

आज स्त्रियों की आवश्यकता तथा उनके फैशन की मांग इतनी अधिक बढ़ी है कि उसकी पूर्ति सीमित और अल्प आय वाले की सामर्थ्य के बाहर की बात है। उनकी इस बढ़ी हुई मांग के कारण आज युवक गण विवाह करने से भय खाते हैं।

स्त्री अबला है या सबला ?

शास्त्रकारों ने स्त्री को अबला माना है किंतु आज हमारी प्रगतिशील बहिनें इसे अपना अपमान समझती हैं। उनका कहना है कि स्त्री शक्तिवान होने से सबला है। यह किसी सीमा तक ठीक भी है। जिस शक्ति (माया) का इतना भारी प्रसार (अखिल सृष्टि के रूप में) दिखाई दे रहा है, जिसकी सहायता से ईश्वर सृजन, पालन और संहार करता है और जिस शक्ति के द्वारा नारी महान मानव का निर्माण करने में समर्थ हो चुकी है और हो सकती है अथवा जिस शक्ति के द्वारा सन्तति का सृजन करती है उस दृष्टि विंदु से वह सबला है। किसी महापुरुष ने नारी की इस शक्ति को लक्ष्य कर कहा भी है कि—

नारी-नारी मत करे, नारी नर की खान।
नारी से नर होत हैं, ध्रुव, प्रह्लाद समान॥

तात्पर्य यह कि जहाँ तक आंतरिक शक्ति का सम्बन्ध है, स्त्री सबला है क्योंकि स्त्री को तपना पड़ता है अर्थात् १० महीने तक गर्भ में रख कर बालक का भार ढोना पड़ता है, स्तनपान कराना पड़ता है और पालन-पोषण भी। यह सब स्त्री के लिए तप है क्योंकि पुरुष को बालक के जन्म देने में इस प्रकारके किसी कष्ट का सामना करना नहीं पड़ता अतः तप-प्रधान होने से स्त्री का स्थान पुरुष से ऊंचा माना गया है किंतु प्रत्यक्ष में शारीरिक बल की दृष्टि से स्त्री अबला है सबला नहीं। यदि स्त्री सबला होती तो क्या रावण सीता का अपहरण करने में समर्थ होता? इसे

पुरातन इतिहास अथवा कपोल कल्पित मान कर भुला भी दिया जाय तो राजस्थान के जौहर को 'कपोल-कल्पित मानने का तो अभी तक किसी ने दुस्साहस नहीं किया, जिसमें तीस हजार क्षत्राणियाँ एक साथ जल कर भस्म हो गईं। यदि शत्रु के फन्दे में फंस कर अपने सतीत्व के अपहरण का भय न होता तो वे सब (तीस हजार) यदि तलवार लेकर ही शत्रु की फौज पर टूट पड़तीं तो शत्रु के छक्के छुड़ा देतीं। किंतु यहां तो शत्रु के हाथों पकड़े जाने का भय था अत. सिवाय जौहर के कोई चारा न था। यद्यपि ऐसी भी वीरांगनायें हुई हैं जिन्होंने युद्ध में शत्रु का सामना किया है।

यहां यह स्मरण रहे कि स्त्रियां जब कोई चारा नहीं देखती तब क्रोध और आवेश में भरकर जीवन का मोह त्याग कर शत्रु पर टूट पड़ती हैं और जीवन का मोह त्याग करने से उनकी आंतरिक शक्ति प्रबल हो उठती है। ऐसे समय पूर्व सचित शक्ति भी बहुत कुछ सहायक होती है। वह युद्धों में अपने को झोंक कर जीवन स्वाह कर डालती हैं। ऐसी वीरांगनायें भी भारत में अनेक हो चुकी हैं। इसका सबसे ताजा प्रमाण झांसी की महारानी लक्ष्मी बाई हैं। ये सब स्त्रियों में अपवाद स्वरूप ही मानी जा सकती हैं। यह तो शारीरिक बल में कमी की बात है। साथ ही प्राकृतिक दुर्बलतायें और दूसरे अन्य कारण भी हैं, जिनका लिखना यहाँ अच्छा तो नहीं लगता परन्तु वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुये जिसकी ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक प्रतीत होता है, स्त्री पुरुष के कुछ भेद ये भी हैं।

यदि पुरुष न चाहे तो हजारों स्त्री मिलकर एक पुरुष का ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं कर सकतीं और पुरुष की सबलता के कारण एक पुरुष से भी, एक स्त्री अपने सतीत्व की रक्षा नहीं कर पाती।

अतः इस दिशा में भी स्त्री को अबला स्वीकार करना पड़ता है। इसी लिये हमारे पूर्वजों ने स्त्री की स्वतन्त्रता को वर्जित माना है और उसे किसी न किसी पुरुष के संरक्षण में रखने की व्यवस्था की क्योंकि स्त्रियों के स्वतन्त्र रहने में अनेक दोष हैं।

आज हमारी प्रगतिशील विदुषी महिलाओं का कहना है कि हम पुरुषों के समान रहना चाहती हैं। हम अपने को उनसे नीचा नहीं मानतीं, हम उनसे ऊंचा भी नहीं बनना चाहतीं बल्कि उनके बराबर रहना चाहती हैं इत्यादि।

अच्छा तो यह होता कि हमारी प्रगतिशील बहिनें चाहने के साथ ही स्त्री और पुरुष में प्राकृतिक समानता स्थापित करने की कोई विद्या या कला सीख लेतीं। केवल चाहने से समानता नहीं आती।

चाहते तो लोग-बाग बहुत कुछ हैं किंतु चाहने के साथ ही सब कुछ सम्भव भी होता तो आज के समय संसार में एक भी प्राणी दुखी देखने में नहीं आता। किंतु यहां होता इसका सर्वथा उल्टा है। लोग-बाग जितना चाहते है उसका शतांश भी सुलभ नहीं होता।

हमारी सुशिक्षित बहिनों की यह भी दलील है कि जो ४, हाथ पैर पुरुषों के ६, वही स्त्रियों के हैं फिर हम पुरुषों के आश्रित क्यों रहें और क्यों हम अपने को उनसे नीचा मानें। इत्यादि।

यह बताया जा चुका है कि जहां तक कुछ करने का प्रश्न है केवल हाथ पैर ही नहीं, विद्या, बुद्धि, विवेक सम्बन्धी कोई कार्य ऐसा नहीं जिसे नारी-वर्ग न कर सकता हो।

स्त्री यदि चाहे तो सब कुछ कर सकती है किंतु वह अपवाद स्वरूप ही मानी जा सकती है। मान्यता उसी को मिल सकती है जिसका बहुमत हो।

जहाँ तक मानने का प्रश्न है हमारे शास्त्रकारों ने स्त्री का

पद पुरुषों के समान ही नहीं बल्कि उनमे ऊंचा माना है। उसे *प्रथम स्थान दिया है। स्त्री पुरुष के सम्मिलित सम्बोधन में प्रथम* नाम नारी का आता है। जैसे—सीता-राम, राधे-श्याम, गौरी-शंकर इत्यादि में प्रथम नारी का नाम लिया जाता है। बराबरी में स्त्री को अर्धांगिनी अथवा सहचरी माना गया है। न केवल माना है बल्कि बराबरी के बन्धन में बांध दिया है। यहां स्त्री के बिना पुरुष अपांग हो जाता है। वह कोई यज्ञ-दान, धर्म-कर्म नहीं कर सकता। श्री रामचन्द्र जी एकछत्र राजा होते हुये भी बिना सीता जी के यज्ञ नहीं कर सके। सीता की सोने की प्रतिमा साथ में लेकर ही यज्ञ का अनुष्ठान कर पाये। कारण कि स्वयं ईश्वर भी अपनी शक्ति माया अथवा जड़ प्रकृति के बिना कुछ भी करने में असमर्थ है। यही स्थिति स्त्री और पुरुष के बीच मानी गई है। नारी-धर्म और पुरुष-धर्म का गृहस्थाश्रम में समन्वय होता है इससे यह भी तात्पर्य निकलता है कि नारी-धर्म के बिना पुरुष-धम और पुरुष-धर्म के बिना नारी-धर्म अपूर्ण रह जाता है। बिना दोनों के मेल के कोई कार्य (अनुष्ठान) सिद्ध नहीं हो सकता। वर्तमान समय में स्त्रियों में पुरुषों के प्रति अन्तर-द्रोह की सृष्टि या अशांति का कारण भी स्त्रियों का एक तरफा धर्म का पालन भी माना जा सकता है। यदि स्त्री अपने धर्म का पालन करे और पुरुष अपने धर्म पर दृढ़ रहे तो स्त्री और पुरुष में परस्पर कभी किसी प्रकार की अनबन होने का कोई कारण ही नहीं रह जाता। अशांति तो तब उत्पन्न होती है जब एक या दोनों ही अपने-अपने धर्म के विरुद्ध आचरण करने लगते हैं अथवा स्वयं-धर्म-विरुद्धाचरण करके दूसरे से आशा करते हैं कि वह धर्मानुसार चले। परस्पर संघर्ष की जड़ यही है और यही सारे दुखों का कारण है। स्त्री और पुरुष दोनों को अपने अपने धर्म का पालन करना चाहिये तभी घर में सुख, समृद्धि और शांति विराजमान रह

सकती है। इसके विपरीत जो शान्ति दिखाई दे उसे श्मशान की शान्ति माना जा सकता है।

स्त्री की अन्य आवश्यकताओं के साथ, उसके भोजन तथा वस्त्राभूषण की यथा शक्ति पूर्त्ति करना पुरुष का प्रथम कर्तव्य माना गया है। मनुस्मृति में लिखा है—

"यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः"

जहां स्त्रियों का सम्मान होता है वहां देवता निवास करते हैं।

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः
स्त्रियाः श्रियश्च लोकेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन

अर्थात्—सन्तान उत्पन्न करने के लिए महाभागा, पूजा के योग्य गृह की शोभा जो स्त्री है उसमें और लक्ष्मी में कुछ भी भेद नहीं (मनु०)

अवश्य कुलटा स्त्रियों की निंदा की गई है। किंतु हमारी प्रगतिशील महिलायें इससे सन्तुष्ट नहीं। वे तो चार हाथ पैरों के सहारे बिल्कुल पुरुषों के बराबर आना चाहती हैं। इसका तात्पर्य यह निकलता है कि पुरुष अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करें और स्त्री अपनी। इस प्रकार पुरुष पर स्त्री का और स्त्री पर पुरुष का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। यह पाशविक स्थिति है! मनुष्यों में और जानवरों में यही तो भेद है। यदि स्त्री पुरुष दोनों अपना २ भरण पोषण करेंगे तो बच्चों का धनी धोजरी कौन होगा, इसका भार अधिकांश में माता को वहन करना पड़ेगा, क्योंकि माता की ममता अपार होती है।

जहाँ तक चार हाथ पैर का सम्बन्ध है प्रकृति ने किसी प्राणी को जीने के लिये किसी दूसरे के सहारे नहीं छोड़ा है। वह परस्पर संग करते समय मिलते हैं पीछे एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। बच्चे जब तक अबोध रहते हैं और मां

के स्तनों में दूध रहता है मातायें प्रकृति की प्रेरणा से उन्हें पिलाती हैं। चिड़ियां चुग्गा चुगाती हैं। जहां भोजन करने(टुकड़ा चबाने) और दाना चुगने लायक हुए कि सब अपनी-अपनी राह जाते हैं। न मां को बच्चे का और न बच्चे को मां का कोई ध्यान रहता है। सब अपने-अपने पेट भरने की धुन में रहते हैं। मां बेटे के पुनः मिलने की सम्भावना पति-पत्नि के रूप में हो सकती है मां बेटे के रूप में नहीं।

मनुष्य की प्रकृति भी यही है। मानवता धर्म और सभ्यता ने हमें परस्पर मिलना, एक दूसरे का ध्यान रखना और संगठित होना सिखाया है। स्त्री-बच्चे, माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्ब-कबीला सबके प्रति धर्म कर्म और कर्तव्य पालन करना ही मानवता का चिन्ह है। फिर केवल चार हाथ पैर के द्वारा स्वावलम्बी हो जाने से ही स्त्री और पुरुष का स्तर समान नहीं हो जाता है। जानवरों में भी भेद है क्योंकि प्रकृति ने ही स्त्री और पुरुष के बीच भेद रखा है।

शास्त्रकारों ने इस भेद के कारण ही स्त्री की तुलना पृथ्वी से की है। पृथ्वी में दाना पड़ते ही अंकुर फूट आता है यही गति स्त्री की है। पुरुष चाहे सौ घर घूमे किंतु उसके पास इसका कोई चिन्ह नहीं रहता, किंतु स्त्री यदि भूल कर भी चल-विचल हो जाय तो उसे चट पट सबूत मिल जाता है। उसे १० महीने भार ढोना पड़ता है। पुरुष यहां भी बाजी मार ले जाता है क्योंकि स्त्री जहां एक वर्ष में एक या दो (कहीं कहीं तीन और चार भी सुनाई देते हैं) बालक को जन्म दे सकती है वहां पुरुष अनेक स्त्रियों के द्वारा सैकड़ों बालकों को जन्म देने में समर्थ हो सकता है। यहां भी हम अबला सिद्ध होती हैं। हम चार हाथ पैरों से तो पुरुष की बराबरी कर सकती हैं किंतु प्राकृतिक भेद तो

इसलिए वे स्वस्थ और तगड़ी दिखाई देती हैं। जिस समय बाल-बच्चों सहित वे स्टेशन जाते हैं उस समय सिर पर दो-दो बक्स. उस पर बिस्तर, बगल में गठरी, दूसरी बगल में बच्चा, दूसरे बच्चे की उंगली पकड़े आगे आगे स्त्री चलती है और पुरुष पीछे-पीछे बेंत हिलाता चलता है। यदि यह चित्र सही है तो इससे यही तात्पर्य निकलता है कि जिस काम को स्त्री अपने हाथ में लेती है उस काम में पुरुष ढीला पड़ जाता है। वह उद्यम करना त्याग देता है अतः वह बेकार हो जाता है।

वैदिक-धर्म में विवाह को केवल पवित्र संस्कार ही नहीं माना है बल्कि वेद-मन्त्रों के द्वारा देवताओं और विशेषतः अग्नि को साक्षी देकर दो अपूर्ण अंगों तथा दो पवित्र आत्माओं को मिला कर एक किया जाता है। यह बन्धन अटूट माना गया है। किंतु हमारी प्रगतिशील और सुशिक्षित विदुषी बहिनें तो आज सब प्रकार से बन्धन मुक्त हो जाना चाहती हैं। अतः विवाह का अटूट बन्धन उन्हें खटकता है। इसलिये विवाह विच्छेद का अधिकार प्राप्त करने के लिये उत्सुक हैं और जिस प्रकार भी हो कानून द्वारा यह अधिकार प्राप्त कर लेने में ही वे हिंदू-नारी के दुखों की निवृत्त न केवल समझती हैं बल्कि इसके पूरा करने का उन्होंने बीड़ा सा उठा लिया मालूम होता है। किंतु जहां तक कानून लागू है वहां के भद्र-समाज के लिये तथा सरकार के आगे आज इसकी विकट समस्या खड़ी हो गई है। वहां की आज जो स्थिति है उसका कुछ अंश आगे दिया जाता है।

रूस

रशिया में स्त्री और पुरुष दोनों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। वहां की जो स्थिति है इस पर समाचार पत्रों में समय-समय पर जो प्रकाश डाला गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि रूस में

है) स्त्रियों ने आज पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त कर पारिवारिक जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। यहां पारिवारिक कलह का एक कारण है।

अधिकांश व्यक्ति डा० मैस के इस मत से सहमत हैं कि आधुनिक विवाह अधिकतर प्रेमोन्माद तथा शारीरिक आकर्षणों का कारण होते हैं। डा० मैस के अनुसार हालीवुड की फिल्मों ने प्रेम को विकृत स्वरूप बनाने में अधिक सहायता दी है। इसके कारण अधिकांश दम्पति विवाहित जीवन में प्रेमोन्माद को ही अधिक महत्व देते हैं जबकि जीवन में और भी बातें ध्यान देने योग्य हैं।

आवेग पूर्ण

विवाह सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुये यार्क के पादरी ने एक बार कहा कि अधिकांश विवाह आवेग तथा उन्मत साहस पर आधारित होते हैं। आजीवन संयोग के लिये तो धैर्य और त्याग अनिवार्य हैं। भ्रम के कारण प्रेमी समझते हैं कि उनका साथी उस युवक या युवती के समान सदा सर्व गुण सम्पन्न रहेगा जिसकी उन्होंने चित्रपट पर सदा सराहना की है। इस भ्रम से आगे उदासीनता की उत्पत्ति होता है और परिणाम स्वरूप दोनों पार्थक्य के मार्ग पर मुड जाते हैं ऐसे समय मे यदि तीसरा इच्छित गुणों से सम्पन्न व्यक्ति बीच मे आ जाता है तो तलाक अनिवार्य सा हो जाता है।

जज आर० ए० विल्स का विश्वास है कि अधिकांश विवाहों के सफल न होने का कारण यह है कि वे मानवीय प्रेम की आधार-शिला पर स्थापित नहीं होते।

धर्म के प्रति उदासीन और बदले हुए विचार भी विच्छेद का एक कारण है। डा० मैस, जो स्वयं मैथाडिस्ट हैं, का मत है

धर्म के बिना लोग दूसरों के प्रति अपने कर्तव्य एवं समाज प्रति अपने उत्तरदायित्व से विमुख हो जाते हैं। लोगों ने जीवन धार्मिक पहलू से मुख मोड़ना प्रारम्भ कर दिया है। डा० मैस अनुसार यदि हम अपनी धार्मिकता को पुनः प्राप्त नहीं कर) तो पारिवारिक जीवन कदापि सुखी न बनेगा।

अमेरिका

कल्याण के वर्ष २२ अंक ६ में श्री चारुचन्द्र मित्र पटनी ला ने नारी शीर्षक लेख में कुछ विचारपूर्ण आंकड़े प्रस्तुत) हैं जिसका सारांश नीचे दिया जाता है।

एम्मा विल्किनसन ने लिखा है कि बात असल यह है भारत में स्त्रियों की क्षमता और प्रभाव कम नहीं है बल्कि धारणतया उनकी क्षमता बहुत अधिक है। स्त्री जाति ही ं पूजी जाती है।

बड़ी बूढ़ी स्त्रियां, बड़े लड़के की मातायें जितना अधि- रखती हैं उसे वोटाधिकार प्राप्त पाश्चात्य स्त्रियां नहीं जान कतीं।

चिरकाल तक इस देश में रहने और यहां के लोगों में लने जुलने में प्रसिद्ध सुलेखिका श्रीमती फ्लोरा एनी स्टील लिखा है—भारत की १० नारियों में नौ दूसरों के द्वारा पति वाचन में सन्तुष्ट हैं। भारत का पारिवारिक जीवन जितना खदायी है उतना सुखदायी पारिवारिक जीवन दूसरी जगह कम होगा। सम्भवतः "हैं" की जगह 'था' कहना उपयुक्त होगा योंकि अब भारत की युवतियों ने उपन्यास पढ़ना प्रारम्भ कर या है, और थोड़े ही दिनों में वे सीख जायेंगी कि प्रेम लोगों दिमाग को घुमा देता है इसी से पृथ्वी घूमती है। भारत के त बिचारे जितने अधिक पत्नी के शासन में रहते

हैं उतने और कहीं के नहीं।

स्वामी, स्त्री को स्वतः निर्वाचन में ही सुख होता है यह बात नहीं कही जा सकती। भारतीय नारियाँ बड़ी सुखी हैं। वहां पति पत्नी में बहुत ही कम कलह होता है। इधर अमेरिका के संयुक्त राज्य में जहाँ स्वाधीनता की अतिशयता क्रीडा करती है—सुखी परिवार प्रायः नहीं है। असुखी परिवार और असुख-कर विवाहों की संख्या इतनी अधिक है कि जिनकी गणना नहीं हो सकती। मैं जिस किसी सभा में गया हूं वहां मैंने सुना है कि वहां उपस्थित नारियों में से एक तृतीयांश ने अपने पति-पुत्रों का बहिष्कार कर दिया है। ऐसा सर्वत्र है।

पति-पत्नी का प्रेम जीवन का एक श्रेष्ठ उपयोग है और उसमें परस्पर कलह तथा अशांति ऐसा भयकर कष्टदायक दुर्भाग्य है कि उसके समान अन्य दुर्भाग्य बहुत ही थोड़े है पर इस दुर्भाग्य को प्रायः सभी पाश्चात्य स्त्रियाँ भाग रही हैं। पति पत्नी के प्रेम-सौभाग्य से प्रायः सभी नारियाँ वंचित हैं। इतने पर भी हमारी शिक्षिता नारियाँ पाश्चात्यों की भाँति अधिक उम्र में अपनी पसन्द के माफिक विवाह करना चाहती हैं। प्रगतिशीलता का यही अवश्यम्भावी परिणाम है।

वे इस बात को नहीं समझ रही हैं और हम पाश्चात्यों की समृद्धि और ध्वस्त करने की वैज्ञानिक शक्ति को देख कर ही मुग्ध हो रहे हैं और उनकी सभी प्रथाओं का अन्धानुकरण करना चाहते हैं। मानसिक गुलामी का यह एक प्रकृष्ट प्रमाण है।

विगत द्वितीय युद्ध के समय अमेरिकन नारियों में—१३ साल की कन्याओं में कैसा अनाचार फैला था और उससे सारे देश में योन रोगों की कैसी बाढ़ आगई थी इस पर एक अमेरिकन रमणी श्री एलिनरलेक ने कामनवेल्थ नामक पत्रिका

में एक लेख लिखा था जिससे पता चलता है कि अल्प वयस में विवाह न होने पर अमेरिकन नारियां कामोपभोग के लिये किस तरह लालायित होती हैं और किस प्रकार उनकी स्वास्थ्य हानि एवं तज्जनित दुर्गति होती है। यहां इस लेख के एक अंश का अनुवाद दिया जाता है।

"पाश्चात्य देशों के उत्थान की एक झांकी"

एक वर्ष पूर्व संयुक्त राष्ट्र के सैनिकों में योन रोगों के ७५ प्रतिशत संक्रमण का कारण बाजारों में बैठने वाली वारांगनायें ही थीं। आज ८० प्रतिशत संक्रमण उन युवतियों से हो रहा है जिनका पेशा वेश्यावृत्ति नहीं है और जो मनोरंजन के लिये व्यभिचार करती हैं।

व्यभिचार की इस भीषण संख्या के पीछे अमेरिका का सबसे बड़ा सामाजिक प्रश्न है—१३ से १६ वर्ष की अवस्था वाली कुमारियों की बढ़ती हुई संख्या, ये चरित्र भ्रष्टता! उदाहरणार्थ—गत वर्ष में ही डेटन और ओहियों में दूनी, सान फ्रांसिस्को में लगभग तिगुनी और ओक्ला होमा सिटी में प्रायः चौगुनी भ्रष्टता बढ़ गई है। इस प्रकार की वृद्धि की सूचना प्रायः देश भर के सभी नगरों और कस्बों से प्राप्त हुई है।

ये विजय कुमारियां और आलिंगन पुतलिकायें जो स्टेशनों पर सिपाहियों की प्रतीक्षा करती हैं और रात में देर तक सड़कों पर पुरुषों की ताक में रहती हैं—साधारण बच्चियां हैं। जो युद्ध-कालीन मनोवेगों की उत्तेजना एवं अबाध-व्यय के प्रवाह में बह गई हैं। जब उनसे इस धर्म-विरुद्ध आचरण का कारण पूछा जाता है तो वे ऐसी सरलता पूर्ण उत्तर देती हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। अधिकांश कहती हैं कि देशभक्ति के नाते हमारा कर्त्तव्य होजाता है कि हम बेचारे उन युवकों को सुख

पहुँचायें जिनको समुद्र पार जाना और मृत्यु का सामना करना पड़ता है। ये अल्प वयस्कायें योन रोगों के विस्तार को इस प्रगति से बढ़ा रही हैं मानो वे पेशेवर बाजारू वेश्यायें हों। इनकी आयु को देखकर हृदय कांप उठता है।

एक स्त्रियों के लिये नये बने हुए सार्वजनिक चिकित्सा केन्द्र में रोगियों में से ७/८ लड़कियां १३ से १६ वर्ष की हैं। एक दूसरे में दो तिहाई २० के नीचे हैं और बहुत सी १२ और १५ के भीतर हैं। शिकागो की सड़कों पर एक बार १८ लड़कियां पकड़ी गई जो सब १८ वर्ष से नीचे की थीं और दो को छोड़ कर शेप अपने में रोग का संक्रमण कर चुकी थीं।

यू० एस० ओ० के डा० जेनेट नेल्सन कहते हैं कि १४, १५, १६ वर्ष की कुमारियां ही सबसे अधिक दाम चुका रही हैं। एक बड़े मध्य-पश्चिमीय हवाई अड्डे का सर्जन कहता है कि योन-रोगों का बड़ा शक्तिमान साधन होने के कारण हाई स्कूल की अच्छे समय की लड़कियां आज सेना की सबसे बड़ी समस्या बन गई हैं।

आर्कंसस में रांक नामक छोटे स्थान में नागरिकों की एक समिति ने स्थानीय परिस्थिति की जांच की तो ६०० जवान लड़कियां बिना किसी उचित कारण, स्टेशनों पर छात्रावासों में चाय-पानी की दुकानों में तथा अंधेरी सड़कों पर घूमती पाई गई। आधी रात के समय एक बस स्टेशन पर १७ वर्ष से कम अवस्था वाली २३ लड़कियां फौज के आदमियों की प्रतीक्षा करती मिलीं और रात के दो बजे १४ और १५ साल की दो लड़कियां सिपाहियों के साथ बाहर आई और उन्होंने टैक्सी ड्राइवर से किसी होटल में एक कमरा कैसे मिले यह पूछा। इसके बाद दूसरी आठ जिनमें से ३ तो १४ वर्ष से भी कम की थी। स्टेशन

पर पुरुषों की खोज में घूम रहीं थीं। एक सामान्य अड्डे पर अधिक रात के समय जितनी लड़कियां पाई गई उनमें से ८० प्रतिशत १३ से १६ वर्ष के बीच में थीं और १० प्रतिशत १५ साल के नीचे थीं।

अमेरिका के सामान्य छोटे २ नगरों में यही दशा है। पोर्टलैण्ड मेन में एक कस्बे मे ३५०० नाविक छुट्टी पर आगये। यहां यौन रोगों का संक्रमण अत्यन्त बढ़ गया है। पुलिस के कागजों में मानवीय दुर्घटनाओं का खूब उल्लेख मिलता है। किसी होटल में एक नाविक के साथ १४ वर्षीय कन्या पाई गई। १५ वर्ष की लड़कियां सड़क के दोनों कोनों पर व्यभिचार की याचना करते मिलीं। एक गली में एक षोडशी दो बजे रात को शराब की बोतल लिये हुए लड़खड़ाती चलती मिली। ये उदाहरण ६ महीने के भीतर १३ से १६ वर्ष की अवस्था वाली पकड़ी गयीं १०० से अधिक लड़कियों में से हैं और बिल्कुल सामान्य हैं।

कठोर सत्य यह है कि बहुत सी लड़कियां इस लिये मार्ग-भ्रष्ट हो जाती हैं कि उनकी मातायें काम में व्यस्त रहने के कारण अथवा उदासीनता के कारण उनकी देख-रेख नहीं कर पातीं।

हार्ड फोर्ड तथा कनेक्टीकट में जो कि सामान्य से कुछ अच्छा औद्योगिक नगर है सैंकड़ों जवान लड़के व लड़कियां सारी रात अकेले रहते हैं, क्योंकि उनके माता-पिता लड़ाई के लिये सामान तैयार करने वाले कारखानों में रात की पारी में काम करते हैं। उनका अपने माता-पिता से सम्बन्ध छूट जाता है और वे किस प्रकार अपना समय बिताते हैं यह देखने वाला कोई नहीं रह जाता। जब स्कूलों द्वारा बिना छुट्टी के अनुपस्थित विद्यार्थी की जांच होती है तब माता-पिता यह स्वीकार करते हैं कि उन्हें अपने बच्चों का पता नहीं रहता। हार्ड फोर्ड की मातायें

वस्तु-उत्पादन क्षेत्र में गर्व के साथ विजय प्राप्त कर रही हैं किन्तु गृह-क्षेत्र में हारती जा रही हैं।

डेट्रौइट के बाहर वैरन नामक प्रान्त में जहां खूब घनी बस्ती है, शाम को लगने वाले स्कूलों में जाने वाले बच्चों को सचमुच रात में घूमने के लिये बाहर सड़कों पर भेज दिया जाता है जिससे वे देर में सोयें और तड़के ही उठकर रात में काम करने वाले अपने मां-बाप की नींद न खराब कर सकें। सैंकड़ों उप-नगरों तथा लड़ाई के कारखानों के पास की नई बस्तियों में थके और अलसाये हुए माता पिता अपने बच्चों को इस बात के लिये प्रोत्साहन देते हैं कि वे रात को सड़कों पर निकल जायें— चाहे वे मदिरालयों में जायें, चाहे कहीं और, पर उनकी अपनी जान बची रहे।

युद्ध के प्रताप से आराम में समय बिताने वाली मातायें भी अपनी कन्याओं के प्रति लापरवाह होगई हैं। पश्चिम पड़ाव के एक फौजी डा० का कथन है कि अब हमने पहली बार अफसरों तथा साधारण लोगों की सबकी नियम पूर्वक रक्त परीक्षा आरम्भ कर दी है। अपने पास-पड़ौस में समाज में प्रतिष्ठित परिवारों की कन्याओं में हमें बहुत अधिक योन रोगों का स्पर्श मिला है।

व्यभिचार द्रुतगति से बढ़ रहा है, डेटन और ओहियों में ६६ प्रतिशत से भी अधिक होगया है. मैमी में दूना होगया है।

कनसाम में इस तरह के ४ दिन के लिये घर बसाने वाली लड़कियों की सामान्य आयु १७ वर्ष की है। पोर्टलैंडमेन में पुलिस ने खेतों में काम करने वाली १६–१६ वर्ष की लड़कियों को बस्ती में कमरों के अभाव में मोटरों आदि में सोते पाया है। व्यभिचार के आंकड़े इकट्ठे करने पर विदित होता है कि कम से कम आधी लड़कियां शहरों से आती हैं।

कुछ अपने प्रेमियों के साथ बड़े शहरों में चली गई हैं। कुछ का 'सिपाहियों की सखियाँ' इस मधुर सूची में नाम दर्ज है। ये किसी पड़ाव में एक आदमी से मिलती हैं फिर उसके पीछे २ दूसरे में जाती हैं। अपरिपक्व, एकाकी और क्लान्त हुई ये किराये के कमरों में रहती हैं और मुश्किल से कभी अपने आदमियों से मिल पाती हैं।

युद्ध-कालीन व्यभिचार को पारिवारिक जीवन के सुस्थिर होजाने के बाद विस्मृत हो जाने वाली यौवन की केवल क्षणिक चंचलता ही नहीं मानना चाहिये। युद्ध के बाद इन्हीं अभागे युवक-युवतियों द्वारा दुराचार रोग और अपराधों की हमारी खेती फूले फलेगी।

(दी कामनवेल्थ में एलिनर लेक का लेख)

आश्चर्य और खेद है कि इसी अमेरिका को आदर्श मान कर हमारे युवक और युवतियां उनके जैसा बनने में ही अपनी प्रगति समझ रहे हैं।

(कल्याण में प्रकाशित श्री चारुचन्द्र मित्र का नारी
शीर्षक लेख का अंश)

श्रीयुत अन्नदा शंकरराय आई० सी० एस०, जिनका पाश्चात्य मोह अभी तक दूर नहीं हुआ है—भी अपनी पथे-प्रवासे पुस्तक में लिखते हैं कि युवतियां जान गई हैं कि पुरुषों की संख्या

कम होने के कारण अनेक स्त्रियों के भाग्य में विवाह नहीं है तथा अर्थ सम्पन्न न होने के कारण मातृत्व भी उनके भाग्य में नहीं है। अतएव भाई जितना हो सके हंस लो। घोर व्यामोह के भीतर युवक-युवतियां वास कर रही हैं। लड़कों की आंखों के आगे गण-तन्त्र की काली दिशा आगई है। १६वीं शताब्दी के आदर्श आज खेल बन गये हैं। जीवन के पर्दे को उठाकर देखने से पता लगता है कि उनके पीछे कोई लक्ष्य ही नहीं है। केवल जीवन के आनन्द के लिये जीवित रहना पड़ेगा हंसने के आनन्द के लिये हंसना होगा। इस युग के युवक जितना हंसते हैं उतना विचार नहीं करते। स्त्रियां समझ ही नहीं रही हैं कि वोट और आर्थिक स्वतन्त्रता ही सब कुछ नहीं है। इनके प्राप्त कर लेने के बाद भी जो कुछ बाकी रह जाता है, जिसके ऊपर जोर नहीं चलता है, वह है दूसरों का हृदय। इस युग की स्त्रियों के समान दुःखिनी कोई नहीं है तथापि उन्होंने प्रण कर लिया है कि कुछ भी हो रोयेंगी नहीं। कुछ भी हो हटेंगी नहीं। (सप्तम परिच्छेद, पृष्ठ ६०, कल्याण वर्ष २२ अंक ११ पृष्ठ १४३६)

"महिलायें गार्हस्थ जीवन का महत्व न भुलायें।"

लखनऊ विश्व विद्यालय के उपकुलपति डा० राधाकमल मुखर्जी ने कहा है कि आधुनिक महिला अधिक आराम तलब हो गई है और सतीत्व एवं निष्ठा की पुरातन भावनाओं पर सिनेमा-तथा सस्ते उपन्यासों ने प्रहार किया है। डा० मुखर्जी ने यह मत विश्व विद्यालय के लेडी कैलाश गर्ल्स होस्टल में छात्राओं द्वारा आयोजित एक स्वागत-समारोह में व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि समाज की वर्तमान व्यवस्था में, जो पुरातनता और आधुनिकता का विचित्र सम्मिश्रण है, घर में महिलाओं को कोई काम-काज नहीं है, जिससे उनमें आराम तलबी और गपबाजी बढ़ गई और वह धीरे-धीरे निठल्लेपन और पर जीविता में परिणत

होगई। साथ ही, पुरातन गार्हस्थ विधि—पुराने रीति रिवाज, व्रत-त्यौहार, पौराणिक आख्यायिका, पतिके प्रति भक्तिपूर्ण निष्ठा, आत्म बलिदान की पवित्र भावना आदि—का लोप हो चला है, जिससे कौटुम्बिक जीवन कृत्रिम तथा विषाक्त हो चला है। डा० मुखर्जी ने कहा कि सस्ते उपन्यासों, सिनेमा, फिल्मों आदि ने प्रेम की पवित्रता नष्ट कर दी है।

कन्याओं को यूरोप और अमरीका की संस्कृति से सावधान करते हुए डा० मुखर्जी ने कहा कि कन्यायें ही गृहिणी बनकर इस देश को उस भयावने सांस्कृतिक आक्रमण से बचा सकती हैं, जो पश्चिम में गार्हस्थ जीवन का सर्वनाश कर अब पूर्व में जड़ जमाने की चेष्टा कर रहा है। उन्होंने कहा कि विश्व विद्यालय जीवन के उच्चतर गुणों की पौधशाला है, जहां कन्यायें अपने विवेक की तुलापर विभिन्न संस्कृतियों को तौल कर अपने जीवन का पथ निश्चित कर सकती हैं। (हिन्दुस्तान ४-२-५५)
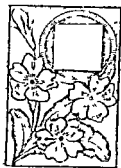
'नारी-धर्म की महत्ता'

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'

शास्त्र के इस वचन के अनुसार स्त्री धर्म की रक्षा से ही भारत देवताओं का निवास-स्थान बना था। देवताओं को अमर-लोक से मर्त्य-लोक में उतारने के लिये एक नारी-धर्म ही समर्थ है! प्राचीन काल से भारत में सती सावित्री, देवी सीता, माता अनुसूया इत्यादि को नारी-धर्म का आदर्श माना गया है।

खेद का विषय है कि इस समय पूजनीय भारतीय नारी-धर्म पर लगातार हस्तक्षेप हो रहा है। हमारी कुछ मातृ-भगिनियों के मन में भी कलुषित भावों की उत्पत्ति देखी जाती है। अनन्त श्री विभूषित श्रीमद् सालपुर पीठाधीश्वर जगद्गुरु स्वामी श्री पुरुषोत्तम नृसिंह भारती महाराज का सदुपदेश—

माता परम पूजनीय

जनको जन्मदातृत्वात् पालनाच्च पिता स्मृतः।
गरीयान् जन्मदातुश्च योऽन्नदाता पिता मुने।
तयो शत गुणो माता पूज्या मान्या च वन्दिता।
गर्भ धारण पोषाद्यां सा च ताभ्यां गरीयसी।

॥ ब्रह्म वैवर्त पुराण

अर्थात्—जन्मदाता और पालन कर्ता होने के कार[ण] सब पूज्यों में पूज्यतम जनक और पिता कहलाता है जन्म दाता से अन्न-दाता पिता श्रेष्ठ है। इनसे भी सौ गु[ण] श्रेष्ठ और वन्दनीय माता है क्योंकि यह गर्भ धारण तथा पोष[ण] करती है।

जो नारी पति के जीवित रहते और उसकी मृत्यु के बाद भी कभी दूसरे आदमी की इच्छा नहीं करती उसको इस लोक मे कीर्ति मिलती है और परलोक में पति-पत्नी दोनों साथ रह कर आनन्द का उपभोग करते हैं। —याज्ञवल्क्य

भ्रमाने वाली

एक महात्मा तीर्थाटन करते हुये मालवा प्रांत के किसी ग्राम में जा पहुँचे। एक घर के सामने भिक्षा के लिये नारायण हरि शब्द का उच्चारण किया। गृहिणी चर्खा कात रही थी। नारायण हरि की आवाज सुनते ही बोली—"महाराज! ठहरो भीख लाती हूँ। भिक्षुक संन्यासी खड़े हो गये। चर्खे की चूं-चूं ध्वनि से उन्होंने समझा बेचारा काष्ठ रो रहा है। तो बोल उठे—रे-रे यन्त्र रोदसि किं भामिन्या भ्रमते जगद् यस्या कटाक्ष मात्रेण–कर स्पर्शो का गतिः।

अर्थात्—अरे काष्ठ के यन्त्र! क्यों रो रहा है? जिस नारी के कटाक्ष मात्र से जगत भ्रम रहा है उसने तुझको हाथ से छू लिया है तेरे लिये यह गति उचित ही है। —गौरीशंकर

सती अपने सतीत्व बल से सहस्त्रों मनुष्यों का उद्धार करती है। सती स्त्री का पति सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। पति व्रत्य के तेज से सती के स्वामी को कर्म फल का भोग नहीं करना पड़ता। वह सारे कर्म-बन्धन से छूट कर सती के साथ भगवान के परम-धाम में आनन्द लाभ करता है।

(स्कन्द पुराण)

पवित्र गृहिणी धर्म

इन्द्रिय तृप्ति या केवल पुत्र मुख देखने के लिये ही विवाह नहीं है। यदि विवाह-बन्धन से मनुष्य के चरित्र का उत्कर्ष न होता हो तो विवाह की आवश्यकता नहीं है। इन्द्रिय आदि

अभ्यास के बस हैं, अभ्यास से ये सर्वथा शान्त रह सकती हैं। वरन् मनुष्य जाति इन्द्रियों को वशीभूत करके चाहे पृथ्वी से लुप्त हो जाय तथापि जिस विवाह में प्रेम-शिक्षा नहीं होती उस विवाह की आवश्यकता नहीं।

विवाह स्त्रियों के लिये एक मात्र धर्म का सोपान है इसीलिये स्त्री को सह-धर्मिणी कहा जाता है।

हमारे शुभाशुभ का मूल है कर्म, कर्म का मूल है प्रवृत्ति और अधिकांश में हमारी प्रवृत्तियों का मूल हमारी गृहणियां ही हैं। अतएव, स्त्री जाति ही हमारे शुभाशुभ का मूल है।

स्त्री पुरुष का परस्पर प्यार ही दाम्पत्य सुख नहीं है। एकाभि सन्धि और सहृदयता-दाम्पत्य सुख हैं। स्त्रियों का प्रधान धर्म पति गृत्य ही है।

हिन्दू स्त्री के लिये पति ही देवता है। अन्य समस्त समाज हिन्दू-समाज के सामने इस अंश में निकृष्ठ हैं।

रमणी क्षमामयी, दयामयी और स्नेहमयी है, रमणी ईश्वर की कीर्ति का चरमोत्कर्ष है, देवता की छाया है, पुरुष देवता की सृष्टि मात्र है।

गृहिणी पंखा हाथ में लिये भोजन की थाली के पास बैठी है—नारी धर्म के पालनार्थ मक्खी उड़ानी ही हैं। हाय कौन पापिष्ठ निराधम इस परम रमणीय धर्म का लोप करने जा रहे हैं; हे आकाश उनके सिर पर गिराने के लिये क्या तुम्हारे पास वज्र नहीं है। —ऋषि बंकिम चन्द्र

नारी जाति आधार शक्ति की प्रतिमूर्ति

नारी जाति जग जननी आधार शक्ति की ही प्रतिनिधि र प्रतिमूर्ति है। नारी जाति की उन्नति करनी ही पड़ेगी तभी फि सीता, सावित्री, मैत्रेयी, गार्गी और अपाला आदि सरीखी

विदुषी नारियों को जन्म देंगी। वे ही इस जाति का उद्धार करेंगी। नारियों को आदर्श मां बनना पड़ेगा। आदर्श मां हुए बिना आदर्श पुत्र भी जन्म नहीं लेंगे। नारी को त्याग, सयंम, कठोरता और ईश्वर में विश्वास आदि की शिक्षा प्राप्त करके चरित्रवती बनना पड़ेगा। तभी देश का कल्याण होगा और तभी इस जाति का पुनरुथान हो सकेगा। —स्वा० अभोनन्द

स्त्रियों के दोष

द्वारो पवेशनं नित्यं गवाक्षेण निरीक्षणं, असत् प्रलापी हास्यं च दूषणं कुल योपिताम्। अर्थात् नित्य,घर के दरवाजे पर बैठना, खिड़कियों से पुरुषों को देखना, बुरी बातें करना और बिना कारण हंसना–ये उत्तम कुल की स्त्रियों के लिये दोष की बातें हैं।

स्त्री पुरुष का मिलन दोषमय

नारी घृत के घड़े के समान है और पुरुष जलती हुई आग के समान इसलिये जैसे बुद्धिमान पुरुष आग बढ़ जाने के भय से घी और आग को एक साथ नहीं रखते, वैसे ही नारी और पुरुष को साथ नहीं रहना चाहिये। यहां तक कि मां, बहिन और कन्या के साथ भी एकान्त में न बैठे। इन्द्रियां बड़ी बल वती हैं, वे विद्वान को भी खींच लेती हैं।

शिष्टाचार की मर्यादा

गुरू की पत्नी यदि युवती हो तो उसके चरणों का स्पर्श करके प्रणाम नहीं करना चाहिये। छोटे भाई की स्त्री, पतोहू तथा शिष्य की पत्नी को न तो (तुम/ कह कर पास बुलाना चाहिये, न इन्हें घर के बाहर देखने या ठहराने की चेष्ठा करनी चाहिये। इन सबको कभी अपना झूठा भी नहीं खिलाना चाहिये

जन्मदायिनी माता, गुरू-पत्नी, जेठी बहिन, मौसी, मामी तथा सातवीं बुआ — ये सब माता के ही दूसरे नाम और रूप हैं। इनमें माता की अपेक्षा उत्तरोत्तर लघुता है। ये सभी माननीय, पूजनीय तथा सब प्रकार से अगम्य (समागम के अयोग्य हैं।

—नारी अंक कल्याण

नारी प्रेम भक्ति की आधार है

स्त्री विलास की सामग्री नहीं है। स्त्रियां ही जग जीवन और प्रेम भक्ति की आधार हैं। फिर असद् व्यवहार करने पर वे ही घोर काल रूपिणी पिशाचिनी और राक्षसनी होकर सबको ग्रास करती हैं। वेश्यायें उन्हीं कालान्तक मूर्ति की सामान्य छवि मात्र हैं। स्त्री रूपी महा समुद्र में बड़े २ अमूल्य महारत्न भरे पड़े हैं। रसिक जन उन्हीं सब महारत्नों के अधिकारी होकर चिर सुखमय जीवन बिताते हैं और हम ऐसे दुर्बल घृणित-व्यक्ति कामान्ध मत्त होकर उस महा समुद्र में डुबकी लगा अपना अस्तित्व भी खो बैठते हैं। बड़ी सावधानी से इन महाशक्तियों के साथ व्यवहार करो। कभी भूल कर भी कामुक दृष्टियों से स्त्रियों को मत देखो। ब्रह्मा, विष्णु, महेश का सम्मिश्रण तुम एक स्त्री में देख सकते हो। स्त्रियों का अपमान ध्वंस का कारण है।

(पागल हरनाथ)

पितामही को प्रणाम

देश की उन प्राण विसर्जन परायण पिता-मही को आज हम प्रणाम करते हैं। तुम जिस प्रकार दिन बीतने पर संसार का काम पूरा करके चुप-चाप पति के पलग पर चढ़ जाती, दाम्पत्य-लीला के दिन बीतने पर संसार के कार्य क्षेत्र से विदा लेकर तुम उसी प्रकार सहज ही वधु-वेष में सिर की मांग में मंगल-सिंदूर भर कर पति की चिता पर चढ़ गई हो। मृत्यु को तुमने सुन्दर

बनाया है, शुभ बनाया है, पवित्र बनाया है। चिता को तुमने विवाह शय्या के सदृश आनन्दमय, कल्याणमय बना दिया है।

—रवीन्द्रनाथ

महामाया की छाया

भारत ! भूलना नहीं—तुम्हारी नारी जाति का आदर्श सीता, सावित्री और दमयन्ती हैं। भूलना नहीं—तुम्हारा समाज विराट महामाया की छाया मात्र है। —स्वामी विवेकानन्द

पति ही गति है

न पिता नात्मजो नात्मा, माता न सखी जना।
इह प्रत्यन्च नारीणां, पतिरेको गति सदा। रामायण से

अर्थ—नारी के लिये इस लोक और परलोक में पिता, पुत्र अपना आत्मा माता एवं सखी जन कोई भी गति नहीं है। *सदा एक पति ही गति है।*

भारतीय स्त्रियों का कर्तव्य

भारतीय महिलाओं की अवस्था में उन्नति और प्रगति करने के लिये क्या उनका पाश्चात सभ्यता के रंग में रंग जाना या अंग्रेजियत धारण कर लेना सचमुच उपयुक्त होगा ... भारतीय स्त्रियों का तो धर्म है कि वे अपनी राष्ट्रीय परम्परा को जीवित रखें। कुछ विदेशी यथार्थ गुणों के आगे उन्हें अपने विचारों और गूढ़ तत्वों को न भुला देना चाहिए।

गृह लक्ष्मियाँ

स्त्रियों की बहु संख्या स्वभावतः अविवाहित कुमारियां बनने के बजाय घर की लक्ष्मियां, सरस्वतियां और अन्नपूर्णायें बनने के अधिक उपयुक्त हैं, जहां उनकी उपस्थिति ही घर के लोगों के जीवन में प्रसन्नता और शक्ति लाती है और उनके कार्यों की सफलता पूर्वक सबको उत्साहित करती है

माता के उपकार अतुलनीय

माता के उपकार को, तोलनहार न बांट,
जीवन जग मे सब जगह देख चुके हैं हाट।

नारी

सुधा सुरा माहुर भरी, रची विधाता नार।
ठगमगात जीवत मरत, जेहि चितवत एक बार।

—रामाधार पाण्डेय साहित्यालंकार

नारी का सम्मान

हिंदुओं में नारी को जितना सम्मान दिया जाता है, उतना संसार की और किसी प्राचीन जाति में नहीं दिया जाता।

—एच० एच० विलसन

स्त्री सृष्टि का आयोजन

स्त्री की सृष्टि जगत को मुग्ध करने के लिये नहीं, अपने पति देवता को सुख देने के लिए हुई है।

—एडमण्ड बर्क

ऐतिहासिक तथ्य

स्थूल दर्शी पुरुष जो अपनी तराजू से सब जातियों की सामाजिक रीतियों को तोलते हैं, हिंदू जाति के साथ बनावटी सहानुभूति दिखाते हुये उनकी स्त्रियों की हीन दशा पर रोते हैं कि वे स्वतन्त्र नहीं हैं और जेलखाने की तरह उन्हें पर्दे में रखा जाता है।······ किंतु राजपूत स्त्रियों की स्वतन्त्रता, सम्मान तथा गार्हस्थ्य सुख के विषय में मुझे जो कुछ ज्ञान है उससे मुझे कभी खेद नहीं होता कि वे जेलखाने की तरह बन्धन में रक्खी जाती हैं।

—कर्नलटॉड

परिवार में नारी का स्थान

पत्नी और माता अपने लिये कैसा आदर्श स्थापित करती हैं? किस रूप में वह अपने कर्तव्य और जीवन को समझती हैं, उसी से समग्र जाति का भाग्य निर्णय होता है। उसकी निष्ठा दाम्पत्य-प्रेम का उज्ज्वल तारा है और उसका प्रेम ही वह जीवनी-शक्ति है, जो उसके आत्मीय-जनों के भविष्य का निर्माण करता है। स्त्री ही परिवार के उद्धार या विनाश का कारण है। परिवार के समस्त भाग्य को मानो वह अपनी ओढ़नी के छोर में बांधे फिरती है। —एमियल

नर-नारी का भेद

गर्भ धारण के समय से ही स्त्री और पुरुष के विकास का ढंग अलग अलग होता है। उनमें आहार परिपाक के परिमाण भिन्न-भिन्न होते हैं। नर और नारी की शरीर-रचना, अंगों की क्रिया तथा मनो-व्यापार में भी जो अन्तर है उनमें आहार-परिपाक के इन प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है। पुरुष की पसलियां अधिक उभरी होती तो स्त्रियों का वस्ति-भाग अधिक प्रशस्त होता है। पुरुष की मांस-पेशियां अधिक क्रियाशील होती हैं, स्त्रियों की कम होती हैं। पुरुष के मस्तिष्क का व्यापार अधिक ठोस एवं विशाल होता है तो स्त्रियों में धारणा-शक्ति तथा छोटी-छोटी बातों की संभाल अधिक गहरी होती है। लिंग भेद जनित परिवर्तन के ये त्रिविध प्रसिद्ध उदाहरण हैं। —अनेस्ट हेकल और हैवलक इलिस

स्त्रियों में शील का अभाव एक ऐसा अपराध है, जिसका मार्जन किसी भी क्रिया से नहीं हो सकता। इसके बिना उसकी सुन्दरता शोभा-विहीन और चतुराई घृणास्पद हो जाती है। —स्टील

स्त्री के प्रति पुरुष का प्रेम

स्त्रियों के प्रति पुरुष का प्रेम उनकी बुद्धि को देख कर नहीं होता। उनकी सुन्दरता, विश्वास, उनका चरित्र—यही सब उनके प्रति प्रेम का कारण हैं न कि उनकी प्रतिभा। उनकी बुद्धि का हम आदर करते हैं और अपनी बुद्धि के कारण वे हमारी दृष्टि में बहुत अधिक सम्मान-पात्र ही हैं किंतु उनकी समझदारी पुरुष के हृदय में राग नहीं उत्पन्न करती, प्रेम की आग नहीं भड़काती। —"गेटे"

पर्दा आकर्षण का हेतु

भारतीय स्त्रियों में बहुत कुछ आकर्षण उनके जन समूह से अलग रहने, अन्तःपुर में छिपी रहने के कारण ही है और वे इस बात को जानती है। उदाहरणार्थ उनमें अमेरिका के स्कूलों की वह भद्दी प्रथा नहीं है, जहां पर लड़के लड़कियों के साथ पढ़ने तथा खेलने से उनका एक दूसरे के प्रति आकर्षण नष्ट हो जाता है। भारत में स्त्रियों का आदर तथा उनकी शक्ति बहुत कुछ इसलिये है कि वे अन्तःपुर में रहती हैं और कभी-कभी ही दृष्टि में आती हैं। —ओटो रथ फील्ड

नारी ईश्वर की शक्ति

किसी भी राष्ट्र का निर्माण अकेले पुरुष पर नहीं हो सकता। राष्ट्र की स्त्रियां पत्नी रूप में पतियों को साहस प्रदान करती हैं तथा मातृ-रूप में भावी सन्तान को इस प्रकार शिक्षित करती हैं जिससे कि वह स्वतन्त्रता, आत्म-सम्मान और आचरण की उच्चता के लिये किए गए हमारे प्रयत्नों का अनुगमन कर सकें। कोई भी पक्षी एक पंख से नहीं उड़ सकता। इसी प्रकार कोई भी राष्ट्र स्त्री और पुरुष दोनों में से केवल किसी एक वर्ग के द्वारा उन्नत नहीं हो सकता। हम अभिन्न नहीं हैं। हम में

भिन्नतायें हैं किंतु भिन्नताओं में जो एक दूसरे की विरोधिनी न होकर परस्पर पूरक का काम करती हैं मानव की पूर्णता निहित है।

देवी के बिना देवता नहीं, उसी प्रकार स्थूल-तत्व के बिना चेतन तत्व प्राप्त नहीं हो सकता। चेतन तत्व स्थूल को चेतना देता है तथा स्थूल चेतन को साकार रूप। इतना ही नहीं, हिन्दू दृष्टि कोण से ईश्वर की कर्तत्व शक्ति स्त्री रूपा है। यही कारण है कि प्रत्येक दुःख एवं विपत्ति के समय समाज के समस्त देवता आदर्श व्यक्ति शरण पाने के लिये शक्ति को पुकारते हैं और जहां पुरुष-वर्ग असफल सिद्ध होता है वहां स्त्री वर्ग विजय प्राप्त करता है और असत को दूर भगाकर सत् की पुनः प्रतिष्ठा करता है। जगत में ईश्वर की इस शक्ति का प्रतीक नारी है जिसका पावन तम और मधुरतम नाम 'मां' है।

—डा० एनी बेसेन्ट

न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति

स्त्रियों को किसी भी वय में स्वाधीन छोड़ना उचित नहीं है। —हुरेसमैन

पुरुष के आधीन रहने में ही स्त्रियों की सबसे बड़ी शोभा है। —लिविस मारिस

स्त्री की विशेषता

नारी एक ऐसा पुष्प है जो छाया में ही अपनी गंध फैलाता है। —लेमेनिस

स्त्री जाति की कीर्ति

स्त्री जाति की कीर्ति स्फटिक दर्पण की तरह है जो उज्जवल तथा चमकीला होने पर भी निकट से श्वास लेने पर भी मलिन हो जाता है। —सरवांट

शास्त्र माता को गृहस्थाश्रम में स्वेच्छा से तपस्विनी का जीवन बिताने और अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को बुद्धि एवं आत्मा के कठोर नियंत्रण में रखने की शिक्षा देते हैं। स्त्री जाति के साथ प्रकृति ने जो कठोरता की उसे चुपचाप सहन करने में कुछ स्त्रियां अपनी हीनता समझती हैं। परन्तु इस हीनता के क्रोध से बचने का उपाय मातृ-भाव का परित्याग नहीं बल्कि उसे एक निस्वार्थ पूर्ण आदर्श का अनुगामी बना देना है।

जे० टिसल डेकिड

सचरित्रता

जिसको दहेज कहा जाता है उसे मैं दहेज नहीं समझता। सच्चरित्रता और संयम को ही मैं यथार्थ दहेज समझता हूं।

—प्लाटस

नारी का वास्तविक स्वरूप

मेरे विचार से नारी सेवा और त्याग की मूर्ति है जो अपनी कुर्बानी से अपने को मिटा कर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। आप कहेंगे मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता ? औरत से ही क्यों इसकी आशा करता है ? मर्द में यह सामर्थ्य ही नहीं है। वह तेज प्रधान जीव है ···· स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शांति सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है और नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है।

नारी के पास दान देने को दया है, श्रद्धा है, त्याग है। पुरुष के पास दान देने के लिये क्या है ? वह देवता नहीं लेवता है। वह अधिकार के लिये हिंसा करता है, संघर्ष करता है, कलह करता है।

पूर्व की स्त्रियां यूरोप की स्त्रियों की तरह प्रकाश में नहीं आती, किन्तु अपने परिवार की न्यायोचित सीमा में उनका प्रभाव अपनी पाश्चात्य बहिनों से कम नहीं होता। पश्चिमी स्त्रियों का अधिकांश परिणाम जिन्हें मालूम है उन्हें विचार करना चाहिये कि स्त्रियों के प्रति पाश्चात्यों का व्यवहार अधिक बुद्धिमानी का है या पौरस्त्यों का।
—लेपेट ग्रिफिन

हिंदू नारी का गौरव पूर्ण पद

हिंदू नारी का शरीर पवित्र होता है। कोई मनुष्य सबके सामने अंगुलियों के अग्रभाग से भी स्पर्श नहीं कर सकता। कितनी ही हीन दशा क्यों न हो बड़े से बड़े लोग भी उनके लिये आदर-पूर्वक माता का ही सम्बोधन करते हैं—फादर अबे ड्यूबो

सच्चरित्रता

अपनी सन्तानों के लिये धन रत्न की अपेक्षा सच्चरित्रता की विमल सम्पत्ति छोड़ जाना ही माता-पिता का कर्तव्य है।
—प्लेटो

आदर्श विवाह पद्धति

विवाह की कौन विधि से समाज में सामञ्जस्य और स्थायी व्यवस्था रह सकती है—हिंदू जाति ने इसी का पता लगाने का प्रयत्न किया। जिस प्रकार यूरोप राज-परिवार राज्य के विचार से ही विवाह सम्बन्ध करते थे और जिस प्रकार सन्तानोत्पादन शास्त्र मानव जाति की प्रगति के लिये व्यक्तिगत भावना के त्याग का उपदेश देता है, उसी प्रकार हिंदू जाति में भी समाज हित के लिये जीवन के प्रलोभों से बचने की दृष्टि से विवाह की व्यवस्था की गई है। हिंदुओं की वैवाहिक विधि का यही अभिप्राय है। मानव-जाति की उन्नति के लिये हिंदू

शास्त्र माता को गृहस्थाश्रम में स्वेच्छा से तपस्विनी का जीवन बिताने और अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को बुद्धि एवं आत्मा के कठोर नियंत्रण में रखने की शिक्षा देते हैं। स्त्री जाति के साथ प्रकृति ने जो कठोरता की उसे चुपचाप सहन करने में कुछ स्त्रियां अपनी तौहीन समझती हैं। परन्तु इस हीनता के क्रोध से बचने का उपाय मातृ-भाव का परित्याग नहीं बल्कि उसे एक निस्वार्थ पूर्ण आदर्श का अनुगामी बना देना है।

जे० टिसल डेकिड

सचरित्रता

जिसको दहेज कहा जाता है उसे मैं दहेज नहीं समझता। सच्चरित्रता और संयम को ही मैं यथार्थ दहेज समझता हूं।

—प्लाट्स

नारी का वास्तविक स्वरूप

मेरे विचार से नारी सेवा और त्याग की मूर्ति है जो अपनी कुर्बानी से अपने को मिटा कर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। आप कहेंगे मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता ? औरत से ही क्यों इसकी आशा करता है ? मर्द में यह सामर्थ्य ही नहीं है। वह तेज प्रधान जीव है ·· स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शांति सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है और नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है।

नारी के पास दान देने को दया है, श्रद्धा है, त्याग है। पुरुष के पास दान देने के लिये क्या है ? वह देवता नहीं लेवता है। वह अधिकार के लिये हिंसा करता है, संघर्ष करता है, कलह करता है।

मुझे खेद है कि हमारी बहिनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं। जहां नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से गिर कर विलास की वस्तु बन गई है। —स्वर्गीय प्रेमचन्द्र जी

भारतीय नारी आदर्श नारी

कठोर संयम पूर्ण, त्यागमय हिंदू आदर्श का अनुसरण करने वाली स्त्रियाँ, आदर्श पुत्रियाँ, आदर्श पत्नियाँ और आदर्श मातायें होती हैं। ये मर्यादा और शील-पूर्वक गृह-कार्य करती हुई घर में ही रहती हैं। सन्तति के सुख मे ही वे अपना सर्वोत्तम सुख और पति की पूजा को ही वे नारी के यथार्थ गौरव का अमिट उत्कर्ष मानती हैं। —सर जार्ज बर्नार्डशा

स्त्रियों के बाहर के काम में लगे रहने से काम नहीं चलेगा। हमारे देश की प्रत्येक महिला को गृहिणी और जननी बनना पड़ेगा। —हर हिटलर

नारी का स्थान हृदय

नारी की उत्पत्ति न तो पुरुष के पैर से हुई है कि जिससे वह उसके द्वारा शासित होती रहे, और न उसके सिर से हुई है कि जिससे वह उस पर शासन करे, उसकी उत्पत्ति तो पुरुष के वाम पार्श्व से हुई है, जिससे कि वह उसकी सहयोगिनी बने, उसके हृत्प्रदेश के समीप रह कर उसका प्रेम प्राप्त करे, एवं उसके हाथ के नीचे रहकर उसके संरक्षण का उपभोग करे। —मैथ्यू-आनन्द

भारतीय सभ्यता में नारी

ओह! यहां एक ऐसी सभ्यता के दर्शन होते हैं जिसको आप अपनी सभ्यता के पहिले की स्वीकार करने में 'ना' नहीं कर सकते जो नारी को पुरुष के समक्ष धरातल पर रखती है और जो उसे घर में एवं समाज में समान स्थान प्रदान करती है। —बाइबिल इन इण्डिया पृष्ठ २०४

श्रीमती रतनदेवी सियाल, मन्त्राणी श्री स्त्री समाज दिल्ली
(आपके सद्प्रयत्न एव परिश्रम से स्त्री समाज, दिल्ली
न भारी प्रगति की है।)

मुझे खेद है कि हमारी बहिनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं। जहां नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से गिर कर विलास की वस्तु बन गई है। —स्वर्गीय प्रेमचन्द्र जी

श्री गणेशाय नमः

जिसके कर्म अपवित्र हैं वही अछूत है

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरा मयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्॥

अर्थ—सब सुखी हों, सब निरोगी हों, सबका कल्याण देखें (अर्थात् सब का भला हो कोई दुख का भागी न हो।)

वर्णाश्रम धर्म के जिन व्यवस्थापकों की यह धारणा थी, उनके लिए आज कहा जाता है कि उन्होंने अछूतों पर अत्याचार किया, उनके साथ अन्याय किया, उनको कोई छूता नहीं इत्यादि। आज के हरिजन नेता तो यहां तक कहने पर उतारू हो गये कि शोषक शोपित को कभी ऊंचा नहीं उठाया करता। जो आज तक हमें चूसता और दबाता आया है, उससे उद्धार की आशा करना बिलकुल बेकार है। (श्री जगजीवन राम)

उनके ये भाव उस समय के हैं, जबकि कानून द्वारा सब को समान माना जा चुका है। आज मुख्यतया इस विषय को तथा कुछ अन्य विषयों को भी लेकर समुचित वैदिक-धर्म, संस्कृति, सभ्यता और विशेष कर वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था के प्रति लोगों का ऐसा क्रोध उमड़ पड़ा है कि वे इसे जड़-मूल से खोद कर बहा देना चाहते हैं। यह सोचने और समझने का कोई भी कष्ट उठाना नहीं चाहता कि जिसका मूलोद्देश्य—सर्वे भवन्तु सुखिनः—रहा हो, जो प्रत्येक प्राणी को सुखी देखना चाहता है, वह किसी पर अत्याचार करने की व्यवस्था कैसे कर सकता है? यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या सच-मुच वर्णाश्रम-धर्म के व्यवस्थापकों ने निम्न वर्ग पर अन्याय या अत्याचार किया?

श्री गणेशाय नमः

जिसके कर्म अपवित्र हैं वही अछूत है

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरा मयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत् ॥

अर्थ—सब सुखी हों, सब निरोगी हों, सबका कल्याण देखें (अर्थात् सब का भला हो कोई दुख का भागी न हो।)

वर्णाश्रम धर्म के जिन व्यवस्थापकों की यह धारणा थी, उनके लिए आज कहा जाता है कि उन्होंने अछूतों पर अत्याचार किया, उनके साथ अन्याय किया, उनको कोई छूता नहीं इत्यादि। आज के हरिजन नेता तो यहां तक कहने पर उतारू हो गये कि शोषक शोषित को कभी ऊंचा नहीं उठाया करता। जो आज तक हमें चूसता और दबाता आया है, उससे उद्धार की आशा करना बिलकुल बेकार है। (श्री जगजीवन राम)

उनके ये भाव उस समय के हैं, जबकि कानून द्वारा सब को समान माना जा चुका है। आज मुख्यतया इस विषय को तथा कुछ अन्य विषयों को भी लेकर समुचित वैदिक-धर्म, संस्कृति, सभ्यता और विशेष कर वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था के प्रति लोगों का ऐसा क्रोध उमड़ पड़ा है कि वे इसे जड़-मूल से खोद कर बहा देना चाहते हैं। यह सोचने और समझने का कोई भी कष्ट उठाना नहीं चाहता कि जिसका मूलोद्देश्य—सर्वे भवन्तु सुखिनः—रहा हो, जो प्रत्येक प्राणी को सुखी देखना चाहता है, वह किसी पर अत्याचार करने की व्यवस्था कैसे कर सकता है? यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या सच-मुच वर्णाश्रम-धर्म के व्यवस्थापकों ने निम्न वर्ग पर अन्याय या अत्याचार किया?

अछूत कौन है ?

हमें प्रथम इस पर विचार करना चाहिये कि ये अछूत हैं कौन? और कहाँ से आये? क्योंकि वर्णाश्रम-धर्म व्यवस्था के अन्तर्गत केवल चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र माने गये हैं किंतु यह पन्चम वर्ण 'अछूतों' की उत्पत्ति कहाँ से हुई, और इसे स्पर्श न करने का कारण क्या है, इसकी छान बीन करनी चाहिये।

यथार्थ में अछूत वे ही हैं जिनके कर्म अपवित्र हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें कुछ तो वे नास्तिक लोग हैं, जिन्हें चार वाक् कहा जाता था, जिन्होंने आदि काल में भी वैदिक धर्म की व्यवस्था अर्थात् वर्णाश्रम-धर्म व्यवस्था के अन्तर्गत आना कभी स्वीकार नहीं किया। कालान्तर में कर्मानुसार ये पाशविक स्थिति को पहुँच गये। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी जंगली जातियां थीं जो घने जंगलों में बिखरी हुई दूर-दूर झोंपड़ी डाल कर रहती थीं। जैसे—कोल-भील आदि आज भी जंगलों में परस्पर एक दूसरे से दूर-दूर रहते हैं। धीरे-धीरे ये जीविकोपार्जन के निमित्त बस्ती के निकट आते गये। कुछ कंजर, बनजारे, हाबूड़े, सांसिए, अहेड़िये, भातू इत्यादि जरायम पेशा जातियों के समान थीं। जिनका जातीय व्यवसाय—लूट, खसोट, गृहकटी और डाकना डाका आदि रहा है। ये लोग आज भी एक स्थान पर बहुत कम टिकते हैं सदा घूमते फिरते रहते आये हैं। उन्होंने कभी किसी धार्मिक आदेश का पालन नहीं किया अतः इन लोगों को किसी भी वर्ग के अन्तर्गत लाना सम्भव न था।

यदि केवल इतने ही व्यक्ति होते (जिनकी गणना ऊपर की गई है) तो इस वर्ग की संख्या इतनी अधिक न थी, जितनी आज पाई जाती है बल्कि इनमें निरन्तर वृद्धि होती गई। अधिक-

तर द्विजातियों में से निष्कासित व्यक्ति इसमें मिलते गये। इसका संकेत यज्ञोपवीत सम्बन्धी नियम के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहां पुनः उसका खुलासा करना उचित प्रतीत होता है।

यह बताया जा चुका है कि यज्ञोपवीत को मनुष्य के कर्म का प्रतीक मान कर हृदय पर धारण किया जाता है। यज्ञोपवीत के अपवित्र होने का अर्थ मनुष्य के कर्म का अपवित्र होना है। जनेऊ की अपवित्रता भी दो प्रकार की होती है। इसके स्वल्प और गहन दो कारण हैं। स्वल्प कारण उसे माना जा सकता है, जैसे कि अचानक मल-मूत्र के स्पर्श होने से अथवा अपवित्रावस्था में स्त्री के स्पर्श हो जाने से। जनेऊ के एक ताग में जो छः तार गुथे होते हैं, उनमें से किसी एक तार के टूट जाने पर, अचानक किसी कारणवश आपत्ति काल में या अस्वस्थावस्था में स्नान, ध्यान, गायत्री जाप तथा संध्या वन्दन इत्यादि किए बिना भोजन करने से जो जनेऊ का अपवित्र होना माना गया है, ये सब स्वल्प कारण हैं। दूसरा गहन कारण है—मद्य-पान, चोरी, डकैती, हत्या, व्यभिचार इत्यादि। झूठ बोलना, अकारण क्रोध करना, तथा यम नियम के पालन न करने से जनेऊ के अपवित्र होने का कारण भी गहन माना गया है।

यह भी बताया जा चुका है कि जिसका जनेऊ न हो वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने पर भी शूद्र के समान माना गया है और उसे किसी भी वैदिक विधि के अनुसार कर्म काण्ड का अधिकारी नहीं माना गया। किन्तु जिसका जनेऊ अपवित्र हो गया हो, उसे अछूत के समान माना गया है। अछूत के समान ही उसके साथ व्यवहार करने का विधान है। जिसका जनेऊ अपवित्र हो—उसे कोई छूता नहीं था। मैं स्वयं अपने बड़ों को देखा करती थी—जिनका जनेऊ किसी स्वल्प कारण वश अपवित्र

हो जाता, वह मौन हो एक ओर खड़ा हो जाता। चाहे जैसे कड़-कड़ाते जाड़े हों, यदि कोई बालक भी उन्हें छू लेता तो उसे (बच्चे को) भी उसी समय नहलाया जाता। वह जब तक स्नान करके जनेऊ न बदल लें तब तक मुख से बोल नहीं सकते थे। किसी प्रकार भूल में भी मुख से बोल देने पर उनके लिये २४ घण्टे के उपवास द्वारा प्रायश्चित करने का विधान है। ये सब अपवित्रता के स्वल्प कारणों के नियम थे। इनके लिये कोई संख्या नियत न थी। जीवन में ऐसे सैकड़ों अवसर आया करते हैं।

अपवित्रता के गहन कारणों की शुद्धि के लिये तप (तीन दिन का उपवास) दान (अन्न दान, वस्त्रदान, स्वर्णदान और गोदान इत्यादि) यज्ञ—हवन तथा ब्राह्मण भोजन इत्यादि तथा गंगा स्नान का विधान है। गहन कारणों से अपवित्र व्यक्ति उपरोक्त उपायों द्वारा प्रायश्चित करके शुद्ध हो सकता है। भिन्न-भिन्न कारणों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रायश्चित का विधान था। एक ही प्रकार के अपराध के लिये तीन बार तक प्रायश्चित करके समाज में मिलाया जा सकता था (यद्यपि यह प्रायश्चित भी उत्तरोत्तर कड़े होते जाते थे) चौथी बार पुनः वही (अपवित्र) कर्म करने पर समाज को उसे बहिष्कृत कर त्याग देना पड़ता था। अर्थात् तीन बार प्रयश्चित करने के उपरान्त भी यदि वह अपने में सुधार नहीं करता तो जाति उसे समाज से निकाल देती थी। फिर वह घर में नहीं रह सकता। यदि रहता भी था तो उसे कोई छूता नहीं था उसके भोजन के बरतन अलग कर दिये जाते जिनमें दूर से भोजन डाल दिया जाता। वह पैतृक सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया जाता। चारों वर्णों में से कोई भी ऐसे व्यक्ति को अपने में मिला नहीं सकता था। अन्त में वह स्त्री आदि से सम्बन्ध करके अछूत-वर्ग में मिल जाते थे। यही गति

व्यभिचारिणी स्त्री की होती थी। यह दृश्य कितना हृदय द्रावक होता होगा, जबकि अपने ही अंग के एक भाग को काट कर सदा के लिये अलग फेंक दिया जाता होगा। यह बहिष्कृत व्यक्ति किसी के पुत्र (या पुत्री) किसी के भाई या बहने) किसी के दामाद (या कुल वधू) होते होंगे। उन्हें कितना सन्ताप सहन करना पड़ता होगा, इसका वर्णन करना भी कठिन है। किन्तु समाज को पवित्र रखने के लिये और धर्म की रक्षा के लिये, छाती पर पत्थर सा रखकर उन्हें ऐसा करना पड़ता था। हजारों वर्षों में बहुत से लोग इस प्रकार अकर्म कर्म करने पर समाज से बहिष्कृत हो-हो कर इनमें मिलते गये। यदि ये व्यक्ति आगे चलकर अपने कर्म को सुधार लेते तो कालान्तर में इनकी सन्तति स्वतः सवर्ण मिल जाती (ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं) किन्तु ऐसा नहीं हुआ। आज तक इनके कर्म निन्दित बने हुये हैं।

इनमें और वृद्धि उस समय हुई जब बौद्ध धर्म विकृत होकर उसकी एक शाखा वज्रयान सम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित हो गयी। यहां ध्यान देने की बात यह है कि बौद्ध धर्म जिस समय भारतवर्ष में फैला, उस समय समस्त भारतवासी उत्तर हिमालय से दक्षिण कन्या कुमारी तक ही नहीं, बल्कि समस्त एशिया महाद्वीप उस (बौद्ध-धर्म) में परिवर्तित हो गया। उस स्थिति में अछूत वर्ग भी अलग न रह कर बौद्धों में जा मिले। इन लोगों ने उसमें प्रवेश कर क्या किया—यह देखना चाहिये।

सत्य और अहिंसा बौद्ध-धर्म का आधार था। ऐसे शुद्ध और सात्विक धर्म में प्रवेश कर अछूत वर्ग अपने आचरण को सुधार सकते थे। अपने चरित्र को शुद्ध और पवित्र बना सकते थे। किन्तु इन लोगों ने उसमें प्रवेश कर के भी वाम-मार्ग की ही उत्पत्ति की और सारे बौद्ध धर्म को भ्रष्ट तथा बदनाम कर

जिससे भारत-में बौद्ध-धर्म के अवमूलन की आवश्यकता पड़ी।-

जिस समय स्वामी शंकराचार्य ने वैदिक-धर्म का पुनरुद्धार किया उस समय प्रत्येक वर्ग अपने-अपने पुराने स्थान (वर्ण में) पर पुनः स्थित हो गये। किन्तु बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के उपरान्त भारतवर्ष में बौद्ध-धर्म का अवशेष यही वज्रयान सम्प्रदाय रह गया। कारण कि यह उन्हीं जातियों में फैला हुआ था जो निकृष्ट प्रकृति की थीं। इस विषय पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित श्री रामचन्द्र शुक्ल द्वारा विरचित हिन्दी साहित्य के इतिहास में जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसका कुछ अंश इस प्रकार है:—

बौद्ध धर्म विकृत होकर वज्रयान सम्प्रदाय के रूप में देश के पूर्वी भागों में बहुत दिनों से चला आ रहा था। इन बौद्ध तान्त्रिकों के बीच वामाचार अपनी चरम सीमा को पहुँचा। ये बिहार से लेकर आसाम तक फैले थे और सिद्ध कहलाते थे। चौरासी सिद्ध इन्हीं में हुये हैं। जिनका परम्परागत स्मरण जनता को अब तक है। चौरासी-सिद्धों में से कुछ सिद्धों के नाम से उनकी जाति का पता चलता है—जो कि इस प्रकार हैं।

डोंभिपा, मीनपा शवरीपा, तंतीपा चमरीपा, धोमीपा, डेंगिपा, मल्लहपा, राहुलपा, जोगीपा, गुंडरिपा, लुचिकपा, कल्हपा, कुमरिपा, चंवरिपा, सर्वभक्षपा इत्यादि चौरासी नाम दिये गये हैं। पा आदरार्थक 'पाद' शब्द है। इस सूची के नाम पूर्ण पर कालानुक्रम से नहीं हैं। इनमें से कई एक सामयिक थे।

(हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६)

इसी में आगे लिखा है—वज्रयानियों की योग तन्त्र साधनाओं में मद्य तथा स्त्रियों का सेवन एक आवश्यक अंग था।

सिद्ध कण्हपा डोमिनी का आह्वान गीत इस प्रकार गाते हैं—
नगर वाहिरे डोंभी तोहरि कुंडिया छई,
छोइ् जाइ सो वाह्न नाड़िया ।
आलो डोंबी तोय सम करिवा मा सांग,
निघिन कण्ह कमाली जोइ लाग ।
एक सो पदमा चौंमठ पांखुड़ि,
तहिं चढ़ि नाचइ डोंबी, वापुड़ि ।
हालो डोंबी! तो पूछमि सदभावे,
अइसमि जासि डोंबी का हरि नावे (११-१२)

कापालिक योगियों से बचे रहने का उपदेश घर में सास ननंद देती ही रहती थीं, पर वे आकर्षित होती ही थीं (पूर्वी प्रान्तों में इसकी झलक आज भी मिलती है)

बौद्ध धर्म ने जब तान्त्रिक रूप धारण किया तब उसमें पांच ध्यानी बुद्धों और उनकी शक्तियों के अतिरिक्त अनेक बोधि सत्वों की सदभावना की गई। जो सृष्टि का परिचालन करते। वज्रयान में आकर महा सुख वाद का प्रवर्तन हुआ। प्रज्ञा और उपाय के योग इस महा सुख दशा की प्राप्ति मानी गई। इसे आनन्द स्वरूप ईश्वर ही समझिये। निर्वाण के तीन अवयव ठहराये गए—शून्य, विज्ञान और महासुख। उपनिषद् में तो ब्रह्मानन्द के सुख के परिमाण का अन्दाजा कराने के लिये उसे सहवास सुख से सौ गुना कहा था। पर वज्रयान में निर्वाण के सुख का स्वरूप ही सहवास सुख के समान बताया गया। शक्तियों के सहित देवताओं के युगनद्ध स्वरूप की भावना चली और [illegible]नकी नग्न मूर्तियां सहवास की अनेक अश्लील मुद्राओं में बनने [illegible] जो कहीं-कहीं अब भी मिलती हैं। रहस्य [illegible]ह्य की प्रवृत्ति बढ़ती गई और गुह्य समाज [illegible]र स्थान-स्थान पर होने लगे। ऊंचे-नीचे कई वर्णों

की—स्त्रियों को लेकर मद्यपान के साथ अनेक वीभत्स विधान वज्रयानियों की साधना के प्रधान अंग थे। सिद्धि प्राप्त करने के लिये किसी स्त्री का (जिसे शक्ति, योगिनी या महा मुद्रा कहते थे) योग या सेवन आवश्यक था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस समय मुसलमान भारत में आये, उस समय देश के पूर्वी भागों में (विहार बंगाल और उड़ीसा मे) धर्म के नाम पर बहुत दुराचार फैला था (पृष्ठ १३-१४)।

इसी प्रकार जहां रवि-शशि, पवन आदि की गति नहीं वहां चित्त को विश्राम कराने का दावा ऋजु (सीधे दक्षिण) मार्ग को छोड़ कर वंक टेढ़ा मार्ग) ग्रहण करने का उपदेश भी है सिद्ध कण्हपा कहते हैं कि जब तक अपनी गृहिणी का उपभोग करेगा, तब तक पंचवर्ण की स्त्रियों के साथ विहार क्या करेगा

वज्रयान में महासुख वह दशा बताई गई है जिस साधक शून्य में इस प्रकार विलीन हो जाता है, जिस प्रकार नम पानी में। इस दशा का प्रतीक खड़ा करने के लिये युगनद्ध (स्त्री पुरुष का आलिंगन बद्ध जोड़ा) की भावना की गई। कण्हपा

यहां पर यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि ८४ सिद्धों में बहुत से मछुये, चमार, धोबी, डोम, कहार, लकड़ हारे, दर्जी, तथा और बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे। अतः जाति-पांति के खण्डन तो वे आप ही थे। नाथ पंथ भी जब फैला तो उसमें भी जनता की नीची और अशिक्षित श्रेणियों के बहुत से लोग आये जो शास्त्र ज्ञान सम्पन्न न थे। जिनकी बुद्धि का विकास बहुत सामान्य कोटि का था, पर अपने को रहस्य दर्शी प्रदर्शित करने के लिये शास्त्रज्ञ पण्डितों और विद्वानों को फटकारना वे जरूरी समझते थे। सद्गुरु का माहात्म्य सिद्धों में भी और उनमें भी बहुत अधिक था।

वज्रयानी सिद्धों ने निम्न श्रेणी की प्रायः अशिक्षित जनता के बीच किस प्रकार के भावों के लिये जगह निकाली, यह दिखाया जा चुका। उन्होंने जाति-पांति बाह्य पूजा, तीर्थाटन इत्यादि के प्रति उपेक्षा बुद्धि का प्रचार किया। अपने आपको रहस्यदर्शी प्रदर्शित करने के लिये शास्त्रज्ञ पण्डितों और विद्वानों का तिरस्कार करने और मनमाने रूपकों के द्वारा अटपटी वाणी में पहेलियां बुझाने का रास्ता दिखाया। (हि० सा० का इतिहास पृष्ठ २०-२४)

हिन्दी साहित्य के इतिहास की उपर्युक्त पंक्तियों का अवलोकन करने से उक्त श्रेणी के कर्म और आचरण का पिछला वह चित्र सामने आ जाता है जिसके कारण इन्हें अपवित्र माना गया है।

यदि आज कोई वर्ग इस प्रकार के निन्दित कर्म का प्रचार करने लगे तो क्या प्रगति शील सुधारक वर्ग ऐसे संगठित समूह से सम्पर्क रखने का तथा अपने स्त्री बच्चों को उनमे मेल-जोल

बढ़ाने देने का साहस कर सकता है ? (कदाचित आज व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के अन्तर्गत इसे भी छूट मिल जाय और इसे भी प्रगति का सूचक मान लिया जाय। कदाचित आज के हरिजनोद्धारक उन्हें सुधारने की बात सोचते हों।

स्मरण रहे ! उनका यह प्रयास नया नहीं है। ऐसे अनेक धर्म और सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हो चुका, जिन्होंने प्रत्येक व्यक्ति के लिये अपना द्वार खुला छोड़ दिया था। बौद्धों ने तो इन्हें आत्मसात् ही कर लिया था (जिसके फलस्वरूप बौद्ध धर्म को भारत से विदा होना पड़ा) अन्य भी अनेक मत मतान्तरों ने जन्म लिया, जो जाति पाँति के भेद नहीं मानते थे। जैसे कि जैन, सिख और जहाँ तक सुनने में आया है—वैदिक धर्म के अन्तर्गत भी वैष्णव सम्प्रदाय की एक शाखा, जाति-पाँति के विशेष भेद नहीं मानती थी। इनके अतिरिक्त ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज ने अछूतों में विशेष प्रचार किया। इन सभी ने अपना द्वार उस व्यक्ति के लिये खुला छोड़ दिया जो उन उन के धर्म तथा नियम का पालन करे।

यहीं तक बस नहीं, पिछले हजार वर्ष से मुसलमानों ने और दो तीन सौ वर्ष से ईसाईयों ने इनको अपने में मिलाने की कम चेष्टा नहीं की। ईसाइयों ने तो भेद नीति और कूट नीति से काम लिया। उन्होंने इन्हें सवर्णों के विरुद्ध उभारने में कोई कसर न छोड़ी। ईसाई मिशन की ओर से आर्थिक प्रलोभन भी बहुत कुछ दिया गया। आज भी यह क्रम चालू है (आज भी सुनने में आया है कि एक हिन्दू से ईसाई बनने वाले छात्र को लगभग ५० रु० छात्रवृत्ति मिलती है) इतने पर भी ये लोग सामूहिक रूप से किसी में नहीं मिले। इससे क्या पता चलता है कि हम लोगों ने इन पर अत्याचार किया ? यथार्थ में इन लोगों की जितनी स्वतन्त्रता और जितना आर्थिक लाभ अपने

परम्परागत रूप में हिन्दू समाज के साथ रहने में दिखाई दिया इतना कहीं नहीं मिला।

स्पष्ट है कि धर्म की ओर उनकी कोई रुचि नहीं रही। इसलिये उन्हें प्रत्येक धार्मिक बन्धनों से मुक्त कर दिया गया। वह भोगासक्त प्राणी थे। इसलिये उनके लिये सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था का प्रबन्ध कर उन्हें मनमाना भोग भोगने के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया गया। वह मन माने आचरण के द्वारा वैदिक धर्म को बदनाम न करें इसलिये उनको वेदादि कर्म (अध्ययन आदि) के अधिकारों से वंचित मान लिया गया। साथ ही मन्दिरों में अपवित्रता का प्रवेश न होने पाये इसलिये मन्दिर प्रवेश के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया। उन्हें इसकी कोई आवश्यकता भी न थी। उन्होंने इसकी कोई शिकायत न की। उन्हें अर्थ और भोग भोगने की स्वतन्त्रता चाहिये थी, जो कि उन्हें मिल गई। फिर उन्हें किसी भी धार्मिक समूह में सम्मिलित होने की आवश्यकता क्या थी? वह हमारे साथ हमारा अंग बन कर रहे। आज उनकी वह आर्थिक स्वतन्त्रता छिन गई है। साथ ही अमरीका उन पर डालर लुटा रहा है। अतः वह आज धड़ा-धड़ ईसाई बनते जा रहे हैं। किसी भी धर्म से प्रेम उन्हें न कभी हुआ और न आज है। जहां उनका पेट भरेगा और उन्हें टके मिलेंगे, वह उसी का गुण गायेंगे और उसी के साथ रहेंगे (आज उनमें अन्तर द्रोह की सृष्टि हो रही है और सवर्णों के प्रति दुर्भावना भरी जा रही है)।

यह हरिजन सेवा की सफलता है या असफलता इसका निर्णय हरिजनों के हितैषी स्वयं कर सकते हैं।

हिन्दुओं ने हरिजनों को छुआ नहीं, उनको दूर-दूर रक्खा। मन्दिर में घुसने नहीं दिया। धर्म शास्त्रों की भनक भी उनके

कान में न पड़ने दी धर्म परिवर्तन से अथवा किसी कर्म अकर्म के करने से उन्हें रोका भी नहीं, मन माने मार्ग पर चलने की उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता दी। फिर भी वे हमारे साथ ही रहे। आज जब उनके अनुराग में पलके बिछाई जा रही हैं सारा शिक्षित समुदाय और शासन तन्त्र उनकी चापलूसी करने में लगा हुआ है। फिर भी वे धड़ा धड़ लाखों की संख्या में ईसाई बनते जा रहे हैं। दूसरे शब्दों में अमरीका के जासूस (पंचम कालम) बन रहे हैं। यह कैसी विधि की विडम्बना है।

स्मरण रहे, हरिजनों को यह आर्थिक प्रलोभन नया नहीं मिला पिछले दो ढाई सौ वर्ष से (जब से ईसाई वर्ग ने मिशनरियों के रूप में भारत में पदार्पण किया तभी से) ईसाई और हजार वर्ष से मुसलमान उन्हें अपने में मिलाने का षड्यन्त्र रचते आये हैं। किन्तु आज जिस संख्या में हरिजन ईसाई बन रहे हैं वह स्थिति कभी उत्पन्न न हुई।

यद्यपि वज्रयान सम्प्रदाय का प्रभाव बिहार, उड़ीसा, आसाम और बंगाल में अधिक था किन्तु देश का शेष भाग भी इनसे अछूता नहीं बचा। जहां इनका प्रभाव कम था, वह क्षेत्र नाथ पंथियों के प्रभाव में आया। आगे इनमें रैदास, कबीरदास और हरि दास आदि भक्त महापुरुषों का—प्रादुर्भाव हुआ जिनके प्रचार से इनमें आंशिक सुधार भी हुआ। किन्तु जो कुकर्म रग-रग में रम चुके थे, उनमें अन्तर न आया। केवल इतना अन्तर पड़ा कि जो कुकर्म डंके की चोट किया जाता था उस पर थोड़ा पर्दा पड़ गया (डंके की चोट इसलिये माना जा सकता है क्योंकि इसके साहित्य की रचना आज तक पा जाती है) बिहार में उनका यह गुप्त चक्र (जिसे भैरवी चक्र भी कहा जाता था) अबसे लग भग ४० वर्ष पूर्व तक सुनने में आता

करता था। अब वहां इनकी क्या स्थिति है, यह ज्ञात नहीं। ४० वर्ष पूर्व (जब मैं वहां थी) इनका स्त्रिया दबी जुबान (भैरवी चक्र का होना) स्वीकार करती थीं। जब घर में किसी प्रकार की कोई खुशी मनाई जाती और कुछ व्यक्तियों का खाना-पीना होता (जिसमें स्त्री पुरुष सब मिल कर मद्यपान करते) तब गुप्त रूप से भैरवी चक्र का भी आयोजन किया जाता। अनेक सवर्ण स्त्री पुरुष भी उनके इस जाल में फस जाया करते थे। उनको जाति से बहिष्कृत करने का बहुधा यही कारण आगे आता था। आज प्रत्येक संस्थायें यही कर रही हैं।

आज जाति-पांति का स्थान अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं ने लिया हुआ है। प्रत्येक संस्थाओं के अपने अपने, अलग-अलग विधान हैं। जिसका उल्लंघन करने वाले के साथ अनुशासन उल्लंघन की कार्यवाही की जाती है। उसे संस्थासे निकाल दिया जाता है। अपने मंच से भाषण देने का अधिकार छीन लिया जाता है। यदि ऐसा न करें तो संस्था पथ भ्रष्ट हो जाय, (संख्या वृद्धि के लोभ में बहुधा होता भी यही है) क्या इसे अत्याचार माना जा सकता है? यद्यपि यह बाहरी गुटबन्दी का विषय है। फिरभी यहां सावधानी बरतनी पड़ती है और विरोधी या अवांछित व्यक्ति को अपने मंच पर चढ़ने नहीं दिया जाता। आज कांग्रेस के मंच से—हिन्दू महा सभा के सदस्य, जन संघी या साम्यवादी सदस्य—भाषण नहीं कर सकते। चाहे वह कितने ही समय तक कांग्रेस के सदस्य रह चुके हों और उसकी नीति के निर्माता भले ही रहे हों, किन्तु नियम का उल्लंघन करने पर उनके सारे अधिकार छिन जाते हैं।

यदि एक संस्था को पवित्र रखने के लिये अवांछित तत्व की छटनी आवश्यक होसकती है, तो जहां अन्त करण की, जीवन

तथा समाज की पवित्रता का प्रश्न हो क्या वहां इसकी आवश्यकता नहीं, अथवा वहां यह अत्याचार माना जा सकता है ? क्या इसे न्याय माना जायगा ?

हरिजनों ने अपने जीवन को जिस सांचे में ढाला हुआ था, उस स्थिति में क्या इनके सम्पर्क में रहने का धर्म था ? इनकी संगत करके क्या इनकी बुराइयों की छूत से बचा जा सकता है ? क्योंकि बुराइयां मनुष्य को स्वतः अपनी ओर आकर्षित करती हैं इतना परहेज छूत-छात के होते हुये भी बहुत से सवर्ण (विशेष कर स्त्रियां) उनके इस चक्र में उलझ ही जाते थे। ऐसी सूरत में समाज को दण्ड देना ही पड़ता था। अर्थात् ऐसे व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत करना ही पड़ता था।

इधर लग-भग सौ वर्ष हुये जब से ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज की स्थापना हुई, तभी से इन लोगों में सुधार करने की चेष्टा की जा रही है। स्वामी विवेकानन्द ने भी इनमें सुधार करने की इच्छा से पग बढ़ाया। महात्मा गान्धी ने अपना समस्त जीवन ही इनके अर्पण कर दिया। हरिजनोद्धार की बड़ी-बड़ी योजना चालू हुई। महात्मा गांधी के साथ उनके अनगिनत भक्तों ने अपना समस्त जीवन केवल हरिजनों की सुख-सुविधाओं के जुटाने में लगा दिया है।

यही नहीं आज भारत में जितनी बड़ी-बड़ी संस्थायें हैं-कांग्रेस, समाजवादी-साम्यवादी, जनसंघ, हिन्दू महासभा इत्यादि और जितने शिक्षित वर्ग हैं स्त्री, पुरुष सबकी सहानुभूति हरिजनों के साथ है। ये सभी सनातन धर्म और वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था को आज पानी पी-पी कर कोसने में लगे हैं।

आज बहुत दिनों से हरिजनों में शिक्षा प्रचार हो रहा है। इनकी शिक्षा के लिये सारी सुविधायें जुटाई जा रही हैं।

न केवल इनके बालकों के लिये स्कूल की फीस माफ है बल्कि प्रत्येक राज्य ने हरिजन बालकों के लिये लाखों रुपये की छात्र-वृत्ति निर्धारित कर दी है। सुना है उत्तर प्रदेश में २ रुपये से लेकर ६० रुपये तक, प्रथम श्रेणी से एम. ए. तक के हरिजन छात्रों के लिये छात्रवृत्ति निर्धारित कर दी है। देहली में पांचवी श्रेणी से लेकर ग्यारहवीं श्रेणी तक हरिजन बालकों को क्रमशः ३०-४०-५० ६० रुपये प्रतिमास छात्रवृत्ति देना स्वीकार हुआ है जो कि उनके पढ़ने में फेल होने पर भी मिलती रहेगी। साथ ही इम्तहानों का शुल्क अलग से दिया जायगा। स्कूलों की पुस्तकें भी इन्हें नहीं खरीदनी पड़ेंगी। और यह सब किया जा रहा है सवर्ण बालकों की शिक्षा पर कर सा लगा कर उन्हें हतोत्साह कर हरिजन बालकों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। सभी राज्यों की सरकारें हरिजन बालकों को इसी प्रकार से छात्र-वृत्ति देने का प्रबन्ध कर रही हैं। सभी नौकरियों में हरिजनों के लिये स्थान सुरक्षित हैं। फिर भी आज एक-एक जिले में हजारों, (बल्कि कहीं कहीं एक एक तहसील में डेढ़-डेढ़ लाख) और देश भर में लाखों की संख्या में हरिजन ईसाई बनते जा रहे हैं। कारण कि आज सबको सब काम करने के समानाधिकार के अन्तर्गत प्रगति के नाम पर उनकी जीविका निर्वाह के प्रमुख परम्परागत साधन एक-एक करके उनसे छिनते जा रहे हैं। उधर अमेरिका ईसाई मिशन द्वारा धन पर अरबों डालर लुटा उन्हें खरीदता जा रहा है और वह आज अमेरिका के खरीदे हुये गुलाम बनते जा रहे हैं। जिसका परिणाम भविष्य में इसके विकराल रूप धारण करने पर दिखाई देगा। कुछ प्रतिशत हरिजनों को उच्च पद पर आसीन कर, या उनके लिये मन्दिरों के द्वार खोल देने मात्र से छः करोड़ हरिजनों का पेट नहीं भरेगा। उनकी रोटी की समस्या हल नहीं होगी। फिर तो उनकी भी मांग अलग क्षेत्र निर्धारित

करने की होगी। कारण कि आज जो परस्पर कटुता उत्पन्न करने वाला बीज बोया जा रहा है वह भविष्य में विशाल वृक्ष बन कर फले फूलेगा और पनपेगा।

आज छुआ छूत का नाम लेना अपराध है। यथार्थ में आज यह गौण विषय बन गया है। छुआ छूत को महानता देने का मूल उद्देश्य आज नष्ट प्राय हो चुका है। क्योंकि कर्म से आज सभी (अधिकांश) अछूतों के समान ही नहीं बल्कि कहीं २ तो अपवित्रता में उनसे आगे बढ गये हैं। (फिर भी मा प्रदर्शित हो सकता है) कारण स्पष्ट है। सामाजिक दण्ड दे का (अवांछित तत्व की छटनी करने का) अधिकार जब से हि समाज से छीन कर भारत की अंग्रेजी सरकार ने अपने हा में ले लिया था तभी से समाज की स्वच्छता नष्ट होने लगी औ हिन्दू समाज में आचरण हीनता बढती गई। आज वह अप चरम सीमा को पहुँचती जा रही है।

प्रसग छिड़ने पर एक बार एक आर्य समाजी भाई ने बडे गर्व से यह बताया कि गुरुकुल की स्थापना होने प उसमें जिन बालकों को भरती किया गया उसमें ६०-६५ प्रति शत निम्न वर्ग के बालकों को लिया गया। वे सब बडे अच्छे धर्म प्रचारक तथा धर्मोपदेशक निकले इत्यादि। क्या यह तन प्रचार का ही प्रभाव नहीं है। जिससे आज अधिकांश हि जनता कर्म से अछूत बन गई है। जो भी हो! छुआछूत भावना को तो आज कानून द्वारा गहन अपराध मान लिय गया है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि इतने प्रोत्साहन के बाद भी क्य उनमें से सामूहिक रूप में बुराइयां दूर हो गई? क्या उनके आत्मा वचन मन आज पवित्र है? क्या उनके कर्म में आ

कोई परिवर्तन हुआ ? और क्या उन्होंने शराब पीना छोड़ दिया ? देखने में तो आज भी यही आता है कि अधिकांश हरिजनों की कमाई का आधे से अधिक भाग शराब में लगता है। आज भी वेतन मिलने पर वह (अछूत) सीधा कलारखाने में पहुँचता है और शराब पीकर हुल्लड़ मचाता है।

हरिजनों ने 'वाम मार्ग' का पंथ खड़ा कर सनातन धर्म को जो चुनौती दी थी और दुर्बल प्रकृति के स्त्री तथा पुरुषों को बहका फुसला कर अपनी ओर खींचना तथा उन्हें पथ भ्रष्ट करने का क्रम चालू रख दुष्कर्म के द्वारा जो दानवता की ललकार दी थी। सवर्णों ने समर्थ होते हुये भी क्या इसके लिये उन्हें कोई दण्ड दिया ? क्या इसका उनसे कोई बदला लिया ? अथवा उनकी स्वतन्त्रता मे कोई हस्तक्षेप किया ? सिवाय इसके कि अपने जनो को उनसे अलग रखने की चेष्टा करें। उस स्थिति में भी—"सर्वे भवन्तु सुखिनः" के अनुसार उनके कल्याण की ही कामना करते रहे। किसी ने सत्य ही कहा है—अति सर्वत्र वर्जित है। अति की सहनशीलता भी उचित नहीं। दण्ड मिलने से उनका भी भला ही होता। किन्तु उनकी इस हीनावस्था में भी द्विजों ने उनके आर्थिक साधनों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

एक ही शरीर में पवित्र और अपवित्र दोनों भाग होते हैं और अंग के सभी भाग आवश्यक हैं। अपवित्र भाग का स्पर्श कर हाथ धोना पड़ता है। फिर भी अपवित्र अंग को काट के नहीं फेंका जाता। इसी प्रकार पाचों भाग—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज—मानव समाज के अंग हैं। जिस प्रकार शरीर के एक अंग पर आघात होने से सारे शरीर को व्यथा होती है उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत किसी एक भाग को पीड़ा पहुँचाने से समाज के सभी

अंग का व्यथित होना स्वाभाविक है। जब तक मनुष्य होश में रहता है, तब तक अपने प्रत्येक अंग की रक्षा करता है। पैर शरीर में सबसे निचला भाग है, किन्तु अपनी जानकारी में किसी के द्वारा अपने पैरों को कुचलवाया नहीं जाता। लाचारी की बात दूसरी है, फिर भी अपनी सामर्थ्यानुसार उसे बचाने की चेष्टा की जाती है।

वर्णाश्रम धर्म के व्यवस्थापकों ने मानव समाज को एक शरीर के समान मान कर सबके कल्याण की और सबके सुखी रखने की व्यवस्था की थी, इसमें किसी को कभी भी किसी प्रकार की आपत्ति उठाने का अवसर नहीं आ पाया, न समाज के अन्तर्गत किसी प्रकार की अशान्ति उत्पन्न हुई। परस्पर फूट उत्पन्न करना तो विदेशी शासकों की तथा विधर्मियों की चाल थी। आपत्ति उठाना तो उन्होंने इन्हें सिखाया है।

इस समय जैसी कि हरिजनों पर अत्याचार की नित्य नई कहानी सुनने में आती है, इसमें यदि कोई सत्य भी है तो यह वर्णाश्रम धर्म के सर्वथा विरुद्ध है और इसका कारण हिन्दु समाज का आत्म विस्मृत होना ही माना जा सकता है। यह उसी प्रकार है जैसे कि नींद में या बेहोशी में अपनी उंगली अपनी आंख में लग जाय, बिना देखे चलने से पैर में ठोकर लग जाय, अथवा अपने हाथ से अपना पैर कुचला जाय, या अपने दाँत से अपनी जीभ कट जाय। ऐसी सूरत में न तो हाथ को काट दिया जाता है, न उंगली ही काट कर फेंकी जाती है और दात भी नहीं तोड़े जाते। केवल चोट का उपचार किया जाता है। यदि हम उपचार करने के बदले हाथ या उंगली काट के फेंक दें अथवा अपने दात तोड़ डालें तो क्या ऐसा करने के लिए कोई हमारी प्रशंसा करेगा? कदापि नहीं।

यदि अज्ञानवश किसी भाग में हरिजनों के ऊपर किसी प्रकार का अत्याचार हुआ भी हो तो यह धर्मानुकूल नहीं है। अतः अत्याचारी को दण्ड देना ही चाहिये, अथवा चेतावनी देकर ऐसा न करने के लिये सावधान कर देना चाहिये। यदि उन्हें केवल स्पर्श न करने को ही अत्याचार मान लिया गया है, तो यह दावे से कहा जा सकता है कि यह कोई अत्याचार नहीं है।

मान लिया जाय कि कड़कड़ाते जाड़े की रात है, मार्ग में हरिजनों से स्पर्श हो जाता है, तो इसमें उस हरिजन को कोई कष्ट उठाना नहीं पड़ेगा। वह घर पहुँच कर अपने बिछौनों में पड़ कर चैन से सोयेगा, किन्तु हमें घर पहुंच कर आधी रात को स्नान करना पड़ेगा और सारे कपड़े धोने पड़ेंगे (जनेऊदार को उसी समय जनेऊ बदलना पड़ता था) इसमें त्रास किसे मिला? इस प्रकार अत्याचार हमने अपने ऊपर किया, न कि अछूतों को किसी प्रकार का त्रास दिया। यह सब तो तप के अंग थे, ऐसे समय तो अपनी परीक्षा होती थी।

धर्म-कर्म, विद्या, बुद्धि में उन्नत होने, तथा मद्यपान आदि दुर्व्यसनों से बचे रहने के कारण सवर्णों की आर्थिक अवस्था भी उन्नत रही है, उधर शराब आदि दुर्व्यसनों में फंसे रहने के कारण अन्त्यजों की आर्थिक स्थिति हीन रही है। विद्या बुद्धि की भी उनमें कमी है, अतः दोनों में असमानता दिखाई देना स्वाभाविक है। इसे (असमानता को) तत्काल दूर करने के दो मार्ग हैं—१—उन्नत समाज को अवनत अवस्था में धकेल कर, २—अवनत अवस्था वालों को उन्नत करके समानता स्थापित की जा सकती है। इसमें दूसरा उपाय ही श्रेष्ठ माना जा सकता है। जैसे पास-पास एक आलीशान महल हो और

दूसरी कुटिया हो। इनमें समानता स्थापित करने का उत्तम साधन—कुटिया को महल के समान ऊंचा उठा देना है, न कि महल ढहा कर कुटिया के समान कर देना चाहिए। आज के सुधारक यही दूसरा उपाय काम में लाना श्रेयस्कर समझ रहे हैं।

आज स्थिति यह है कि अछूतोद्धार के प्रभाव से हरिजनों के आचरण में तो सामूहिक रूप में कोई अन्तर पड़ा दिखाई नहीं देता, उधर सामाजिक दण्ड से भयमुक्त हो जाने के कारण सवर्णों में वे सारी बुराइयां सामूहिक रूप में प्रवेश कर गई हैं (या करती जा रही हैं) जो कुछ समय पूर्व तक केवल अन्त्यजों मे या नीची जातियों में पाई जाती थीं। जैसे कि चोरी, जारी, व्यभिचार, लूट, खसोट, गहकटी, झूठ फरेब, धोखा, धड़ी, भक्ष्या-भक्ष्य, धूम्रपान शराबखोरी आदि शूद्रों, अछूतों या जरायम पेशा जातियों के कर्म थे। आज एक कला के रूप में सभी वर्ग इन कुकर्मो को अपनाता जा रहा है। शराब पीने की लत इन्हीं अन्त्यजों में तथा शूद्रों में पायी जाती थी। द्विजातियों में धूम्र-पान या शराब का नाम लेना भी पाप कर्म माना गया था। शराब पीने वाले को समाज से बहिष्कृत करने का विधान था। आज शराब पीना सभ्यता की निशानी है तथा आज का आदर्श बन गया है। फलतः अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित घरानों की बरबादी शराब के कारण हो रही है। आये दिन कितने होनहार नव-युवक शराब के कारण काल का ग्रास बनते जा रहे हैं!

भारत की राजधानी में १५ दिन के भीतर श्रेष्ठ घरानों के (ब्राह्मण और वैश्यों के माता-पिता के इकलौते) ५ नौनिहालों की मृत्यु शराब के कारण होती है। जिससे घर का नाम मिट जाता है, अथवा जिनके जरा-जरा से बच्चे दाने-दाने को

मोहताज हो जाते हैं। यह क्रम लगातार जारी है। आज कोई भी अपने बाल बच्चों को इस छूत के रोग से बचाये रखने का दावा नहीं कर सकता आगे या पीछे एक-एक करके सबकी बारी आ रही है, किन्तु जिसके चोट लगती है वही जानता है, वही तड़फता है, शेष सब तो देखते हुये भी नहीं देखते और नहीं देखना चाहते। यह है हरिजन प्रेम तथा प्रगतिशीलता की एक हल्की झलक। इसका विकराल रूप देखने के लिये आज के सुधारक बैठे नहीं रहेंगे। इस स्थिति को हरिजनों का उत्थान माना जाय या सवर्णों का पतन।

आज हरिजनोद्धारक सवर्णों के नैतिक पतन के उत्तरदायित्व को स्वीकार करें या न करें, तथ्य यही है। हुआ वही है जो सामाजिक बन्धन टूटने पर सम्भव था। सत्य सम्मुख है, प्रत्यक्ष में भी आज प्रत्येक वर्ग हरिजन कहलाने के लिये लालायित हो उठा है, हरिजनों की श्रेणी में अपनी गणना कराने में ही अपना कल्याण देख रहा है।

हरिजनों में जिस बात की कमी है, उसे दूर करने में उनकी सहायता करनी चाहिये। उनमें विद्या बुद्धि का विकास हो, उनके कर्म तथा आचरण पवित्र हों, उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ हो, तो इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं है, यदि सवर्ण इसमें बाधा डालें तो उनका विरोध अवश्य करना चाहिये।

वर्णाश्रम धर्म के व्यवस्थापक महर्षियों ने अपने मूलोद्देश्य—सर्वे भवन्तु सुखिनः—के अनुसार प्रथम ही सब को (प्राणी मात्र को) सुखी रखने की ऐसी व्यवस्था की थी, जिसमें सब की जीविका समान रूप से चलती रहे।

इस व्यवस्था के अनुसार छुआ-छूत का भेद रहने पर भी सब परस्पर आर्थिक तन्त्र से ऐसे गुथे हुये थे कि बिना एक के

दूसरा सुखी नहीं रह सकता था। यहा तक कि जीवन भी सुरक्षित नहीं रहता था। आज जिन-ब्रह्मर्षियों को अन्यायी, अत्याचारी, शोषक, चूसने वाला और दबाने वाला कहा जाता है उन अ याचारी महर्षियों ने अपने मूल उद्देश्य—सर्वे भवन्तु सुखिन के अनुसार अर्थोपार्जन के प्रधान साधन—कृषि, व्यापार तथा अन्य व्यवसाय शिल्प आदि वैश्य, शूद्र विशेष कर निम्न श्रेणी मे बाट दिये थे। अर्थोपार्जन में कुशल कुछ थोड़े से व्यक्ति ही सारे साधनों को न हथियालें (जैसा कि आज हो रहा है) इसलिए एक काम करने का एक ही जाति के लिये सामाजिक विधान था।, जिसका वंश परम्परा के लिये उन्हें एकाधिकार देकर उनके साथ प्रतियोगिता वर्जित कर दी थी। कोई एक जाति दूसरी जाति का काम नहीं कर सकती थी। समाज के इस नियम के उल्लंघन करने वालों को सम्बन्धित समाज में ही दण्ड मिलता था। सामाजिक कर्म का उल्लघन कर दूसरी जाति के कर्म करने पर-आज भी शूद्रों में हुक्का पानी बन्द कर दिया जाता है।

यहा ब्राह्मण पढाता, क्षत्रिय रक्षा करता था। वैश्य खेती गोपालन तथा वणिज व्यवसाय आदि करता था। शूद्रों में नाई हजामत बनाता तथा व्याह आदि में बुलावे देता बारी पत्तै दोने बनाता, धोबी कपड़े धोता, दर्जी कपड़े सींता, तेली तेल निकालता, कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाता, कसेरा कासे-पीतल के बर्तन बनाता, सुनार सोने चान्दी के जेवर बनाता, लोहार लोहे का काम करता, बढ़ई लकड़ी का काम करता, चमार जूते बनाता धुनिया रुई धुनता, कत्ती सूत कातता, कोरी (जुलाहा) कपड़े बुनता, बासी (डोम) बास का काम करता (सूप डलिया तथा पखे इत्यादि बनाता) राज मकान बनाता, गड़रिया भेड़ बकरी पालता और ऊन के कम्बल बनाता। काछी सब्जी उगाता और

उसे बेचता, भुज्जो भाड़ में चबेने भूनता, मेहतर सुअर पालता, मेहतरों में किसी का काम झाड़ू देना, किसी का नाली साफ करना, किसी का कूड़ा उठाना, किसी का सूप आदि बनाना, किसी का केवल मरे हुये जानवरों को उठा कर फेंकना और किसी का श्मशान घाट की रखवाली करना अर्थात् कर और कफन लेना था। इस प्रकार सब अपने-अपने सामाजिक कर्म के अनुसार जीविकोपार्जन करने के साधनों में स्वतन्त्र थे। इनमें से अधिकांश की वृत्ति बन्धी होती, उन्हें फसल कटने पर नियत मात्रा में अनाज मिल जाता था। इस प्रकार छुआ-छूत का भेद होते हुए भी आर्थिक तथा श्रम तन्त्र के सहारे परस्पर एक दूसरे से गुथे हुये थे और प्रत्येक वस्तु के लिये हम सब एक दूसरे के आश्रित थे।

आज जिस बुनियादी तालीम के लिये करोड़ों रुपये की खर्चीली योजना बनाई जा रही है (जिसकी सफलता में सन्देह है) जिसके लिये धन जुटाना भी आज कठिन प्रतीत हो रहा है, उसी बुनियादी तालीम की शाला यहां प्रत्येक के घर में थी। माता के उदर में ही जिसके संस्कारों का बीजारोपण हो जाया करता था। प्रत्येक बालक खेलते-कूदते अपने सामाजिक कर्म को सीख कर उसमें पारंगत हो जाया करता था। पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही काम करते रहने से अपने सामाजिक कर्म का जैसा विकसित स्वरूप उसके मस्तिष्क में आ सकता था और उसे क्रियात्मक रूप से प्रदर्शित करने में जितना वह सफल हो सकता है, उतना कोई नौसिखिये नहीं हो सकते। ऐसे ही परम्परागत कारीगर (राज) ने ताज महल को बनाया था। बड़े-बड़े दिग्गज-मन्दिर आज भी जिनके बनाये खड़े हैं और बड़े-बड़े इंजीनियरों को ... दे रहे हैं।

जगन्नाथ जी का विशाल मन्दिर जिसमें चूने-गारे का नाम नहीं था, जो केवल ईंट पर ईंट रख कर बनाया गया था आज सैकड़ों वर्षों से सुरक्षित खड़ा है। जिस की मिसाल भारत में ही मिल सकती है, अन्यत्र नहीं (सुना है कांग्रेस सरकार ने केवल नमूने के लिये टुकड़ा बचा कर शेष में चूना भरवा दिया है) ग्वालियर के किले की तेली की लाट, सास-बहू का मन्दिर इत्यादि। दक्षिणी प्रान्तों में ऐसे कारीगरी के चमत्कार बहुत सुनने में आते हैं।

ढाके की मलमल प्रसिद्ध है। काश्मीर की रिंग-शाल, शाह तोष इत्यादि, जो अंगूठी में से निकाल कर आज भी दिखाये जाते हैं, यह सब परम्परागत कारीगरी उनके रगों में रमी हुई है।

लगभग ५० वर्ष पूर्व की मिर्जापुर की बात है। एक अंगरेज कलक्टर नित्य प्रातःकाल घूमने जाया करता था। बीच में एक कुम्हार का आंवा था। उस कुम्हार ने कलक्टर की मिट्टी की ऐसी सुन्दर (उसी के बराबर की) मूर्ति बनाई जो देखने से पता नहीं चले कि यह मूर्ति है ? अथवा कलक्टर स्वयं खड़ा है। उसे देख कर कलक्टर बड़ा प्रसन्न हुआ और डेढ़ सौ रुपये देकर वह मूर्ति खरीदली। ऐसी कारीगरी के चमत्कार पूर्ण नमूने अब भी भारत भर में बहुत से बिखरे पड़े हैं और बहुत से नष्ट कर दिये गये हैं। जैसे कि हिलने वाली दीवारें तथा खम्बे इत्यादि जो कि पहले थे किन्तु अब हैं या नहीं यह ज्ञात नहीं हो पाया। यह सब वंश परम्परा से एक ही कर्म करते रहने से सम्भव था। आज भी एक मल्लाह का ४-७ वर्ष का बालक जिस प्रकार ७०-८० फुट से कूदता है, तैरता है और डुबकी लगाता है इस

प्रकार अन्य जाति के बालक न इतने ऊंचे से कूद सकते हैं, न डुबकी लगा सकते हैं, न उस प्रकार तैर ही सकते हैं।

यह लोग यद्यपि पढना लिखना नहीं जानते, इन्हें इसकी आवश्यकता भी नहीं, एक एक कौडी का हिसाब इन्हें जबानी याद रहता था। सारा कारोबार बिना लिखत-पढत के केवल परस्पर विश्वास के आधार पर चलता था।

परस्पर आचरण में इतनी विषमता होते हुये भी हम लोग प्रत्येक वस्तु के लिये एक दूसरे पर आश्रित रहते थे। ब्राह्मण महर्षियों ने छूत अछूत का भेद रखते हुये भी सबको संगठित रखने की कितनी सुन्दर और सुदृढ़ योजना बनाई थी, जिसे आज तक कोई भी बाहरी शक्ति भग न कर सकी। यहां तक कि लाख षडयन्त्र रचने पर भी परस्पर किसी प्रकार की अशान्ति भी उत्पन्न न कर सकी। जब तक कि हमारे ही भाई-बन्धु उनके इस षड्यन्त्र में सम्मिलित न हो गये, वे हमारे बीच फूट डालने में सफल न हो पाये।

पारस्परिक सम्बन्ध

हमारे परस्पर क्या सम्बन्ध थे और हम किस प्रकार परस्पर एक दूसरे से गुथे हुये थे, इस पर भी एक दृष्टि डाल लेनी चाहिये—

हमारे यहां कोई यज्ञ, महोत्सव, जनेऊ, विवाह, मुण्डन अथवा बालकों के अन्य कोई वैदिक संस्कार प्रारम्भ करते समय सर्व प्रथम सीधा छूने का चलन है। जिसमें नये सूप की आवश्यकता पड़ती है। सात सुहागिने चौक पर बैठ कर नए सूप से अनाज फटकती हैं। स्मरण रहे सूप, डलिया इत्यादि बनाने का

सकते, जब तक सबका सहयोग न मिले। सब भिन्न भिन्न
में विभक्त होते हुये भी आर्थिक या श्रम तन्त्र के सहारे
हैं। कारण कि प्रत्येक को एक सामाजिक कर्म का परम्प-
एकाधिकार मिला हुआ है (था)। यहां तक कि श्मशान
ा अधिकारी मेहतर को माना गया है। उसका कर चुकाये
ज भी कोई मुर्दे को नहीं जला सकता।

दि कहा जाय कि आज इन सब पुरानी बातों की ओर
र देता है, तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि आज
रा न मानना ही तो अशान्ति का कारण है। इसीलिये
शान्ति छाई हुई है।

ार्थ में उनका (निम्न वर्ग का) शोषण तो आज हो रहा
ने जो कुछ किया, हम आज प्रगतिशीलता के नाम
बात में उनकी नकल करने लगे हैं।

ज सबसे बड़े पूंजीपति वे माने जा सकते हैं, जिनकी
ी हैं, अथवा किसी प्रकार के कारखाने चालू हैं।
ाने चाहे लोहे के हों, रुई के हों, सूत या कपड़े के हों,
े, चमड़े के अथवा किसी भी प्रकार के हों। उनके
से खिच कर पूंजी संचित हो जाया करती है।
े धनवान ये मिल वाले हैं उतने राजा महा-
वर्ण धर्म के व्यवस्थापकों ने (जिन्हें आज
ाता है) यह सारी पूंजी निम्न वर्ग में विभक्त
एक कौड़ी भी अपनी ओर न आने पाये

एकाधिकार ढेढ़ (डोम) को मिला हुआ है (अब 'है' के स्थान पर सभी में 'था' कहना चाहिये। क्योंकि अब सब को सब काम करने का समान अधिकार मिल गया है) जब तक उससे सूप नहीं लाते, तब तक संस्कार प्रारम्भ नहीं कर पाते। विवाह में लड़के तथा लड़की को तेल चढ़ता है। तेल तेली निकालता है। जब तक तेली से तेल और कुम्हार से शकोरे आदि नहीं लाते, तब तक टेहले पूरे नहीं होते। विवाह के पूर्व मिट्टी के घड़े से "कलश पूजन" होता है, जिसे कुम्हार बनाता है। मौर, मौरी, सेहरा, वन्दनवार इत्यादि जब तक मालिन नहीं लाती। तब तक विवाह करने का सामाजिक विधान नहीं है। इसी प्रकार नाई बुलावा देगा। बारी पतल दोने इत्यादि लायेगा, कहार पानी भरेगा, सबको नेग-जोग दिये जायेंगे, तभी हमारे महत्त्व-पूर्ण संस्कार सम्पन्न हो सकते हैं।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि ढेढ़ (डोम) मेहतरों में भी सबसे नीच माने गये हैं, किन्तु उनके बनाये हुये सूप, डलिया, पंखे इत्यादि पवित्र हैं। यदि हम इन्हें घर में बनाने लगें तो न केवल सूप आदि अपवित्र माने जाते हैं, बल्कि साथ में हम भी अपवित्र माने जा सकते हैं, क्योंकि ऐसा करने से एक विशेष वर्ग की जीविका का अपहरण होता है। इसी प्रकार तेली अपवित्र है, किन्तु उसका तेल पवित्र है। कुम्हार अपवित्र है, परन्तु उसका बनाया घड़ा पवित्र है। धोबी अछूत है, किन्तु उसके धुले कपड़े पवित्र होते हैं। बल्कि सूतक, सोवड़ आदि के कपड़े जब तक धोबी के पाट से नहीं छू जाते, तब तक उन्हें किसी प्रकार पवित्र नहीं माना जा सकता।

यदि देखा जाय तो न केवल विवाह शादी, बल्कि हमारे कोई भी अन्य संस्कार, यज्ञ-आदि महोत्सव उस समय तक पूरे

नहीं उतरते, जब तक सबका सहयोग न मिले। सब भिन्न-भिन्न वर्ग में विभक्त होते हुये भी आर्थिक या श्रम तन्त्र के सहारे संयुक्त हैं। कारण कि प्रत्येक को एक सामाजिक कर्म का परम्परागत एकाधिकार मिला हुआ है (था)। यहां तक कि स्मशान घाट का अधिकारी मेहतर को माना गया है। उसका कर चुकाये विना आज भी कोई मुर्दे को नहीं जला सकता।

यदि कहा जाय कि आज इन सब पुरानी वातों की ओर कौन ध्यान देता है, तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि आज इन वातों का न मानना ही तो अशान्ति का कारण है। इसीलिये व्यापक अशान्ति छाई हुई है।

यथार्थ में उनका (निम्न वर्ग का) शोषण तो आज हो रहा है। अंग्रेजों ने जो कुछ किया, हम आज प्रगतिशीलता के नाम पर प्रत्येक बात में उनकी नकल करने लगे हैं।

आज सबसे बड़े पूंजीपति वे माने जा सकते हैं, जिनकी मिलें चल रही हैं, अथवा किसी प्रकार के कारखाने चालू हैं। मिलें या कारखाने चाहे लोहे के हों, रुई के हों, सूत या कपड़े के हों, चीनी के, तेल के, चमड़े के अथवा किसी भी प्रकार के हों। उनके पास चारों ओर से खिंच कर पूंजी संचित हो जाया करती है। अतः आज जितने धनवान ये मिल वाले हैं उतने राजा महाराजा भी नहीं हैं। वर्ण धर्म के व्यवस्थापकों ने (जिन्हें आज अत्याचारी माना जाता है) यह सारी पूंजी निम्न वर्ग में विभक्त की थी और उनमें से एक कौड़ी भी अपनी ओर न आने पाये, इसके लिये प्रतिज्ञा बद्ध करने की व्यवस्था की थी। आज भी कोई प्रत्यक्ष में अछूतों से व्याज नहीं लेता। उनसे व्याज लेना पाप कर्म माना गया है।

समाचार पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित आंकड़ों के

अनुसार इस समय देश में कुल मिला कर लगभग ५० लाख मजदूर मिलों में तथा अन्य कारखानों में काम पर लगे हुये हैं। जबकि केवल अछूतों की ही संख्या ५.६ करोड की मानी गई है। सवर्ण मजदूर ब्राह्मण और क्षत्रिय इनसे कहीं अधिक हैं (वैश्य आज भी व्यापार आदि तथा मिलों द्वारा पूजी संचित करने में व्यस्त हैं) आज प्रत्येक काम (श्रम) करने के लिये यान्त्रिक जाल बिछाया जा रहा है जिसमें दस व्यक्ति का काम एक व्यक्ति सरलता पूर्वक कर सकता है। अर्थात् जिस काम के करने से दस हजार व्यक्तियों के परिवार का पेट पलता था वहा अधिक से अधिक एक हजार व्यक्तियों को काम में लगाकर शेष नौ हजार को बेकार कर दिया गया है। उनकी रोजी और रोटी छीन ली गयी है। आज प्रत्येक काम करने की मशीनें चल गई हैं। आटा, दाल, चावल, रुई, सूत, कपास, कपड़ा सब की मशीनें आज चालू हैं। कुछ फैक्टरी, लोंडरी और मिट्टी के वर्तन बनाने की पौटरी, इत्यादि भी चल रही हैं। इनमें आट पीसने के अतिरिक्त सब वे काम हैं जिनसे अछूत वर्ग के जीविका चलती थी। इस प्रकार यान्त्रिक करण के द्वारा प्रत्यक्ष में भी निम्न वर्ग का शोपण हो रहा है। किन्तु इसका न तो आज तक हरिजनों ने कोई विरोध प्रदर्शित किया और न उनके हिमायती तथा कथित उद्धारकोंने कोई नारा ही बुलन्द किया। करते भी कैसे ? ऐसा करके तो बड़े बड़े लीडरों का, पूंजी पतियों का और आधुनिक सभ्यता के पुजारियों का सामना जो करना पड़ता था, तो प्रतिगामी मनोवृति रखने वालों, या दकिया नूसियों की सूची में नाम लिख जाता। अत अंगरेजों का बताया सरल नुसखा यह कि एक ओर से उनका शोषण करते जाना और उनका ध्यान बटाये रखने के लिये, तथा परस्पर कटुता उत्पन्न करने के लिये—यह प्रचार करते जाना कि सवर्णों ने तुम पर अत्याचा

किया है, तुम्हें छूते नहीं इत्यादि। आज हम लोग वे सभी हथकण्डे काम में ला रहे हैं और सब वही शब्द दोहराते जा रहे हैं जोकि वे कहते आये हैं। भेद केवल इतना है कि वे भारत पर शासन करने तथा अपना धर्म फैलाने के लिये यह प्रचार करते रहे हैं और हम अपने धर्म को मिटाने के लिये तथा अज्ञात में (जनता में परस्पर कटुता उत्पन्न कर) शासन को कमजोर बनाने के लिये यह सब कर रहे हैं। सनातन धर्म के प्रवर्तकों, व्यवस्थापकों तथा ब्राह्मणों को कोसना और उन्हें गाली देना आज सबसे सरल साधन है। क्योंकि यही वर्ग आज असहायावस्था में है जिसकी हिमायत करने वाला, उसका पक्ष लेने वाला और उसकी ओर से बोलने वाला आज शक्तिहीन है। जो शक्ति सम्पन्न हैं, वे ही तो आज इस (वैदिक धर्म) की जड़ काटने में लगे हैं ?

स्मरण रहे! बाहरी आक्रमण का सामना किया जा सकता है, उससे रक्षा भी की जा सकती है, किन्तु आत्मघात करने वाले की रक्षा करने में ईश्वर भी समर्थ नहीं हो सकता। हिन्दू समाज आज आत्मघात करने पर तुला हुआ है। उसका रक्षक कौन बन सकता है ?

यज्ञ शेष

धर्म ग्रन्थों में यज्ञ शेष खाने की आज्ञा का उल्लेख मिलता है। हम लोग उनकी इस आज्ञा का पालन कहां तक कर पाये थे। इधर भी ध्यान दे लेना चाहिये।

इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया था कि अपने आश्रित जितने भी प्राणी हों, उनमें से कोई भूखा न रहे। यहां चींटी को चीनी और चिड़ियों को चारा नित्य नियम से डालना धर्मका अंग माना गया है। कौवा और कुत्ता दोनों चाण्डाल जाति के माने गये हैं, किन्तु गृहस्थ के लिये यह नियम था कि भोजन

करने के पूर्व प्रथम भगवान को भोग लगाना, फिर कौवे, कुत्ते और गऊ को खिलाना, फिर अतिथि को जिमा कर स्वयं भोजन करना चाहिये। क्योंकि ये सब ही गृहस्थ आश्रम का आसरा तकते हैं। कौवे और कुत्ते का भाग निकालने का यह भी अर्थ निकलता है कि जो सबसे अधिक निन्दनीय प्राणी है, वह भी कहीं भूखा न रह जाय। क्योंकि प्राणी मात्र को जीने का अधिकार है। कौवा और कुत्ता दोनों घरके आस पास रह कर भोजन का आसरा करते हैं, यह भी कारण है।

इसी प्रकार जो अपने गृहस्थ के आश्रित हो, वह भूखा न रहे। इसका विशेष ध्यान रक्खा गया है। निम्न वर्ग में केवल मेहतर की जमात ही ऐसी थी, जो रोटी के लिये हमारे आश्रित रही है, शेष सभी स्वतन्त्र व्यवसाय द्वारा अर्थोपार्जन करते रहे हैं। अतः प्रत्येक घर से मेहतर की नित्य की रोटी बन्धी थी (जो कि आज तक राशन के समय में भी चालू रही है)। इसके अतिरिक्त गृहस्थ घरों में पर्याप्त जूठन बचती थी, जो सब मेहतर के भाग की होती थी। (थाली में जूठन छोड़ना भी धर्म का अंग माना गया है) नित्य की रोटी इसके अतिरिक्त थी, जिन्हें वह खाते और बेचते रहे हैं।

जूठन का विशेष लाभ विवाह आदि में अथवा किसी बड़ी जेवनार में होता था, जबकि मेहतरों के पास भर-भर के टोकरे पूडी, खस्ता कचौड़ी और मिठाइयां जमा हो जाया करती थीं। वे स्वयं खाते, बांटते, बेचते और दूर-दूर पारसलें भेजते थे अब से लग-भग ४५ वर्ष पूर्व मैंने स्वयं पटने (बिहार) में यह देखा है कि बड़े-बड़े सेठों के यहां छोटी-छोटी बातों में जैसे कि सीमन्तो नयन संस्कार, बच्चे की छठी-दुसूठन आदि में बड़े-बड़े भोज हो जाया करते थे, जिसमें हजारों स्त्री-पुरुष जीमने बैठते

थे, १५-२० दिन पूर्व से हलवाई बैठता। मनो मिठाइयां बनती १०-१५ मिठाई नमकीन आदि का होना उन दिनों साधारण बात थी। बड़े ठाठ-बाट मे महिलायें आतीं, बड़ी खुशामद करवाने पर जीमने बैठतीं, उनके आगे भर-भर के पत्तलें परसी जातीं, बहुत कहने पर ये किसी एक मिठाई आदि का टुकड़ा तोड़कर मुख में डालतीं। वह जिसमें हाथ लगातीं निहोरने वाली वही मिठाई आदि और परस देतीं। वे सब (पूरी पंक्ति) भरी-भरी पत्तलें छोड़ कर उठ खड़ी होतीं। जेवनार का यह क्रम दोपहर या मध्यान्ह से लेकर रात के १२ बजे तक चालू रहता। हजारों स्त्री-पुरुष जीमते और सब (विशेष कर स्त्रियां) इसी प्रकार जूठन छोड़ते। तात्पर्य यह कि महीनों पहले से जो मिठाई आदि बनती उसका कम से कम आधा भाग मेहतरों के घर में अवश्य पहुँच जाता, वह मन-मन भर के बीसियों टोकरे भरे हुए मिठाई आदि ले जाते थे यह सब बड़े-बड़े सेठ साहूकारों की बातें हैं। किन्तु देखना यह भी चाहिये कि साधारण या गरीब स्थिति के लोग क्या करते थे।

छोटी-छोटी बातों में जेवनारें उनमें भी हुआ करती थीं। भारत के अधिकांश भाग में यही चलन पाया जाता है। है के स्थान पर सभी जगह 'थी' समझना चाहिये। क्योंकि खाद्य-समस्या ने सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त करदी है, नहीं तो विवाह आदि में कुल मिलाकर आठ-दस कच्ची और पक्की जेवनार बन्धी होती हुई थीं। जिसमें सामान्य व्यवहारी तथा बिरादरी वालों को जिमाया जाता, जो न आ सकते थे, उनके लिये परोसा भेजा जाता। इसमें नाई, बारी, मेहतर तथा सब गृहस्थ सम्बन्धित निम्न वर्ग का भाग होता था, बराबर वाले केवल जीम के चले जाते थे किन्तु निम्न वर्ग (जिन्हें पहुनी परजा बहुधा कहा जाता है) रोटी या पूड़ी का पूरा बीसौड़ा, या चालीसा गिनाता था।

उनका यह प्रत्येक जेवनारों के साथ बन्धा हक माना गया था। कम पड़ने पर चाहे दुबारा बनानी पड़े। किन्तु उनकी पूर्ति करना परमावश्यक था। छोटी बातों में जैसे ब्याह, श्राद्ध और बच्चों की साल गिरह इत्यादि में पक्की और कच्ची जेवनारें अवश्य हो जाया करती थीं और निम्न वर्ग को किसी न किसी के यहाँ से विशेष प्रकार का भोजन नित्य प्रति मिला करता था।

इसके अतिरिक्त सात वार और नौ तेहवार वाली कहावत भी हिन्दुओं का प्रसिद्ध है। अर्थात् बहुत कम महीने ऐसे आते हैं जिनमें कोई त्योहार न पड़ता हो। या कोई बड़े व्रत-उपवास आदि न पड़ते हों। भिन्न-भिन्न तेहवारों या व्रत आदि में भिन्न-भिन्न प्रकार के खाद्य-पदार्थ अथवा ऋतु की नई उपज के प्रयोग करने का चलन है। इन सबमें पहुनी-परजा की तेहवारी बन्धी होती थी। अतः एक गरीब गृहस्थ अपने घर के लिये चाहे कुछ भी न करे किन्तु लोक-लाज रखने के निमित्त उनके देने के लिये कुछ न कुछ रखना अवश्य पड़ता था।

यद्यपि पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से और आत्म विस्मृति-वश आज वे बातें नहीं रही। न वह भाव ही है नवीनता के मोह में और प्रगति शीलता की आंधी में सब उड़ गये। देखते ही देखते पिछले २०-२५ वर्ष में जितना परिवर्तन हुआ है, इतना कदाचित् ही पहले कभी हुआ हो। अतः ये सभी बातें प्रायः समाप्त हो गई हैं। यदि देखा जाय तो हमारे यहाँ कोई भी पदार्थ अकेले खाने का चलन नहीं था। छुआ-छूत का भेद होते हुये भी छोटे-छोटे पदार्थों को भी सब मिल-बांट कर खाते थे।

यदि देवठान का मत करते तो नई शकर कन्द, सिंघाड़े का फलाहार करते और पहुनी परजा को सिंघाड़े और शकर कंद की तेहवारी देते। मकर की संक्रान्ति को नये चावल की खिचड़ी

(चिउड़ा) और नये तिल के लड्डू इत्यादि मस करें ब्राह्मणों को देते हैं ना पहुनी परजा को खिचड़ी, तिलकुट चिउडा इत्यादि की तेहवारी देते हैं। इसी प्रकार बसन्त के पूड़ी-पुये, होली के गूभा पपड़ी, बासेवडे के पूडी गुल-गुले, दुर्गाष्टमी की हलुआ-पूडी, रामनौमी का प्रसाद, सतूआ सक्रान्ति का गुड़ सत्तू, अखतीज की अंगुरी, बड़हर, तीज के पूड़ी, पुये, नाग पचमी की खीर मलूनों की सिमयी, बहुरा चौथ का मिस्सा, हर छठ के चबेने, जन्माष्टमी की पाग पजरी, चौथ चन्दे की मिठाई (लड्डू कनागता की पूडी कचौड़ी, दुर्गाष्टमी की पुन हलुआ पूड़ी, दशहरे की मिठाई, शरद पूर्णिमा की खीर, करवाचौथ के पकवान, अहोई की पापड़ी, दिवाली की खील बताशे और मिठाई, तमाम इनाम इत्यादि, अन्नकूट का प्रसाद। इन सबमें पहुंनी प्रजा को तेहवारी मिलती थी। इसलिये हमारा भोजन यह शेप ही होता था। क्योंकि आज वैदिक धर्म, संस्कृति और सभ्यता को समाप्त किया जा रहा है। इसलिये यह सब उनके पूर्व ही समाप्त प्राय हो चुके हैं। जो कुछ नाम मात्र को बचे हैं, उनके भी शीघ्र समाप्त हो जाने के आसार दिखाई दे रहे हैं।

केवल हर्ष के समय ही निम्न वर्ग का ध्यान रक्खा जाता हो यह बात नहीं, शोक के समय भी पहले इन्हीं लोगों का स्मरण किया जाता है। किसी की मृत्यु होने पर मृतक के शरीर के तथा ओढ़ने और बिछाने के सब कपडे मेहतर लेता है, मृतक के ऊपर जो भारी शाल आदि डाली जाती है वह भी घर के मेहतर को मिलती है, शेप कफन श्मशान का भंगी लेता है। साथ में कर भी लेता है (जो आज नाम मात्र का रह गया है) दुर्भाग्यवश यदि मृतक कोई विधवा हुई तो उसके भी सब कपडे मेहतर को मिल जाते हैं। कुछ समय पूर्व तक जो बड़े घरों की स्त्रियां मरती थी, उनके शरीर पर जितने जेवर या कपडे होते वे भी सब या

कुछ मेहतरानी को मिल जाते थे।

सन् ३३-३४ की बात है, देहली में घर के मेहतर के लड़के का विवाह था, वह एक बड़ा कीमती जरी का बिलकुल नया दुपट्टा लेकर आया, जिसका मूल्य उस समय भी कम से कम २००) रु० अवश्य होगा, किन्तु वह उसके खरीदने के लिये मेरे से ३५ रु० मांगने लगा। मैंने पूछा, इतना कीमती दुपट्टा ३५ रु० में कैसे मिल रहा है। तब उसने बताया कि एक सेठानी मरी है, उसके ऊपर यह दुपट्टा डाला गया था। अतः यह दुपट्टा और कुछ सोने तथा चांदी के गहने उसके मेहतर को मिले हैं, वह इसे ३५ रु० में देने को राजी हो गया है।

मेहतरों के मोहल्ले होते हैं, जिन्हें वे जब चाहें जिसके हाथ बेच सकते हैं या गिरवी रख सकते हैं। मोहल्लों की कम या अधिक कीमत उसमें रहने वालों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है। जिसमें कोई धनी सेठ साहूकार हो, उसका मूल्य बढ़ जाता है। ग्रहण के दान का पात्र भी अछूत वर्ग (मेहतर) को माना गया है।

वर्णाश्रम धर्म के व्यवस्थापकों का कड़ा आदेश था कि निम्न वर्ग, शूद्र अथवा जिसके कर्म अपवित्र हों, उनके स्पर्श मात्र से बचे रहना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि उनका राई के बराबर आर्थिक अंश तक ग्रहण करना वर्जित मान लिया गया था। इसी लिये अन्त्यजों से व्याज लेना भी पातक माना गया था और इन सब नियमों का सख्ती से पालन किया जाता रहा है। किन्तु कोई प्रमाण प्रस्तुत किये बिना आज यदि वह हमें शोषक बताते हैं, तो उनकी कोई जुबान को तो पकड़ नहीं सकता, उनके हिमायती आज बहुत हैं आज हम अपराधी और वे न्यायी हैं, उदार हैं। हमारी दकियानूसी बातें सुनने वाला कौन है? ये

पिछड़ी बातें रुचती किसे हैं।

यह बताया जा चुका है कि जिसके कर्म अपवित्र हैं, वही अपवित्र है उसी को अछूत माना जा सकता है, यदि ब्राह्मण अपवित्र कर्म करता है, तो उसे भी अछूत के समान ही अपवित्र माना जा सकता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण—महा ब्राह्मण, जोशी, (शनीचरे) राय और भाट आदि हैं जो कि निषिद्ध तथा अपवित्र दान लेते हैं। अतः इन लोगों को भी अछूतों के समान ही अपवित्र माना गया है। इन्हें भी कोई छूता नहीं, यहां तक कि इन्हें कोई दरवाजे के भीतर भी घुसने नहीं देता।

आश्चर्य और खेद तो इस बात का है कि हमारे सवर्ण आलोचक अपने घरों के आचार-विचार, खान पान, रहन-सहन सबको भुला कर ईसाई पादरियों के स्वर में स्वर मिला कर वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था के सद्गुण, सद्भाव को दुर्गुण, दुराचार इत्यादि बता कर उसका विरोध करने में आकाश-पाताल एक करते प्रतीत हो रहे हैं। अतः देखना यह भी है कि क्या हरिजनों के साथ सचमुच अन्याय किया गया है।

हमारे सवर्ण आलोचक यहां थोड़ा आत्म-निरीक्षण करें और यह भी देखें कि उनके बड़े-बूढ़े न केवल माता-पिता बल्कि उनके दादा-दादी अपने घर मे किस आचार-विचार का पालन करते आये हैं और हरिजन आलोचकों से भी निवेदन है कि वे एक बार देश का भ्रमण करके हिन्दू-धर्म, संस्कृति उनके संस्कार, नित्य के यम-नियम, संयम, आचार-विचार, पूजा-पाठ, ध्यान-ध्यान, उपासना इत्यादि साधनाओं के विधि-प्रकार का एक बार परीक्षण, छान-बीन और अध्ययन करके देखें तो बहुत सम्भव है उनकी शंकाओं का स्वतः समाधान हो जाय। ऐसा करने से उनका यह भ्रम भी दूर हो जायगा कि सवर्णों ने उनके साथ

भेद-भाव का बर्ताव किया है। साथ ही उन्हें यह भी ज्ञात होगा कि वर्णाश्रम धर्म का प्रधान अंग तप त्याग और कठिनाई सहन करना है। आत्मा का विकास, मन, शरीर और आचरण की पवित्रता तथा आरोग्यता के लिये शुद्ध और पवित्र होना परमावश्यक है।

जीवन का प्रधान अंग भोजन है और तपस्या का प्रधान अंग भी भोजन है मनुष्य की नीयत सर्व प्रथम, भोजन (उत्तम खाद्य पदार्थ) पर डोलती है। भोजन की चोरी करके ही मनुष्य चोरी करने का अभ्यासी बनता है। इसलिये साधना का प्रधान अंग भोजन को माना है। अर्थात् गृहस्थ जीवन में रह कर भी भोजन में हेर-फेर, भांति-भांति के संयम्-नियम, व्रत, उपवास, आचार, विचार इत्यादि द्वारा अपने शरीर को तपाने तथा मन पर नियन्त्रण रखने की परम्परा सी चली आ रही है। इन सबका मूल कारण अपने आचरण को शुद्ध-पवित्र और निर्मल बनाना, चरित्र में हीनता न आने देना तथा नैतिक स्तर को ऊंचा उठाना रहा है। साथ ही गृहस्थाश्रम जो भोग प्रधान आश्रम है। उसे तपोमय बना डालने का इससे उत्तम दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

ये साधनायें क्या थीं। इस पर भी ध्यान देना यहां आवश्यक है। इनमें से जो मुझे ज्ञात हैं, वे इस प्रकार हैं—

साधनायें

यों तो वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था के अन्तर्गत केवल चार वर्ण हैं। किन्तु इनकी उपजातियां अनगिनत हैं। शूद्रों को छोड़ कर कोई जाति ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी अन्य जाति के हाथ का छुआ भोजन नहीं करती। अनेक प्रान्तों में और अनेक जातियों में (विशेष कर उत्तर प्रदेश और बिहार में) ऐसे कठोर

नियम का पालन किया जाता है, जिसके घर के व्यक्ति घर में ही एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। अनेक जातियों में अपनी बेटी के हाथ का छुआ कच्चा भोजन नहीं करते। कई जातियों में पुत्र-वधू के हाथ का छुआ भोजन करना वर्जित माना गया है कोई क्वारी लड़की और कोई ब्याही लड़की के हाथ का छुआ (कच्चा) भोजन करने से परहेज करते हैं। कोई लड़की मात्र के हाथ का छुआ नहीं खाते। इन सबका मूल कारण स्वावलम्बन और अपने मन तथा शरीर को कसने का साधन मात्र माना जा सकता है, न कि परस्पर द्वेष के कारण अथवा शत्रुता वश ऐसा करते हैं। शत्रुता अधिक समय तक चलती नहीं। यदि चलती है तो परस्पर युद्ध का होना अनिवार्य हो जाता है। किन्तु वर्णाश्रम धर्म के अन्तर्गत कभी (पूर्व इतिहास में भी) एक जाति का दूसरी जाति से युद्ध का होना सुनने में नहीं आया। अंगरेज लोग भी (जिन्होंने हिन्दू समाज के अवगुण टटोलने में कोई कसर नहीं छोड़ी और राई के समान दोषों को हिमालय के समान सिद्ध करने की न केवल चेष्टा की, बल्कि इसमें पूरी सफलता भी प्राप्त की) इसे सिद्ध न कर सके।

हरिजनों को न छूना ही सवर्णों का बहुत बड़ा अपराध माना गया है। अतः देखना चाहिये कि हमारे घरों में क्या होता है।

यहां चौके में बिना धुले कपड़े पहिने एक बच्चे के भी चले जाने पर वह चौका अपवित्र और भोजन त्याज्य समझा जाता था। यदि हमें ही भोजन करना है और साधारण कपड़े से हमारा ही पैर चौके में पड़ जाय, तो नियम के अनुसार हमारे लिये ही भोजन त्याजनीय हो जाता है। भोजन बनाने और खाने के समय पहिनने वाले कपड़े (धोती इत्यादि) जो

धोकर सूखने के लिये डाले गये हों, उनके सूखने पर साधारण कपड़े से अपना ही हाथ या पल्ला उससे छू जाय तो वह पुनः धुलने के उपरान्त ही काम में लाये जा सकते हैं।

नित्य कृत्य के उपरान्त जब तक कपड़े बदल न लें, तब तक हम अपने ही घर मे और अपने ही लिये हरिजनों के समय अछूत बने रहते हैं। उस स्थिति मे कुआं, पड़हरी, पान दान तथा अन्य किसी वस्तु को नहीं छू सकते, चौके और मन्दिर के तो पास भी नहीं फटक सकते। तीन से सात बार तक मिट्टी से हाथ धोने तथा इतनी ही बार लोटा मांजने का नियम है। अधिकांश घरों में नित्य क्रिया के उपरान्त स्नान करने का भी चलन देखने मे आया है। प्रातः उठ कर स्नान किये बिना जल तक ग्रहण करना वर्जित माना गया है। अधिकांश व्यक्ति इसका पालन करते रहे हैं। ये सब तप के अंग हैं।

यद्यपि आज के सुधारक तथा प्रगतिशील इन्हें ढोंग या पाखण्ड इत्यादि कह कर इनकी निन्दा करते हैं, किन्तु इस ओर कोई ध्यान नहीं देता कि इनका पालन करना कितना कठिन है और धर्म का मूलाधार कठिनाई सहन करना ही माना गया है।

जिनके अपने घरों मे ऐसे संस्कार और आचार-विचार का पालन किया जाता हो, उनका हरिजनों के सम्पर्क मे आने से झिझकना स्वाभाविक भी है। क्योंकि हरिजन लोग महीनों नहाते धोते नहीं। उसी हाथ से मैला उठाते और उसी हाथ से रोटी लेते जाते हैं। यह बात नई दिल्ली तक के मेहतरों में पाई जाती है जिन्हें कि महात्मा गान्धी तक के सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है।

सवर्ण और अवर्ण की यह विभिन्न मनोवृति तथा आच-

रण की भिन्नता भी प्रत्यक्ष में भेद के अनेक कारणों में से एक कारण है।

हरिजनों के हितैषी प्रथम उन्हें सवर्णो के समान स्वच्छ और पवित्र रहना सिखावें और उनकी मानसिक स्थिति सुधारें फिर जितने अछूत भाई हैं, उन सबको परस्पर छूत छात के भेद से मुक्त करें, तथा सबका परस्पर खान पान, हुक्का पानी एक करें। पहिले घर के भेद को मिटा कर बाद में सवर्णों को चुनौती देने आगे बढ़ें। क्योंकि हरिजनों की एक जाति नहीं है। न उनका खान-पान ही एक है। उनमे भी अनेक जाति तथा उपजातिया हैं। जैसे धोबी, तेली, लोहार, कुम्हार, महार, चमार, कोरी, कोली, खटीक, मछुये, मल्लाह, दुसाध, धानुक, मेहतर और डोम इत्यादि। इन सब में एक-एक में अनेक जातिया हैं, सब एक दूसरे से परहेज करते हैं। केवल मेहतरों की ही वीसियों जातिया हैं, जिनके भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न नाम हैं। मेरे पूछने पर एक बालमीकि समाज के मेहतर ने बताया कि—"मेरे से नीची केवल यू० पी० में २३ जातियां हैं, हम उनसे मिलते जुलते नहीं। न उनका छुआ पानी पीते हैं। यद्यपि वह सब जातियों के नाम नहीं बता सका। केवल बालमीकि, हेलेह, डुमडे, और धानुख ये ५ नाम बता सका। यह बालमीकी समाज का मेहतर इनमें से किसी के हाथ का छुआ पानी तक नहीं पीता—ऐसा उसका कहना है।

मध्य भारत के बडवानी क्षेत्र में (जो कि उस समय स्वतन्त्र रियासत थी) मेरे पूछने पर एक मेहतरानी ने बताया कि मारवाडी मेहतर हमसे ऊचे हैं। वह हमारे हाथ की छुई बीड़ी तक नहीं पीते, हम उनके हाथ की छुई रोटी भी खा लेते हैं। गुजराती मेहतर हमसे नीचे हैं, इसलिये हम लोग उनके

धोकर सूखने के लिये डाले गये हों, उनके सूखने पर साधारण कपड़े से अपना ही हाथ या पल्ला उससे छू जाय तो वह पुन धुलने के उपरान्त ही काम में लाये जा सकते हैं।

नित्य कृत्य के उपरान्त जब तक कपड़े बदल न लें, तब तक हम अपने ही घर मे और अपने ही लिये हरिजनों के समय अछूत बने रहते हैं। उस स्थिति मे कुआ, पड़हरा, पान दान तथा अन्य किसी वस्तु को नहीं छू सकते, चौक और मन्दिर के तो पास भी नहीं फटक सकते। तीन से सात बार तक मिट्टी से हाथ धोने तथा इतना ही बार लोटा माजने का नियम है। अधिकाश घरों मे नित्य क्रिया के उपरान्त स्नान करने का भी चलन देखने मे आया है। प्रात उठ कर स्नान किये बिना जल तक ग्रहण करना वर्जित माना गया है। अधिकाश व्यक्ति इसका पालन करते रहे हैं। ये सब तप के अंग हैं।

यद्यपि आज के सुधारक तथा प्रगतिशील इन्हें ढोंग या पाखण्ड इत्यादि कह कर इनकी निन्दा करते हैं किन्तु इस ओर कोई ध्यान नहीं देता कि इनका पालन कर   तना कठिन है और धर्म का मूलाधार कठिनाई   ही माना गया है।

जिनके अपने घरों में ऐसे सस्कार अ का पालन किया जाता हो, उनका हरिजनों के झिझकना स्वाभाविक भी है। क्योंकि हरिजन धोते नहीं। उसी हाथ से मैला उठाते और लेते जाते हैं। यह बात नई दिल्ली तक के है जिन्हें कि महात्मा गान्धी तक के सौभाग्य प्राप्त हो चुका है।

सवर्ण और अवर्ण की यह विभिन्न

हाथ की छुई बीड़ी भी नहीं पीते। यह पूछने पर कि तुम कौन कौन हो ? उसने बताया कि हम निमाड़ी हैं। यह पूछने पर कि तुम एक दूसरे को छूते हो कि नहीं ? उत्तर मिला—सो सब मिल जुल कर बैठते हैं, एक दूसरे के बच्चों को गोद में खिलाते हैं, इसमें क्या है किन्तु हम उनके हाथ की छुई बीड़ी तक नहीं पीते और वह हमारे हा[illegible] [illegible]ी तक खा लेते हैं।

अधिकांश में आज हमारे भाई-बन्द ही हैं।

उनकी यह शिक्षा यह भेद भाव तथा सवर्णों के प्रति जिस कटुता का बीजारोपण आज किया जा रहा है आगे चलकर रंग लायेगा, जब कि भारत मे हिन्दू और मुसलमानों की भांति ही हिन्दूओं मे अनेक दल होंगे और तब यह निश्चित है कि हम उनकी सदभावना प्राप्त करने के निमित्त चाहे अपने अस्तित्व को भले ही मिटा दें, किन्तु उनका यह कहने का अधिकार सुरक्षित रहेगा कि "हम पर अत्याचार किया जा रहा है, हमारा शोषण किया गया है, हमें चूसा और दबाया गया है" इत्यादि और बहुत सम्भव है कि गृहयुद्ध के द्वारा देश के पुनः बटवारे की नौबत आ जाय।

अंगरेजों ने भारत में अपनी सत्ता सुरक्षित रखने के लिए, हमें आत्म विस्मृत करने के लिए, हमारी सधी हुई सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था को भंग कर परस्पर लड़ाते रहने के लिए, आधुनिक शिक्षा प्रणाली द्वारा जो फूट का बीज बोया था, जिस मन गढ़न्त इतिहास की रचना भारत को प्रदान की थी, उनके भारत छोड़ने तक जिसमें केवल अंकुर फूट पाया। इस विषवृक्ष के विरवे को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपरान्त हमने दूध से सींचना प्रारम्भ कर दिया। जो हमारी परस्पर सहायक जातियां थीं, आज वे डंके की चोट भंग की जा रही है। परस्पर विरोधी दलों को बढ़ावा दिया जा रहा है। आज करोड़ों की राशि आर्य विद्रोही दल खड़ा करने में लगाई जा रही है। जाने या अनजाने वर्ग विद्रोह को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

भारत मे हिन्दू-मुस्लिम भेद रूपी जो एक मुर्झाया सा पौधा था, ब्रिटिश सरकार ने उसे सींच कर विशाल वृक्ष के रूप में परिणत कर दिया और जाते २ भारत को तीन भागों में

हाथ की छुई बीड़ी भी नहीं पीते। यह पूछने पर कि तुम कौन कौन हो ? उसने बताया कि हम निमाड़ी हैं। यह पूछने पर कि तुम एक दूसरे को छूते हो कि नहीं ? उत्तर मिला—सो सब मिल जुल कर बैठते हैं, एक दूसरे के बच्चों को गोद मे खिलाते हैं, इसमें क्या है किन्तु हम उनके हाथ की छुई बीड़ी तक नहीं पीते और वह हमारे हाथ की रोटी तक खा लेते हैं।

तात्पर्य यह कि इन सब में ऊच-नीच का भेद है और ऊच नीच के हिसाब से सब एक दूसरे से परहेज करते हैं। बल्कि धोबी, तेली, कोरी, पासी, मल्लाह, कुम्हार और चमार इत्यादि सवर्णों के समान ही मेहतरों से परहेज करते हैं। इन सब में एक-एक में अनेक जातिया हैं, और सब एक दूसरे से परहेज रखते हैं। यदि देखा जाय तो इतना विचार सवर्ण आपस में नहीं करते फिर हमारे परहेज करने का तो कारण भी है। किन्तु इन लोगों के परस्पर भेद रखने का तो कोई कारण भी स्पष्ट नहीं है।

जो आपस में इतना भेद रखते हों वे दूसरे के भेद रखने पर आपत्ति करें। विशेष कर उस वर्ग से जिनके सहारे उनकी जीविका चलती हो, यह कुछ समझ में आने वाली बात नहीं।

यथार्थ में आपत्ति उठाना और समानता रखने का पाठ तो उन्हें पढाया जा रहा है। हम तो पाश्चात्यों के मानसिक दास बन गये हैं। उनकी हा में हा तथा उनकी राग में राग मिलाने मे ही गर्व का अनुभव करते हैं। हरिजनों के मस्तिष्क में यह बात कूट-कूट कर भरी जा रही है कि पिछले हजारों वर्षो से सवर्ण लोग तुम पर अत्याचार करते आये हैं, तुम्हारी हीना-वस्था का कारण ये ही हैं और उन्हें यह सब सिखाने वाले भी

अधिकांश में आज हमारे भाई-बन्द ही हैं।

उनकी यह शिक्षा यह भेद भाव तथा सवर्णों के प्रति जिस कटुता या बीजारोपण आज किया जा रहा है आगे चलकर रंग लायेगा, जब कि भारत में हिन्दू और मुसलमानों की भांति ही हिन्दुओं में अनेक दल होंगे और तब यह निश्चित है कि हम उनकी सद्भावना प्राप्त करने के निमित्त चाहे अपने अस्तित्व को भले ही मिटा दें, किन्तु उनका यह कहने का अधिकार सुरक्षित रहेगा कि "हम पर अत्याचार किया जा रहा है, हमारा शोषण किया गया है, हमें चूसा और दबाया गया है" इत्यादि और बहुत सम्भव है कि गृहयुद्ध के द्वारा देश के पुनः बटवारे की नौबत आ जाय।

अंगरेजों ने भारत में अपनी सत्ता सुरक्षित रखने के लिए, हमें आत्म विस्मृत करने के लिए, हमारी सधी हुई सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था को भंग कर परस्पर लड़ाते रहने के लिए, आधुनिक शिक्षा प्रणाली द्वारा जो फूट का बीज बोया था, जिस मन गढ़न्त इतिहास की रचना भारत को प्रदान की थी, उनके भारत छोड़ने तक जिसमें केवल अंकुर फूट पाया। इस विषवृक्ष के बिरवे को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपरान्त हमने दूध से सींचना प्रारम्भ कर दिया। जो हमारी परस्पर सहायक जातियां थीं, आज वे डंके की चोट भंग की जा रही हैं। परस्पर विरोधी दलों को बढ़ावा दिया जा रहा है। आज करोड़ों की राशि आर्य विद्रोही दल खड़ा करने में लगाई जा रही है।, जाने या अनजाने वर्ग विद्रोह को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

भारत में हिन्दू-मुस्लिम भेद रूपी जो एक मुर्झाया सा पौधा था, ब्रिटिश सरकार ने उसे सींच कर विशाल वृक्ष के रूप में परिणत कर दिया और जाते २ भारत को तीन भागों में

विभक्त कर गये। पाकिस्तान बन गया, सन ४० के पूर्व जिस प्रकार कभी २ पाकिस्तान का नाम सुनने में आया करता था, आज उसी प्रकार अछूतिस्तान, द्रविड़स्तान, सिखिस्तान, कोलस्तान, भीलस्तान, गोंडस्तान, झार-खण्ड, बन खण्ड इत्यादि की भनक कान में पड़ने लगी है। दिन देरी जा रही है जब कि ये सभी दल परस्पर विरोधी (विशेष कर आर्य विरोधी) झण्डे खड़े करेंगे, गृह-युद्ध के लिये ललकारेंगे, वर्ग संघर्ष छिड़ेगा, उस समय क्या श्री नेहरू जी (जो आज विश्व शान्ति का सेहरा बांधने की फिराक में हैं) अमर बन कर भारतीयों की मध्यस्थता कर पायेंगे ?

यह सब केवल मेरा मनोविकार या कपोल कल्पना मात्र नहीं है, समाचार पत्रों में प्रकाशित निम्नलिखित आंकड़े इसका प्रमाण हैं—

हिन्दुस्तान १३-८-४८ हरिजनों के प्रति हिन्दू समाज का रुख नहीं बदला,

वाल्मीकि जयन्ती पर श्री जग जीवन राम का भाषण,

नई दिल्ली १२ अगस्त। शोषित को शोषक कभी ऊपर नहीं उठाया करता, जो आज तक हमें चूसता और दबाता आया, उससे उद्धार की आशा रखना बिल्कुल बेकार है, इस उत्तेजना पूर्ण शब्दों में भारत सरकार के श्रम मंत्री श्री जगजीवन राम ने आज सायंकाल वाल्मीकि जयन्ती के उपलक्ष्य में श्री वाल्मीकि सभा नई दिल्ली की ओर से आयोजित सभा के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए हरिजनों को पाखाना उठाने का काम छोड़ने की सलाह दी।

उन्होंने कहा हमें चाहे जितनी भी कुर्बानी करनी पड़े, इस अन्याय को सहन नहीं करना चाहिये, मुझे यह देखकर

प्रसन्नता होती है कि हमारे लोगों में जागृति पैदा हो चुकी है, और उनमें अन्याय का प्रतिरोध करने की शक्ति आने लगी है।

लोकसभा के शरद कालीन अधिवेशन के अन्तिम दिवस अनुसूचित जातियों के प्रति बहस में भाग लेते समय श्री प्यारेलाल कुरील (कांग्रेस) ने सरकार की नीति की तीव्र आलोचना की और धमकी दी कि अगर सरकार इनकी उन्नति के लिये कदम नहीं उठाएगी तो हिन्दू और हरिजनों के बीच दंगे हो जाने का भय है। (हिन्दुस्तान २५-१२-५४)

गमित चौधरी और भीलों को, जिनमें भीलों की संख्या सबसे अधिक है अब तक आदि वासी समझा जाता रहा है और एक के बाद एक राजनैतिक तथा सामाजिक परिवर्तन उन पर से सुबह के कुहरे की भांति गुजर गये हैं और अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ पाए हैं।

इन व्यक्तियों का दावा है कि वे इस क्षेत्र के मूल निवासी हैं। अब इन व्यक्तियों में भी जमीन की भूख जाग उठी है। उनमें जो राजनीतिक दृष्टि से अधिक जागरूक हैं, उनका दावा है कि जिस भूमि पर आर्यों के आक्रमण से पहले उनका अधिकार था, उस पर अब उन्हें गुलामों जैसी हालत में कर दिया गया है। उनमें अधिक विचार शील लोग आर्य पूर्व युग पर भी दृष्टि पात करते हैं जब उनके पूर्वज इसी भूमि के मालिक थे। इनमें से कुछ अपने सजातियों से कहते भी हैं—यह सभी भूमि आदिवासियों की थी, लेकिन आर्य उसे हड़प कर गये। अब हमें मिलनी चाहिए। इस नई चेतना और उथल पुथल के कारण आदि वासियों का जमींदारों से प्रायः संघर्ष होता है और कभी-कभी वे अधिकारियों से भी भिड़ जाते हैं।

आर्थिक कारणों से जटिल बने सामाजिक परिवर्तन के राजनीतिक किसान आन्दोलन में बदल जाने का खतरा है।

(हिन्दुस्तान १४-१-५२)

हिन्दुस्तान ४ मार्च सन् १९५५ (हिसार डाक से) तहसील हांसी के गांव गगन खेड़ी में चौ० मामराज एम० एल० ए० भिवानी की अध्यक्षता में हरिजनों का एक सम्मेलन हुआ। अध्यक्ष की सेवा में मान पत्र भेंट किया गया।

दलित जातीय सघ के मन्त्री ने भाषण देते हुए कहा कि पंचायतें हरिजनों पर जुर्माने कर रही हैं। उनके बाड़े उठवा दिए हैं। हरिजन जमीदारों के कर्जों के नीचे दबे हुए हैं। हरिजनों के सम्बन्ध के कानून को कार्यान्वित करने में अधिकारी देर लगा रहे हैं।

हिन्दू शब्द का खात्मा

स्वामी रतीनाथ ने कहा कि हिन्दू शब्द के खत्म होने पर ही छुआ छूत दूर होगी। शान्ति-शान्ति सुनते बहुत दिन गुजर गए। नौजवानों खड़े हो जाओ। सन् ५७ आने वाला है।

सूबेदार प्रभुसिंह ने भी हिन्दुओं के प्रति घृणा का प्रचार किया। चौ० लाजपत राय एम० एल० ए० ने कहा, हरिजनों में से आपसी छुआ छूत दूर होनी चाहिए। यदि चमार धानक चूहड़ों से छुआ-छूत करते हैं तो भंगियों को उनका मैला उठाना बन्द कर देना चाहिए।

पं० राम कुमार एम० एल० ए० भिवानी ने कहा कि छूने से पाप लगता है—यह भावना दूर होनी चाहिए। हरिजनों को अपनी मांगें मनवाने के लिये स्थान-स्थान पर एक्शन कमेटियां बनानी चाहियें। आवश्यकता पड़ने पर अहिंसात्मक सत्याग्रह भी किए जायें। इत्यादि

भारत की एकता के लिए खतरनाक

श्री एन. सी. चटर्जी द्वारा द्रविड़ आन्दोलन की निन्दा

श्री चटर्जी ने कहा कि—"स्वतन्त्र भारत में हमारे महान् पुरुषोंको खुले आम अपमानित करना सहन नहीं किया जासकता। तामिलनाड में ऐसी संस्थाएं हैं जो जनता की धार्मिक भावनाओं को जान-बूझकर दुखानेका प्रयत्न कर रही हैं। श्री राम और सीता जी जो मनुष्य चारित्र्य के उच्चतम आदर्श समझे जाते हैं, उन्हें विकृत रूपमें प्रस्तुत किया जारहा है। भगवान गणेश की मूर्तियां सार्वजनिक रूप से तोड़ी गई हैं और भगवान कृष्ण की मूर्ति पर भी आक्रमण करने की धमकियां दी जा रही हैं। प्रान्त के जिम्मेदार व्यक्तियों ने यह शिकायत की है कि राज्य सरकार ने इस प्रकार की घटनाओं की ओर अपनी जिम्मेदारी समझने में बड़ी देरी की है जिनके कारण इन अधार्मिक व्यक्तियों के गुटों को प्रोत्साहन मिला है। (हिन्दुस्तान १७-१-५५)

उपर्युक्त समाचार आने वाले समय (वर्ग संघर्ष) की सूचना देने के लिये पर्याप्त हैं।

मुसलमानों को चढ़ावा दे दे कर उनकी चापलूसी कर-कर के भारत को तीन टुकड़ों में विभक्त कर दिया गया। स्मरण रहे मुस्लिम लीग के जितने भी बड़े-बड़े नेता हुए, सबने कांग्रेस के मध्य रह कर राजनीति की शिक्षा प्राप्त की। मुसलमानों ने जो कुछ किया आज हम हरिजनों को तथा आदि वासियों को भी उसी की शिक्षा दे रहे हैं उनमें अशान्ति उत्पन्न करते जा रहे हैं

और केवल असत्य तथा मन गढ़न्त इतिहासके आधार पर सवर्णों अथवा ब्राह्मणों के प्रति अन्तर्द्रोह भड़काया जा रहा है। अज्ञात में गृह युद्ध की सृष्टि की जा रही है।

यथार्थ में आज जितनी पतली और दयनीय दशा ब्राह्मणों की होती जा रही है इतनी किसी भी अन्य वर्ग की देखने में नहीं आती। आज चारों ओर ब्राह्मण विरोधी भावना बढ रही है। ब्राह्मण विरोधी (शिक्षित तथा आत्म विस्मृत) ब्राह्मणों की भी कमी नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति आज उन पर क्रूर दृष्टि डालने लगा है। अत ब्राह्मण कुल में जन्म लेना ही एक अभिशाप या अपराध सा हो गया है। ब्राह्मणों के पास कभी भी बहुत सा धन सचित नहीं हुआ, कारण कि विद्या धन ही ब्राह्मणों की पूजी मानी गई थी (जिसकी आज कोई पूछ नहीं) अत आज उनकी आर्थिक अवस्था जितनी गिर गई है, इतनी कदाचित ही किसी अन्य वर्ग की गिरी हो।

जैसा कि अन्यत्र लिखा जा चुका है—ब्राह्मण महर्षियों ने प्रत्येक जाति को जीविकोपार्जन के लिए एक एक सामाजिक कर्म (व्यवसाय) का वश परम्परा के लिए एकाधिकार देकर सबकी जीविका सुरक्षित करदी थी और अपने लिये पठन-पाठन कर्म काण्ड इत्यादि के अतिरिक्त किसी भी सामाजिक कर्म या व्यवसाय का अधिकार सुरक्षित न रख वंश परम्परा को सदा के लिये दूसरों की दया और दान पर छोड दिया। इतने बड़े त्याग का कदाचित ही कोई दूसरा उदाहरण मिले जिसका फल आज उनकी सन्तति को भुगतना पड रहा है। आज दर-दर की ठोकरें खाना ही उनके भाग्य में लिखा गया है। हजार वर्ष पर्यन्त विधर्मियों के शासन में जिन कर्म-काण्डी ब्राह्मणों के कारण वैदिक धर्म की रक्षा सम्भव हुई,

जिनकी पूजा होती थी, आज उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है और ठुकराया जाता है। अतः वे भी इस परम्परागत कर्म का त्याग करते जा रहे हैं। काशी तक के पण्डितों ने निराश हो अपने बालकों को स्कूलों में भेजना प्रारम्भ कर दिया है। आज कम काण्डी ब्राह्मण मिलते नहीं। आध्यात्मिक अध्ययन तथा पठन-पाठन की सुविधा के अभाव में वे आज आत्म विस्मृत तथा किंकर्तव्यविमूढ़ हो विद्या, बुद्धि, तथा आचरण में हीनावस्था को प्राप्त हो चुके हैं। कोई दुर्गुण ऐसा नहीं, जो आज उनमें प्रवेश न कर गया हो। आज प्रत्येक व्यक्ति उनकी इस चरित्र-हीनता पर उंगली उठाता है। किन्तु इसके कारणों की ओर किसी का स्वप्न में भी ध्यान नहीं जाता। ये आलोचक भूल जाते हैं कि ब्राह्मणों के भी पेट है और उनके भी बाल-बच्चे हैं। वे इस बात को भी भूल जाते हैं (या वे जानते ही नहीं) कि जब भूख में महर्षि विश्वामित्र को चाण्डाल के घर में कुत्ते के मांस की चोरी करने पर बाध्य होना पड़ सकता है, आज कल के दुर्बल प्रकृति के मनुष्य की उस परिस्थिति में क्या दशा हो सकती है।

आज सबको सब काम करने का समान अधिकार है। अतः ब्राह्मणों का पढ़ाने का अधिकार भी सब में विभाजित हो चुका है। ब्राह्मण भी सभी काम करने के लिये आगे बढ़ने लगे हैं। किन्तु उन्हें किसी भी काम में सफलता बहुत कम मिलती है। कारण कि सफलता प्राप्त करने के लिये प्रत्येक क्षेत्र में आज जितनी तिकड़म तथा चाल बाजियों की आवश्यकता है। उतनी अभी उन्हें आ नहीं पाई है। पूर्वजों के संस्कारों कामात्विक रक्त जो उनकी रग-रग में रहा है। वह कुटिलता की ओर बढ़ने में बाधक बनता है।

यद्यपि संसार में सुख और दुःख केवल अनुभव करने का

विषय माना गया है, किन्तु आज मानव समाज भौतिक पदार्थों में ही सुख और इनके अभाव को ही दुःख का कारण मानने लगा है। देखने में आता है कि जिसे जिन साधनों का ज्ञान है, उसे ही उसका अभाव खटकता है। जैसे जब बिजली नहीं थी, तो उसका अभाव भी किसी को नहीं खटक सकता था, पर अब जहां बिजली है और जो लोग उसके प्रयोग एवं सुख का अनुभव रखते हैं, उन्हीं को इसका अभाव खटकता है और जीवन को दु:ख मय बना डालता है।

तात्पर्य यह कि सुख के अनुभवी को ही दुःख का अनुभव हो सकता है जिसे जिस वस्तु का कोई अनुभव न हो, वह उसके अभाव का भी कोई अनुभव नहीं कर सकता।

इस हीनावस्था में भी ब्राह्मण जाति संसार के प्रत्येक वैभवों से न केवल परिचित है, बल्कि उन सबके उपभोग की लालसा उसके हृदय में छुपी रहती है। वह सब कुछ देखता है, सुनता है और समझता है किन्तु प्राप्त नहीं कर पाता। यही ब्राह्मण जाति के दुःखों का बड़ा कारण है।

आध्यात्मिक ज्ञान, ब्रह्म विद्या तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने की ओर अपने बालकों को विद्वान देखने की लालसा अभी उसकी मिटी नहीं है। प्रत्येक ब्राह्मण (चाहे वह जहां हो) यह जानता है कि ब्राह्मणों का मुख्य कर्म विद्याध्ययन करना है। किन्तु आज ब्राह्मणों का दो तिहाई भाग इस स्थिति में नहीं है जो अपने बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा भी दिला सके। उनकी तिगुनी, चौगुनी बढ़ी हुई फीस दे सके। आज एक मजदूर या हरिजन अपने बालकों को आसानी से पढ़ा सकता है और उनके बालक पढ़ भी रहे हैं। किन्तु अधिकांश ब्राह्मण जिनके पेट को भर पेट भोजन भी नहीं है वे अपने बालकों को नहीं पढ़ा सकते। अतः

अधिकांश ब्राह्मण बालक अर्थाभाव के कारण अशिक्षित रह कर तेजी से नीचे गिरते जा रहे हैं।

किसी प्रान्त के विषय में ऐसा भी सुनने में आया है कि वहां निश्चित संख्या के अतिरिक्त ब्राह्मण वर्ग के बालकों को स्थान होने पर भी स्कूलों में भरती नहीं किया जा सकता। अतः ये लोग अन्य राज्यों में अपने बालकों को पढ़ाने की टोह में रहते हैं। इसे नीचे को ऊंचा उठाकर नहीं, ऊंचे को नीचे गिरा कर समानता स्थापित करने का आज का प्रत्यक्ष प्रमाण कहा जा सकता है।

अपने सिर को काट कर या कुचल कर कोई जीवित नहीं रह सकता। इसी प्रकार जो देश का विकसित मस्तिष्क है उसे कुचल कर या नष्ट करके देश की उन्नति नहीं हो सकती। वह गूलर के फूल के समान असम्भव है।

कल्याण के वर्ष २२ अंक ११ में श्री चारुचन्द्र मित्र पटनी एटला का हिन्दू धर्म तथा समाज पर बड़ा दर्द भरा लेख प्रकाशित हुआ था। उसका कुछ भाग इस प्रकार है—

नवीन सिद्धांत वाले प्रायः सभी पाश्चात्यों के समान समाजवादी या साम्यवादी हो रहे हैं। पाश्चात्य देशों में इन सिद्धांतों के अनुयायी जैसा कायदा कानून बना रहे हैं, ये लोग भी यहां वैसा ही करना चाहते हैं। अतः राष्ट्र शक्ति के हाथ में सारी क्षमता और वैयक्तिक स्वाधीनता दे डालने के लिए प्रस्तुत हैं—यह वे स्वीकार करते हैं। इसी लिये इस पुरानी स्वाधीनता, साम्य और भ्रातृभाव के सिद्धांत को वे अव्यवहार मान रहे हैं। तथापि वे इस परित्यक्त स्वाधीनता, साम्य और भ्रातृभाव के शब्दों को दुहराते हुए हमारी जाति भेद तथा जातिगत व्यवसाय प्रथा की निंदा करते हैं, तथा ब्राह्मणों को निम्न जातियों के प्रति

अत्याचार करने वाला बतलाते हैं। वाणिज्य-व्यवसाय, शिल्प और कृषि ही धनोपार्जन के प्रधान साधन हैं। जिन ब्राह्मणों ने इस साधन का वैश्य शूद्रों के लिये, निम्न जाति के लोगों के लिये विधान कर दिया और स्वयं पूर्ण समर्थ होते हुये भी अपनी जीविका को दूसरे की श्रद्धा के दान पर छोड़ा, उन ब्राह्मणों को अत्याचारी बतलाना कहां तक उचित है, इस पर उन्होंने जरा भी नहीं सोचा। अपनी जीविका का इस प्रकार निर्देश करना गैरीबाल्डी और वाशिंगटन के त्याग की अपेक्षा कहीं अधिक महान है (क्योंकि वंश परम्परा के लिये दीनता स्वीकार करना है) इस बात को समझने की भी उनमें शक्ति नहीं है।

हम लोग केवल पाश्चात्यों के पालतू पक्षी हो गये हैं, इसीलिए जब पहले स्वाधीनता, साम्य और भ्रातृभाव की बोली बोलना उन्होंने हमें सिखाया तो हम वही बोली बोलने लगे। हमारी बुद्धि में जो कुछ हिन्दुत्व था, उसी को उनकी शिक्षा पाकर तदनुसार हमने उन्नति का विरोधी, दोष बतलाया और उसे न मान कर उसके प्रति अवज्ञा प्रकाशित कर हम सुधारक बन गए। फिर जब पाश्चात्य लोग समाजवादी और साम्यवादी हो गए और सारी वैयक्तिक स्वाधीनता को राष्ट्र शक्ति के हाथ में देने को ही ठीक बतलाने लगे तब हम भी वह राग अलापने लगे। कांग्रेस में एक बड़ा समुदाय समाजवादी हो गया है, बहुत से साम्यवादी भी हो गए हैं, अतएव वे राष्ट्र शक्ति के हाथों में सारी वैयक्तिक स्वाधीनता वाणिज्य, व्यवसाय शिल्प, कृषि और सामाजिक नियमादि को देने के लिए प्रस्तुत हैं। इतने पर भी अब भी उसी परित्यक्त स्वाधीनता साम्य और भ्रातृभाव की बोली की दुहाई देकर इस देश के जातिभेद और जातिगत व्यवसाय प्रथा, स्त्री और पुरुष के विभिन्न कर्म क्षेत्र और अधिकार, बिना विचारे हुए माता पिता की आज्ञा का पालन करना

तथा नाना प्रकार के विधि निषेधों को मानना हिंदुओं के इस सामाजिक अधिकार को नहीं मान रहे हैं। ऐसा करते हुये जो यह कहा जाता है कि—अन्य सब समाजों में वैयक्तिक स्वाधीनता कम करने का अधिकार है—चाहे वे कितना ही अत्याचारी क्यों न हो परन्तु साम्यभाव से भी व्यक्तिगत स्वाधीनता कम करने का अधिकार केवल हिंदू जाति में नहीं है—यह बात देखने में नहीं आती और उसी अधिकार को हिंदू जाति के हाथ से *निकाल कर राष्ट्र शक्ति के हाथों में दिया जा रहा है।* इसी कारण नए-नए सुधार कानून बन रहे हैं, हिंदू कोड बिल आ रहा है।

हिंदू समाज ने जाति भेद प्रथा के द्वारा प्रत्येक जाति के लिए एक ही सामाजिक कर्म का विधान किया था—ब्राह्मण पढ़ाता था, क्षत्रीय रक्षा करता था, वैश्य व्यापार करता था, शूद्रों में नाई हजामत बनाता, कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाता, तेली तेल का व्यवसाय करता, धोबी कपड़े धोता, चमार जूते बनाता, बढ़ई काष्ठ शिल्प का काम करता, धुनियाँ धुनता और जुलाहा *कातता बुनता—इस प्रकार दूसरे को दूसरे का काम नहीं करने* दिया जाता था। इसी कारण धनोपार्जन में कुशल थोड़े-से मनुष्य ही धनोपार्जन के सम्पूर्ण श्रेष्ठ साधनों को नहीं हथिया सकते थे (जैसा कि पाश्चात्य देशों में हो रहा है) साथ ही स्वजाति के भीतर विवाह का बन्धन रहने के कारण व्यवसाय या *शिल्प में कुशल व्यक्ति का धन स्वजाति के भीतर ही काल क्रम* से वितरित होता था (इसके उद्देश्य और परिणाम की आलोचना आगे की जाएगी) निम्न जातियों के साथ जो कुछ भेद रक्खा गया है, इसी को लोग उनके प्रति अत्याचार बतलाते हैं। किसी को कोई छूते नहीं या अन्य जातियों के द्वारा प्रतिष्ठित मन्दिरों में सबको प्रवेश नहीं करने दिया जाता। इसी कारण ब्राह्मणों

को घोर अत्याचारी कह कर नवीन सिद्धांती शिक्षित समाज शोर मचा रहा है। कोई कोई तो इस जाति-भेद प्रथा को ही हमारी राजनैतिक पराधीनता का मूल कारण बतलाते हैं। हमारे यहाँ की निम्न जातियों के प्रति बताए जाने वाले इस अत्याचार के साथ हम यहाँ पर साम्यवादी रूस के द्वारा विभिन्न विचार वालों के ऊपर, धनी और मध्य श्रेणी के लोगों के ऊपर, जो शारीरिक श्रम नहीं करते उनके ऊपर जो व्यक्तिगत लाभ के लिए व्यवसाय आदि करते हैं उनके ऊपर, व्यक्तिगत रूप से उन्नत या परोपकारी पुरुषों के ऊपर, किए गए अत्याचारों की तुलना करने के लिए कहते हैं। जर्मनी में यहूदियों के ऊपर किए जाने वाले अत्याचारों के साथ तुलना करने के लिए कहते हैं। आर्य ब्राह्मणों ने उदार उन्नत साम्यवादी पाश्चात्यों के समान किसी का वंश नाश कर—उसको स्वर्ग भेज कर उन्नति नहीं की। क्या अमेरिका क्या आस्ट्रेलिया, क्या अफ्रीका—जहाँ कहीं भी स्वाधीनता; साम्य और भ्रातृभाव का डंका पीटने वाले उदार पाश्चात्य लोग निम्न और विभिन्न सभ्यता के लोगों के साथ एक जगह रहते थे तथा जहाँ धार्मिक विभिन्नता है (रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेण्ट हैं) वहां स्वजातियों मे भी कैसा भयानक अत्याचार किया गया है, इतिहास के पन्नों में उसे आप देख सकते हैं और उसके साथ हिंदुओं के द्वारा निम्न जातियों के प्रति किए जाने वाले व्यवहारों के साथ तुलना कर सकते हैं।

ब्राह्मणों का बड़े से बड़ा अत्याचार था आंशिक प्रथक्करण मात्र। स्वाधीनता, साम्य और भ्रातृभाव का डंका पीटने वाले अमेरिकन अब भी निग्रो लोगों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं, उन्होंने रेड इण्डियन लोगों के प्रति कैसा अत्याचार किया था। जानवरों के समान शौक से शिकार—उसकी हत्या करने में गौरव माना जाता था। उन लोगों का वंश नाश-

न हो जाय अतएव दया परवश होकर यह सोचा गया कि रेड इंडियन लोगों के रहने के लिए अलग ग्राम बन जाय। अर्थात् उनका पूर्णतया प्रथक्करण ही एक मात्र उपाय दिखाई दिया। दूसरा कोई उपाय उनके सामने नहीं आया। इसके बदले हिंदुओं ने इन निम्न जातियों की जीविका के लिए, समाजके एक-एक आवश्यककार्य को, जो जिसके द्वारा सहज साध्य था, निश्चित कर दिया। उस कार्य में उच्च वर्णों के लिए प्रतियोगिता बन्द करदी गई, गांव के ही एक अलग मुहल्ले में उनको बसा दिया गया। इससे संघर्ष का निवारण हो गया। हिंदुओं ने विभिन्न जातियों के लिये सदा के लिए प्रथक प्रथक मुहल्लों का निर्देश किया था। सभी गांवों में ब्राह्मणों के, अहीरोंके, ग्वालोंके, चमारों के—सबके अलग२ मुहल्ले होते हैं। यही इस देश का साधारण नियम आज भी बतलाया जा सकता है। विभिन्न आचार विचार, आहार व्यवहार, पूजा पद्धति के लोग जितने ही अधिक घनिष्ट सम्पर्क में आते हैं, उतना ही विरोध और संघर्ष बढ़ता है—इसके निवारण करने के लिए ही इस प्रकार आंशिक प्रथक्करण, पृथक-पृथक कर्म क्षेत्र और वास स्थान निर्दिष्ट किए गए थे। इसके द्वारा विभिन्न जातियों, विभिन्न प्रकार के आहार-निहार, आचार-विचार, बर्तान-व्यवहार के लोगों में संघर्ष और विरोध निवारण किया जाता है। अब भी मुसलमानों के मुहल्लों में वास करने पर हमारी जैसी दुर्गति होती है वह ध्यान देने योग्य है और यह भी ध्यान रखने योग्य है कि इस समय विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले हिंदुओं के भीतर एक ही प्रकार के कार्य विशेषतः राज्य सम्बन्धी कार्य में निर्बाध प्रतियोगिता रहने के कारण उत्तरोत्तर प्रांतीय और जातीय द्वेष-भाव बढ़ता जा रहा है।

पूर्णतः पृथक्करण की अपेक्षा इस प्रकार आंशिक पृथक्करण निम्न जाति के लोगों के लिए विशेष कल्याणप्रद है। वे उन्नत

जातियों के सम्पर्क में रहते हैं, इससे अनेकों बातें देखकर सीखने तथा आत्मोन्नति करने की सुविधा प्राप्त करते हैं। दया परवश होकर अमेरिकन लोगों ने जो निम्न जातियों के बचाने का पूर्ण प्रथक्करण ही एक उपाय सोचा था, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक कल्याणप्रद उपाय 'भीषण अत्याचारी' ब्राह्मणों ने इस जाति भेद और जातिगत व्यवसाय प्रथा के प्रसाद रूप में खोज निकाला था। इसी कारण वे इतने सहस्रों वर्षों तक अपने स्त्री पुत्रादि के साथ स्वछन्दतापूर्वक जीवन व्यतीत करते रहे हैं। उनके शरीर का जो स्वास्थ्य है, जीवन में जो आनन्द है, वह सम्भवतः बहुतों के लिए स्पृहणीय है—पाश्चात्य देशों के स्वजातीय गरीबों को भी ऐसी स्वछन्दता प्राप्त नहीं है। पाश्चात्यों ने तो निम्न जाति का वंशोच्छेद करके अपनी उन्नति की थी।

सबको सब कार्यों के करने का समान अधिकार होने से, निर्बाध प्रतियोगिता होने से धनोपार्जन और रक्षण में अकुशल व्यक्ति की, चाहे वह कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो, कितना ही बड़ा पण्डित क्यों न हो, भीषण दुर्गति होती है। उसका क्रमशः वंशोच्छेद होजाता है। ऐसी अवस्था में यदि भारत में नवीन-सिद्धान्ती सुधारकों की इच्छा के अनुसार निर्बाध प्रतियोगिता होती तो इन सभ्यता के निम्नस्तर की जातियों के लोग—जिनकी बुद्धि और कार्यक्षमता बहुत ही अल्प विकसित है, उच्च जातियों के साथ प्रतियोगिता में कभी बच नहीं पाते—यह बात भूल मरे, साम्यवाद के व्यामोह में पड़े रहने के कारण उन्हें नहीं सूझती। इस प्रकार की निर्बाध प्रतियोगिता होने पर उनके असभ्यता सुलभ व्यवहारों से अन्य जातियों के साथ विरोध और संघर्ष अनिवार्य हो जाता और फिर प्रतियोगिता में विफल होन पर तो उनका सर्वनाश ही होता। इसलिये आंशिक प्रथक्करण उनके

बचाये रखने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। इसी को हम ब्राह्मणों का अत्याचार कहते हैं।

जातिभेद-प्रथा के द्वारा भीषण अत्याचारी ब्राह्मणों ने इस प्रकार का आंशिक पृथक्करण किया था। इसी कारण विभिन्न आहार-विहार, आचार-विचार तथा विभिन्न प्रकार की पूजा पद्धति के लोगों में परस्पर संघर्ष, विरोध, द्वेष और आपस के विनाशकारी युद्ध नहीं हुए और बहुत सी जातियाँ इसी कारण आज भी जीवित हैं। रामायणादि ग्रन्थों में जो आर्यों और अनार्यों के बीच सर्वदा संघर्ष और युद्ध देखा जाता है, उसका निवारण जातिभेद-प्रथा के द्वारा ही हुआ था—हिन्दू लोग सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुँच सके थे तथा सहस्त्रों वर्षों तक सभ्यता के शीर्ष स्थान पर उनका अधिकार रहा था—भारतीय सभ्यता में जो अतुलनीय संजीवनी शक्ति है उसका संचार हुआ था। भारत की सभ्यता अद्वितीय प्रतिभाशाली चित्रकार का उज्ज्वल स्थायी बहु रंगरञ्जित अतुलनीय चित्र है—उसकी तुलना में अन्य सारी सभ्यतायें कुछ दिन ही ठहरने वाला केवल एक-रंगा चित्र है। चित्र-विद्या के शिक्षार्थी आज एक-एक तूलिका और एक एक विलायती रंगों की टिकिया (टेबलेट) लेकर उस चित्र के सुधारने के कार्य में लगे हैं, नवीन सिद्धान्त के नेता उन्हें देखकर वाहवाही दे रहे हैं और अन्तरिक्ष में असुरों से पराजित भारत के हितचिन्तक देवताओं के नेत्रों से रक्त के आसू प्रवाहित हो रहे हैं।

दुर्दिन आने पर अपने भी पराये हो जाते हैं—सब बातों में दोष ही देखते हैं, कोई गुण नहीं देखते। हिन्दुओं के लिये यह अत्यन्त दुर्दिन का समय है—इसी कारण हम अपने दोषों को सहस्त्रों नयनों से देखते हैं—तिल के समान दोष को ताड़ ही क्यों पर्वत के समान दिखलाकर प्रचार करते हैं, पर गुणों के देखते

समय अन्धे हो जाते हैं. गुण की बातें सुनते हुए बहरे होजाते हैं। इसी कारण आज इतने हिन्दू-द्रोही हिन्दू—हिन्दू नेता भी हो गये हैं, इतना अधिक काला पहाड़ी सुधारक दलों का प्रादुर्भाव हो गया है कि हमारे गुणों को भी दोष के रूप में प्रचार किया जाता है। हिन्दुओं की सारी संस्थाओं की निन्दा करना ही आज यहां अद्भुत स्वदेश-भक्ति का निदर्शन हो रहा है। जिस श्रेष्ठतम साधन जातिभेद-प्रथा ने निम्नश्रेणी की अनेकों जातियों को जीवित रक्खा, उसी को हम ब्राह्मणों का अत्याचार मानने के लिये सबको उपदेश दे रहे हैं। इसी कारण सर्वत्र ब्राह्मण और उच्च जातियों के प्रति द्वेषभाव बढ़ता जा रहा है, अन्तर्द्रोह की सृष्टि हो रही है तथा इसी के साथ-साथ हिन्दू-शास्त्रों के—जिनमें हमारे जातीय जीवन की सुदीर्घ काल की संस्कृति और अभिज्ञता निहित है—प्रति द्वेष इतना प्रबल होरहा है कि नवीन सिद्धान्ती शास्त्रों का नाम सुनते ही बोखला उठते हैं। इस प्रकार अपनी सहस्रों वर्षों की संचित ज्ञान राशि का अनादर कर जिस प्रकार पैतृक सम्पत्ति को नष्ट करने के बाद दूसरों की गुलामी करनी पड़ती है, सब बातों में दूसरों का मुंह देखना पड़ता है उसी प्रकार—हम सभी बातों में पाश्चात्यों का मुंह ताक रहे हैं। पाश्चात्यों की शौक की गुलामी से गौरवान्वित हो रहे हैं।

आज भी निम्न जातियां अपनी जातीय वृत्ति से ही जीविकोपार्जन करती हैं, दूसरी जाति की वृत्ति का अवलम्बन नहीं करतीं। कई वर्ष हुए कलकत्ते के धांगड़ों ने हड़ताल की थी, वे वेतन-वृद्धि करवाना चाहते थे, उनके साथ जो अन्याय होता था उसका अन्त करना चाहते थे। इसके कारण बहुत गड़बड़ी हुई। उस समय अर्थ के लोभ से मेहतर और डोमों ने भी धांगड़ों का काम करना स्वीकार नहीं किया। उनकी चिरकालीन

अभिज्ञता (संस्कृति) की धारणा है कि दूसरी जाति की वृत्ति स्वीकार करने पर उस जाति की दुर्दशा होती है, इसी से धांगड़ों का काम करने के लिये वे प्रस्तुत नहीं हुए। दो ही चार दिनों में कलकत्ते में कूड़े के ढेर लग गये। गवर्नर शिमला से तार द्वारा प्रतिदिन ही हड़ताल बन्द कराने के सन्देश भेजते रहे, म्युनिस्पिलटी को भी उनकी सारी मांगें स्वीकार करनी पड़ीं। जिन धांगड़ों को अदालत से जेल की सजा हुई थी, उनको भी शीघ्र ही छोड़ देने के लिये सरकार बाध्य हो गई, परन्तु इस बार पिछले वर्षों जब उन्होंने नवीन सिद्धान्ती भाइयों की प्रेरणा से पुनः हड़ताल की, तब जातिभेद और जातिगत व्यवसाय विरोधी निम्न जातियों की उन्नति चाहने वाले नवीन सिद्धान्ती भाई ही कूड़ा-करकट फेंकने के लिये चले गये और इस प्रकार अवैतनिक धांगड़ मिल जाने के कारण धांगड़ों की हड़ताल टूट गई। उनकी कोई भी मांग स्वीकृत न हुई। जातिभेद-प्रथा और जातिगत व्यवसाय के अक्षुण्ण रहने पर सब जातियों में कैसी सामर्थ्य रहती है, प्रजा के हाथों में कितनी शक्ति रहती है, उनके प्रति अत्याचार करना राष्ट्र शक्ति के लिये कितना दुःसाध्य होता है— इसका प्रमाण यह धांगड़ों की हड़ताल है।

नवीन सिद्धान्ती जातिभेद-प्रथा के उद्देश्य और सुफल को न समझने के कारण जातिभेद-प्रथा और जातिगत व्यवसाय के अक्षुण्ण रहने पर, उसका सम्यक् सचालन होने पर, किसी भी राष्ट्रशक्ति का—चाहे वह स्वदेशी हो या विदेशी—प्रजा के ऊपर अत्याचार करना प्रायः असम्भव हो जाता है, यह बात हमारे पाश्चात्य साम्यवाद के व्यामोह में पड़े हुए राजनीतिक नहीं देखते।

महात्मा गांधी ने जो असहयोग के अवलम्बन का उपदेश दिया था, जातिभेद-प्रथा के अक्षुण्ण रहने पर उसकी पूर्ण

सफलता हो सकती है। यह बात थोड़ा सा भी विचार करने पर समझ में आ सकती है। तथापि असहयोग के समर्थक नवीन सिद्धान्ती हिन्दू नेता ही जातिभेद-प्रथा के विरोधी हैं। वे ही एक ओर डिगनिटी आफ ऑनेस्ट लेबर कहते हैं और दूसरी ओर सभ्यता की निम्नश्रेणी के लिये साध्य निर्दिष्ट कर्मों को हिन्दुओं का अत्याचार बतलाते हैं।

[कल्याण वर्ष २२ अंक ११]
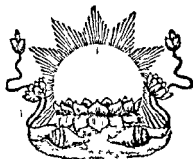
वैदिक धर्म पर विदेशी विद्वानों के कुछ विचार

मेक्स मूलर स्वरचित पुस्तक—"भारत से हमें क्या शिक्षा मिल सकती है" में लिखते हैं—"आप मनुष्य के मस्तिष्क सम्बन्धी बात की कोई भी समस्या लें, चाहे वह धर्म सम्बन्धी हो या सामाजिक विज्ञान सम्बन्धी हो या कला कौशल सम्बन्धी हो, रस्म रिवाज हो या कानून सम्बन्धी हो या कथायें, आपको प्रत्येक बात की जानकारी के लिये भारत की तरफ ही जाना पडेगा, क्योंकि भारत में ही प्रत्येक शिक्षाप्रद और आवश्यक सामग्री बहुत काल से विद्यमान है और उसका कोष भरा है अन्य स्थान पर वही नहीं।" आगे वह एक स्थान पर लिखते हैं—'यह कभी ख्याल न करो कि वेदों के अनुवाद लेटिन फ्रेंच और जर्मन भाषा में हो चुके हैं, इसलिए हमने जो कुछ वेदों से सीखना था सीख लिया। हम तो अभी वेदों से बहुत दूर हैं। हम तो वैदिक साहित्य की सामुद्रिक सतह पर ही फिरते हैं। अभी हमने गोता लगा कर रत्न नहीं निकाला है। हमने लगातार ३० वर्ष की मेहनत और खोज के बाद जो वेद का अनुवाद किया है, वह आजमायश है, प्रमाणित नहीं कहा जा सकता। यदि वेद के अनुवाद का तात्पर्य सम्पूर्ण शुद्ध और प्रमाणिक रूप से लेते हैं तो अभी हमें उसके लिये एक शताब्दी और चाहिए। इस पर भी मुझे शंका है कि हम वेद का सही अनुवाद कर भी सकेंगे।"

—मेक्समूलर

(जगत् गुरु भारत पुस्तक से)

पादरी सी० एफ० एण्डूज ने अपनी पुस्तक "भारत की पुनर्जागृति" में लिखा है—भारत अब भी संसार का गुरु है। मेरे हृदयमें यह बात अंकित है कि एक दिन पश्चिमी जातियों को भारतीय सिद्धांतों के अनुसार ढालना पड़ेगा। हमारी पश्चिमी देश की ईसाइयत को भारत के पवित्र सिद्धान्तों, मन्तव्यों और आदर्शों से बप्तिस्मा लेना होगा। पूर्व इसके कि हम हजरत ईसा के नाम से सम्बोधित होने के अधिकारी हो सकें। आगे और एक जगह आप लिखते हैं—यदि कहीं ऐसा समय आया कि भारत के लोग भी पश्चिमी प्रकृतिवाद की अवस्था से चकाचौंध हो कर उस पर मोहित हो गये और धर्म के उच्च पवित्र विचारों से विमुख हो गए तब न केवल एशिया में, किंतु समस्त संसार में असन्तुष्टता और अराजकता उत्पन्न हो जायगी—ये हैं भारत की पुरातन प्रणालियों पर केवल दो प्रसिद्ध पादरियों के विचार। आज इन्हीं सिद्धान्तों को अव्यवस्थित सिद्ध कर उसकी काया पलट करने का बीड़ा उठाया जा चुका है। इसे उन्नति कहें या अवनति अथवा हिंदू समाज का दुर्भाग्य समझना चाहिए ईश्वर सबको सद्बुद्धि दे।

हिंदुओं के प्रति कुछ और विदेशी विद्वानों के विचार

हिंदुओं के चरित्र, निष्कपटता तथा ईमानदारी उनकी मुख्य पहचान है। वे कभी अनीति युक्त बात नहीं बोलते।

—श्री क्लिहिल

हिन्दुओं की अकृत्रिमता

भारतीयों की मुखाकृति में जीवन के प्रकृत रूप का दर्शन होता है। हम तो कृत्रिमता का आवरण ओढ़े हुए हैं। भारतीय

मुरत मण्डल की सुकुमार रूप रेखाओं में ही कर्ता करागु ठ की छाप दिखाई पड़ती है। —जार्ज बर्नार्डशा

हिन्दू के गुण

हिंदू लोग धार्मिक, प्रसन्न, न्याय प्रिय, सत्य-भक्त कृतज्ञ और प्रभु भक्ति से युक्त होते हैं। —कवि सेमुएल जौनसन

हिंदुओं की बुद्धि और विचार शीलता

बुद्धि और विचार शीलता में हिंदू सभी देशों से ऊंचे हैं। गणित तथा फलित ज्योतिष में उनका ज्ञान किसी भी अन्य जाति से अधिक-यथार्थ है। चिकित्सा विषयक उनकी सम्मति प्रथम कोटि की होती है। —याकूबी (नवें शताब्दी)

भारत की आध्यात्मिक सम्पत्ति

ससार के देशों मे भारतवर्ष के प्रति लोगों का प्रेम और आदर उसकी बौद्धिक नैतिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति के कारण है। —प्रो० लुई रिनाड (पैरिस विश्वविद्यालय)

हिन्दुओं की धर्म निष्ठा और सचाई

हिंदू धर्म का आचार-निर्माण कारी प्रभाव इतना विशाल था कि केवल उच्च वर्ग के ही लोग नहीं वरन नीची से नीची जाति के लोग भी शास्त्रोपदिष्ट युद्धकी सूक्ष्म से सूक्ष्म परम्पराओं का पालन करते थे। रात को टहलना अथवा छिप कर आक्रमण करना लोग जानते ही नहीं थे। हिंदू लोग सच्चे वीर थे। तभी तो शत्रुओंके प्रति उनके मनमें लेश मात्र भी वैर नहीं रहता था। इसीलिए विश्राम काल में वे एक ही नदी में स्नान करते थे।

दिए हुए वचन के प्रति साधारण से भी साधारण हिंदू सैनिक का इतना विलक्षण आदर्श था कि जब युद्ध के बन्दियों

को प्रतिज्ञाबद्ध करके ६ मासके लिए छोड़ा जाता था। तब यदि वे मुक्ति पाने के लिये मांगे हुए मूल्य की व्यवस्था नहीं कर पाते तो अपने आप वापिस आ जाते थे। उनमें अपकीर्ति को सदा मरण से भी अधिक बुरा माना जाता था। सत्य निष्ठा के प्रति पूरी सावधानी का अभाव तथा शत्रु की किसी प्रतिकूल परिस्थिति से लाभ उठा लेना, इनको अपमान जनक समझा जाता था। —पुर्तगाली लेखक

भारतीयों का आचार

भारतीयों के प्रति सेवा का कार्य कर देने वाला कोई भी व्यक्ति उनकी कृतज्ञता का सदा विश्वास कर सकता है परन्तु उनका अपराध करने वाला उनके प्रतिशोध से बच भी नहीं सकता। उनका अपमान करने पर वे अपना कलंक मिटानेके लिए प्राणों तक की बाज़ी लगा देते हैं। यदि कोई कष्ट में पड़ा हो और उनकी सहायता मांगे तो वे अपने आप को भी भूल कर उसकी सहायता के लिए दौड़ पड़ेंगे। जब उन्हें किसी अपकार का बदला चुका लेना होता है, तब वे अपने विरोधियों को सचेत कर देने से चूकते नहीं। फिर प्रत्येक व्यक्ति कवच धारण करके हाथ में कुन्त ले लेता है। युद्ध में भागने वालों का तो वे पीछा करते हैं, परन्तु शरण में आए हुओं का बध वे नहीं करते।

—चीनी यात्री ह्वेनसांग (६४५ ई०)

हिन्दुओं की निर्वैरता

हिंदू अनुकूल आचरण करने वाले तथा सबके प्रति दयालु होते हैं। उनका संसार में किसी से वैर नहीं।

—इतिहासकार अबुल फजल

भारतीयों की निष्कपटता

भारत के करोड़ों व्यक्ति वहा के साधु सन्तों की ही भांति रहते आये हैं।—सहज रूप से सरल, कपट रहित और ऋण रहित।

—प्रो० पा० जौर्ज

हिन्दुओं की विद्या

ध्यान की प्रणाली को उन्हीं लोगों ने जन्म दिदया है। उनमें स्वच्छता एव शुचिता के गुण विद्यमान हैं। उन लागों में विवेक है तथा वे वीर हैं।

ज्योतिप गणित, आयुर्वेद एव अन्य विद्याओं मे हिंदू लोग आगे बढे हुए हैं। प्रतिमा निर्माण, चित्र लेखन, वस्तु आदि कलाओं को उन्होंने पूर्णता तक पहुँचा दिया है। इनके पास काव्य, दर्शन, साहित्य तथा नैतिक शास्त्रों का सग्रह है।

—अलिज हीज (आठवीं शताब्दी)

हिंदुओं की प्रामाणिकता

हिंदू इतने ईमानदार हैं कि न तो उन्हें अपने दरवाजों में तालों की आवश्यकता है और न कोई बात निश्चित हो जाने पर उसकी प्रामाणिकता के लिये किसी लिखा पढ़ी की।

—प्रसिद्ध इतिहासकार श्री स्ट्रैबों (ईसा से पूर्व)

समस्त प्राणियों में एकात्म बोध

भारतीय चरित्र की आतरिक दयालुता, उनके स्वभाव की सुन्दरता और सरलता ही उनकी वास्तविक बन्धुत्व की भावना प्रदान करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें गहराई से पैठा हुआ समस्त प्राणियों का एकात्म बोध ही, जिसका उन्हें स्वयं

भी पता नहीं, हर पेक में संचित हो रहा है।

—पोलैंड की कुमारी दिनोवाम्का

हिंदू धर्म श्रेष्ठ है

मैंने यूरोप और एशिया के सभी धर्मों का अध्ययन किया है, परन्तु मुझे उन सब धर्मों में हिंदू-धर्म ही श्रेष्ठ दिखाई देता है × × × × मेरा विश्वास है कि इसके सामने एक दिन समस्त जगत को झुकना पड़ेगा। —रोम्या रोला

हिंदूओं की ईमानदारी

जिस (भारतीय) सभ्यता को अपने उच्च वर्ग के अत्यन्त विशाल वैभव विलास पर गर्व था, उसमें ताले चाबी को लोग जानते ही नहीं थे। क्या कहीं पर भी कोई हिंदुओं की ईमानदारी के जरा से अंश के बराबर भी ईमानदारी की कल्पना कर सकता है?—मेगस्थनीज (प्रसिद्ध यूनानी राजदूत) (यदि आज मेगस्थनीज होते तो सम्भवतः इससे सर्वथा उलटे विचार प्रकट करते।)

नमस्कार

हे प्राचीन भारत भूमि! हे मानव जाति की पालन करने वाली! हे पूजनीया! हे पोषण-दात्री! तुझे नमस्कार है। शताब्दियों से लगातार चलने वाले पाशविक अत्याचार आज तक तुझे नष्ट नहीं कर सके, तेरा स्वागत है। हे श्रद्धा, प्रेम, कला और विज्ञान की जन्म दात्री! तुझे नमस्कार है।

—एम० लुई जेकोलियट

संस्कृति के रक्षण और प्रसार में बाधक

तीन महा भ्रम

पाश्चात्य विद्वानों ने अज्ञान से, मतिभ्रम से, किसी कुटिल अभिसन्धि से, या अन्य किसी कारण से हो—इन तीन महाभ्रमों का प्रतिपादन, प्रचार और प्रसार किया है।

१—यहा आर्य जाति बाहर से आया है। भारतवर्ष उनका मूल निवास स्थान नहीं है।

२—चार हजार वर्ष पहले का कोई इतिहास नहीं है।

३—जगत मे उत्तरोत्तर विकास और उन्नति हो रही है और भारतीय विद्वानों के—मस्तिष्क में भी अधिकांश में ये तीनों बातें प्रवेश कर गयीं। काल प्रभाव से या दैव संयोग से उन्हीं विद्वानों का सभी क्षेत्रों में प्रभाव बढा, जिसका परिणाम यह हुआ कि जनता में उत्तरोत्तर इन तीनों महाभ्रमों का विस्तार होने लगा। इसी का फल यह है कि आज भारतीय लोगों की अपनी संस्कृति, अपने धर्म, अपने पूर्वज, अपने महाभारत, रामायणादि प्राचीन इतिहास, अपने ग्रन्थों—श्रुति-स्मृति और पुराण ग्रन्थों की अवहेलना, अश्रद्धा और अनास्था बढ़ रही है।

हम लोग जब बाहर से आये हुये हैं, तब यहां की भूमि पर हमारा कोई ममत्व क्यों होना चाहिये। यद्यपि आज के जगत की देश भक्ति के प्रचार से भारतवर्ष को इस समय लोग

अपनी जन्म-भूमि मानते हैं और इसके साथ अपनत्व भी है; परन्तु जब तक इसे पूर्वजों की पवित्र पितृ-भूमि नहीं मानते, तब तक भाव में उतनी दृढ़ता नहीं आ सकती।

चार हजार वर्ष से पहले का कोई इतिहास नहीं, इसका परिणाम हुआ कि हमारे वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण—सभी चार हजार वर्षके अन्दर अन्दर बने हुए माने जाने लगे और इनमें केवल कवि कल्पना की भावना होने लगी। पूर्वजों के सच्चे गुण गौरव कल्पना की आंधी में उड़ गये। काल की छोटी-सी संकुचित सीमा में आबद्ध होकर हमारा विशाल ज्ञान भण्डार और गौरव-पूर्ण अतीत सर्वथा निष्प्रभ और व्यर्थ हो गया।

तीसरे भ्रम ने बहुत बड़ा अनर्थ किया। सृष्टि के आदि-काल से जगत में उत्तरोत्तर विकास हो रहा है—इस मान्यता ने अतीत के ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता संस्कृति, धर्म, सदाचार, आचार-विचार, बुद्धि विवेक, शौर्य, वीर्य, त्याग, तपस्या, वैभव, ऐश्वर्य और भाव-प्रभाव—सभी पर पानी फेर दिया। आज जितनी उन्नति है उतनी दस हजार वर्ष पहले नहीं थी, १० हजार वर्ष पहले जितनी थी, उतनी लाख वर्ष पहले नहीं थी। लाख वर्ष पहले जितनी थी, उतनी करोड़ वर्ष पहले नहीं थी। भ्रम तो यहां तक फैलाया जा रहा था कि सृष्टि की उम्र ही केवल चार-पांच हजार वर्ष की है। परन्तु वह भ्रम तो अब टिक नहीं सका। इस लिये उसको तो लोग छोड़ रहे हैं, पर इस विकास वाद का महा भ्रम अभी बड़े-बड़े मस्तिष्कों में भरा है।

इन तीन भ्रमों ने हम भारतवासियों को सहज पर मुखा-पेक्षी और परानुकरण परायण बना दिया है। इसी का एक ताजा उदाहरण हमारा 'नव विधान' है इसमें आदि से लेकर अन्त तक केवल विदेशीय विधानों का आश्रय लिया गया है।

अपने प्राचीन ग्रंथों में शासन और राजनीति पर जो विशद विचार किया गया है, उसकी ओर देखा भी नहीं गया। इन्हीं भ्रमों के कारण बाहर से स्वराज्य मिल जाने पर भी हमारा मस्तिष्क अब भी परतन्त्र है। नीयत बुरी न होने पर भी हमें यह विश्वास नहीं होता कि आज के जगत की अपेक्षा हमारा प्राचीन जीवन बहुत उन्नत था और हमारा ज्ञान भण्डार बहुमूल्य रत्नों से भरा था। आज भी खोज करने पर उसमें ऐसे-ऐसे रत्न मिल सकते हैं, जिनकी अन्यान्य उन्नत कहे जाने वाले देशों को कल्पना भी नहीं हो सकेगी। यह अविश्वास इसीलिए है कि हमारे मन में यह बात दृढ़ता के साथ जम गई है कि जगत में उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है। आज जितनी उन्नति है उतनी पहले कभी थी ही नहीं। इसीलिए हम प्रत्येक विषय में आज की उन्नति की नकल करना चाहते हैं। यह घोर आत्म-विस्मृति बड़ी ही बुरी है और इसी के कारण हमारे मस्तिष्क में परतन्त्रता के विचारों ने अपना एक सुरक्षित स्थान बना लिया है।

भारतवासियों को गम्भीर विचार करके अपने ज्ञान के प्रकाश से इन तीनों भ्रमों के अन्धकार का नाश कर देना चाहिए। नहीं तो उन्नति के नाम पर अवनति की प्रबल धारा में बहते जाना रुकेगा नहीं। (कल्याण का हि० म० अंक)

सुख क्या है और सुखी कौन है ?

सुख क्या है और सुखी कौन है ? यह श्री स्त्री समाज में दूसरी बार प्रस्तुत दो प्रश्न हैं। इस पर श्री स्त्री समाज की सदस्याओं ने तथा अन्य विदुषी महिलाओं ने अपने विचार प्रदर्शित किये। साथ ही स्वामी श्री विशुद्धानन्द जी महाराज ने अपने तीनों उपदेशों में विस्तृत व्याख्या कर भली-भांति समझाया। जिसका यही तात्पर्य निकलता है कि यथार्थ में सुख और दुःख कुछ नहीं। सुख और दुख दोनों अनुभव का है। जिसे सुख मान लिया जाय वही सुख है और जिसे दुख मान लिया वही दुख है। जिससे मन को तथा आत्मा को शान्ति प्राप्त हो वही सुख है। सन्तोष में ही सुख है, सन्तोषी सदा सुखी रहता है। सारी सम्पदा दास हो और सब सुख की सामग्री उपभोग में आती हो किन्तु तृष्णा न मिटी हो, मन में अशान्ति हो तो वह सुखी नहीं माना जा सकता।

एक गरीब या भिखारी एक मुट्ठी चना चबाकर पानी पी सन्तोष की श्वास लेता है तो वह निधन उस धनाढ्य व्यक्ति से अधिक सुखी है जो ३६ व्यंजन से तृप्त न हो पाया हो।

यथार्थ सुख तो ईश्वर चिन्तन में है जिससे लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं। निष्काम कर्म, परोपकार, अपने धर्म और कर्त्तव्य पालन से अपनी आत्मा को जिस सुख और सन्तोष की प्राप्ति होती है, ऐसा सुख अचानक धन की प्राप्ति में नहीं होता। त्याग में ही सुख है। इसीलिये चौथेपन में घर-बार सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार सबका त्याग कर बड़े-बड़े चक्रवर्ती

राजा भी वन की शरण लेते थे। यह विधान सबके लिये है। वन में पहुँचने पर भी यदि तृष्णा लगी रहे और मन में शान्ति न हो तो वहां भी सुख नहीं मिल सकता।

संसार में दो ही प्रकार के व्यक्ति सुखी माने जा सकते हैं—एक *ब्रह्मज्ञानी*, दूसरे *अज्ञानी*। ब्रह्मज्ञानी इसलिये सुखी है कि वह सिवा ब्रह्म के और कुछ देखता ही नहीं और अज्ञानी इसलिये सुखी माना जा सकता है कि उसे संसार की बहबूदयों का नाना पदार्थों का वैभव पूर्ण जीवन का कोई ज्ञान ही नहीं है और जिसका ज्ञान नहीं उसकी चाहना भी नहीं होती। जहां चाहना नहीं, वहा अभाव नहीं खटकता। जब चाहना और अभाव नहीं तो दुख भी नहीं। जो दुखी नहीं वही सुखी है। सब दुखों की जड भौतिकवाद का विस्तार है।

अबोध बालक राजा का हो या किसी मगते का। पेट भरा होने पर दोनों ही समान सुख का और भूख लगने पर समान दुख का अनुभव करते हैं। बालक दुखी तब होता है, जब उसे भूख लगी हो, कहीं पीडा हो अथवा उसकी इच्छित वस्तु मिलने में रुकावट पड़ती हो। बालक अग्नि पकडना चाहता है, माता के रोकने पर दुखी होकर रोता है, मचलता है। उसे इतना ज्ञान ही नहीं कि हमारी रक्षा के लिये यह रुकावट डाली जा रही है।

❀ श्री गणेशाय नमः ❀

शांति का साधन और अशांति का कारण क्या है ?

श्री स्त्री समाज द्वारा प्रस्तुत ६ प्रश्नों में से चार प्रश्न—(१) मनुष्य जीवन में धर्म-पालन आवश्यक क्यों माना गया है ? (२) धर्म क्या है ? (३) सुख क्या है ? (४) सुखी कौन है ?—के विषय में बताया गया अब शेष रहते हैं आगे के दो प्रश्न—(१) क्या स्त्री पुरुष समान हैं ? (२) शांति का साधन और अशांति का कारण क्या है ? इन पर विचार प्रकट करना है।

जहां तक स्त्री-पुरुष की समानता का प्रश्न है इस प्रसंग का पूर्णतः उत्तर नारी धर्म सम्बन्धी प्रकरण में आ जाता है। यहां पुनः उसे दोहराना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। अब शेष रहता है केवल छठवां प्रश्न—शांति का साधन और अशांति का कारण क्या है ?

शांति और अशांति तीन प्रकार की होती हैं। हिन्दू समाज में प्रत्येक यात्रादि शुभ कर्म के उपरान्त शांति पाठ करने का प्रचलन है। जिसके अन्त मे तीन बार ओ३म् शांति, शांति, शांति का उच्चारण किया जाता है। तीन बार शांति के उच्चारण से तात्पर्य तीन प्रकार की शांति से है। अर्थात् आधिदैविक, आधिभौतिक और अध्यात्मिक। प्रत्येक यज्ञ आदि कर्म का उद्देश्य इन तीनों प्रकार की शांति बनाये रखने में यथा साध्य सहयोग देना था। अधिकांश में इन तीनों प्रकार की शान्ति या अशांति का परस्पर सम्बन्ध है। यहां प्रथम अशांति के कारणों की ओर ध्यान देना उचित होगा। अशांति के कारणों का निवारण ही शांति का साधन है।

अशांति का कारण

यज्ञ, हवन आदि के न होने से प्रकृति में विकारों की उत्पत्ति होती है (ग्रह चक्र भी इन्हें उत्तेजित करते हैं) फलत: दैवी प्रकोप बढ़ता है। आंधी, तूफान, बिजली, ओले, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, भूकम्प उल्कापात, दावानल, बड़वानल इत्यादि दैविक उत्पात को दैविक अशांति माना गया है। बहुधा देखने में आया है कि दैविक अशांति ही भौतिक और आध्यात्मिक अशांति का कारण बनती है। इन दैवी प्रकोपों से विनाश होता है, महामारी इत्यादि फैलती है, शारीरिक हानि होती है, मन क्षुब्ध होता है। शारीरिक रोगों की उत्पत्ति करने में ग्रहचक्र भी सहायक होते हैं। इसे आध्यात्मिक अशांति माना गया है, जिसके अन्य अनेक कारण भी हैं।

दैवी प्रकोपों से आर्थिक हानि भी कम नहीं होती। फसल मारी जाती है, लोग-बाग भूख के कारण चोरी, डकैती, लूट-मार इत्यादि कर्म-कुकर्म करने को बाध्य होते हैं। इस प्रकार दैवी प्रकोप तीनों प्रकार की अशांति का रूप धारण करता है।

आध्यात्मिक अशांति—काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा, तृष्णा, असन्तोष आदि आध्यात्मिक अशांति से अधर्म युक्त कर्म होते हैं—यही आगे चल कर आधिदैविक और आधिभौतिक अशांति का कारण बनते हैं। यह तीनों प्रकार की अशांति के सम्बन्धित कारण हैं। इनके निजी और सीमित कारण भी होते हैं। जैसे कि दैविक अशांति के दैविक कारण ग्रहचक्र आदि आध्यात्मिक अशांति के आध्यात्मिक कारण—मानसिक दुर्बलता इत्यादि और भौतिक अशांति के भौतिक कारण जो कि आध्यात्मिक अशांति को साथ लिये रहते हैं। मैं यहां इसी भौतिक अशांति के भौतिक कारणों की चर्चा करूंगी।

यद्यपि अशांति के अनेक कारण हो सकते हैं, किन्तु मुख्य ये हैं—

(१) भूख (शोषण), (२) भय, (३) असमानता, (४) अन्याय, (५) अत्याचार, (६) भौतिकवाद की ओर प्रवाह, (७) आध्यात्मिक ज्ञान से रहित केवल भौतिक ज्ञान का प्रसार (प्रत्येक क्षेत्र और दुर्लभ साधनों की कोरी जानकारी के अनेकानेक साधन, (८) आधुनिक शिक्षा का प्रसार (बेकारों को जन्म देना भी अशांति का एक कारण है), (९) विलासिता के साधनों के नित्य नवीन वैज्ञानिक आविष्कार, (१०) राजनीतिक सस्थायें, गुटबन्दी तथा परस्पर विरोधी संगठन, (११) यान्त्रिकरण। ये सभी भौतिक तथा आध्यात्मिक अशांति के भौतिक कारण हैं। भौतिक अशांति का आध्यात्मिक अशान्ति से घनिष्ट सम्बन्ध है।

इनमें प्रथम कारण भूख है। भूख में उचित-अनुचित, कर्म-अकर्म कुछ नहीं सूझता, खाद्य-अखाद्य किसी से किसी प्रकार क्षुधा शान्त करना प्राणी मात्र का लक्ष्य रहा है। धर्म-कर्म, कर्त्तव्य और पाप पुण्य की ओर ध्यान तभी जाता है, जब कि पेट भरा हो, तन ढका हो और शरीर स्वस्थ हो। भूखे पेट तो भगवान का भजन भी नहीं होता। संसार के सारे प्रपच पेट के लिये रचे जाते हैं। अतः अशान्ति का प्रथम और मूल कारण— भूख है।

दूसरा कारण भय है। भयभीत प्राणी सदा अशांत रहता है। अन्तःकरण की अशान्ति बाहर प्रकट हुए बिना नहीं रहती। भय को सात्विक, राजसिक और तामसिक इन तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है, जहां सात्विक भय शांति का साधन माना जा सकता है, वहां राजसिक या तामसिक भय

विनाश का सूचक है। धर्म, ईश्वर, पुनर्जन्म कर्म-फल-भोग, पापकर्म अथवा अकर्म कर्म और समाज इत्यादि का भय सात्विक है। इस भय के द्वारा मनुष्य को मन, वचन और कर्म से पवित्र बनने की प्रेरणा मिलती है और इसके द्वारा मनुष्य अपने मन पर नियन्त्रण रखने का आदी बनता है।

चोर, डाकू, लुटेरे, अत्याचारी तथा सरकार के अनुचित कानूनों के भय से क्रोध-मिश्रित अशान्ति उत्पन्न होती है। यहां चोर डाकुओं से रक्षा करने की उन्हें पकड़ने, पकड़वाने या घेरने की, अथवा उनका सामना करने की अन्त:करण से प्रेरणा मिलती है। इसमें परस्पर एक दूसरे की हत्या भी कर डालते हैं। सरकारी कानूनों का जाल जो पग-पग पर उलझन डालता है, उससे (कानून से) बच निकलने की प्रेरणा देता है, अर्थात् मनुष्य को चोरी करने पर उतारू करता है। अतः इस भय को राजसिक माना जा सकता है।

शेर, चीते, भालू, भेड़िये इत्यादि खूंखार जानवरों का, सांप, बिच्छू, ततैये इत्यादि जहरीले जानवरों का अथवा शत्रु का भय उनकी हत्या करने की प्रेरणा देता है, इसलिये इसे तामसिक भय माना जा सकता है। आज की विश्व व्यापी अशान्ति का मूल कारण एक का दूसरे के प्रति भय और अविश्वास ही तो है। नित्य नवीन घातक (सर्वनाशक और प्रलयकर) हथियारों के जखीरे (एटम बंब और हाइड्रोजन बंब का संग्रह) इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

धर्म पर आघात का भय व्यापक अशान्ति उत्पन्न करता है। धर्म के अपहरण का भय और कुशासन के कारण चोर डाकुओं का भय भी इस्लामी राज्य में हर घड़ी बना ही रहता

था। शासन और धर्म की रक्षा के अभय दान के फल स्वरूप हिन्दू जनता ने अंगरेजों का स्वागत किया (यद्यपि यहां भी उन्हें मात खानी पड़ी)।

सबसे बड़ा और सबसे बुरा भय रोटी और रोजी के (विशेष कर जीविका निर्वाह के साधनों के) अपहरण का रहता है। यह मनुष्य के जीवन-मरण का प्रश्न है। इसके लिये एक मोटी कहावत भी है कि जीव के लिये अर्थात् स्वजन के निधन पर मनुष्य मुख ढाक कर रोता है, किन्तु जीविका के लिये ऊंचा मुख करके रोता है। अतः यह स्वीकार करना पड़ता है कि सब से बड़ा भय मनुष्य को उसकी जीविका निर्वाह के साधनों के अपहरण का होता है। इससे मानव हृदय कांप उठता है। वह किसी प्रकार रोटी और रोजी प्राप्त करने को व्याकुल हो उठता है।

अशांति का तीसरा कारण असमानता है। असमानता से ईर्ष्या की उत्पत्ति होती है और वैभव शालियों की बहवृद्धियों को प्राप्त करने की लिप्सा (लालसा) सामूहिक अशान्ति का कारण बनता है।

यहां यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि आज गरीब और अमीर में जितनी असमानता दिखाई देती है और परस्पर जितना अन्तर देखने में आता है, इतना तो कदाचित् इसके पूर्व किसी के सुनने में भी नहीं आया होगा, राजा-महाराजा के भी इतने ठाठ बाट नहीं होते थे जितने आज धनी लोगों के हैं। राजा एक, और ईश्वर का प्रतिनिधि स्वीकृत होने के कारण उसका पद सबसे ऊंचा माना गया था। अतः राजा सबके आकर्षण का केन्द्र होता था उसे देख कर किसी के हृदय में उसके प्रति ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होती थी।

(आज के जन तन्त्र में भी राष्ट्रपति या प्रधान मन्त्री बनने की बात कदाचित ही किसी के ध्यान में आती हो) राजा चाहे जैसा निरंकुश ही क्यों न हो, प्रजा की राजभक्ति का प्रमाण कुछ समय पूर्व तक राजा के पक्ष में सीकर और जैतू-सत्याग्रह के द्वारा मिल चुका है। महाराजा लोग जिस समय हाथी पर बैठ कर अपनी रियासत में निकलते थे, उस समय जनता उन्हें देखने को उमड़ पड़ती थी और 'जै' के नारे लगाती थी। राजा को देख कर प्रजा के मन में जलन नहीं होती, बल्कि उनकी साज, सज्जा, उनके ठाठ-बाट से ही जनता के मन में प्रसन्नता उत्पन्न होती थी। प्रजा को अपने राजा पर गर्व होता था, वह उसे (राजा को) इज्जत देती, उसका आदर करती, उसका मान करती, प्रेम करती और उसके संकेत मात्र पर अपना जीवन न्योछावर करने को तैयार रहती थी। इसके अनेक प्रमाण मिल सकते हैं। राजा बन जाने की बात तो कभी किसी के ध्यान में भी नहीं आ सकती थी। यथार्थ में अशान्ति का कारण तो हम मे परस्पर की असमानता है। आज गरीब के पास न तो भर पेट भोजन है, न तन ढकने को वस्त्र हैं, न रहने को मकान है। आज गरीब के बालक एक छटांक दूध के लिये तरसते हैं, जबकि अमीर के यहां घी-दूध मेवा मिष्टान्न से घर इतना भरा रहता है कि वे न उसे खा पाते हैं, न पचा ही पाते हैं, न उसका किसी अन्य प्रकार से उपभोग ही करते हैं।

अमीर दिन में चार बार भोजन करता है, अनेक बार नित्य नए फैन्सी कपड़े बदलता है, जबकि गरीब फटे चिथड़ों में ही दिन काटता है। कभी-कभी वह भी नसीब नहीं होते।

गरीब को एक झोंपड़ी भी रहने के लिए कठिनाई से मिल पाती है, (अनेकों के पास वह भी नहीं है) जबकि अमीर आली-

शान महलों में, गगन चुम्बी अट्टालिकाओं में निवास करते हैं। गरीब सरदी, गरमी, बरसात सब अपने शरीर पर झेलता है। उसके पास सिर छुपाने को जगह नहीं, जबकि अमीर के लिये सरदी और गरमी से बचने के अनेकों साधन सुलभ होते हैं। गरमी से बचने के लिये खस की टट्टी, बिजली के पंखे एअर कण्डीशन कमरे, बरफ की मशीन (रेफ्रीजिरेटर) इत्यादि तो होते ही हैं, साथ ही पहाड़ों पर रहने का व्यवस्था भी रहती ही है। सरदियों मे ढेरों गरम कपड़े, स्वेटर, कोट, ओवर कोट, अथवा शाल दुशाले, मखमली गद्दे, गरम गलीचे, लिहाफ, गद्दा, हीटर इत्यादि अनगिनत सरदी से बचने के साधन हैं, जबकि गरीब के बालक नंगे या चिथड़ों को लपेटे ठिठुरा करते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्य असमानतायें बहुत बड़ी हैं। जैसे कि अमीर के घर में ग्रामोफोन, रेडियो, मोटरकार तथा टेली-फोन इत्यादि होते हैं। याता-यात के साधनों में भी भारी भेद है। रेलगाड़ी में भी फर्स्ट, सैकेण्ड, इण्टर और थर्ड क्लास का भेद है। यहां अमीर फर्स्ट क्लास में और गरीब थर्ड क्लास में चलता है अधिकांश धनी एअर कण्डीशन (ठण्डे) डिब्बे में यात्रा करते हैं अथवा वायुयान में उड़कर चलते हैं. जबकि गरीब उन्हें देख कर केवल ललचा कर रह जाते हैं।

यातायात के अनेकानेक साधनों द्वारा विश्व की परिक्रमा देना सुगम हो गया है। यहां धनी अपने धन के बल पर विश्व-भ्रमण का आनन्द लेते हैं और करोड़ों की सम्पत्ति लुटा कर वापस आते हैं। कुछ व्यक्ति विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये भारत सरकार के खर्च पर विदेशों में भेजे जाते हैं। किन्तु जिनके पास न धन है, न सरकार की कृपा प्राप्त करने की

योग्यता है, वह अपना हृदय मसोस कर रह जाते हैं। यही असमानता शिक्षा प्राप्त करते समय आगे आती है।

धनाढ्य अपने बालकों को कॉनवेण्ट स्कूलों में पढ़ाते हैं। अथवा पब्लिक स्कूलों में भेज देते हैं (कई लोग अपने बालकों को पढ़ने के लिये विलायत में छोड़ आते हैं) इन स्कूलों में एक बालक की फीस जितनी लगती है, उतनी साधारणतः गरीब या मध्यम श्रेणी की कुल आय भी नहीं होती, उन्हें उतना वेतन भी नहीं मिलता जितनी पब्लिक स्कूलों में एक बालक की फीस लगती है। उसी में पूरे कुटुम्ब का (जो कि उन पर आश्रित हों) पालन करना पड़ता है। अतः गरीब बालकों के लिये जो सरकारी स्कूल खुले हैं और उनमें जो शुल्क निर्धारित किया गया है वह भी गरीब की सामर्थ्य के बाहर है। इसलिये गरीब के बालक अनपढ़ रह जाते हैं। यह भी अशांति का एक कारण है। यह असमानता आज प्रत्येक घर में और सगे भाईयों में देखी जा रही है। जब एक भाई स्वर्ग के समान सुख का उपभोग करता है, तब दूसरा फटे हालों फिरता है। ये सब अशान्ति के कारण हैं।

अन्याय से भी अशान्ति उत्पन्न होती है। किसी प्रकार का अन्याय अधिक समय तक सहन करना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार अत्याचार भी सहन नहीं होता।

श्री तुलसी दास जी ने रामायण में लिखा भी है—

अति शय रगर करे जो कोई। अनल प्रगट चन्दन तें होई॥

यह सब अशांति के मूल कारण हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं जैसे कि कोरा भौतिकवाद, अध्यात्म ज्ञान से रहित शिक्षा का प्रसार। आज की शिक्षा संसार के प्रत्येक

देखने व सुनने में आ रहा है जिसका धर्म ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न रूपों में उल्लेख मिलता है। धर्म-ग्रन्थ इस स्थिति को तीनों प्रकार की अशांति का कारण मानते हैं। अर्थात् इस स्थिति के निवारण के लिए भगवान को अवतार धारण करना पड़ता है। अतः यह सब अशांति के कारण माने जा सकते हैं।

साम्यवाद

अशांति के कारणों में भूख तथा असमानता को सभी ने स्वीकार किया है। रूसी साम्यवाद की स्थापना का उद्देश्य भी जारशाही और पोपशाही अत्याचार भूख और असमानता का निवारण करना ही रहा है। न केवल रूस बल्कि आज प्रत्येक देश और प्रत्येक व्यक्ति शांति स्थापित करने का मूल साधन साम्यवाद को मानता जा रहा है। जो साम्यवाद देशी नहीं हैं वे भी किसी न किसी रूप में अपने यहां साम्यवादी सिद्धांत को लागू करने की ओर पग बढ़ाते जा रहे हैं। इनमें रूस सब का गुरु माना जा रहा है। वह पूर्णतः साम्यवादी होने का दावा करता है, किंतु देखना यह है कि रूस इस साम्य की स्थापना करने में कहां तक सफल हुआ।

जब से रूस में साम्यवाद की स्थापना हुई है, तब से वह लोह आवरण के घेरे में आ गया है। अतः वहां के लोगों की यथार्थ स्थिति बताना तो कदाचित किसी के लिए सम्भव नहीं है, क्यों कि न तो रूसी जनता स्वेच्छा पूर्वक वहां से बाहर निकल सकती है और न अन्य देशों के समान वहां कोई जा ही सकता है। जो लोग रूस में किसी प्रकार (सरकारी काम से अथवा अन्य किसी कार्य वश) पहुँच भी जाते हैं वे भी वहां प्रत्येक स्थान पर न तो घूम फिर सकते हैं, न हर किसी से मिल सकते हैं, न मनमानी बातचीत ही कर सकते हैं। वहां के समाचार

परस्पर विरोधी रूप से मिलते हैं, जिससे कुछ भी स्पष्ट करना कठिन है। अतः जो कुछ प्रत्यक्ष देखने में आता जा रहा है, उसी के आधार पर कुछ अनुमान लगाया और लिखा जा सकता है।

हो सकता है रूस में आर्थिक (भोजन सम्बन्धी) असमानता का किसी सीमा तक निवारण हो गया हो (यद्यपि इसमें भी सन्देह है) किंतु भय, अन्याय और अत्याचार वहां अपनी चरम सीमा पर हैं। साम्यवादी विचार धारा के अतिरिक्त अन्य दल न तो वहां हैं न बनाये जा सकते हैं। लोग विवश होकर अपने विचारों की स्वतन्त्रता खो चुके हैं। जनता कडे और कठोर अनुशासनके बंधन मे बंधी है। सुना जाता है कि वहां अकारण हीं सन्देह मात्र पर गिरफ्तार कर बिना अभियोग चलाये गल कर मरने के लिए साइबेरिया भेज दिया जाता है अथवा शूट कर दिया जाता है। हजारों प्रसिद्ध व्यक्ति इस प्रकार मारे जाचुके हैं। यह न केवल अन्यायहै बल्कि भीषण अत्याचार भी है। वहां व्यापक भय का बड़ा कारण भी ये अत्याचार हैं।

साम्यवादी देशों के जो व्यक्ति किसी प्रकार समय समय पर युद्ध बन्दी आदि के रूप में एक बार साम्यवादी शिकंजे से निकल आते हैं, वे पुनः वापिस जाना नहीं चाहते। कोरिया युद्ध के चालू रहने का आज प्रत्यक्ष कारण भी यही है।

कोरिया युद्ध के बन्दी जोकि आज अमेरिका की कैद में हैं, उनमें से अधिकांश आज कोरिया जाना नहीं चाहते, जबकि साम्यवादी देश उन्हें जबरदस्ती वापस लेना चाहते हैं। इस समस्या का हल न होने के कारण ही कोरिया से विराम सन्धि होने में काफी देर लगी।

गत युद्ध के समय भारतीय सेना व उनके अफसर मध्य-पूर्व के सभी देशों मे भेज दिये गये थे। उन लोगों ने अपनी

आंखों देखा हाल इस प्रकार वर्णन किया है।

जब जर्मनों ने रूस पर आक्रमण किया तो बहुत से रूसियों को बन्दी बना कर लिबिया आदि देशों में काम करने के लिए भेज दिया, जोकि उस समय इटली के कब्जे में था। लिबिया पर मित्र राष्ट्रों का अधिकार हुआ। तब जर्मनों द्वारा बनाए गए रूसी बन्दी भी बन्धन-मुक्त हुए। मित्र राष्ट्रों ने उन्हें स-सम्मान रूस भेज देना चाहा, किंतु उनमें से कोई भी रूस जाने को तैयार न हुआ। यहां तक कि रूस के बाहर वह बन्दी बन कर जेल में रहने को तैयार थे, किंतु रूस जाने को तैयार न थे। इधर रूस उनकी मांग करता रहा। जब वह किसी प्रकार न माने तो उन्हें जबरदस्ती जहाजों पर चढ़ा कर रूस भेजना चाहा, यह देख जहाजों के चलने पर उनमें से अनेक समुद्र में कूद पड़े। वे रूस के बाहर सब त्रास सहने व मरने तक को तैयार थे, किंतु रूस जाते डरते थे। क्योंकि उस समय रूस भी मित्र राष्ट्रों का एक अंग था। अतः उन सब बन्दियों को मिलिटरी के पहरे में उस समय रूस भेज दिया गया। यहां प्रश्न उठता है कि यदि रूस में थोड़ा भी समानता होती तो वे अपने देश, अपने सगे सम्बन्धियों के बीच जाने से इतना क्यों घबड़ाते? रूस पहुंचने पर उनके साथ क्या व्यवहार हुआ यह कोई नहीं बता सकता।

आज की विश्व व्यापी अशांति तथा परस्पर संघर्ष के भय का कारण भी बहुत कुछ यह रूसी साम्यवाद के प्रसार का भय माना जा सकता है।

श्री गणेशाय नमः

शान्ति का साधन

अशान्ति के कारणों का निवारण करना ही शान्ति का मुख्य साधन माना जा सकता है। भूख, भय असमानता, अन्याय और अत्याचार आदि का निवारण करने से सब प्रकार की भौतिक अशान्ति दूर हो जानी चाहिये। किन्तु शान्ति या अशान्ति का केन्द्र अन्तःकरण है। अन्तःकरण के ही भाव बाहर प्रकट होते हैं। यदि अंतःकरण अशान्त बना रहा तो बाहरी शान्ति स्थापित करने के सारे साधन व्यर्थ सिद्ध हो सकते हैं। इसलिये भौतिक शान्ति स्थापित करने का प्रयास करते समय आध्यात्मिक शान्ति के साधनों का प्रयोग करना अत्यावश्यक है। धर्म पालन, ध्यान, धारणा, दान, दया, तप, त्याग, यज्ञ, निष्काम कर्म, विनम्रता, सरलता, सेवा भाव, ये सब प्रकार की शान्ति के साधन हैं। किन्तु यहां प्रश्न उठता है कि यह सब सम्भव कैसे हो ?

यथार्थ में आज कोई भी शान्ति का इच्छुक नहीं है। सब केवल शान्ति का नारा लगाना जानते हैं। इसके लिये जिस धर्म की, पुरुषार्थ की, तप और त्याग की आवश्यकता है उसके लिये कोई तैयार नहीं। सब अपने-अपने विचारों को उत्तम, श्रेष्ठ और अन्य सबको निकृष्ट समझते हैं। सबकी प्रबल इच्छा है कि हमारी टेक ऊपर रहे अथवा किसी प्रकार का त्याग किये बिना हमारे शान्ति का नारा जादू कर जाय (जो कि सर्वथा असम्भव है) अपनी उचित या अनुचित भावना, अपनी इच्छा तथा अपने स्वार्थों का परित्याग करने के लिये कोई तैयार नहीं।

शान्ति की समस्या आज नई नहीं उठ खड़ी हुई। यह तो अनादि काल से चली आ रही है। धर्म ग्रन्थों में लिखा मिलता है कि देव, दानव और मानव यह तीनों परस्पर लड़ते-लड़ते जब क्लान्त हो गये तब उनके मन मे शान्ति की इच्छा उत्पन्न हुई। अतः तीनों मिलकर ब्रह्मा के पास गये और तीनों ने ब्रह्मा के आगे अपने-अपने दुःखों का वर्णन किया और कहा कि हमारी परस्पर (सन्धि) सुलह करादी जाय। ब्रह्मा ने तीनों की ओर देखकर कहा—द, द, द, और तीनों से पूछा कि समझ गये? तीनों ने उत्तर दिया कि हां! समझ गये। फिर ब्रह्मा जी ने देवताओं से पूछा कि तुम क्या समझे? देवों ने कहा—आपने यह बताया कि दमन करो, ब्रह्मा ने कहा—तुम ठीक समझे। फिर ब्रह्मा ने दानवों से पूछा कि तुम क्या समझे? दानवों ने कहा कि आपने यह बताया कि दया करो। ब्रह्मा ने कहा तुम भी बिल्कुल ठीक समझे। आगे मानव से भी यही पूछा गया? तो उसने उत्तर दिया कि आपने यह बताया है कि दान करो। ब्रह्मा ने कहा कि तुम तीनों ठीक-ठीक समझ गये। अतः तीनों जो कुछ समझे हो, उसी के अनुसार कर्म करते रहो। इसी में सब की भलाई है और इसी से सब प्रकार का सुख और शान्ति प्राप्त होगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

जब तक सत्य धर्म और बहुमत की भावनाओं के पक्ष में, अपने-अपने स्वार्थों का, अपने इच्छित धर्म विरोधी विचारों का परित्याग नहीं किया जाता तब तक सुख और शान्ति सम्भव नहीं। यथार्थ में धर्म मार्ग ही शान्ति का साधन है। संसार में जब २ जिस रूपमें भी धर्मका नाम लिया गया उनमेंसे अधिकांश का मूल उद्देश्य किसी न किसी रूप में *सुख और शान्ति स्थापित* करना भी रहा है और जब तक लोगों ने अपने-अपने धर्म के

मूल उद्देश्यों का सचाई से पालन किया, तब तक उनमें परस्पर किसी प्रकार की अशान्ति उत्पन्न न हो पायी। वैदिक धर्म की व्यवस्था इसका जीता जागता प्रमाण है।

हिन्दू-समाज में प्रत्येक यज्ञ आदि के शुभ अवसर पर शांति पाठ करने का प्रचलन है। शांति पाठ के अन्त में तीन बार ओ३म शांतिः, शांतिः, शांतिः का उच्चारण किया जाता है। जिसका तात्पर्य आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीन प्रकार की शांति से है। किंतु केवल शांति पाठ के उच्चारण मात्र से शांति स्थापित नहीं हो सकती। जब तक उसे क्रियात्मक और व्यावहारिक रूप न दिया जाय तब तक किसी प्रकार की भी शांति सम्भव नहीं। अतः देखना यह है कि वैदिक धर्म की व्यवस्था में इसे व्यवहारिक रूप कैसे दिया ?

इसके लिए हमें पीछे देखना होगा। यह भी देखना होगा कि हमारा रहन-सहन कैसा था और हम परस्पर कैसा व्यवहार करते थे। यथार्थ में हमारे रहन-सहन में परिवर्तन अंगरेजों के आने के उपरांत हुआ है। उनके प्रभाव में आने के पूर्व क्या था? मुसलमानी काल में हमने किस प्रकार अपने अस्तित्व की रक्षा की? इसकी ओर भी किंचित ध्यान देना चाहिए।

मुसलमान बादशाह अपने मुसाहिबों तथा मुसलमान प्रजाजनों के साथ बड़े-बड़े नगरोंमें और बड़े २ ऊंचे महलोंमें रहते थे, किंतु हिंदू लोग छोटे-छोटे गांवों में और मिट्टी के छोटे, बड़े, कच्चे घरों में रहते थे जो हिंदू अपना जीवन खतरे में डाल कर व्यापार आदि के लिए बड़े नगरों में रहते भी थे, उन सब का सम्पर्क और सामाजिक नियन्त्रण गांव से ही होता था। यद्यपि इनमें गरीब और अमीर सभी प्रकार के लोग थे। किंतु हिंदू समाज के रहन-सहन में परस्पर कहीं पर

भीअसमानता और आर्थिक विषमता दिखाई नहीं देती थी। जिस प्रकार के घर में गरीब रहता, उसी प्रकार के कच्चे मकान में अमीर रहता (गरीबी और अमीरी का अनुमान ब्राह्मणों का पुस्तकों से, क्षत्री का हथियारों से, वैश्य का खेती और पशु धन से और शूद्रों का उन-उनके जातिगत व्यवसायों से लगाया जाता था) बल्कि आज भी बड़े-बड़े जमीदारों के पुराने घर कच्चे और छप्परों से छाये हुए ही अधिकतर देखने में आते हैं। यह बात नहीं कि उस समय अब के समान कोई महल बनाना न जानता था, बल्कि जितने विशाल और कारीगरी के पुराने मन्दिर या किले आदि आजभी खड़े दिखाई देते हैं, उनकी टक्कर की कोई इमारत आज के इन्जीनियरों ने एक भी बना कर दिखाई हो, ऐसा सुनने में नहीं आया। ताजमहल जिसे संसार का एक आश्चर्य मान लिया गया है, यह भारतीय कारीगरी की ही करामात थी। वह उसकी टक्कर की दूसरी इमारत न बना सके इसलिए (सुना जाता है) उनके हाथ काट डाले गये। भारत में आज भी ऐसे आश्चर्य युक्त-अगणित नमूने बिखरे पड़े हैं। जैसे कि हिलने वाली दीवार तथा खम्भे इत्यादि। सुनते हैं इनमें से बहुतों को अंगरेजों ने बारी-बारी से उनकी कारीगरी की पड़ताल करने के लिये खोद डाला, फिर भी उनकी जानकारी प्राप्त न करसके अतः दूसरा बना भी न पाये। यह वंश परम्परागत एक ही कर्म करते रहने का परिणाम था। इतने कुशल कारीगरों के होते हुए भी आम जनता में से किसी ने अपने रहने के लिये भी कोई बढ़िया महल बनवाया हो, इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता। कारण कि सब में समान स्तर रखने का (उस समय की स्थिति में) यही एक मात्र साधन था। क्योंकि कच्चे घर तो कोई भी अपने पुरुषार्थ के द्वारा खड़ा कर सकता है। किन्तु पक्के और ऊंचे महल बनवाना प्रत्येक के सामर्थ्य के बाहर की बात हो जाती है।

पक्के और ऊंचे विशाल मन्दिर धनी लोग भगवान के लिये बनवाते अथवा महाराजाओं के किले होते। क्योंकि देश के राजा को भगवान का ही प्रतिनिधि माना जाता था, इसलिये राजा को बढ़िया पक्के, ऊंचे महल (किले) में रहने का अधिकारी माना गया था। इसीलिये राज्याज्ञा का पालन करना धर्म का एक अंग मान लिया गया था।

मुसलमानी काल में भी अधिकांश ग्रामीणों (जिसमें सभी हिन्दू जातियां आ जाती हैं) का अपनी-अपनी जाति के अनुरूप सामाजिक कर्म का क्रम बन्धा होने के कारण किसी को भी आर्थिक विषमता का सामना करना नहीं पड़ता था। आवश्यकतायें भी सबकी सीमित थी। जितने में गरीब का निर्वाह होता। अमीर भी अपनी आवश्यकता को उसी हद तक सीमित रखने का प्रयत्न करता था इसलिये गरीब और अमीर के रहन-सहन में कोई विशेष अन्तर दिखाई न देता था। अमीर अपना धन दान, धर्म करने में, मन्दिर धर्मशाला आदि बनवाने में, कुआ बावड़ी और तालाब खुदवाने में, बद्रीनाथ आदि तीर्थों की सड़क तथा पुल आदि बनवाने में और उनकी देख-भाल मरम्मत आदि करने में व्यय किया करता था। अंगरेजों के पूर्व ऐसी दानी तथा धनी जनता के विशेष कर मारवाड़ी वैश्यों की उदारता के कारण बद्रीनाथ और केदारनाथ की यात्रा कभी रुकी नहीं।

सबकी वेष भूषा और खान-पान एकसा था। गरीब अमीर सब मोटा अनाज खाते अर्थात् जिन देशोंमें जिस अनाज की अधिक मात्रा में उत्पत्ति होती, वहां के गरीब-अमीर सब वही खाते। मोटे अन्न की जैसे कि ज्वार, बाजरा, जौ, चना, मक्की, कोदों आदि की, पैदावार अधिक मात्रा में होती है और

सुनने में आता है कि इनकी देख-भाल, करने में कठिनाई भी कम पड़ती है। इसलिये यही अधिक मात्रा में बोये जाते और इन्हीं को सब खुशी से खाते थे। आज के समान गरीब-अमीर सबको गेहूँ या चावल की ही आवश्यकता न थी।

गरीब अमीर सब मोटा पहनते (ढाके की मल-मल, तंजेब इत्यादि अधिकतर मुसलमानों मे खपते थे) गरीब अमीर सभी स्त्री और पुरुष कड़ा परिश्रम करते। घर के काम के लिये नौकर या नौकरानी रखने का विशेष चलन न था। प्रत्येक स्त्री घरका प्रत्येक कार्य करती। वल्कि धनवानों के घर में पशु धन अधिक होने के कारण उनकी स्त्रियों को अधिक काम करना पड़ता था (श्री कृष्ण जी के पालक-पिता नन्द बाबा धनी (सेठ) थे, किन्तु यशोदा माता स्वयं मट्ठा बिलोती थीं। श्री सीता जी यद्यपि महारानी थीं। उनके घर में दास-दासियों की कमी न थी। किन्तु सीता की रसोई आज भी प्रसिद्ध है) गरीब और अमीर स्त्रियों में उस समय थोडा सा अन्तर दिखाई देता था, जब कि विवाह शादियों में अमीर स्त्रियां कुछ सोने-चांदी के गहने अधिक पहन लिया करती थीं, ऊपर से सेल्हा ओढ़ लिया करती थीं, और गरीब स्त्रियों के पास ये सामान कम होते। सभी पुरुष वर्ग जीविकोपार्जन करते। खेती, वनिज तथा रक्षा का प्रबन्ध करते। धन की बचत होने पर उसका प्रथम प्रयोग स्त्रियों के लिये गहने गढ़ाने में किया जाता (जिसे स्त्री धन माना गया है) अमीर गरीब की यही पहचान थी।

हमारे लोक गीतों में (जो कि आज सब अन्तरिक्ष में विलीन होते जा रहे हैं) इन सबका थोड़ा बहुत परिचय अथवा प्रत्यक्ष परिचय आज भी मिल जाता है।

यथार्थ में शान्ति का बीज इस प्रकार की समानता के बीच में छुपा रहता है इसके लिये जिस तप (मन को रोकने की)

त्याग (स्वामी त्याग, अथवा अहंकार त्याग) यज्ञ (जिससे बहुतों का भला हो अथवा सामूहिक उन्नति होती हो) और दान की आवश्यकता है। उसके लिये आज कोई भी तैयार दिखाई नहीं देता।

आज आवश्यकता है पर हितमें कष्ट सहन करने की। न केवल धन का दान करने से काम चलेगा, बल्कि दान करना होगा अपने परम स्वार्थों का, अपनी इच्छाओं का, अपनी महत्वाकांक्षाओं का, अपने स्वाभिमान का, अपने अहंकारों का, अपनी कल्पना के जिस सुनहरे संसार की रचना के सकल्प का त्याग अथवा दान करने की आज आवश्यकता है, उतना त्याग करने का साहस आज किसी में दिखाई नहीं देता। आज सभी बुद्धिवादी हैं। अतः सभी अपनी बुद्धि और अपने विचारों को सर्वोत्तम मान कर उस पर अन्य सभी को चलाना चाहते हैं। सब अपनी-अपनी हठ पर अड़े हुये हैं, कोई झुकने को तैयार नहीं, अतः यह स्वीकार करना पड़ता है कि आज कोई भी शांति का इच्छुक नहीं।

जिस दिन सब लड़ते-भिड़ते थक जायेंगे, देव दानव और मानव की भांति क्लान्त हो श्रद्धा सहित ईश्वर में विश्वास रख धर्म और शास्त्र रूपी ब्रह्मा की शरणमें जायेंगे, उसी समय तीनों (प्रत्येक वर्ग) अपने-अपने क्षेत्र में 'द' शब्द का अर्थ समझ उसका पालन करने लगेंगे। उसी समय सब जगह सुख समृद्धि और शांति विराजमान हो जायगी इसमें सन्देह नहीं।

आज आलीशान महलों में रहने वाले तथा-कथित प्रगतिशील व्यक्ति मेरे इन विचारों को—*प्रतिगामी, प्रतिक्रियावादी*, साम्प्रदायिक, समाजविरोधी, पिछड़ापन और न जाने क्या-क्या कहेंगे ? यह मैं नहीं जानती, किंतु सत्य यही है।

आज सब का जीवन मान बढ़ाने की अर्थात् सबके रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठाने की बात सुनने मे आ रही है। यदि सबके लिए सुन्दर महल और आधुनिक काल की सभी वैभव पूर्ण सामग्री प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ हो सके तो इससे अच्छी और बात भी क्या है किंतु इसमें भी रामराज्य और रावण राज्य के दो भेद हो सकते हैं। धर्म राज्य और अधर्म राज्य ये दोनों सभी बहबूदियों से पूर्ण अथवा सम्पन्न राज्य के दो स्वरूप हैं। इनमें रामराज्य (धर्मराज्य) का स्वरूप ही शांति का साधन है। रावण राज्य (अधर्म राज्य) का स्वरूप सोने की लंका के समान चाहे जैसा सुन्दर क्यों न हो, वह अशांति का कारण सिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं।

राजनीतिक क्षेत्र

ऊपर जिस शांति तथा अशांति की चर्चा की गई उसका सम्बन्ध केवल जन साधारण से है। राजनीतिक-क्षेत्र अथवा अन्तर्राष्ट्रीय शांति का विषय इससे भिन्न है जिसका सम्बन्ध यद्यपि राजनीति (कूटनीति) अथवा शासक वर्ग की बुद्धिमत्ता तथा विचार धारा से है। फिर भी भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में परस्पर सनातनी और संघर्ष की भावना से जो अशांति उत्पन्न होती है उसका परिणाम भी जनता के लिए भयंकर होता है। शासक वर्ग परस्पर युद्ध की घोषणा करते हैं और निर्दोष जनता बीच में बुरी तरह कुचली जाती है। अतः भिन्न-भिन्न राज्यों मे परस्पर अशांति क्यों उत्पन्न होती है ? और उनमें शांति बनाए रखने का साधन क्या है ? यह प्रश्न पुनः आगे आता है।

राष्ट्रों की नीति दो प्रकार की होती है। एक शांति प्रिय राष्ट्र होते हैं, दूसरे को युद्धप्रिय माना जा सकता है। ये दोनों ही प्रकृति खतरनाक हैं। कारण कि युद्ध प्रिय राष्ट्र शांति

प्रिय राष्ट्र को कभी शांति से नहीं रहने देता। किसी न किसी प्रकार की गड़बड़, अव्यवस्था और भय फैलाने की चेष्टा करता रहता है। वह लूट-खसोट द्वारा आतंक फैलाकर जनता को भय-भीत करके अव्यवस्था की स्थिति में ला देगा और अवसर पाते ही आक्रमण कर उस पर हावी हो जायगा। छोटे और कमजोर देश तो उसके आगे कभी टिक नहीं सकते। यदि वह देखता है कि पड़ोसी राज्य प्रबल है, मुंह तोड़ उत्तर देने का साहस रखता है, धन और बल में भी सम्पन्न है, तो उससे मेल बढ़ाने का और अपने आप को भी शांति प्रिय प्रदर्शित करने की चेष्टा करेगा। रण-शक्ति, दम्भ, दर्प और घमण्ड भी अशांति के कारण हैं। इससे पराजय का मुख देखना पड़ता है। यदि देखा जाय तो जनसाधारण के लिए जो शांति के साधनों का ऊपर वर्णन किया गया है युद्ध प्रिय राष्ट्रों के साथ वही व्यवहार अशांति का कारण बनता है और जो व्यवहार जनता के मध्य अशांति उत्पन्न करने वाला है, युद्धप्रिय राष्ट्रों के साथ वही व्यवहार बहुधा शांति का साधन बन जाता है। केवल मूख किसी सीमा तक इसका अप-वाद हो सकती है। एक देश की दुष्टता का परिणाम अन्य देश वासियों को भुगतना पड़ता है। अत: ऐसे देशों के साथ शराफ बर्तना भारी भूल है। श्री रामायण में लिखा है—

शठ सन विनय कुटिल सन प्रीति—सहज कृपण सन सुन्दर नीति
ममतारत मन ज्ञान कहानी—अति लोभी सन विरति बखानी
क्रोधहिं सम कामी हरि कथा—ऊसर बीज बये फल जथा

अर्थात्—मूर्ख से विनय, कुटिल के साथ प्रीति, कंजूस सुन्दर नीति (उदारता का उपदेश) ममता में फंसे हुए मनु से ज्ञान की कथा, अत्यन्त लोभी से वैराग्य का वर्णन, क्रोधी से शम (शांति) की बात और कामी से भगवान की कथा कहने

का वैसा ही फल होता है जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है। (अर्थात् ऊसर मे बीज बोने की भांति सब व्यर्थ जाता है।)

राज्य के सब प्रजाजन सुखी, सम्पन्न और धर्मात्मा हों। सब अपने-अपने धर्म का पालन करते हों, किसी को एक दूसरे से भय न हो, सुव्यवस्था हो और सुशासन हो, रक्षा-व्यवस्था सुदृढ़ हो, पूर्ण रूपेण सुसज्जित सेना हो (जो आततायी राष्ट्रों से अधिक कुशल, देश भक्त और तगड़ी हो) राज्य का कोष भरपूर हो, साथ ही आततायियों पर रौब-प्रभाव गांठने की कला आती हो। ऐसे सम्पन्न राष्ट्र की ओर आंख उठाने की भी किसी का साहस न होगा। बल्कि ऐसे राष्ट्र की सभी राष्ट्र खुशामद करते हैं (आज भी अंग्रेज ब्रिटेन इसका उदाहरण हैं) सभी देशों में उसकी प्रजा मान पाती है। इसमें थोड़ी भी कमी आते ही प्रत्येक देश घुड़की दिखाने लगता है। महाभारत में लिखा है— राजा की जड़ बुनियाद कोष और सेना है। उनमें कोष बल का आधार है। बल सब धर्मों का मूल है और धर्म प्रजा का मूल है।

भारत सदा शांति प्रिय राष्ट्र रहा है, अतः आततायियों ने कभी इसे शांति से नहीं रहने दिया। जब तक इसकी रक्षा-व्यवस्था सुदृढ़ रही, जैसे को तैसा मुंह तोड़ उत्तर देने का इसमें साहस रहा युद्ध प्रिय देशों को पिट जाने का भय रहा तब तक इसके सब मित्र बने रहे, सब इसकी खुशामद करते रहे और सब पर इसकी धाक जमी रही। भारत जगद्गुरु बना रहा, किंतु जब से भारत की राजनीति में अहिंसक शांति का प्रवेश हुआ, तब से सभी युद्ध प्रिय राष्ट्र इसके शत्रु बन गए। अहिंसा भी अक्षुण्ण न रह पाई। सारे देश में भय और व्यअवस्था का आतंक छा गया। आए दिन बाहरी हमले होने लगे। भारत के पड़ोस में जो भी प्रबल होता वही कुछ सैनिकों को लेकर

वेधड़क भारत पर चढ़ आता और लूट खसोट कर कर चला जाता। अन्त में अवसर पा वह इस पर हावी हो गये। भारत पराधीनता की बेड़ी में जकड़ा गया जो लगभग हजार वर्ष के उपरांत आत्म-विस्मृत होकर वह राजनीतिक क्षेत्र में (किसी हद तक) स्वतन्त्र हुआ है, किंतु आज भी वही स्थिति देखने में आ रही है जिसके कारण वह परतन्त्र हुआ था। जो कुछ हो रहा है सर्व विदित है।

चेतावनी

स्मरण रहे, अनादि काल से संसार के सभी देश उठते और गिरते रहे हैं उठने पर ये चोटी पर चढ़े प्रतीत होते हैं और गिरते हैं तब ऐसे धूल में मिल जाते हैं कि उनका नाम निशान भी नहीं रहता। इस बात का पर्याप्त प्रमाण मिल सकता है कि संसार के सब देशों ने भारत से ही धर्म का प्रकाश पाकर (धर्म का पल्ला पकड़ कर) शनैः शनैः अपनी उन्नति की। किन्तु ऊंचा उठ जाने पर उनमें घमण्ड के आ जाने से उन्होंने धर्म की बातों को तुच्छ और पिछड़ापन समझ उन्हें ठुकरा कर उल्टा मार्ग ग्रहण कर लिया। धर्म का पल्ला छूटते ही पटखनी खा ऐसे नीचे गिरे कि फिर उठने का नाम भी न ले सके। रोम, यूनान, मिश्र आदि की प्राचीन सभ्यता इसका प्रमाण है। मिश्र के स्तूप (पिरामिड) आज भी जिसकी सूचना दे रहे हैं।

काल-क्रम से भारत में भी ऐसे उलट फेर होते रहे हैं। भारत भी उठता और गिरता रहा है। किन्तु धर्म प्रधान होने के कारण यहां विशेषता यह रही है कि गिर कर भी भारत की सभ्यता तथा संस्कृति भूमि साथ न हुई। गिरी स्थिति में भी इसमें न केवल स्वयं उठने की बल्कि अन्य देशों तक धर्म का प्रकाश पहुँचाने की भी सामर्थ्य रही है। जिसका एक कारण यह भी था कि भारत कभी भी अन्य देशों के चमत्कारों से चौंधिया कर उनके आगे नत मस्तक नहीं हुआ और न उसने किसी अन्य देश का अनुकरण करने की होड़ बदी। बल्कि सत्य धर्म पर चलने का सबको प्रोत्साहन देता रहा। इसीलिये यह सदा जगत का धर्म गुरू बना रहा। किन्तु आज भारत की यह ज्योति

वुझती सी दिखाई दे रही है। फलतः इसका भी विनाश को प्राप्त होना अनिवार्य है। उस स्थिति में मानवता का भी उस समय तक के लिये अन्त होगा जब तक कि भगवान ही अवतार धारण कर धर्म की पुनः स्थापना न करें। कारण कि आज हमारी दृष्टि उन्हीं धर्म निरपेक्ष उन्नत देशों की ओर लग गई है और हम उनका अन्धानुकरण करने में लगे हुए हैं। आज प्रगतिशील वर्ग और शासक मण्डली सत्य को पलट डालने की धुन में हैं। सत्य वैदिक सनातन धर्म के आधारभूत सिद्धान्त को उलट उसे आधुनिक सांचे में ढालने के लिये तत्पर हैं।

भारत के प्रधान मन्त्री का यह कहना है कि हमें हिन्दू समाज के आधार को जड़ से बदलना है उसे जमाने के अनुसार नये सांचें में ढालना है। साथ ही यह भी ध्यान में रखना है कि कहीं इसकी जड़ न उखड़ जाय। इत्यादि

कदाचित् श्री नेहरू जी तथा शासक मण्डली या सुधारक वर्ग की श्रेणी अमर होती और वैदिक धर्मके सनातन वृक्ष को जड़ से उखाड़ने के उपरान्त उसकी पुनः जड़ जमाने की भी उनमें शक्ति होती। जिससे इस उलटफेर के दुष्परिणामों को वे अपनी आंखों देख भी सकते। किन्तु श्री नेहरू जी आदि शासक वर्ग अथवा स्वर्णिम संसार का स्वप्न देखने वाला सुधारक मण्डल आज अमर होने का दावा नहीं कर सकता। यदि इनमें से एक भी अमर होने का दावा कर सकता और धर्म के इस आधार को उलटने के परिणामों को देख पाता तो उसे यह समझते देर न लगती कि जिसे वह प्रतिगामी मनोवृत्ति मान कर ठुकरा चुका है यथार्थ में वही मनुष्य की प्रगति का सच्चा मार्ग था। जिसे वह अवनति समझ बैठा वही मानव की चहुँमुखी उन्नति का सर्व प्रधान साधन था जो उन्हें अत्याचार दिखाई दिया। वही उदारता

है और जिसे वह शोषण कह कर पुकार चुका है वही जन जा
के पोषण का एकमात्र साधन था। किन्तु खेद तो इस बात का
कि इनमें से एक भी अमर होकर नहीं आया।

विचार शील विदेशी विद्वान भारतीय हिंदुओं की प्राची
रीतियों पर मुग्ध हो उनका गुणगान करते हैं। श्री फ्रेडरिक पि
काड महोदय कहते हैं —

इस प्रकार मान लेने मे कोई भी शका नहीं हो सकती
करोड़ों बुद्धिमान हजारों वर्षों से जिन सामाजिक रीतियों
व्यवहार में ला रहे हैं उनके भीतर ऐसा कोई तत्व अवश
होगा जिनके कारण उन्हें हम मूर्खता या अत्याचार से यु
दोषपूर्ण नहीं ठहरा सकते। हिंदुओं के सम्बन्ध में यह बा
निसंकोच रूप से स्वीकार की जा सकती है। जिनके बारे
मैक्समूलर ने ठीक ही कहा है कि "यह दार्शनिकों की जाति है।
यह निश्चित है कि हिंदुओं की समस्त धार्मिक तथा सामाजि
व्यवस्था उनके शत-शत वर्ष व्यापी गम्भीर चिन्तन तथा सा
धानी से लिपि बद्ध किये हुए अनुभव के फलस्वरूप हैं। हम
अंगरेज लोग उन्हें यान्त्रिक कलाओं तथा प्रयोग मूलक विज्ञा
के विषय मे जो कुछ सिखा सकें, सामाजिक विज्ञान के विष
मे हम उन्हें कुछ भी नहीं सिखा सकते। जिनसे समाज
सुख समृद्धि तथा शान्ति की प्रतिष्ठा हो, ऐसे सभी उपायों को
हिन्दुओं ने बहुत पहले से प्रकृति के शाश्वत तथ्यों के आधा
पर स्थापित किए हुए सुव्यवस्थित नियमों का रूप दे रक्खा है
उन सब विधानों मे यदि हम अपने अपरिपक्व विचारों को
घुसेड़ने की चेष्टा करें तो उसमे हानि की ही सम्भावना है
उसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं में भी परस्पर विरोधी स्वार्थ

का यह बेतुका संघर्ष प्रारम्भ हो जायगा जो हमारे यहां निन्दनीय सामाजिक अवस्था का निदर्शक है।

(कल्याण के नारी अंक से)

जिस धर्म का पालन कर माता पुतली बाई ने महात्मा गांधी को न केवल जन्म दिया बल्कि उनका निर्माण किया, उस धर्म की व्यवस्था को आज पिछड़ा हुआ मानकर उसे ठुकराया जा रहा है। यह दलील दी जाती है कि उसका पालन करने से हम पिछड़े रह जायेंगे। साथ ही गांधी जी के बताये मार्ग पर चलने का आदेश दिया जाता है, यह क्यों ? उनकी बातें भी तो पुरानी पड़ गयीं। बल्कि उनके समय के गुलाम भारत में और आज के स्वतन्त्र भारत में तो जमीन आसमान का अन्तर पड़ गया है। उन्होंने जितनी बातें की और जो भी मार्ग प्रदर्शन किया, वह परतन्त्र भारत को स्वतन्त्र करने के प्रयत्न में लगे रहने पर किया अथवा उस समय किया जब कि देश के बटवारे की आग भड़क रही थी। आज उनमें से एक बात भी नहीं है। स्वतन्त्र भारत के लिये तो उनका आदेश कांग्रेस को भंग कर लोक सेवा संघ में परिणत करने का था। उनके इस आदेश को क्यों नहीं पूरा किया जाता ?

यह सही है कि नेहरू जी आदि नेतागण धर्म में या समाज में जो भी परिवर्तन करना चाहते हैं सब भारतवासियों की भलाई के लिये चाहते हैं। उनकी सद्भावना में लेशमात्र भी सन्देह की गुंजाइश नहीं। परन्तु केवल सद्भावना ही सब कुछ नहीं है वह जिस स्वर्णिम संसार का स्वप्न देख रहे हैं, वह सम्भव भी है ? कदापि (तीन काल में भी) सम्भव नहीं।

इतिहास साची है, पूर्व इतिहास से कुछ तो शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, सत्य सनातन धर्म में हस्तक्षेप करने का यह प्रथम

अवसर नहीं है। जब से वैदिक धर्म में कमजोरी आई तब से लेकर आज तक इसमें अनेकानेक हस्तक्षेप किये गये सबने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार अपने काल्पनिक संसार की रचना कर पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने की चेष्टा की। किन्तु आज तक कोई भी इस प्रयोग में सफल न हुआ। बल्कि धर्म और समाज की स्थिति बद से बदतर होती गई। जिस प्रयोग में आज तक कोई सफल न हुआ, उसमें हम सफल ही होंगे इसका क्या प्रमाण है ?

अब से ढाई-तीन हजार वर्ष पूर्व भगवान (गौतम) बुद्ध ने सच्चे और अहिंसक संसार की कल्पना की। उन्होंने वैदिक धर्म की साधना-कर्मकाण्ड का क्षेत्र बदल कर अष्टांग मार्ग द्वारा धर्म की साधना करने का मार्ग प्रदर्शित किया। फलतः एकबार न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप बौद्ध धर्म में परिणत हो गया। परन्तु क्या भगवान बुद्ध ने कभी स्वप्न में भी सोचा होगा कि ऐसा शुद्ध सात्विक-धर्म भी विकृत होकर कभी वज्रयान सम्प्रदाय (वाममार्ग) का रूप धारण करेगा अथवा बौद्ध धर्म वाममार्ग में परिणत हुआ दिखाई देगा या चीन आदि देशों में पहुँचकर यह ऐसा हिंसक और सर्वभक्षी का रूप धारण करेगा। यदि वे या सम्राट अशोक यह सब देखने के लिये जीवित होते तो अपनी भूल को स्वीकार अवश्य करते।

महावीर स्वामी (जो कि भगवान गौतम बुद्ध से कुछ काल पूर्व प्रकट हो चुके थे) इक्ष्वाकु वंश के क्षत्रीय थे। उन्होंने जैन धर्म की साधना का पथ-प्रदर्शन कर संसार को त्यागी तपस्वी और अपरिग्रही बना कर अहिंसा की पराकाष्ठा को पहुंचा देना चाहा, किंतु क्या उन्होंने कभी स्वप्न में भी इस बात की कल्पना की होगी कि उनका यह धर्म केवल थोड़े से भारतीय वैश्यों तक सीमित रह जायगा। यथार्थ में वैश्यों का प्राकृतिक धर्म अहिंसा

है, वैश्यों का स्थान पेट का माना गया है। व्रत उपवास और अपरिग्रह पेट का ही धर्म है। पेट से कभी किसी की किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती। हाथ से हिंसा होती है। हाथ का स्थान क्षत्रीय का है। पैरों से हिंसा होती है। पैरों का स्थान शूद्र का है। मुख भी हिंसा कर सकता है गाली-गलौज कर सकता है। दांतों से काट सकता है हिंसक जन्तु मुख (दांतों) से ही शिकार करते हैं। किंतु पेट में हिंसा करने की सामर्थ नहीं। यही कारण है कि जैन धर्म कुछ वैश्यों तक सीमित रह गया। यथार्थ में जैनी लोग सही माने में वैश्य हैं जैसा कि सुनने में आता है। अब भी इनके सन्त महात्मा (जैन मुनि आदि) आहार सम्बन्धी नियम पालन करने में बड़े संयमी बने हुए हैं। यदि आज महावीर स्वामी होते तो इस तत्य को समझ जाते।

ईसा मसीह ने सत्य, सहनशीलता, दया, सरलता, दम, इन्द्रिय-निग्रह इत्यादि मानव धर्म पालन करने का मार्ग प्रदर्शित किया। दीन, दुःखी, दलितों (पीड़ितों) को गले से लगाया और सेवा करने वालों का ऐसा जत्था तैयार किया जो सब बुराइयों से दूर रहें। जिसमें कोई किसी पर अत्याचार न करें। सब त्यागी हों और तपस्वी हों इस संगठन का नाम ईसा मसीह के नाम पर ही ईसाई धर्म पड़ा। किन्तु क्या ईसा मसीह ने कभी स्वप्न में भी यह कल्पना की होगी कि ईसाई धर्म केवल साम्राज्य विस्तार का साधन मात्र बन कर रह जायेगा। उसकी सेवा सुश्रुषा की आड़ में शोषण का साम्राज्य होगा। वह जहां जायेंगे वहां सेवा सुश्रुषा शिक्षा चिकित्सा आदि का मोहिनी जाल बिछा कर उन्हें उनकी संस्कृति, सभ्यता और धर्म से वंचित कर उनका आर्थिक शोषण और विस्तृत भूमि का अपहरण कर उन्हें संकुचित घेरे में खदेड़ कर नारकीय जीवन व्यतीत करने पर बाध्य करेंगे और

स्वयं उनके देश पर हावी हो उन पर शासन करेंगे। अमेरिका में प्रवेश कर वहां के आदि-वासी रैड इण्डियनों की लाशें बिछा कर उनका जानवरों के समान शौक से शिकार करेंगे उन्हें ऐसे घेरे में बन्द करके रक्खेंगे जहां का जलवायु मनुष्य के रहने योग्य कदापि न हो। अथवा जहां का तापमान बारह महीनें में कभी भी १२०° से कम न हो।

स्मरण रहे सम्पूर्ण अमरिका रेडइण्डियनों का देश है। योरोपियनों के वहां पहुँचने के पूर्व अमरिका पर रेडइण्डिनों का ही अधिकार था। वह कोरे जंगली न थे उनका भी अपना धर्म और संस्कृति थी (जो कि भारतीय संस्कृति से मिलती जुलती सुनी जाती है) वह मूर्ति पूजक थे। उनकी मूर्ति गणेश जी की मूर्ति से मिलती-जुलती बताई जाती है।

कुछ सूर्योपासक भी थे। २२ मार्च सन् ५४ के हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार का पूरा-पूरा उद्धरण यहां दिया जाता है। जो कि इस प्रकार है सान्ति यागो चिली २१ मार्च।

एक द्वादश वर्षीया इन्का राजकुमारी का जो ५०० वर्ष पूर्व एक पर्वत की कन्दरा में शाश्वत हिम सिंहासन पर अनन्त काल के लिये अधिष्ठित की गई थी, एक गड़रिये ने पता चलाया है। इसके बारे में नृवंश विशेषज्ञों का कहना है कि सम्भवतः यह एक प्रथम उदाहरण है। जबकि किसी के शव को इतनी पूर्णता से सुरक्षित रखा गया है।

उक्त राज कुमारी का शव यहां से ३५ मील दूर एण्डीज पर्वत शृंखला के पर्वत अल प्लोमो की १६००० फुट ऊंची बर्फ की एक कन्दरा में मिला। राज कुमारी बैठी हुई अवस्था में है। उसके दोनों हाथ पूजा की स्थिति की तरह सम्पुट हैं। उसकी

आकृति पर बाल सुलभ चांचल्य और माधुर्य अब भी स्पष्ट प्रतिभासित होता है। उसने अपने मुख पर पावडर भी लगाया हुआ था, जो छूते ही गिर पड़ा।

इस सूर्योपासिका राजकुमारी ने एक काले रंग की ऊनकी बिना बाहों की पोशाक पहिन रखी है। चांदी के आभूषण तथा चमड़े की चप्पलें भी पहन रखी हैं। इस की एक अंगुली का नाखून कुछ मैला है। वह भी उसी प्रकार का है।

मिश्र की ममियां भी बहुत प्रसिद्ध हैं, किन्तु इस इन्का राज कुमारी का संरक्षण जिस प्रकार किया गया है वह बहुत अद्भुत है। राज कुमारी एकदम जीवित प्रतीत होती है। यहां तक उसकी पुतलियों में भी सरलता और तरलता है।

इसके हाथ में एक चमड़े का बटुआ भी है। जिसमें लाल तोते के पंख तथा उसके अपने ही कटे नाखून हैं। जो इसलिये रखे जाते थे कि उस पर डायनों का प्रभाव न पड़े। इसके आस-पास सोने और चांदीकी कुछ प्रतिमायें हैं। जो पुरातत्व देवताओं के लिये बड़े महत्व की हैं।

अमेरिका के नृवंश वेत्ता डा० रिचार्ड शाडेला इसका अध्ययन कर रहे हैं। तथा शव चिली विश्व विद्यालय के रचना विज्ञान (अनाटमी) संस्था में रखा हुआ है। यह आशा की जाती है कि शरीर के अन्दर के अवयवों से नृवंश सम्बन्धी महत्व पूर्ण बातें ज्ञात हो सकेंगी।

विशेषज्ञों को यह आशा है कि वे राज कुमारी के हाथों की छाप भी ले सकेंगे।

सूर्य की उपासना करने वले क्वे चोस लोग पेरू के इन्का राजवंश के अधीन १३-१४ वी शती में इक्वाडोर से लेकर बोल

विया और चिली तक में फैले हुए थे। इनकी गौरवपूर्ण संस्कृति और सभ्यता को १६५१ में पिजारों के नेतृत्व में स्पेनी आक्रांताओं ने नष्ट कर दिया था।

उन्होंने बाकायदा युद्ध किया परन्तु युद्ध के साधन घटिया होने के कारण उन्हें परास्त होना पड़ा। अब जो संकुचित और छोटे-छोटे (विपैले) प्रदेश उनके पास हैं। ये उनको बाकायदा सन्धि के द्वारा प्राप्त हुए हैं। उस घेरे से बाहर निकलने पर अब भी उन्हें स्वर्ग पहुँचा दिया जाता है। यह परस्पर एक दूसरे से मिल न सकें इसलिए उनकी बस्तियों को चार-चार पांच-पांच सौ मील के अन्तर से बसाया गया है।

आज शिकागो प्रदेश जो आधुनिक साधनों में तथा सभ्यता में चरम सीमा को प्राप्त हो चुका है जहां १२ लाख से अधिक टेलीविजन सैट हैं और लगभग चार लाख नहाने के टब बताए जाते हैं उसी शिकागो की निग्रो बस्ती में नौ-नौ मास के बच्चों को चूहे खा जाते हैं। वहां चूहे इतनी अधिक मात्रा में हैं किसी की नाक, किसी का कान अथवा कोई भी अंग काट ले जाते हैं। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि शिकागो से बदतर स्थिति न्यूयार्क के हार्लेम्स (नीगरो बस्ती) की है। जहां जरा-जरा सी कोठरियों में तीन-तीन चार-चार कुटुम्ब को रहना पड़ता है। रात में एक-एक कुटुम्ब के सोने की बारी दो दो घन्टे की आती है। जब एक कुटुम्ब सोता है तब शेष सब सड़कों पर टहला करते हैं। यही स्थिति वाशिंगटन की नीगरो बस्ती की है।

ये सब उन्नतिके उच्चशिखर पर चढ़े उस अमेरिका की हैं जहां मिश्नरी प्रचारक विश्व के और भारत के कोने-कोने में ईसाइयत का प्रचार करते और ईसा मसीह का सन्देश सुनाते फिरते हैं। भारत में भी उन्होंने वही करना चाहा। हमारी रक्षा तो हमारे

धर्म ने की और शुद्ध सत्य तो यह है कि हमारी सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था ने ही हमारी सहायता की।

यह ईसाई प्रचारक जहां भी पहुँचे उस देश के अधिवासियों का न केवल शोषण किया बलिक जोंक के समान उनके एक एक बूंद रक्त को चूस डाला। उनके विशाल भूभाग का, उनकी रोटी और रोजी का सब प्रकार से अपहरण कर विनाश किया। उनके धर्म, संस्कृति सभ्यता और सामाजिक ढांचे को छिन्न-भिन्न कर आज यह वर्ग समृद्धिशाली और भौतिक उन्नति के शिखर पर सवार हुआ है।

इन ईसाई प्रचारकों ने सभी क्षेत्रों में कूटनीति से काम लिया। जहां देखा कि इनमें सामना करने की शक्ति नहीं है अथवा उनके मुकाबिले में कम है वहां कीड़े मकोड़ों की भांति उन्हें कुचल डाला और पीस डाला। उनकी लाशें बिछा कर देश देश पर अधिकार जमाया। उनका जानवरों के समान शिकार करना उनके लिए गौरव की बात मानी गई। उनका वंश नाश करने में कोई कसर न छोड़ी। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफरीका तथा अन्य छोटे बड़े टापुओं पर ये लोग इसी प्रकार हावी हुए और जहां (विशेष कर एशियाई देशों में) लोग-बाग सब प्रकार के साधनों से सम्पन्न दिखाई दिए वहां प्रथम ईसाई मिशनरियों के रूप में प्रवेश कर सेवा, सुश्रूषा, शिक्षा, चिकित्सा का ताना-बना पूर उन्हें भ्रम में डाल दिया। उनके मन को मोहित कर उनके धर्म, संस्कृति, सभ्यता का बारीकी से अध्ययन कर उसे अस्त-व्यस्त करने में लगे रहे। दूसरी ओर उन्हीं के भाई बन्द व्यापारियों के रूप में उनका आर्थिक दोहन करने से, उनमें परस्पर फूट डालने और उनको लड़ा-भिड़ा कर देश पर अधिकार जमाने की धुन में व्यस्त रहे। चारों ओर से घेरा डाल सब की नाके बन्दी करदी गई। एशियाके प्रत्येक देशपर ये लोग इसी प्रकारहावी हुए।

आज विश्व का एक भी कोना, एक भी महाद्वीप, प्रायद्वीप या कोई भी छोटा बड़ा टापू ऐसा नहीं जो इनके शोषण से मुक्त रहा हो। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों का वंश नाशकर इतने बड़े महाद्वीप में कुछ लाख योरोपियनों (अंग्रेजों) को बसा कर उन्हें स्वतन्त्र छोड़ दिया। ऐसी सूरत में उन्हें अपने विकास करने का पूर्ण अवसर है। यही स्थिति अफ्रीका में है। अफ्रीका के आदिवासी नीगरो को संकुचित घेरे में खदेड़ कर सारे अफ्रीका पर छा गए। आज वहां जो कुछ हो रहा है सर्व विदित है। शोषण का पूर्वक्रम आज भी चालू है। केनिया, ब्रिटिश गायना इत्यादि में जो कुछ हो रहा है समाचार पत्रों द्वारा कभी-कभी उसकी भनक कान में पड़ जाती है। केनिया में उन पर बम वर्षा की जा रही है। सैंकड़ों को फांसी पर लटकाया जा चुका है। ब्रिटिश लोक-सभा में दिए गए आंकड़े के अनुसार अभी तक २८२२ माऊ-माऊ मौत के घाट उतारे जा चुके हैं।

हिन्द चीन में फ्रान्स की सहायता के लिये २५ बम वर्षक देना भी इसका प्रमाण है। स्मरण रहे! अंग्रेजो ने इण्डिया की खोज करते हुये अमेरिका को प्राप्त किया। अमेरिका पहुँच कर भी उन्होंने उसे इण्डिया और वहां के आदिवासियों को इण्डियन समझते हुये भी उनका विनाश किया। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह इण्डिया नहीं है, तब उनका नाम रेड इण्डियन रख दिया। जब यह यथार्थ इण्डिया (भारत) पहुँचे तो यहां की जाग्रति को देख कर कूट नीति से काम लेना पड़ा।

एशियायी (विशेष कर भारतीय) सभ्यता सदा उनकी आंखों में खटकती रही है। भीतर ही भीतर वे इसे धूल में मिलाने का षड़यन्त्र रचते रहे हैं, भारत का बटवारा इसी षडयन्त्र का परिणाम है। आज अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को नवीनतम

हथियारों से सुसज्जित भी इसी नीयत से किया जा रहा है। पाकिस्तान की किले बन्दी करने की और वहां हवाई अड्डे बनाये जाने की केवल सम्भावना ही नहीं है, बल्कि अमेरिका पाकिस्तान की इसके लिये सैनिक संधि हो गई है। वह भारत और पाकिस्तान को कोरिया की स्थिति में ले आने की फिराक़ में हैं।

समाचार पत्रों से यह भी ज्ञात हुआ कि पांच अमेरिकन भारत की सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन करने आये हैं। यहां ध्यान देने की बात यह है कि भारत पर अधिकार स्थापित करने के पूर्व अंगरेजों ने भी भारतीय संस्कृति, सभ्यता और उसकी सामाजिक व्यवस्था का गहराई से अध्ययन किया था। आज अमेरिकन पादरी लाखों की संख्या में हरिजनों को ईसाई बनाते जा रहे हैं। अमेरिका से अरबों डालर की सहायता मिल रही है। भारत की धर्म निर्पेक्ष सरकार ने जो उन्हें स्वतन्त्रता दी है उसका वे मनमाना लाभ उठा लेना चाहते हैं। सवर्णों के विरुद्ध उन्हें ईसाई बना कर उभारने के तथा लड़ाने भिड़ाने के समाचार भी मिलते रहते हैं। समाचार पत्रों द्वारा नित्य ही इस सम्बन्ध में कोई न कोई सूचना मिलती ही रहती है।

आज एटम बम् और हाइड्रोजन बम के जखीरे योरोपीय देशों के लिये नहीं, बल्कि एशिया (भारत और चीन) की जन शक्ति का संहार करने के लिये बढ़ाये जा रहे हैं। इसका प्रमाण जापान के—हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम् गिराते समय ही मिल गया था, जबकि एटम बम् का प्रयोग जर्मनी पर न कर केवल जापान पर किया गया, एक ही नहीं बल्कि दो बम् जापान पर बे खटके गिरा दिये गये। वे भी ऐसे समय जब कि जापान हारता जा रहा था, उसका समुद्री बेड़ा नष्ट हो चुका था। बरमा, मलाया आदि देश उसके हाथ से निकल चुके थे।

आज जो लोग यह समझे बैठे हैं कि अमेरिका आदि देश रूस पर और रूस अमेरिका या योरोपियन देशों पर बरसाने के लिये अणु आयुद्ध तथा उद्रजन आयुद्ध का संग्रह कर रहा है—ऐसे लोग भोले भाले और राजनीतिक चालों में अभी कच्चे हैं। ध्यान रहे! ऐसे स्थानों पर जहां से प्रत्युत्तर मिलने की सम्भावना हो। कोई भी देश एक दूसरे को एटम् इत्यादि आयुध की चुनौती देने का साहस न करेगा। इसका प्रयोग तो उन्हीं देशों पर किया जा सकता है, जहां से प्रत्युत्तर मिलने की कोई सम्भावना न हो। आज भारत, चीन आदि एशियायी देश ही ऐसे बचे हैं, जिनके पास अणु आयुद्धों का मुकाबला करने की कोई शक्ति नहीं है।

अभी कुछ ही दिन हुये, जब अमेरिका के विदेश मन्त्री का एक वक्तव्य समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था, उसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

श्री डलेस कहते हैं, "दक्षिण पूर्वी एशिया चावल का भण्डार है, जो भारत से लगा कर जापान तक की घनी आबादी का पेट भरता है। टिन, तेल, कच्चा लोहा, रबर आदि कच्चा माल का उत्पादक है। वह जापान के तैयार माल के लिये बाजार है और जापान वहां से कच्चा माल प्राप्त कर सकता है। उसका विशेष भौगोलिक महत्व है। वह समुद्री और हवाई मार्गों के बीच में पड़ता है। दक्षिण पूर्वी एशिया पर इसीलिये अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस का प्रभुत्व रहना चाहिये, ताकि वे इस प्रदेश के प्राकृतिक साधनों का उपभोग करते चले जायें। इन देशों की स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं; उसके प्रति शाब्दिक सहानुभूति प्रकट की जा सकती है। किन्तु उन्हें पश्चिमी राष्ट्र अपने चंगुल से बाहर नहीं निकलने देंगे। साम्यवादी भूत को उनमें प्रविष्ट न होने देंगे। (हिन्दुस्तान १-४-५४)

डलेस के उपर्युक्त वक्तव्य से अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों के मन की भावना का खुलासा तो हो ही जाता है। साथ ही हमें चेतावनी भी दे जाता है।

इन सब स्थितियों पर ध्यान देने से यही सोचना पड़ता है कि आज ईसाई वर्ग मानव समाज पर जो अत्याचार ढा रहा है, क्या यही ईसा मसीह के धर्म प्रचार का उद्देश्य था। कहना होगा—कदापि नहीं ! यदि आज ईसा मसीह जीवित होते तो ईसाई समाज के अत्याचारों का देख दो आंसू अवश्य गिराते। खेद है कि वे अमर न हुए। उनके अनुयायी उनके नाम पर मन मानी करने में स्वतन्त्र हैं।

इस्लाम-धर्म का मूल आधार क्या है, यह चेष्टा करने पर भी ज्ञात न हो पाया। यदि यह कोरा राजनैतिक संगठन मात्र नहीं है, तो सब धर्मों का आधार सत्य को माना गया है। अतः इस्लाम धर्म का आधार भी सत्य को तो माना ही गया होगा। इस विषय में प्रश्न करने पर एक सुशिक्षित मुसलमान ने बताया—"कुरान में लिखा है कि 'तोबा' (प्रायश्चित) करने पर खुदा सब गुनाह माफ कर देता है। किन्तु बेगुनाह के मारने वालों को कभी स्वाफ नहीं करता" यह है कुरान की हिदायत, परन्तु भारत में प्रवेश करने से लेकर अब तक मुसलमानों ने भारत में जैसी क्रूरता कठोरता और वर्बरता दिखाई है यह किसी भी धर्म संस्थापक का उद्देश्य नहीं हो सकता। यदि आज हज़रत मोहम्मद जीवित होते तो वह बता सकते थे कि इस्लाम धर्म अपने उद्देश्यों में कहां तक सफल हुआ।

जगद् गुरु श्री स्वामी शंकराचार्य ने अपने चार प्रमुख शिष्यों को साथ में लेकर शाश्वत सनातन धर्म का पुनरुद्धार किया, वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था की परम्परा पुनः स्थापित की।

ऐसे सुदृढ़ प्रबन्ध की रचना की, जिस पर चलते हुये कभी भी धार्मिक, आर्थिक या राजनैतिक अथवा किसी प्रकार के पतन की कोई गुंजायश न हो, परन्तु यहां हजारों वर्ष की रग रग में भरी अकर्मण्यता और कायरता (अहिंसा की भावना) न गई। यहां भारी भूल यह हुई कि जगद् गुरु श्री शंकराचार्य के उत्तराधिकारियों ने सुरक्षा और शासन तन्त्र की अवहेलना कर दी। राजाओं की वंश-परम्परा चालू रखते हुये भी राज्य-धर्म, जिसके द्वारा देश, धर्म और जाति की रक्षा होती है उसे अधर्म समझ कर बहिष्कृत कर दिया, इसका परिणाम यह निकला कि राजा लोग छोटे छोटे टुकड़ों में बट कर मनमानी करने में स्वतन्त्र हो गये। उन पर किसी प्रकार का कोई अंकुश न रहा। वे अपना सारा समय भोग विलास में तथा एक दूसरे पर चढ़ाई करने (लड़ने झगड़ने) में नष्ट करने लगे। दूरदर्शिता का उनमें पूर्णतः अभाव हो गया। देश और धर्म की रक्षा का किसी को कोई ध्यान न रहा (राणा सांगा और राणा प्रताप इनमें अपवाद हुये, किन्तु यह अकेले क्या कर सकते थे) इन सबके परिणाम स्वरूप थोड़े से विदेशी मुसलमान भारत पर हावी हो गये। वे जेहाद का नारा लगाते आये और बड़े-बड़े भीषण अत्याचार करने से भी बाज न आये परन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी कि वे हमें अथवा सनातन धर्म को मिटा न सके।

महाभारत में लिखा है कि जब विदेशियों का या अधर्मियों का देश पर आक्रमण हो तब प्रत्येक व्यक्ति को वर्ण भेद त्याग कर हथियार उठा लेना चाहिए और शत्रु को मार कर भगा देना चाहिए। कारण कि विधर्मी या अधर्मी के राज्य में धर्म, कर्म और समाज की सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त ही भंग हो

जाती है। ऐसे समय अधर्म का भी धर्म समझ कर पालन किया जाता है, जिसे कि यथार्थ में अधर्म ही माना जा सकता है। इत्यादि।

भारत पिछले हजार वर्ष से विदेशियों, विधर्मियों या अधर्मियों के अधिकार में चला आरहा था। फलतः सनातन धर्म में अस्त व्यस्तता आ जाना कोई अचम्भे की बात नहीं है। एक प्रकार से इसे आपद्धर्म भी मान लिया जाय तो कोई अनुचित नहीं है। आज की तो स्थिति ही दूसरी है। अब से २५-३० वर्ष पूर्व इसमें जो कमजोरी या अज्ञानता दिखाई देती थी, उसे आपद्धर्म का प्रयोग ही माना जा सकता है। यदि आज जगद् गुरु श्री स्वामी शंकराचार्य होते तो वह भारत की राजनीतिक दुर्बलता दूर करने का प्रयास अवश्य करते।

मुसलमानों के भारत पर हावी होने के उपरांत सनातन धर्म के अन्तर्गत भी अनेक मत मतान्तरों (साम्प्रदायों) का आविर्भाव हुआ। सबने सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की भावना से मार्ग निर्धारित किया। इससे शाश्वत धर्म को चालू रखने में यद्यपि नवीन प्रोत्साहन मिला, किंतु किसी एक के भी उत्तराधिकारी या अनुयायी बहुत कम अपने लक्ष्य पर पूरे उतरे। परिणामतः इन सब के कारण जटिलता और बढ़ गई।

अंग्रेजों के आने के उपरांत—प्रार्थना समाज, ब्रह्मसमाज और आर्य समाज की स्थापना हुई। सब के पथ प्रदर्शकों ने पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने की चेष्टा की, किंतु सत्य सनातन धर्म का सामूहिक ह्रास (हिंदुओं में आचरण हीनता, नैतिक पतन तथा भ्रष्टाचारी मनोवृत्ति इत्यादि) जो आज देखने में आता है, इसका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व इन सुधरे हुए अवसरवादी धर्मों या समाजों पर भी आ सकता है। यह नहीं समझना चाहिए

कि यह लोग अल्प सख्या में हैं, बल्कि इनका व्यापक प्रभाव सारे हिंदु समाज पर पडा है। यदि आज सारा हिंदू समाज भिन्न भिन्न क्षेत्र में इन सब पर या इनमें से किसी एक पर सचाई से अमल करता होता तो आज किसी को उस पर आपत्ति उठाने की कोई गुंजायश न होती परन्तु हुआ यह कि लोगों ने अपना मार्ग त्याग दिया और उन नवीन धर्मों को भी अपना न सके। फलतः वे न इधर के रहे न उधर के रहे।

अन्ध विश्वास, परम्परागत रूढियां और सामाजिक बन्धन विरोधी आन्दोलन का व्यापक प्रभाव यह पडा कि अन्ध-विश्वास के नाम पर ईश्वर धर्म तथा शास्त्रों की सत्ता अस्वीकार करदी गई। यहा ध्यान देने की बात यह भी है कि विश्वास का स्वरूप ही अन्धा है। हम जिस पर भी विश्वास करेंगे उसके प्रति हमे अन्धा बनना ही पड़ेगा। इस प्रकार किसी न किसी के प्रति हमे अन्ध विश्वासी बनना ही पडता है। ऐसा न करने पर सारी शासन व्यवस्था भग हो सकती है। प्राचीन रूढ़ियों के विरोध मे सब सत्कर्मों का परित्याग कर दिया गया और सामाजिक बन्धन के विरोध स्वरूप आज प्रत्येक व्यक्ति मनमानी करने में अपने आप को स्वतन्त्र मानने लगा है।

इन सुधरे हुए धर्म या समाजों के प्रवर्तक - यदि आज जीवित होते तो उन्हें भारतवासियों के (हिंदुओं के) नैतिक पतन तथा चरित्र हीनता के कारणों को समझते देर न लगती। वे सत्यवादी थे अत. अपनी भूलों को स्वीकार अवश्य करते। यद्यपि शासन तन्त्र की सहायता के बिना बिगडी हुई स्थिति का सुधारना उनके लिए भी कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव था क्योंकि किसी भी शासनतन्त्र का प्रथम कर्तव्य सत्य धर्म की रक्षा करना है। बिना शासक वर्ग की सहायता के फिरका परस्ती (गुटबन्दी) चाहे भले ही बनी रहे किंतु सत्य धर्म की रक्षा नहीं हो सकती।

औरों को यदि भुला भी दिया जाय तो भी महात्मा गांधी का ताजा उदाहरण सबके सामने है। आज प्रत्येक शासक वर्ग महात्मा गांधी के बताए मार्ग पर चलने का आदेश देता है। देहली में प्रत्येक सप्ताह महात्मा जी की समाधि पर प्रार्थना होती है, फूल चढ़ाए जाते हैं और सिर नवाये जाते हैं। प्रत्येक वर्ष गांधी जयन्ती, गांधी पखवाड़ा और गांधी सप्ताह मनाया जाता है। उनका जन्म दिवस और श्राद्ध दिवस—ये दोनों धूम-धाम से मनाये जाते हैं। अखण्ड चर्खा यज्ञ होता है जिसमें राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री आदि प्रमुख व्यक्ति चर्खा कातते दिखाई देते हैं। वर्तमान सरकारी ढांचा तथा उनके कर्णधार गांधी जी के ही निर्मित अंग हैं।

चर्खा

चर्खे से महात्मा जी का क्या उद्देश्य था, यह महात्मा जी के ही शब्दों में इस प्रकार है—

"एक भूखे मनुष्य को सबसे पहले यह चिंता होती है कि किस प्रकार उसकी भूख शांत हो। भोजन का एक कौर प्राप्त करने के लिये वह अपनी स्वतन्त्रता और वह अपना सब कुछ बेचने के लिए तैयार हो जायगा। आज भारत के करोड़ों आदमियों का ऐसा ही हाल है। उनके लिये स्वतन्त्रता, ईश्वर और इस प्रकार के शब्द भिन्न-भिन्न अक्षरों के जोड़ मात्र हैं। जिसका कोई अर्थ नहीं निकलता। अगर हम उनको स्वतन्त्रता का सही आशय समझाना चाहते हैं तो हमें उन्हें ऐसा काम देना होगा, जिसको वे टूटी-फूटी झोंपड़ियों में रह कर कर सकें। यह चर्खे द्वारा ही सम्भव हो सकता है।" (गांधी जी)

आज के स्वतन्त्र भारत में कपड़ा मिलों तथा विदेशी वस्तुओं की भरमार है। यांत्रिक जाल पूरे जा चुके हैं और आगे

दिनोंदिन बिछाए जा रहे हैं। अब देशी विदेशी का भी कोई भेद नहीं किया जाता। कपास ओटने से लेकर रुई धुनने, सूत कातने और कपड़ा बुनने तक की मशीनें लग गई हैं। कर्ता कोरी धुनियां, जुलाहे कोई भी मिलों से मुकाबला न कर सकने के कारण बेकार हो चुके हैं। सुरसा के मुख के समान बेकारी बढ़ती जा रही है। बिक्री के अभाव में खादी भण्डारों में माल भरा पड़ा है और उनके बन्द होने तक की नौबत आ गयी है। इस स्थिति में चर्खे का कोई महत्व नहीं रह जाता। फिर भी गांधी जयन्ती आदि पर चर्खा यज्ञ होता है। अखण्ड रूप से चर्खा चलाया जाता है। राष्ट्रपति तथा अन्य नेतागण सब के सम्मुख चर्खा कातते हैं। महात्मा जी के चित्र पर सूत की माला चढ़ाई जाती है।

इन सब बातों से ऐसा प्रतीत होता है—जैसे महात्मा जी को चर्खे का व्यसन रहा हो और वे अपने उस व्यसन को पूरा करने के लिए चर्खा कातते हों,क्या इससे महात्मा जी की आत्मा सन्तुष्ट होगी ? कदापि नहीं ! यह तो न केवल महात्मा जी की दिवंगत आत्मा को, बल्कि अपने आप को भी धोखे में डालना है। महात्मा गांधी ने जो चर्खे का व्रत लिया था वह तप का एक अंग था। आज कोरा प्रदर्शन होता है। वर्ष या छः मास में एक दिन खद्दर पहन कर महात्मा गांधी के नाम पर चर्खा कताई का प्रदर्शन कर लिया। १२ या ६ मास के लिए चर्खा सम्बन्धी कर्तव्य से बरी हो गए। यदि यह चर्खा प्रदर्शन न हो तो महात्मा जी के चर्खा सम्बन्धी उद्देश्यों के अभाव पर ध्यान अवश्य आकर्षित हो और उस अभाव की पूर्ति करने पर आगे पग बढ़ाया जाय। यह प्रति वर्ष का चर्खा-प्रदर्शन तो उस भावना के पनपने में बाधक बना हुआ है। यह दृढ़ निश्चय से कहा जा सकता है कि प्रति वर्ष का यह प्रदर्शन गांधी जी के चर्खा सम्बन्धी उद्देश्यों

का दुरुपयोग है।

महात्मा जी की अहिंसा प्रसिद्ध है। वे सत्य और अहिंसा के उपासक थे अभी महात्माजी को परमधाम पधारे केवल ६ वर्ष हुए, आज महात्मा गांधी के मार्ग पर चलने का सबसे अधिक राग अलापने वाले, अहिंसक गांधी जी के सबसे प्रमुख उत्तराधिकारी—श्री नेहरू जी—हिंदू महा सभा, रा० स्वयं सेवक संघ, जन-संघ और राम राज्य परिषद को कुचल डालने पर तत्पर हैं। एक दो व्यक्ति को ही नहीं, पूरी चार संस्थाओं को कुचल डालना चाहते हैं। श्री नेहरू जी का यह ऐलान करना और विरोधी दल के सबसे प्रबल नेता जनसंघ के निर्माता—स्वर्गीय श्री श्यामा प्रसाद मुकर्जी को कश्मीर जाने देकर वहां बन्द बनाना उन्हें भारत वापस न भेज कर कश्मीर में (जहां भारत के सर्वोच्च न्यायलय की पहुँच न हो) बन्द रखना, उनकी अचानक मृत्यु का समाचार—ये सब घटनायें अल्प काल में सिल-सिलेवार इस प्रकार घटित हुई जिसमे जनता का सन्देह करना स्वाभाविक था। इसलिए भारतीय जनता निष्पक्ष जांच के द्वारा यह जानना चाहती थी कि उनकी प्राकृतिक मृत्यु हुई अथवा हत्या की गई इसे भी स्वीकार न किया गया। आज गांधीवादी सिद्धांत अथवा गांधीजी के राम राज्य की क्या यही परिभाषा है? यदि महात्मा गांधी आज जीवित होते तो क्या वे दुबारा अपना मार्ग निश्चित न करते।

श्री नेहरू जी आज भारत के कर्णधार हैं। भारत की सारी शक्ति उनके हाथ में है। वे दण्ड धारी शासक हैं। कौन उनका क्या बिगाड़ सकता है। निहत्थी जनता कर भी क्या सकती है? मुसलमानी शासन काल मे कत्ले आम के समय जब सम्राट् यमुना का पानी लाल रहता था, तब उन कातिल शासकों क

किसी ने क्या बिगाड़ लिया ? अंग्रेजों ने गदर के उपरांत जब खुल कर कत्ले आम किया तब उनका किसी ने क्या बिगाड़ लिया ? और जलियां वाला बाग में जब हजारों निहत्थे स्त्री-बच्चों तक का चारों ओर से घेर कर मशीनगन से भून डाला, तब उनका किसी ने क्या बिगाड लिया ? इसी प्रकार लेनिन स्टैलिन, हिटलर और मुसोलिनी का भी कोई क्या बिगाड़ सका। इसी प्रकार नेहरूजी का भी कोई क्या बिगाड़ सकता है ?

इलाहाबाद के कुम्भ स्नान पर तीन सौ मरे, तीन हजार मरे, या दस हजार मरे, कुप्रबन्ध से मरे पुलिस के अभाव में मरे, लाठी चार्ज से मरे या घोड़े दौड़ान से मरे। मर गये सो तर गये। उनकी लाशों को लकड़ियों की भांति उछाला गया हो, पजावा लगा कर मिट्टी के तेल से जलाया गया हो या चन्दन और कपूर से जलाया गया हो, ट्रकों में भर कर अज्ञात स्थान में भेजा गया हो, गढ्ढे में पाट दिया गया हो या गंगा प्रवाह किया हो, फिर वही—मर गये सो तर गये। शासक मण्डली पार्टी करे, जल्सा मनाये, नाच गाने करे या मातम मनाये, कोई अन्तर नहीं आता। उनका कोई क्या बिगाड़ सकता है ?

(¹)

किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि आज अहिंसक गान्धी जी के अनुयायी, उनके परम भक्त गान्धी वादी सिद्धांत के नाम से मनमानी करने में लगे हैं और चाहते यह हैं कि अनादि काल से चले आ रहे—सनातन धर्म को जड मूल से उखाड़ भी डालें और उसकी जड जमी भी रहे। और यह सब इतनी जल्दी हो रहा है जबकि कहने में आ सकता है कि अभी गान्धी जी की राख भी ठण्डी नहीं पडी। अर्थात् अभी महात्मा गान्धी की याद और उनकी बातें किसी को भूली नहीं है। अब

श्री नेहरू जी स्वयं इतनी जल्दी गान्धी जी के बताये मार्ग से विचलित हो सकते हैं, तब कैसे आशा करते हैं कि वे जिस स्वर्णिम संसार की रचना करना चाहते हैं, उसमें सफल ही होंगे। अथवा वह जो मार्ग निश्चित करेंगे, जनता आंख-कान बन्द कर उसी मार्ग पर चलती रहेगी, वह इसका मनमाना अर्थ निकाल दुरुपयोग न करेगी ? अथवा अगली पीढ़ियें (सन्तति) भी उसी भावना से और उसी बुद्धि तथा विचार से काम लेंगी जिसके द्वारा श्री नेहरू जी हमारा मार्ग प्रदर्शन करना चाहते हैं।

स्मरण रहे! बिगाड़ना जितना सरल होता है, बिगड़ी हुई स्थिति का सुधारना उससे कहीं अधिक कठिन है। धर्म की रक्षा करना शासक का धर्म कर्म और कर्तव्य है। किन्तु धर्म की स्थापना या धर्म में हस्तक्षेप करना किसी राज्य के शासनाधिकारी का कर्तव्य नहीं। आज तक किसी भी धर्म की स्थापना किसी राजा (शासक) ने की हो, ऐसा कोई उदाहरण कदाचित ही मिले। वर्तमान शासक वर्ग तथा सुधारक मण्डल आज सनातन धर्म में हस्तक्षेप कर जनता को केवल पथ भ्रष्ट करके छोड़ सकते हैं। अर्थात् उलझी हुई गुत्थी को और भी उलझा सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के मन, बुद्धि और विचार भिन्न-भिन्न होते हैं, पूर्व संस्कार सामयिक वातावरण, परिस्थितियों और संगतियों से प्रेरणा मिलती है। जिसके जैसे संस्कार पड़े होंगे, जैसे वातावरण में रहा बसा और पला होगा, जैसे संगति और परिस्थितियां होंगी वैसा ही उनका मन, मस्तिष्क और बुद्धि होगी। आचार-विचार और आहार का भी भारी प्रभाव पड़ता है। तात्पर्य यह कि जितने व्यक्ति हैं, उतने ही प्रकार की बुद्धि है।

एक बुद्धि वादी व्यक्ति धर्म और सामाजिक बन्धन को

नहीं मानता और सभी धर्म, कर्म, लोकाचार तथा कुल व्यवहार सबकी अवहेलना करता हुआ अपने को सभी बन्धनों से मुक्त मान लेता है। फिर भी वह बुराई और भलाई में भेद जानता है। वह बुराई का त्याग कर भलाई ग्रहण करता है। अतः संसार में वह सुखी उन्नति करता दिखाई देता है। यही नहीं वह समाज के लिये उदाहरण बन कर अपनी प्रखर बुद्धि के अनुसार नया मार्ग प्रदर्शित करता है परन्तु तत्काल ही दूसरे की बुद्धि उसका काट करती है। यदि राज्य की सहायता और जनता के सहयोग से कुछ सफलता मिल भी गई तो अगली पीढ़ियां उसका दुरुपयोग करतीं हैं। यहां पहुंचकर मार्ग प्रदर्शक के उद्देश्यों को सर्वथा उलट दिया जाता है। क्योंकि मन पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न रहने के कारण मन की गति के साथ बुद्धि भी नीचे की ओर झुक जाती है। फलतः विषय भोग में फंस कर मानव पतन को प्राप्त हो जाता है।

महात्मा गांधी के जैसे संस्कार पड़े थे। वे जैसे वातावरण में रहे बसे और पले थे, वैसा ही उनका मन, मस्तिष्क, बुद्धि और विचार था। जोकि उनके साथ गया। उन्हीं महात्मा गांधी के अनुयायी, वर्तमान शासक व्यक्ति अपनी बुद्धि से सोचते हैं अपने मन मस्तिष्क और भावना से विचार करते हैं वे अपनी बुद्धि और विचार को अपने कर्म और कर्तव्य पालन तक सीमित रहने दें, यहांतक तो ठीक है, परन्तु ऐसा न कर वे आज सनातन धर्म को उलटने की परम्परा चालू करने जा रहे हैं, जोकि सर्वथा अनुचित है। बुद्धिवाद का अंत तो (भारत में) वज्रयान सम्प्रदाय के रूप में हुआ। इस नवीन मार्ग का अन्त कहां पहुंच कर होता है—यह देखने के लिये हमारे पथ प्रदर्शकों को कम से कम सौ वर्ष और जीवित रहने का हामी भर लेना चाहिये। जिससे धर्म के उलटने के परिणामों को अपनी आंखों देख भी सकें क्योंकि

उद्रजन आदि आयुधों का प्रयोग न भी हुआ तो सौ वर्ष में इसके परिणामों की (पाशविकता का) केवल झलक मात्र मिल सकती है। उसका पूर्ण पैशाचिक और विकराल स्वरूप और आगे दिखाई देगा।

इन सभी स्थितियों का अध्ययन कर श्रुति, युक्ति और अनुभव से सिद्ध सत्य-धर्म पालन के विधान के द्वारा शास्त्रों की रचना की गई थी। जिस पर आख बन्द करके चलते हुए भी पतन की सम्भावना नहीं है जो लोक और परलोक की उन्नति का साधन था। जिस व्यवस्था में किसी को किसा प्रकार का कभी भय उत्पन्न नहीं हुआ। सब रोटी और रोजी की चिन्ता से मुक्त थे। श्रम वितरण के द्वारा सब में समानता थी। सबके साथ न्याय था। किसी पर किसी प्रकार के अत्याचार की गुञ्जाइश न थी।

यह याद रखने की बात है कि जब तक जनता के हृदय पर धर्म का नियन्त्रण नहीं है, तब तक चाहे जैसी योजनायें बनाई जायें। चाहे जितने यान्त्रिक जाल बिछा येजायें, आय कर, बिक्री कर, सम्पति कर और मृत्यु कर भले ही लगाये जायें। चाहे जितने यान्त्रिक जाल बिछाये जायें। अथवा (जैसा कि साम्यवादी देशोंमें होता है) जनता की सारी सम्पत्ति भले ही जब्त कर ली जाय। सारे कानूनी जाल भ्रष्टाचारियों के ही सहायक हो सकते हैं। भारत से न तो गरीबी दूर हो सकती है, न बेकारी समाप्त हो सकती है। कानूनके आधारपर भ्रष्टाचार रोकनेकी आशा कोरी मृग-तृष्णा सिद्ध होगी। जब तक गोवध का पाप सिर पर सवार है, तब तक अण्डे, मुर्गी, मछली या गोमास किसी से पेट न भरेगा। सिंचाई की चाहे जैसी उत्तम योजनायें पूरी की जायें अनावृष्टि सबको बेकार सिद्ध कर सकती है। बैलोंका काम ट्रैक्टरों

से या हाथियों से क्यों न लिया जाय, न अन्न की पैदावार बढ़ेगी और न गोवंश के अभाव में 'भूमि' अधिक समय तक उर्वर बनी रह सकेगी। यह बात अब कुछ-कुछ शासकों के भी समझ में आने लगी है। उत्तर प्रदेश के कृषि मन्त्री श्री चरणसिंह के कुछ विचार यहां दिए जाते हैं।

उत्तरप्रदेश के कृषि तथा माल मन्त्री श्री चरणसिंह ने कृषि सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करते हुये ट्रैक्टरों के प्रयोग की चर्चा की। आपने बताया कि उन्नतिशील खेती के यह अर्थ नहीं कि किसान अपने हलों को उठाकर रखदें और बैलों को बेच दें। हिन्दुस्तान के लिये वह दिन अशुभ होगा। छोटे खेतों पर ट्रैक्टर नहीं चल सकता। प्रजातंत्र में किसानों के छोटे खेतों को छीनकर बड़े फार्म नहीं बनाये जा सकते। स्वेच्छाचारी सरकारें भले ही ऐसा कर सकें। मशीन द्वारा खेती पशु की खेती के मुकाबले महंगी पड़ती है। फिर ट्रैक्टर वैसा खाद नहीं दे सकता, जैसा बैल दे सकते हैं। ट्रैक्टर और नकली खाद के प्रयोग से अमेरिका की आज ५६ प्रतिशत जमीन खराब हो चुकी है। वहां छोटी मशीनें और हरी खाद के प्रयोग पर बल देने का आन्दोलन चलाया गया है। हमारी भूमि की उपजाऊ सतह केवल ट्रैक्टर की जुताई से एक सतह और नष्ट हो जायगी। दूसरी ओर बेरोजगारी बढ़ जायगी, इत्यादि।

माल मन्त्री श्री चरणसिंह जी के विचार से यह सिद्ध हो जाता है कि बैलों की खेती और हरी (गोबर की) खाद ही उत्तम है।

शास्त्रों में लिखा है कि जब धर्म की हानि होती है तब अति वृष्टि होती है या अनावृष्टि। आज ये दोनों ही स्थितियां प्रत्यक्ष देखने में आ रही हैं।

यह सही है कि मानव भौतिक विज्ञान में आज बढ़ा-चढ़ा है और प्राकृतिक साधनों का सदुपयोग या दुरुपयोग करने में अपने को समर्थ मानने लगा है। (कदाचित इस स्थिति को ही शास्त्रकारों ने देवताओं पर चढ़ाई करने का या उन्हें बन्दी बनाने का अर्थ लगाया हो) किंतु आज का मानव इतना अधिक शक्तिशाली नहीं बना जो प्रकृति रूपी देवताओं पर पूर्णतः हावी होसके, अथवा ईश्वर को अवतार धारण करने का चुनौती भी दे सके। लगातार दो-चार वर्ष की वर्षा के अभाव में ही पृथ्वी-तल इतना सूख सकता है कि लोग-बाग प्यास से तड़फ उठें, जैसा कि, पिछले दिनों रायल सीमा (मदरास) के लिए सुना जा चुका है। एक-दो वर्ष वर्षा की कमी ने सारे पश्चिमी पाकिस्तान में (जहां बड़ी-बड़ी नहरों का जाल बिछा हुआ है और जहां का गेहूँ किसी समय अखण्ड भारत के लिए पर्याप्त होता था) अकाल की स्थिति उत्पन्न करदी। दैवीय प्रकोप के आगे किसी का एक मिनट भी टिकना कठिन है।

आज प्रगतिशील कहलाने वाले नवीन सुधरवादी नेतागण और शासनाधिकारी वर्ग की टक-टकी इंगलैण्ड अमेरिका रूस इत्यादि उन्नत देशों की ओर लगी है। वे उन-उन देशवासियों के ठाट-बाट, चमक-दमक तथा वैभवशाली जीवन का देखते हैं। फिर भारत की दीन-हीन अवस्था उन्हें दिखाई देती है। इस विषमता के कारणों की छान-बीन करने चलते हैं तो उन उन्नत देशों के और भारतवासियों के खान-पान, आचार-विचार, रहन-सहन वेष-भूषा, धार्मिक व सामाजिक व्यवस्था सबमे भारी अन्तर दिखाई देता है। इस भेद को ही वे भारतीय जनता के पतन का कारण मान बैठे हैं। इसीलिए वे धर्म की इस व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन कर भारत वासियों को उन उन्नत देश वासियों की और भारत को उन उन्नत देशों की

श्रेणी में खड़ा कर देना चाहते हैं। यह नहीं देखते और न ही देखना चाहते कि वे उन्नत देश कितनों की लाशों पर कितनों का आर्थिक दोहन कर, कितनों की जीविका का अपहरण कर, कितनों को कष्ट देकर और सता कर आज फूले-फले और पनपे हैं' तथा उन्नति के उच्च शिखर पर सवार हुए हैं। उन्नत देशों ने जिस प्रकार उन्नति की है और आज शांति के जितने नारे लगाए जा रहे हैं उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संसार में शक्तिशालियों को ही जीने का अधिकार है। शक्ति हीनों और दुर्बलों को यह दुनियां अंगीकार नहीं करती। वे दबाए जाते हैं, कुचले जाते हैं और पीस दिए जाते हैं। शांति के सभी प्रयोग और सभी प्रकार के नारों का लगाना—केवल छल है, कपट है, और धोखा है। किंतु आज उनके मनोरञ्जक साधनों ने हम पर ऐसा सम्मोहनी जादू डाला हुआ है कि उसकी तह तक पहुँचने का और बारीकी से इसकी छान-बीन कर तथ्य को परखने का हमें अवकाश ही कहां रह जाता है? इतना फालतू समय किसके पास है? यह सब कर्कश बातें रुचती किसे हैं? आज यह कौन देखने जाता है कि उन्नत देशों को उन्नति के इस पौधे को सींचने में कितनों का रक्त बहाने की आवश्यकता पड़ी है।

आज अमेरिका जाने वाले दल वहां के विशाल नगर, महल, ऐश्वर्य के भांति-भांति के साधनों को देख कर तथा वैज्ञानिक चमत्कारों से चौंधिया कर भारत वापस आते हैं और वहां की प्रशंसा के पुल बांधते हैं किंतु क्या आज तक किसी एक दल ने भी उन कुचले और सताए हुए रेड इंडियनों की ओर दृष्टि डाली? क्या उन सूर्योपासक-क्येचोसों के अस्थि अवशेषों पर किसी ने दो आंसू गिराए। इन्का सम्राट की समाधि पर किसी ने दो फूल भी चढ़ाए? जो अब से केवल ३०० वर्ष पूर्व १७ वीं शताब्दी तक दक्षिणी अमेरिका के एक छत्र सम्राट थे जिनकी उच्च

सभ्यता का परिचय इन्का राज कुमारी के यरफ में प्राप्त शव मे लगता है। जिसे देख सुनकर आज लोग-बाग चकित रह गए हैं श्वेतांगों ने जिनका वंश विच्छेद कर उनकी लाशें बिछाकर आज वह शक्तिशाली और धन कुवेर बने धन और वैभव दोनों लुटा रहे हैं। अथवा शिकागो के समान हिंसक चूहों और विषैले जन्तुओं से भरी अनेकानेक बस्तियों, (झोंपड़ियों) की ओर ध्यान दिया ? कदाचित किसी ने नहीं।

रूस जाने वाले दल—मास्को, लेनिनग्राड, स्टैलिनग्राड, जर्जिया इत्यादि की सैर कर उनकी तड़क-भड़क से प्रभावित हो वापस आते हैं और वहां की प्रशंसा के पुल बांधते हैं। किंतु क्या किसी एक ने भी साइबेरिया मे गलने वालों की, उनके पीड़ित सम्बन्धियों की कोई टोह लगाई ? जिनकी मुर्दा ढेरियों पर सवार हो वे (रूसी) आज उन्नति की चोटी पर चढ़े दिखाई दे रहे हैं।

पूर्व काल में रावण ने भी इसी प्रकार सोने की लंका बसाई थी। लंका जो यक्षों का गढ़ था, उन सबको मार कर और वहां से खदेड़ कर रावण लंकाधीश बना था।

यह ध्यान देने की बात है कि इस पृथ्वी तल के छोर से छोर तक सभी क्षेत्रों में केवल योरोपियनों (श्वेतांगों) का ही प्रभुत्व छाया हुआ है। सर्वत्र उन्हीं का चमत्कार दिखाई देता है। अल्प संख्या में होते हुए भी ये सभी क्षेत्रों में छाए हुए हैं। विश्व भर की अधिकांश सम्पत्ति और भूखण्ड पर इन्होंने अधिकार जमाया हुआ है।

रूस के पास उनकी जनसंख्या के मुकाबले प्रथम ही विस्तृत भूखण्ड है। इसलिये उसे किसी अन्य देश को हथियाने की आवश्यकता न थी किन्तु रक्त के प्यासे इस भौतिक उन्नति

के विशाल खूनी वृक्ष को उसे अपने ही देशवासियों तथा साथियों के रक्त से सींचना पड़ा है। साम्यवादी रूस ने सबसे पहले धनी व्यवसाइयों पर अमानुषिक अत्याचार कर, उन्हें निर्वंश एवं निर्वासित कर उनके सारे धन को छीन लिया। केवल बड़े-बड़े पूंजी पतियों के ऊपर ही इस प्रकार के अत्याचार नहीं किये गये, सर्व साधारण में जो मध्य श्रेणी के लोग कहाते थे, उनके ऊपर भी घोर अत्याचार हुए। उनमें से अधिकांश को निर्वंश कर, उनका सर्वस्व अपहरण कर उन्हें निर्वासित कर दिया गया। विरुद्ध प्रचार की स्वाधीनता बिलकुल छीन ली गई। यहां तक कि ट्राट्स्की जो रूस का उद्धारक माना जा चुका था, उसे भी स्टैलिन के साथ मतभेद होने पर निर्वासित होना पड़ा, अर्थात् रूस से भाग कर वह अपना जीवन बचा पाया। उसके दल के अगणित व्यक्तियों को सामूहिक रूप से मौत के घाट उतार दिया गया। आज बेरिया तथा उसके दल की वही गति हुई जो ट्राट्स्की तथा उसके दल की हो चुकी थी। उसे साथियों सहित गोली से उड़ा दिया गया। कुछ समय पूर्व बेरिया स्टैलिन का दाहिना हाथ माना जाता था। यदि मालेंकोफ के मुकाबले में बेरिया का पलड़ा भारी होता, तो मालेंकोफ की यही गति होती, जो बेरिया दल की हुई। इस प्रकार वहां जो भी उनके मार्ग का बाधक दिखाई दिया, जिस पर किसी प्रकार का सन्देह हुआ, शारीरिक गठन में भी जो उनकी कल्पना में फिट नहीं बैठा और जितनी जनसंख्या का वह प्रबन्ध कर सकते थे, उन्हें छोड़कर शेष सभी के लिये स्वर्ग का टिकिट कटा दिया गया, अथवा साइबेरिया में विश्राम करने के लिये भेज दिया गया। जो शेष रहे—आज उनकी संख्या वृद्धि करने का प्रयत्न चालू है, वहां सन्तति वृद्धि पर पदवी दी जाती है।

आज भारत के सरकारी और गैर सरकारी अनेकानेक दल पाश्चात्य देशों की उन्नति का अध्ययन करने जाते हैं। वहां विशाल नगर, महल, ऊंची-ऊंची अट्टालिकायें, वहां की सड़कें, सिनेमा, स्टूडियो, स्कूल, कॉलिज, अस्पताल, कल कारखाने, प्रयोगशालायें, वहां का शासन तन्त्र, न्यायालय, पुलिस, वहां की शिक्षा प्रणाली, खेती के विशाल फार्म, वायुयान से खेती बोने के निराले ढग, खेती जोतने, बोने और काटने के यान्त्रिक साधन नेहर, बांध, पुल, पशुधन, उत्तम नस्ल की गायें.डेयरी फार्म, वहां का ऐश्वर्यशाली जीवन, वहां का धन और वैभव तथा भोग-विलास के अनेकानेक साधनों का अध्ययन कर, उससे प्रभावित हो भारत वापस लौटते हैं और यहां आकर उन सबकी प्रशंसा के पुल बांधते हैं। किन्तु एक दल ने भी वहां के आदि वासी रेड इण्डियन, क्वेचोस, इन्का राज्य वंश, नीगरो, हाटन टाटो—इत्यादि जोकि मानव समाज का ही अंग हैं (अथवा थे) का, रूस की सर्व संहारक जेलों का, अफ्रीका इत्यादि देशों के आदिवासियों का कोई अध्ययन किया हो (जिनकी लाशों पर यह देश फूले फले और पनपे हैं, और आज गुलछर्रे उड़ा रहे हैं) उनकी भी किसी ने कोई सुधि ली हो, और उनसे कोई सहानुभूति प्रदर्शित की हो, कहना होगा कदाचित कोई नहीं।

आज भारत के कर्णधार भारत में भी उसी प्रकार की उन्नति चाहते हैं और भारत को उसी सांचे में ढाल देना चाहते हैं, जिसके द्वारा पाश्चात्य देशों ने अपनी उन्नति की है। जिसकी जड़ को सींचने केलिये रक्त की धार चाहिये। भारतकी दो तिहाई जन-संख्या कम किये बिना जिसके लायक क्षेत्र उपलब्ध होना दुसाध्य है। आज इसकी भूमिका तैयार होने लगी है।

आज प्रत्येक वर्ग जनसंख्या के बढ़ने की शिकायत करने लगा है, महात्मा गांधी के समान संयम से जीवन व्यतीत करने

का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। सन्तति निरोध के कृत्रिम साधनों की भरमार है। फलतः युवक तथा युवतियों में व्यभिचार भी बढ़ता जा रहा है। रोगी और दुर्बल व्यक्ति को बधिया बनाने की बात संसद् में प्रस्तुत हो चुकी है। रूस में यह प्रयोग सफल रहा— ऐसा सुना जाता है।

आज प्रत्येक बात में पाश्चात्यों (श्वेतांगों) का अनुकरण करने की भावना तीव्र हो उठी है। आधुनिक साज-सज्जा चमक-दमक विलासिता तथा भौतिक विज्ञान के नित्य नये आविष्कार की जिस चरम सीमा पर पाश्चात्य देश पहुँचे हुये हैं, इस सीमा तक पहुँचने के लिये, उन्हीं के समान क्षेत्र भी उपलब्ध हो तभी भारत और भारतवासी उनकी उन्नति (भौतिक वाद के उच्च शिखर) के स्तर को प्राप्त कर सकते हैं। पाश्चात्यों ने अपनी इस उन्नति के पौधे को विभिन्न देशों के अथवा अपने ही बान्धवों के जिस रक्त से सींचा है, उस-स्तर को प्राप्त करने के लिए भारत को भी उसी प्रकार का उतना ही रक्तपात करने की आवश्यकता सिद्ध हो सकती है और भारत की दो तिहाई जनता का संहार किए बिना उस सीमा को प्राप्त करना दुर्लभ है।

भारत के कर्णधार श्री नेहरू जी भारत को उन्नत देशों की श्रेणी में खड़ा देखने के लिये अधिक आतुर प्रतीत होते हैं, किंतु अपने इस ध्येय की पूर्ति करने में वे अपने ऐहिक जीवन में कभी भी सफल नहीं हो सकते क्योंकि इस प्रकार की उन्नति के लिए जितने रक्त की आवश्यकता है, भारत की जनता का उतना संहार वह कभी कर नहीं सकते। भारत की जनता जितना प्रेम उनसे करती है, श्री नेहरू जी भी यहां की जनता से उतना ही प्रेम अवश्य करते होंगे, फिर भी जाने या अनजाने, भावुकता में या परेशानियों से खीझ कर उनके मुख से निकले कुछ गिलती के

शब्द ही भारतवासियों के परस्पर संहार की आधार-शिला बनते जा रहे हैं। अगली पीढ़ी उनके एक-एक शब्द का मनमाना अर्थ लगा कर मनमाना प्रयोग कर सकती है। हर घड़ी जन संख्या की बढ़ती का रोना, हिंदू संस्थाओं को कुचल डालने वाली भावना और डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी की मृत्यु पर शंका इत्यादि—ये सब थोड़े समय में घटी सिलसिलेवार घटनायें अगली सन्तति (जिसे नास्तिक बनाया जा रहा है) के लिए मार्ग प्रदर्शक सिद्ध हो सकती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

स्मरण रहे! श्री नेहरू जी का जितना प्रभाव आज है, उनके पीछे उसका सौ गुणा महत्व अधिक बढ़ जायगा। उस समय भारतीय जनता श्री नेहरू जी के उन आदेशों की, उनके एक-एक उन शब्दों की छान-बीन करेगी, जो उसकी रुचि के अनुकूल पड़ते हों। आज भारत की जनता चाहे उन शब्दों को कोई महत्व न दे और श्री नेहरू जी चाहे अपने कहे हुये उन शब्दों को भूल भी गये हों, किन्तु जिस प्रकार आज श्री गान्धी जी के नाम पर उनके आदेशों से सर्वथा उलटा किया जा रहा है, उसी प्रकार श्री नेहरू जी के न रहने पर, अगली पीढ़ी उनके नाम पर उनकी भावना के सर्वथा विरुद्धाचरण करेगी। श्री नेहरू जी के नाम की दुहाई देकर जन संहार करने से उसे कोई रोक न सकेगा उन्नत देशों के स्तर पर पहुँच जाने की उत्कण्ठा (तृष्णा) उन्हीं के पग चिन्हों पर चलने में और उन्हीं के समान रक्त की नदियां बहाने में गर्व का अनुभव करेगी। यहां भी विरोधी विचार रखने वालों के साथ धार्मिक संस्थाओं के साथ, सन्त महात्माओं के साथ और ब्राह्मणों के साथ वही सब होगा जो रूस में हुआ। अमेरिका में रेड इण्डियनों के साथ, कनेचोसों के साथ और इन्का राज्य वंश के साथ हुआ, अफ्रीका में नीग्रो आदि आदि-

वासियों के साथ हुआ (आज भी होरहा है) और आस्ट्रेलिया आदि देशों में वहा के आदि वासी—४ाटन टाटो आदि के साथ हो चुका है।

आज भारत में व्यापक अशान्ति छाई हुई है। कुछ थोड़े से उच्च पदाधिकारियों तथा भ्रष्टाचारियों (जिन्हें अनाप शनाप धन प्राप्त हो रहा है) के अतिरिक्त कोई सन्तुष्ट दिखाई नहीं देता। आज भारत में इतने दल अथवा संस्थायें वन गई हैं, सर्व साधारण जिनके नाम से भी परिचित नहीं है। कांग्रेस की सरकार होते हुये भी प्रत्येक कांग्रेसी सरकार से संतुष्ट नहीं। किसी न किसी विषय को लेकर आये दिन सरकार विरोधी प्रदर्शन होते रहते हैं। स्कूलों में कभी अध्यापकों की हड़ताल होती है तो कभी छात्र गण हड़ताल कर बैठते हैं। भविष्य की बाग-डोर सम्भालने वाले कालेज के छात्रों को माना जा सकता है। आज उन्हीं कालेज के छात्रों के प्रदर्शन चरम सीमा को प्राप्त हो चुके हैं। प्रदर्शन भी ऐसे जिसमें पुलिस पर आक्रमण कर दिया जाय, डाकखानों में आग लगादी जाय, बसें फूंक दी जायें। प्रदर्शन कारी छात्रों पर गोली चलाना आज साधारण सी बात हो गयी है। इस प्रकार की व्यापक अशान्ति ही परस्पर जन संहार की पूर्व सूचना है, जिसके लिये आज यह सब क्षेत्र तैयार हो रहा है और यह सब आज के उस समय में हो रहा है जबकि श्री नेहरू जी भारत के कर्णधार हैं। उनके पीछे क्या होगा ? भारत की बागडोर किसके हाथ पड़ेगी ? श्री नेहरू जी के पीछे दूसरा नेहरू कौन होगा ? यह सब विचारणीय विषय है।

महात्मा गान्धी ने बहुत पहले से अपना उत्तराधिकारी चुन लिया था। पण्डित जवाहर लाल नेहरू (उस समय श्री नेहरू जी पण्डित कहलाते थे) डा० राजेन्द्र प्रसाद, श्री राजगोपाला चार्य, आचार्य कृपलानी, मौ० अब्दुल कलाम आजाद, सरदार

वल्लभ भाई पटेल, विनोबा भावे, मशरूवाला, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित इत्यादि अनेकों को उन्होंने तपा कर ऐसा खरा बना दिया, जो तप और त्याग की कसौटी पर सदा खरे उतर सकें। जो उनकी दृष्टि में फिट नहीं बैठा उसे कांग्रेस से अलग हो जाने दिया। अन्त में वे कांग्रेस के चवन्नी सदस्य भी न रहे। कांग्रेस का तथा स्वतन्त्रता संग्राम का भार पूर्णतः उत्तराधिकारियों पर छोड़कर स्वयं तटस्थ से हो गये। उन्हें परीक्षण करने का खुला अवसर दिया। जहां जिसने भूल की, उसकी खुली भर्त्सना की और उन्हें अपनी भूलों को सुधारने का अवसर दिया। परन्तु आज भारत के सर्वे-सर्वा केवल नेहरू जी हैं।

आज कांग्रेस नेहरू हैं, भारत सरकार नेहरू हैं और भारत नेहरू हैं, प्रधान मन्त्री नेहरू हैं, विदेश मन्त्री नेहरू है और जितने भी प्रमुख प्रयोग हैं, सबके प्रधान नेहरू हैं। यहां तक कि साहित्य संगम (एकडेमी) के भी प्रधान नेहरू जी हैं। अन्य किसी को परीक्षण का भी कोई अवसर नहीं मिल रहा है। न किसी अन्य की भावना या सद्विचारों को कोई महत्व दिया जाता है। श्री नेहरू जी की भावना के विरुद्ध विचार प्रदर्शित करने वालों की गणना प्रतिक्रिया वादियों की श्रेणी में करली जाती है।

काल किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, यहां अमर कोई नहीं है। आगे या पीछे मरना एक दिन सबको है। यदि आज अथवा कुछ दिनों में श्री नेहरू जी का समय पूरा हो जाता है, तो उनका उत्तराधिकारी कौन होगा? भारत का धनी धोजरी कौन होगा? आज की अशान्त और बिगड़ी हुई स्थिति को कौन सम्भाल सकेगा? यह कोई नहीं जानता, जिसे कोई जानता नहीं, उसे मान्यता कैसे मिल सकती है? ऐसी सूरत में भारत की क्या स्थिति होगी, क्या श्री नेहरू जी उसकी कल्पना कर सकते हैं?

शुद्धि - पत्र

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	११	मजन्त	भजन्ते
२	५	जाति	गति
२	१३	मज	मज्ञ
२	१६	आत्मान्	आत्मज्ञ
३	१६	इनक मानने	इनके न जानने
५	११	जाती	जाना
६	७	मिलता न मिलता	मिलना न मिलना
६	१३	कुर्वन्ति	कुर्वन्ति
६	१३	स्वस्त्वा	स्वस्त्वा
८	२८	प्रयामायत	मायानाद्य
६	४	या	मां
१०	१४	तान	तीन
१०	२४	तते	(कुछ नहीं)
१०	२४	प्रवषम	प्रवक्ष्ये
१२	१३-१२	दूसरी वहा	दूसरी ओर वहा
१४	२१	माग	मार्ग
१५	११	प्राण	प्राणी
१५	२१	राक्षस	राक्षस
१६	१३	अनिंद्य	अनिंद्य
१६	२१	नाथस्तु	नार्यस्तु
१७	२४	सन्मित्र	सन्मित्र
१८	६	सन्त्रा	महत्व तथा
१८	२२	वसे	उससे
२४	१७	धक्के	धक्के
२५	२३	तोड़कर	तोड़कर घर
२६	२१	जड़ा	गड़ा
२७	५	अव	भर
२७	११	यापरे	चापरे
३१	१६	अतिशमो	अतिशया
३२	४,१२	”	”
३२	२१	समिन्नो	सीमन्नो
३४	१५	धाड़न	फोड़न
३६	१	१६	६६
३७	२५	दैथुन	मैथुन
४१	५,८,६	आयोधन्य	आयाधम्य
४४	६	उस	उसने
४८	२१	प्रसन्नचित्त	प्रमत्तचित्त
५२	११	नारायणा	नारायणाय
५३	२५	ये	स
५६	८	शरीर	शारीरं
५६	११	काषिक	कायिक
५७	१	काचिक	कायिक
५७	६	मम	मय
५७	२१	मात्पवि-निग्रह	मात्मवि-निग्रह
७८	२२	विष्या	विषया
८४	१८	तेजे	तेज से
८६	४	हानि	हानी
८७	८	पुरणो	पुराणो
८६	१०	हाते	होते
६२	७	शरीर	शरीर में
६२	७	तान्	कला में
६२	५	हाता	होती
६२	१५	का	की
६२	१६	प्राणा	प्राणी
६२	१६	काप	कोप
६३	२१	सालह	सोलह
६७	६	हयगोव	हयग्रीव

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११८	६	लौकिक का	लौकिक और पारलौकिक उन्नति का
१११	१	अतः	अंतः
१११	१०	मास्तिष्क	मस्तिष्क
११२	२७	ताकि	न
११३	१२	साकार	सरकार
१०४	१५	जाति	गति
११४	१७	आ	मा
११५	४	नैतिकता की पुकार	(शीर्षक)
११५	१८	नहा	नहीं
११६	१६	वो	वो
११८	१२	स्वच्छ	स्वच्छन्द
१२३	१६	(शीर्षक) योग	भोग
१२३	२०	योग	भोग
१२४	१,३	योग	भोग
१३०	१६	संग्रहशीश	संग्रहशील
१३१	१२	प्रकार	प्रकार का
१३५	३	कलवाल	कलवल
१३७	११	यगा	गया
१३७	१६	राम० रा० य०	रामराज्य
१३६	२४	धन लेने	धन बचा लेने
१४२	५	वह महयज्ञ है	यह यज्ञ है और जिससे सारे संसार की तृप्ति हो यह महायज्ञ है।
१४२	२०	वेश	वंश
१४५	१२	मरण	भरण
१४८	२४	युक्त	से युक्त
१५६	७	आयें	आये
१६३	२	काते	कसते
१६३	१०	से	में
१६३	१४	समाज	समान
१६४	४	उस	उस समय
१६४	१७	नहीं है	इसमें नहीं।
१६५	२०	अभाव	प्रभाव
१७३	१५	और	और वीर्य
१७३	१६	ईश्वर	ईश्वर चिन्त
११६	६७	का	को
१७७	२४	प्रबन्ध	सम्बन्ध
७८	७	आदि	आदी
१८०	१४	प्रयश्चित	प्रायश्चित
१८०	१८	महाशान्ति	महाभारत शान्ति
१६४	१२	निजी	निजि
१६८	१६	जिसमें	जिससे
१६८	१८	देन	देने
२०१	७	भगवान	महापद
५२०	२०	माड़भाड़	भीड़भाड़
२११	१४	महाकाला	महाकाली
२२१	६	किंतु तृताय	किंतु तृतीय
२२६	१४	अत	अतः
२३०	१२	जायन	जीवन
२३५	१६	भी	कुछ नहीं
२३५	१८	आता	आती
२३६	७	मर्रा	पर्रा
२३७	४	मौलिक	भौतिक
२३७	११	प्रत्यक्ष	प्रत्येक
२४०	१६	भगवान मानव	भगवान न मानव
२५५	५	संकत	संकेत